क्रान्तिकारी यूरोप तथा नेपोलियन का युग

लेखक

डॉ० ईश्वरी प्रसाद

हिन्दी समिति

सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश

लखनऊ

प्रकाशकीय

स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व की सार्वजनीन उपलब्धि के लिए फ्रांस में अठारहवीं शताब्दी में जो क्रान्ति हुई, उसका व्यापक प्रभाव समस्त यूरोपीय महाद्वीप पर पड़ा और अनेक देशों में राजसिंहासनों को उलट कर ध्वस्त कर दिया गया। नेपोलियन बोनापार्ट का उत्कर्ष और पतन, सम्राट् लुई सोलहवें का वध तथा महाद्वीप में एक सिरे से दूसरे सिरे तक भीषण युद्धों की लहर ने एक अजीब विप्लवकारी वातावरण उत्पन्न कर दिया था। इस रक्तरंजित क्रान्ति के फलस्वरूप निरंकुश शासन, शोषण, मठाधीशों तथा यथास्थितिवादियों के अतिचारों से मुक्त होकर सामान्य जन में अपने अस्तित्व के ज्ञान का उदय हुआ और सर्वत्र नव जागरण के चिह्न परिलक्षित हुए। इन घटनाओं ने इतिहास को एक नया मोड़ दिया जिसका इतिहासकारों ने आगे चलकर अपने-अपने ढंग से विभिन्न रूपों में विशद विवेचन किया है।

इस पुस्तक में डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने क्रान्तिकारी यूरोप तथा नेपोलियन युग से सम्बन्धित घटनाओं का सिंहावलोकन करते हुए समीक्षा प्रस्तुत की है। इसमें राज्यक्रान्ति के कारणों और परिणामों का बड़ी रोचक शैली में विश्लेषण किया गया है। डॉ० ईश्वरी प्रसाद इतिहास के प्रौढ़ एवं अनुभवी विद्वान् होने के साथ-साथ इतिहास के कुशल प्राध्यापक एवं लेखक भी हैं। हमें विश्वास है कि उनकी यह कृति भी विश्वविद्यालय स्तर के छात्रों तथा जिज्ञासु पाठकों के लिए ज्ञानवर्धक तथा उपयोगी सिद्ध होगी।

लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय'
सचिव, हिन्दी समिति

विषय-सूची

अध्याय १

फ्रांस की राज्यक्रान्ति की पृष्ठभूमि

आधुनिक यूरोप के इतिहास में अठारहवी शताब्दी का विशेष महत्त्व है। इस समय यूरोपीय इतिहास मे कतिपय ऐसी सशक्त घटनाओं का प्रवर्त्तन हुआ जिन्होने यूरोपीय इतिहास की गतिदिशा ही बदल दी। फ्रास की १७८९ ई० की महान राज्यक्रांति भी एक ऐसी घटना है। वस्तुतः आधुनिक यूरोप की राजनीतिक गतिविधियों को सुनिश्चित करने में फ्रांस ने अनेक प्रकार से महत्त्वपूर्ण योग दिया है। उसे विश्व के महानतम शासको की लीलाभूमि, महानतम विचारको की उद्भव-स्थली एवं महानतम क्रान्ति का क्रीड़ा-क्षेत्र होने का गौरव प्राप्त है। अतएव आधुनिक यूरोप के इतिहास के सम्यक अध्ययन के लिए १७८९ ई० की महान राज्यक्रान्ति तथा उसके पूर्व के फ्रांस के राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन पर एक दृष्टि डालना आवश्यक है।

क्रान्ति के पूर्व फ्रांस की राजनीतिक पृष्ठभूमि

फ्रास की क्रान्ति के पूर्व की दो शताब्दियाँ वस्तुतः बूबाँ राजवंश के उत्थान और पतन की शताब्दियाँ हैं। तीन हेनरियों के युद्धों मे विजयी होने के उपरान्त हेनरी चतुर्थ (१५८९–१६१० ई०) जो इतिहास मे हेनरी नैवारी के नाम से भी प्रसिद्ध है, फ्रांस के राजसिंहासन पर आसीन हुआ। उसके द्वारा स्थापित राजवश इतिहास में बूबाँ राजवंश के नाम से प्रख्यात है। जिस समय हेनरी ने राज-पद ग्रहण किया उस समय फ्रांस एक अत्यन्त जर्जर स्थिति मे था। एक शती तक चलने वाले आन्तरिक और बाह्य संघर्षो से फ्रांस अभाव और समस्याओं का केन्द्र-स्थल बन गया था। राज्य और समाज सभी विपन्न थे। कृषि अवनत दशा मे थी। नगर खण्डहर या राख के ढेर के रूप मे दिखलायी पड़ते थे। व्यापार मे गत्यवरोध था। राज्य-कोष रिक्त था। युद्ध-काल में सामन्तों ने शासक के सारे अधिकार हथिया लिये थे। अपदस्थ सैनिकों ने डाकाजनी और लूटमार के द्वारा अपना जीवन-यापन करना प्रारम्भ कर दिया था। इस प्रकार अराजकता, अशान्ति, भ्रष्ट-शिथिल वित्तीय व्यवस्था, सामन्तों की स्वार्थपरता और धार्मिक फूट जैसी

अनेक समस्याओं ने फ्रांसीसी राज्य को पंगु बना रखा था। वास्तव में ये समस्याएँ ऐसी थी जिनका एक दिन में समाधान नहीं हो सकता था। उनके लिए एक स्थिर, दीर्घकालिक, सजग, धैर्यपरायण तथा सक्षम शासन की आवश्यकता थी और हेनरी अपने अल्पकालिक राजत्व मे इन समस्याओं के समाधान के लिए केवल आरम्भशूर था, 'सैपर मैना' का कार्य कर सकता था। फिर भी इन दिशाओं में उसने स्तुत्य कदम उठाये। सौभाग्य से इस समय हेनरी चतुर्थ को एक अत्यन्त योग्य सहायक मिल गया। वह योग्य सहायक था उसका प्रधानमन्त्री सली। प्रवृत्ति और प्रभाव, कार्य-विद्या तथा चरित्र-गठन मे ये दोनो एक-दूसरे के पूरक थे।

हेनरी और सली के समन्वित योग से तत्कालीन फ्रास की राजनीतिक व्यवस्था एव आर्थिक स्थिति मे स्तुत्य परिवर्त्तन आ गया। वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए सली ने अनेक महत्त्वपूर्ण कदम उठाये। उसने सारे देश का दौरा किया। प्रान्तीय गवर्नरो द्वारा करोद्ग्राहन की प्रथा का अन्त कर दिया। उसने संख्या-बहुल वित्तीय अभिकर्त्ताओं का अन्त कर दिया और उन्हे अनुचित रूप से अर्जित सम्पत्ति को वापस करने का आदेश दिया। उसने कर-निर्धारण के रजिस्टरो को ठीक कराया तथा करों के खातों के निरीक्षण की उचित व्यवस्था करायी। उसके इन कार्यो से राज्य और जनता दोनों को ही अच्छा लाभ हुआ।[१] वित्तीय सुधारों के अतिरिक्त राष्ट्र के आर्थिक विकास के अन्य प्रयत्न भी अपनाये गये। सली का विचार था कि राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए कृषि का विकास अपरिहार्य है। उसकी धारणा थी कि कृषि के विकास से एक ओर तो राष्ट्र की आर्थिक स्थिति सुधरती है, दूसरी ओर सम्राट् के समर्थकों का एक स्थायी और विश्वसनीय विशाल वर्ग तैयार होता है। अतः कृषि के विकास के लिए उसने अनेक कदम उठाये। इसके लिए उसने जंगलों के विनाश को वन्द किया, सिंचाई के लिए नहरो की उचित व्यवस्था की, खाद्यान्नों के परिवहन को तथा पशु-सम्वर्द्धन को सुव्यवस्थित किया। उसके इन कार्यो से राष्ट्र की सामान्य आर्थिक स्थिति के सुधरने मे अच्छी सहायता मिली। फ्रास के वर्त्तमान ख्याति-प्राप्त नगर पेरिस, लायन्स, मार्सेलीज इत्यादि की समृद्धि का श्रीगणेश हेनरी चतुर्थ के समय में ही हो गया था। सली ने विभिन्न राष्ट्रो मे पारस्परिक

१. In twelve years of rigorous and just administration he relieved the French people from paying unauthorised and illegal taxation and saved them more than 120 millions of francs annually, he remitted to them more than 20 millions of arrears, paid off or cancelled 330 millions of debt, provided the necessary resources for the maintenance of a large army and an expensive Court and stored up in the cellars of Bastille, a treasure of 30 millions against unforeseen contingencies," Wakeman : "The Ascendancy of France", page 22.

सहयोग बनाये रखने तथा विश्व-शान्ति की स्थापना का भी स्वप्न देखा था। उसकी यह योजना इतिहास में 'ग्राण्ड डिजाइन' के नाम से अभिहित है किन्तु उसका यह स्वप्न साकार न हो सका।

इस प्रकार हेनरी चतुर्थ के राजत्व को सफल बनाने में उसके प्रधानमन्त्री सली का सराहनीय योग था। हेनरी चतुर्थ ने राष्ट्र को जर्जर करने वाली अन्य समस्याओं का भी निराकरण करने का प्रयास किया। इन समस्याओ मे सामन्तो और राष्ट्र की बाह्य सुरक्षा की समस्या प्रमुख है। जहाँ तक सामन्तों का प्रश्न है हेनरी ने बड़ी कुशलता से उन्हें शक्तिहीन करने का प्रयास किया। इसके लिए हेनरी का सबसे सफल प्रयास शासन-कार्य को व्यवसाय तथा असामन्ती स्तर के लोगों को सौंपना था। ये लोग सामन्तों से स्पर्द्धा रखते और सम्राट् पर पूर्ण रूप से निर्भर थे। इसके साथ ही उसने सामन्तो के एक नये वर्ग की स्थापना की। उसने एक दूरदर्शी वैदेशिक नीति का अनुगमन कर यूरोपीय राष्ट्रों के मध्य फ्रास के स्तर को ऊँचा उठाने का सफल प्रयास किया।

१६१० ई० में दुर्भाग्यवश एक धर्मान्ध व्यक्ति (रावलाक Ravaillac) द्वारा हेनरी चतुर्थ की हत्या कर दी गयी। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ कि हेनरी के किये गये सारे कार्यो पर पानी पड़ जायगा। उस समय सम्राट् लुई अल्पवयस्क था अतएव महारानी मेरी दि मेदिची को राजय या रीजेण्ट बना दिया गया। मेरी एक अभिमानिनी, महत्त्वाकांक्षिणी और अयोग्य महिला थी। सात वर्ष तक फ्रांस के शासन का सूत्र उसके हाथों में रहा। इन वर्षो मे फ्रांस पुनः पतन की ओर उन्मुख हो गया। हेनरी चतुर्थ की गृह और परराष्ट्र नीति का परित्याग कर दिया गया। मेरी के कुशासन से लोगों में असन्तोष फैलने लगा। अन्त मे सम्राट् ने शासन-सत्ता स्वतः अपने हाथो मे ले ली। परन्तु सम्राट् लुई तेरहवाँ भी एक अयोग्य शासक था। सौभाग्य से उसे कार्डिनल रिशलू के रूप में एक अत्यन्त योग्य प्रशासक मिल गया। रिशलू (१५८५–१६४२ ई०) के पद-भार सम्भालने के समय सामन्तों और ह्यूगनों ने बड़ी अशान्ति मचा रखी थी। आन्तरिक एवं वैदेशिक क्षेत्र मे भी अनेक शिथिलताएँ आ गयी थी। रिशलू ने इन सब शिथिलताओं से फ्रांस को मुक्त करने का प्रयास किया। सर्वप्रथम उसने ह्यूगनो (Huguenots) की शक्ति के दमन की ओर कदम उठाये। ह्यूगनों की शक्ति विगत दशको में काफी बढ़ गयी थी। हेनरी चतुर्थ द्वारा प्रदत्त 'एडिक्ट आफ नाण्ट' (Edict of Nantes) के कारण इनकी राजनीतिक शक्ति मे अच्छी वृद्धि हो गयी थी। उनकी अपनी सभाएँ थी, अपने-न्यायालय थे, अपनी सेनाएँ थी और थे सुरक्षित दुर्गाकार नगर। ऐसी दशा में ह्यूगन प्रायः राजाज्ञा का उल्लघन किया करते थे, राज-कार्य में हस्तक्षेप कर राजनीतिक सुस्थिरता में व्यवधान उत्पन्न किया करते थे। रिशलू जैसे देश-भक्त महामन्त्री को राज्य

के अन्दर विघटन के ये तत्त्व सह्य नहीं थे। फलतः जब १६२५ ई० मे ह्यूगनों ने विद्रोह कर दिया तो रिशलू ने दृढ़तापूर्वक उनका शमन किया। रिशलू के नेतृत्व में फ्रास की सेनाओं ने ह्यूगनों के मुख्य नगर रौशीली (La Rochelle) पर आक्रमण कर दिया। १५ महीने तक घेरा पड़ा रहा। अन्त में ह्यूगनों को नतमस्तक होना पड़ा। उसने ह्यूगनो की विघटनकारी राजनीतिक शक्ति को समाप्त कर दिया। हाँ, उसने ह्यूगनों की धार्मिक स्वतन्त्रता का अपहरण नहीं किया। उनके धार्मिक एवं नागरिक अधिकार पूर्ववत् बने रहे। उनके सभा करने, सेना रखने एवं राजनीतिक कार्यो मे व्यवधान उत्पन्न करने वाले साधनो का अन्त हो गया।

ह्यूगनों की भाँति सामन्तों ने भी बड़ा उत्पात मचा रखा था। उनसे राष्ट्र की राजनीतिक शान्ति के भंग होने का हमेशा भय बना रहता था। वे खुलकर राजाज्ञा का उल्लघन कर देते, अवसर पाने पर अपने अधिकृत क्षेत्र मे अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर लेते और नाना प्रकार से जनता को कष्ट पहुँचाया करते थे। सत्तारहित राजमाता मेरी दि मेदिची के साथ मिलकर वे रिशलू के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने की योजनाएँ बना रहे थे। रिशलू ने सामन्तों के शक्ति-केन्द्र दुर्गो को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इसके अतिरिक्त अन्य साधनों से भी उसने सामन्तो की शक्ति का शमन किया।

रिशलू का अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य शासन का केन्द्रीकरण था। शासन को केन्द्रित एवं सुश्रृंखलित करने की दृष्टि से उसने ३० 'इण्टेण्डेण्ट्स' (Intendents) की नियुक्ति की। इन अधिकारियों के हाथों में रक्षा, न्याय तथा राजाज्ञा विभाग सौपा गया। इस प्रकार गृह-नीति में रिशलू को अप्रतिभ सफलता मिली। शासन का अत्यन्त केन्द्रीकरण कर उसने फ्रांस को सुव्यवस्था देने का प्रयास किया। राजतन्त्र के प्रबल समर्थक और उन्नायक होने के नाते उसने प्रतिनिधि-सभाओं, सामन्तों, धार्मिक संवासों और संगठनो को राजमुकुट के अधीनस्थ कर राजसभा की सर्वोपरिता स्थापित करने का सफल प्रयास किथा। वाणिज्य-व्यवसाय की वृद्धि का भी उसने प्रयास किया किन्तु इस दिशा मे उसे विशेष सफलता न मिली। शिक्षा और सांस्कृतिक विकास की ओर भी उसने कुछ ध्यान दिया। वैदेशिक नीति में भी उसने सफलता प्राप्त की। अपनी कूटनीतिज्ञता के कारण उसने फ्रांस को यूरोपीय राष्ट्रों की प्रथम पंक्ति में खड़ा कर दिया। सामरिक दृष्टि से वह अपने परम्परागत शत्रु स्पेन से कही आगे बढ़ गया। पर यह सब कुछ होते हुए भी रिशलू के शासन की एक स्वर से प्रशंसा नहीं की जा सकती, कारण कि उसका सारा शासन आतंकवाद और रक्तपात पर आधारित था, उसमे लोक-कल्याण या जन-मंगल के लिए कोई स्थान नही था। १६४२ ई० मे फ्रांस के इस देशभक्त महामन्त्री का देहावसान हो गया। उसकी मृत्यु के थोड़े ही समय बाद (१६४३ ई०) लुई त्रयोदश की भी मृत्यु हो गयी।

लुई त्रयोदश का उत्तराधिकारी लुई चतुर्दश था। सिहासन पर बैठने के समय उसकी अवस्था केवल पॉच वर्ष की थी। राजमहिषी एन आव ऑस्ट्रिया उसकी संरक्षिका बनी। ऐसे समय में फ्रास पुनः पतन के गर्त्त में जा सकता था परन्तु भाग्य से रिशलू के स्थान पर कार्डिनल मजारॉ आ गया था। यद्यपि कार्डिनल मजारॉ मे रिशलू जैसी मौलिकता और अदम्य उत्साह नही था किन्तु फिर भी उसने रिशलू के पद-चिह्नों पर चलते हुए कुशलतापूर्वक शासन किया। उसके शासन की दो प्रमुख घटनाएँ उल्लेखनीय है। एक तो फ्रौण्द (Fronde) का गृह युद्ध तथा दूसरा स्पेन का फ्रास पर आक्रमण। फ्रौण्द का विद्रोह फ्रास के कतिपय असन्तुष्ट सामन्तो का विद्रोह था जिसे दमन करने में मजाराँ ने पूरी सफलता प्राप्त की। इसी तरह स्पेन के आक्रमण का भी प्रतिरोध किया और इंग्लैण्ड के साथ मिलकर स्पेन को सन्धि के लिए बाध्य किया। १६५६ ई० मे पेरेनीज की सन्धि हुई। इस सन्धि की गौरवपूर्ण स्मृतियॉ लिये १६६१ ई० मे मजाराँ मृत्यु की गोद मे सो गया।

इस प्रकार विगत दशको में फ्रास की व्यवस्था इन कार्डिनल-द्वय के हाथों मे रहीं। इसके बाद फ्रांसीसी इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। यह युग निरंकुश राजत्व का युग है। कार्डिनल मजारॉ की मृत्यु के उपरान्त लुई चतुर्दश ने शासन-सूत्र अपने हाथों में लिया। वस्तुतः इस समय से लेकर मृत्यु-पर्यन्त लुई चतुर्दश राज्य और शासन का सर्वेसर्वा बना रहा। अपने समवर्ती कतिपय सम्राटों की भाँति लुई भी राजा के दैवी अधिकारों (Divine Rights) में विश्वास करता था। लुई ने योग्यतम व्यक्तियों के हाथों में शासन के विभिन्न अंगों को सौप कर शासन को प्रगति-पथ पर बढ़ाने का प्रयास किया। इस प्रसंग में यह स्मरण रखना चाहिए कि अपने पिता और पितामह की भाँति उसने शासन के समस्त सूत्र किसी सली, रिशलू या मजाराँ के हाथों में सौंप कर अपने कर्त्तव्य से मुक्ति पाने का प्रयास नही किया। अपने अधिकारियों की नियुक्ति उसने इसलिए की थी कि वे पदाधिकारी उसके अधीन रहते हुए शासन के पुनर्गठन में उसे पूरा योग दें। मन्त्रियों की नियुक्ति के प्रसंग में उसने एक स्थल पर स्वयं कहा था,' मैं जैसे मन्त्रियों की नियुक्ति करता हूँ, उससे सर्वसाधारण को यह ज्ञात हो जाना चाहिए कि मैं उनके साथ राजसत्ता विभाजित नहीं करता।' राजत्व एवं प्रशासन विषयक इन आदर्शों को सामने रख लुई चतुर्दश ने फ्रांस के प्रशासन-तन्त्र को नया जीवन देने का प्रयास किया। स्थल और जल-सेना, सार्वजनिक निर्माण-कार्य, राजस्व प्रभृति क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। प्रशासन के पुनर्गठन में लुई को जिन योग्य पदाधिकारियों से सहयोग मिला, उनमें जाँ कोलबर (Jean Colbert) का नाम शीर्षस्थ है।

जाँ कोलबर (१६१६—८३) का जन्म फ्रांस के व्यवसायी परिवार में हुआ था।

मज़ारॉ की कृपा से वह अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर रह चुका था। कार्डिनल मजाराँ की मृत्यु के उपरान्त लुई ने उसे अधिक दायित्वपूर्ण कार्य सौपे। वित्तीय नियन्ता (कण्ट्रोलर जनरल आव फाइनेंस), नौपरिवहन, वाणिज्य-व्यवसाय, कृषि और उपनिवेशो के मन्त्री के रूप में कोल्बर युद्ध-विभाग को छोड़कर शेष अन्य सभी विभागों पर अपनी प्रमुखता बनाये रहा। नाम को छोड़कर एक प्रकार से अपनी मृत्यु पर्यन्त (१६८१ ई०) वह फ्रांस का प्रथम मन्त्री बना रहा। यह सत्य है कि लुई की स्वेच्छाचारिता, कर्मठता एवं नियंन्त्रण के कारण उसकी स्थिति रिशलू या मजाराँ जैसी नही थी परन्तु अपने अथक परिश्रम एवं योग्यता के कारण वह लुई का कृपा-पात्र बन गया, लुई के आदेशो का अक्षरश: एवं पूरी तत्परता से पालन करते हुए उसने फ्रांस की गिरती हुई आर्थिक स्थिति को सुव्यवस्थित करने का स्तुत्य प्रयास किया। जिस समय उसने अपना कार्य सँभाला उस समय फ्रांस की वित्तीय-व्यवस्था बड़ी विश्रृंखलित हो गयी थी; उसमे अनेक दोष प्रवेश कर गये थे। एक ओर तो वह वर्ग था जो कर-भार से दबा जा रहा था, दूसरी ओर थे सामन्त जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राज-करों से बचे रहते थे। कर-सग्रह की प्रणाली भी अत्यन्त शिथिल थी। कोलबर ने इन सब दोषों को दूर कर वित्तीय व्यवस्था में आमूल परिवर्त्तन कर दिया। इसके फलस्वरूप राज्य की वार्षिक आय में पर्याप्त वृद्धि हो गयी। राष्ट्र के परम शुभचिन्तक एवं आर्थिक विचारक होने के नाते कोलबर ने राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने के लिए अन्य कार्य भी किये। ग्रामवासियों की दशा सुधारने के लिए उसने कृषि-विकास का प्रयास किया। पशुओं की नस्ल सुधारने की ओर ध्यान दिया गया। कृषि-उत्पादन पर पड़ने वाले करों में एकरूपता लायी गयी। अधिकारियों को यह आदेश दिया गया कि सरकारी ऋण के लिए निर्धन कृषकों के साथ सहिष्णुता का व्यवहार किया जाय। कृषि-विकास से भी अधिक ध्यान कोलबर ने फ्रांस के उद्योग एवं वाणिज्य विकास की ओर दिया। नये-नये उद्योगों की स्थापना की गयी, विदेशों से कुशल शिल्पियों को बुलाया गया। कपास तथा अन्य कच्चे माल के निर्यात तथा प्रस्तुत उपकरणों के आयात पर प्रतिबन्ध लगाया गया। उसी भाँति कच्चे माल के आयात तथा प्रस्तुत पदार्थों के निर्यात पर लगने वाले करो को घटा दिया गया। यातायात के साधनों के विकास की ओर समुचित ध्यान दिया गया। यही नहीं अन्य अनेक प्रकार के संरक्षणो एव सुविधाओं से उद्योग तथा वाणिज्य-व्यवसाय की वृद्धि को सम्यक रूप से प्रोत्साहित किया गया। एक कुशल वित्त-विज्ञ होने के नाते कोलबर यह जानता था कि औद्योगिक एवं व्यावसायिक विकास के लिए सुव्यवस्थित नौपरिवहन का होना आवश्यक है। फलत: उसने इस दिशा में भी महत्त्वपूर्ण कदम उठाये। नौपरिवहन और नौसेना का विकास किया गया। राष्ट्र की आवश्यकता एवं युग की माँग के अनुसार कोलबर ने फ्रांस के औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना

का भी प्रयास किया। उसके प्रयास के फलस्वरूप पश्चिमी द्वीप समूह, भारतवर्ष, कनाडा, मैडागास्कर, सेनेगल, लूसियाना प्रभृत्ति स्थानो मे फ्रांसीसी उपनिवेश स्थापित हो गये।

कोलबर की इन उपलब्धियो के फलस्वरूप फ्रांस की जर्जर आर्थिक स्थिति को जीवन-दान मिला। वास्तव में कोलबर के इन दो दशको के शासन ने फ्रांस की आर्थिक स्थिति मे आश्चर्यजनक परिवर्तन कर दिया। जैसी समृद्धि, सुख और शान्ति का अनुभव जनता ने इन वर्षो में किया वैसी स्थिति इसके पूर्व और कभी नहीं देखी गयी थी। कोलबर द्वारा परिष्कृत अर्थ-नीति से फ्रांस का रिक्त राज्य-कोष भर गया। इस सम्पन्नता ने लुई के वैभव-विलास का द्वार खोल दिया, महान लुई के ऐश्वर्यमण्डित राजत्व का मार्ग प्रशस्त कर दिया। यही नही, यह कोलबर की अर्थ नीति का ही प्रतिफलन था कि लुई चतुर्दश अनेक महान राष्ट्रो से सफलतापूर्वक लोहा लेने में सफल हुआ, उसने अपने राजत्व मे अनेक युद्ध लड़े पर फ्रांस का राज्य-कोप उसकी पूर्त्ति करता रहा। कहा नहीं जा सकता कि यदि लुई और फ्रास को कोलबर जैसा अर्थशास्त्री न मिला होता तो देश की आर्थिक स्थिति कैसी होती ?

लुई के वैभव का प्रतीक वार्साई

'राजकीय व्यवसाय' (Trade of Kingship) मे दक्ष महत्त्वाकाक्षी लुई की प्रशासनिक योजनाओं के कुछ पक्षो पर हम विचार कर चुके है। वास्तव में लुई राजतन्त्र के गौरव एवं मर्यादा का सर्वश्रेष्ठ अभिनेता था। उसका अपना व्यक्तित्व तो उसके पदानुकूल था ही, साथ ही उसने वैभव प्रदर्शन के लिए अन्य स्मरणीय कार्य भी किये। इन कार्यो में वार्साई के राजप्रासाद का निर्माण मुख्य है। लुई ने पेरिस से लगभग बारह मील की दूरी पर स्थित वार्साई के भव्य राजप्रासाद का निर्माण करवाया। विलासिता के समस्त उपादानो से सुसज्जित उसके भवन, सम्राट् की गौरव-गरिमा का प्रतीक शीश महल आकर्षक उद्यान और वाटिकाएँ वस्तुतः तत्कालीन यूरोप के लिए आकर्षण के प्रधान केन्द्र बन गये थे। राजनीतिक शक्ति से वंचित अशक्त सामन्तो, राज्य के उच्च अधिकारियों तथा अन्य दरबारियों से आवृत्त लुई के जीवन-क्रम का अनुकरण करने मे तत्कालीन यूरोपीय शासक अपना गौरव समझते थे। इस वैभव के अनुरूप लुई ने सूर्य-सम्राट् (Sun-King) की उपाधि धारण की थी। फ्रांस की जनता भी उसे महान लुई (Louis the Grand) के रूप मे देखती थी।

लुई चतुर्दश का युग साहित्य एव कला की अभिवृद्धि के लिए विश्रुत है। लोक जीवन की श्री-सम्पन्नता, धनिको की सम्वृद्धि तथा उनकी सदाशयता और राजकीय प्रश्रय ने साहित्य एवं कला की उन्नति के अनुकूल वातावरण का सृजन किया। साहित्य

के क्षेत्र में महान नाटककार मौलियर (Moliere) और रासीन (Racine), हास्य प्रधान पत्रों की लेखिका मदाम द सेवीने (Madame de Sevigne), फ्रेंच, रगमंच का स्रष्टा कौरनैई (Corneille) तथा कथाकार ला फ़ौन्तेन (La Fontaine) के नाम उल्लेखनीय हैं। कला के क्षेत्र में स्थापत्य, मूर्ति तथा चित्र-कला की अच्छी उन्नति हुई। कलाकारों में स्थापित मांसर शिल्पकार जिरार्दो तथा चित्रकार लूब्र के नाम शीर्षस्थ हैं। ललित कलाओं की भाँति संगीत की भी अच्छी उन्नति हुई। लैली (Lelly) इस समय का एक महान संगीतज्ञ था।

उपरिवर्णित विवेचन से लुई चतुर्दश के राजत्व के आन्तरिक पक्ष का परिचय मिल जाता है। लुई के पास एक सशक्त सुगठित स्थल तथा जल सेना थी; उसके पास अतुल धनराशि थी। उसकी महत्त्वाकांक्षा ने उसे आक्रामक वैदेशिक नीति के लिए प्रेरित किया। उसने अपने प्रभुत्व-विस्तार के लिए युद्ध का सहारा लिया। उसके इन कार्यों में सहायता देने के लिए लून्वा जैसा युद्ध-विन्यास में निपुण मन्त्री था और थे वोबां, त्यूरेन, व कोंदे जैसे प्रतिभासम्पन्न जेनरल। फलतः लुई अपने समीपवर्ती राष्ट्रों को नतमस्तक करने के लिए युद्ध के लिए कटिबद्ध हो गया। उसने प्रधानतया इन बड़े युद्धों में भाग लिया : 'डिवोल्यूशन का युद्ध' (१६६७-१६६८ ई०), डच का युद्ध (१६७२-७८ ई०) ,'आक्सबर्ग की लीग का युद्ध' (१६८८-९७ ई०) और स्पेन के उत्तराधिकार का युद्ध (१७०२-१३ ई०)। इस प्रकार लुई अर्द्धशताब्दी से भी ऊपर इन युद्धों में फँसा रहा। इन युद्धों में आंशिक दृष्टि से उसे कुछ सफलता भी मिली। परन्तु लाभ के स्थान पर उसे हानि अधिक उठानी पड़ी। युद्ध फ्रांस को बहुत मँहगे पड़े। लुई के शासन का उत्तरार्द्ध इसी कारण उतना शान्ति एवं गौरवपूर्ण न हो सका जितना कि होना चाहिए था। कोलबर के हाथो सुधरी हुई आर्थिक दशा पुनः पतन के गर्त में जाने लगी, राज्य में असन्तोष, अशान्ति और अमर्ष के काले बादल मँडराने लगे। अपने जीवन की अन्तिम बेला में लुई ने स्वयं अपनी नीति की दुर्बलताओं को स्वीकार किया था। मृत्यु शय्या पर पड़े लुई ने अपने प्रपौत्र से कहा था, 'अपने पड़ोसियों से शान्तिपूर्ण व्यवहार रखने का प्रयास करना, मैंने युद्ध में अत्यधिक रुचि दिखायी थी, अतएव उसमें और मेरे अपव्यय में मेरा अनुकरण न करना।' वस्तुतः लुई चतुर्दश के इन युद्धों तथा उसके अपव्यय से राष्ट्र की आर्थिक दशा क्षत-विक्षत हो गयी। राजा के निजी खर्च का तो यह हाल था कि एक समय उसका खर्च राज्य की कुल आय से भी दुगना हो गया था। उसी प्रकार युद्धों ने भी देश की आर्थिक-सामाजिक दशा विकृत कर दी। युद्धों के पश्चात् जैसा कि प्रायः होता है अकाल, अभाव, अशान्ति तथा संक्रामक रोगों का प्रकोप हुआ। रिक्त राज्य-कोष की पूर्ति के लिए जनता पर कर-

भार बढा। यही नहीं लुई की दुर्नीति के कारण कितने ही प्रोटेस्टेण्ट धर्मावलम्बी फ्रांस छोड़कर चले गये। ये प्रोटेस्टेण्ट वरिष्ठ उद्योगी, व्यवसायी तथा शिल्पी थे। दूसरे देशों में जाकर इन्होने अपने व्यवसाय स्थापित किये। इन सब कारणो से फ्रांस पतन के गर्त में गिर गया जिसे पुनरुज्जीवित होने मे शताब्दियाँ लग गयीं। १७१५ में लुई चतुर्दश की मृत्यु हो गयी। उसके दरबारी सूर्य से उसकी उपमा देते थे। अब सूर्य काले बादलों के बीच में अस्त हो गया। इस प्रकार उसके ७२ वर्षीय शासन का अन्त हुआ। उसकी मृत्यु का जनता ने स्वागत किया, कारण कि जनता उसकी दुर्नीति के परिणामस्वरूप उसके राजत्व-काल में रोती ही रही। लुई के राजत्वकाल मे जनता ने इतने आँसू बहाये थे कि अब उसके आँसुओं का भण्डार रिक्त हो गया था।

लुई पन्द्रहवाँ

लुई चतुर्दश की मृत्यु के बाद उसका प्रपौत्र लुई पन्द्रहवें के नाम से सिहासन पर बैठा। जिस समय वह सिंहासन पर बैठा, उस समय उसकी अवस्था केवल पाँच वर्ष की थी। अतएव उसके राजत्व के प्रथम आठ वर्षो (१७१५-१७२३) तक उसका चाचा ड्यूक आफ़ आर्लियान उसका संरक्षक रहा। इसके पश्चात् के १७ वर्षो तक शासन की बागडोर कार्डिनल फ्ल्यूरी (१७२६-१७४३) के हाथों में रही। १७४३ ई० के पश्चात् अपनी मृत्यु पर्यन्त लुई ने स्वयं शासन करने का प्रयास किया। हम ऊपर देख चुके हैं कि किस प्रकार लुई चतुर्दश के राजत्व-काल में ही पतन-विनाश और अव्यवस्था के अंकुर प्रस्फुटित होने लगे। लुई चतुर्दश के स्वेच्छारी शासन की प्राचीरें हिलने लगीं थीं। लुई पन्द्रहवें के राजत्व में स्थिति और बुरी हो गयी। वास्तव में निरंकुश या स्वेच्छाचारी शासन की सक्षमता शासक की सक्षमता एवं सशक्तता पर निर्भर रहती है। इसके अभाव में स्थिति विपरीत हो जाती है। लुई पन्द्रहवें मे वे विशेषताएँ नहीं थीं जिनकी कि तत्कालीन फ्रांस को आवश्यकता थी। यह सत्य है कि प्रारम्भ में लुई पन्द्रहवें के राजत्व का जनता ने स्वागत किया, उसे लोकप्रिय लुई (Louis the Beloved) के नाम से अभिहित किया। प्रजा शासक से सुख, शान्ति और समृद्धि की अपेक्षा करती है किन्तु लुई पन्द्रहवें का शासन इन तत्त्वों से वंचित था। फलतः थोड़े ही दिनों में जनता का प्रेम घृणा में परिवर्तित हो गया, लोकप्रिय लुई निकम्मा लुई कहलाने लगा। वस्तुतः लुई में न तो अपने पूर्ववर्ती जैसी प्रतिभा थी और न शासन-अभिरुचि। मनोयोग और तत्परता से ढहते हुए शासन को सुव्यवस्थित करने के स्थान पर वह आकण्ठ विलासिता में डूबा रहता था। आखेट, धूत-क्रीड़ा, सुरा और सुन्दरी के मोहपाश में वह इस प्रकार बँध गया कि उनसे मुक्त होना असम्भव हो गया। इस

समय शासन के शीर्ष पर कोई ऐसा योग्य मन्त्री भी नहीं था जो इस अराजकता एवं अव्यवस्था से शासन को मुक्त कर उसे युग की माँग के अनुरूप बनाता। कार्डिनल फ्ल्यूरी ने महामन्त्री कोल्बर के पद-चिह्नों पर चलते हुए देश की आर्थिक व्यवस्था को सुधारने का प्रयास किया था और इसमे उसे कुछ सफलता भी मिली थी। परन्तु उसकी मृत्यु के बाद स्थिति और बिगड़ गयी। लुई के अपव्यय, शासन विषयक उसकी उदासीनता, युद्धों की विभीषिका, लुई की रखेल स्त्रियों का शासन में अनुचित हस्तक्षेप, एवं दरबारियों की स्वार्थ-लिप्सा ने फ्रांस को रसातल में पहुँचा दिया। विलासिता में निमग्न लुई को कहाँ यह चिन्ता थी कि देश को इन विनाशकारी तत्त्वो से मुक्त करे। शासन में परामर्श के लिए तो उसने स्त्रियो को योग्यतम समझा था; वह एक के बाद एक स्त्री की प्रभाव-परिधि में आता गया। मदाम शातरू (Chateaurax), पौम्पादूर, द्यू बरी प्रभृति रानियाँ उसकी मुख्य मन्त्राणी थी। ऐसी स्थिति में अव्यवस्था अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी।

वह लुई जो एक समय सर्वप्रिय शासक के रूप में समादृत होता था, अब निन्दा का पात्र हो गया। उसमें इतना साहस न रह गया कि वह जन-समूह का सामना करता। अपने जीवन की सध्या मे सम्भवतः उसे फ्रांस के राजतन्त्र के अन्धकारमय भविष्य का आभास हो गया था। वह प्रायः कहा करता था कि स्थिति शोचनीय अवश्य हे, परन्तु मेरी मृत्यु तक निश्चित रूप से वह यथावत् रहेगी, मेरे बाद तो प्रलय ही है (After me the deluge)। लुई के ये शब्द अक्षरशः सत्य निकले। उसके उत्तराधिकारी को राजसिंहासन बहुत महँगा पड़ा। वह अपने उत्तराधिकारी के लिए विरासत में छोड़ गया रिक्त राजकोष, शिथिल शासन, वुभुक्षित जनता तथा सामाजिक वैषम्य।

इन सब शिथिलताओं तथा प्रबुद्ध युग-चेतना ने एक महान क्रान्ति को जन्म दिया जिसकी परिणति हुई बूर्बा वंश के अन्त मे।

अध्याय २

बौद्धिक क्रान्ति

प्राक्कथन

इतिहासकार लार्ड ऐक्टन ने फ्रांसीसी क्रान्ति के सम्बन्ध में विचार करते हुए एक स्थल पर लिखा है कि फ्रांसीसी क्रान्ति का विस्फोट आकस्मिक रूप में नही हुआ। उसके स्फुलिंग विस्फोट के बहुत पहले से ही सुलग रहे थे। वस्तुतः कोई भी क्रान्ति एक दिन की उपज नहीं होती। उसके आधार में अनेक कारण, अनेक घटनाएँ, और अनेक तत्त्व विद्यमान होते हैं, जो समन्वित रूप से अनुकूल अवसर पाकर उठ पड़ते हैं। फ्रांसीसी क्रान्ति भी इसका अपवाद नही। फ्रांस में सशस्त्र क्रान्ति के लगभग एक शतक पूर्व से ही विचार जमे, युग-प्रवर्तनकारी परिवर्तन हो रहे थे। इन परिवर्त्तनो ने फ्रांस के सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक जीवन की विकृतियो पर प्रहार कर नये आदर्शों तथा नये मूल्यों की प्रतिष्ठापना की। फ्रांस के बौद्धिक क्षितिज पर होने वाले ये परिवर्तन इतिहास मे बौद्धिक क्रान्ति (Intellectual Movement) के नाम से प्रसिद्ध हैं। मानव सभ्यता के इतिहास में फ्रास की महान क्रान्ति और फ्रांस की महान क्रान्ति के इतिहास में बौद्धिक क्रान्ति का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। सशस्त्र राज्य-क्रान्ति को एक दर्शन देकर, बौद्धिक सामग्री प्रदान कर उसे एक नैतिक बल देकर राज्य-क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त करने में बौद्धिक क्रान्ति ने जो योग दिया, उसके सम्वन्ध में दो मत नहीं हो सकते। यहाँ हम इसी बौद्धिक क्रान्ति के विविध पहलुओ पर विचार करेंगे।

बौद्धिक क्रान्ति की वैचारिक पृष्ठभूमि

फ्रांस की महान बौद्धिक क्रान्ति के बहुत पहले से ही यूरोप के बौद्धिक जगत में कतिपय युग-प्रवर्त्तनकारी प्रवृत्तियो का उदय होने लगा था। पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में सांस्कृतिक पुनर्जागरण के परिणामस्वरूप यूरोपीय साहित्य, कला और विज्ञान के क्षेत्रों में अद्भुत उन्नति हुई थी। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी मे इस क्षेत्र में विकास के और भी नये मानदण्ड स्थापित हुए। इस प्रकार सारे यूरोपीय समाज के

आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, दार्शनिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक क्षेत्र में नयी मान्यताओ और नये सिद्धान्तों का उदय हुआ। प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र मे तो एक प्रकार से एक नये इतिहास की आवृत्ति हुई। इस युग का सर्वाधिक प्रतिभाशाली अंग्रेज वैज्ञानिक सर आइजेक न्यूटन (१६४२-१७२७ ई०) था। उसने सुविश्रुत वैज्ञानिक सिद्धान्त गुरुत्वाकर्षण (Law of Gravitation) की स्थापना की जो कालान्तर मे भौतिक विज्ञान का आधार-स्तम्भ बन गया। न्यूटन की लोक-प्रसिद्ध रचना 'प्रिसिपिया' (Prinsipia) थी। 'प्रिसिपिया' को मानवीय ज्ञान की उत्कृष्टतम कृति कहा गया है। इस युग का अन्य प्रसिद्ध भौतिकशास्त्री क्रिश्चियन हायगेन्स (Christian Huygens १६२०-१६९५) था। उसकी प्रसिद्ध रचना 'होरोलोगम आसीलेटरम' (Horologun Oscillatorum) है। दीवाल-घड़ी के आविष्कार का श्रेय इसी वैज्ञानिक को है। इसके अतिरिक्त इटली निवासी टारीसेली (Torricelli १६०८-१६४७) ने बैरोमीटर का आविष्कार किया। जर्मनी के आटो वान ग्वेरिक (Otto Von Gveric १६०२-१६८६) ने वायु-पम्प की खोज की। अन्य जर्मन वैज्ञानिक फाह्रेंहीट (Fahrenheit १६८६-१७३६) ने थर्मामीटर बनाया। खगोल शास्त्र के क्षेत्र में आंग्ल खगोलशास्त्री जेम्स ब्रैडले (१६९३-१७७२) और विलियम हर्शेल (१७३८-१८२२) का नाम उल्लेखनीय है। रसायन-शास्त्र की दिशा में राबर्ट ब्वायल (१६२७-१६९१) का प्रयास स्तुत्य है। ब्वायल को आधुनिक रसायन-शास्त्र का जनक कहा जा सकता है। ब्वायल के अतिरिक्त जोसेफ प्रीस्टले, हेनरी कैवेण्डिश, लैवाजियर इत्यादि ने भी इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। नयी खोजों की इस प्रभाव-परिधि में विज्ञान की अन्य शाखाएँ भी आ गयी। जन्तु-विज्ञान, वनस्पति-शास्त्र, प्राणि-शास्त्र इत्यादि सभी क्षेत्रों में आश्चर्यजनक उन्नति हुई। इस प्रकार इस युग मे एक नयी चेतना जागी। लोगों को नयी दिशा तथा नयी ज्योति मिली जिसके प्रकाश में नये युग का निर्माण हुआ। इस चेतना के कारण यूरोपीय देशों में शोध-शालाओं, प्रयोग-शालाओं एवं वैज्ञानिक अकादमियों की स्थापना हुई।

इस वैज्ञानिक प्रगति का अन्य क्षेत्रों पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। वैज्ञानिक चेतना ने एक नये दृष्टिकोण को जन्म दिया। यह दृष्टिकोण विवेक पर अवलम्बित था। विवेक पर आधारित होने के कारण यह उसी बात को सत्य और वास्तविक स्वीकार करता था जो सत्य की कसौटी पर खरी उतरती थी। इस दृष्टिकोण का दर्शन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। दर्शन के क्षेत्र में इस दृष्टिकोण का प्रतिनिधि-विचारक रेने देकार्त (१५९६-१६५० ई०) है। देकार्त मूलतया गणितज्ञ था और गणित को वह समस्त विज्ञानों की साम्राज्ञी मानता था किन्तु दर्शन के क्षेत्र में उसकी देन स्तुत्य है। इस

युग का दूसरा प्रख्यात दार्शनिक इटली निवासी पियरे गसेण्डी था। पियरे गसेण्डी के अतिरिक्त बरुच स्पिनोजा, लाइबिनीज, बिशप बर्कले, डेविड ह्यूम और जान लॉक का भी नाम उल्लेखनीय है।

सत्रहवी और अठारहवी शताब्दी की वैज्ञानिक खोजो और दार्शनिक विचारधाराओं के कारण विचार-जगत् में नये युग का श्रीगणेश हुआ। इसका समन्वित प्रभाव फ्रांस की बौद्धिक क्रान्ति पर भी पड़े बिना न रहा। फ्रास की बौद्धिक क्रान्ति की चिन्तन-श्रृंखलाओ पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार ये विचारक अपने पूर्ववर्ती बौद्धिक वातावरण से प्रभावित हुए थे। इस पूर्ववर्ती वैज्ञानिक चेतना के परि-प्रेक्ष्य मे ही फ्रास की बौद्धिक क्रान्ति के विचार-तरु का पुष्पन और पल्लवन हुआ।

प्रबुद्धवादी[1] (Philosophe)—फ्रांस की बौद्धिक क्रान्ति के प्रवर्त्तको की परम्परा इतिहास मे 'प्रबुद्धवादियो' के नाम से विश्रुत है। प्रबुद्धवादियो की अपनी विशेषताएँ थीं। प्रथमतः प्रत्येक प्रबुद्धवादी विचारक विवेकवादी था। विवेकवादी होने के नाते वह प्रत्येक तथ्य की सत्यता और उपयोगिता को विवेक की कसौटी पर कसता था। प्रबुद्धवादियों की दूसरी विशेषता उनका मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण था। ये समस्त विचारक अपनी पूर्ववर्ती वैज्ञानिक प्रगति से पूर्णतया प्रभावित थे। इस नाते उनका यह विश्वास था कि सारा संसार एक विशाल यन्त्र की भाँति है। यह यन्त्र निश्चित नियमो द्वारा परिचालित होता है। ये नियम शाश्वत और अटल हैं। प्रबुद्धवादियों की तीसरी विशेषता उनकी मानववादी (Humanist) धारणा थी। मानववाद व्यक्ति की स्वतन्त्रता को प्राथमिकता देता है। वह मनुष्य के भाग्य-निर्माण के लिए किसी मानवेतर सत्ता के सहारे न बैठ मानव को ही सारे क्रिया-कलापों का केन्द्र-बिन्दु मानता है। मानव-वादी होने के नाते उन्होंने मानव-गरिमा, मानवी अधिकारो और मानवी आदर्शो को प्राथमिकता दी। इस प्रकार ये सारे-के-सारे प्रबुद्धवादी इन्हीं मूल प्रवृत्तियो से प्रभावित थे। इन सभी विचारकों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से तत्कालीन फ्रांस की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक विकृतियो पर प्रहार कर साहित्य, समाज, राजनीति, विज्ञान इत्यादि के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण विचारो की अभिव्यक्ति की।

१. प्रबुद्धवादी शब्द फ्रेंच शब्द 'Philosophe' का हिन्दी रूपान्तर है। Philosophes का अंग्रेजी अनुवाद Philosopher होता है जिसका अर्थ दार्श-निक होता है किन्तु 'दार्शनिक' शब्द पूर्ण रूप से उसकी अभिव्यक्ति नहीं करता, इसलिए यहाँ हमने उसके लिए प्रबुद्धवादी शब्द का प्रयोग किया है। फ्रांस की बौद्धिक क्रान्ति के अग्रदूतों ने अपने लिए 'Philosophe' शब्द का ही प्रयोग किया था।

बौद्धिक क्रान्ति के तीन प्रतिनिधि विचारक

बौद्धिक क्रान्ति के अन्य पक्षों पर विचार करने के पूर्व उसके तीन प्रतिनिधि विचारकों के व्यक्तित्व एवं विचार पर एक दृष्टि डालना आवश्यक है। ये विचारक है मान्तेस्क्यू, रूसो और वाल्तेयर।

मान्तेस्क्यू (१६८९-१७५५ ई०)—फ्रांसीसी क्रान्ति के ठीक एक सौ वर्ष पूर्व १८ जनवरी, सन् १६८९ ई० मे 'शाटो डि ला ब्रेडे (Chateau de La Brede) नामक स्थान मे मान्तेस्क्यू का जन्म हुआ था। उसका बाल्यकाल का नाम चार्ल्स लुई सेकेन्डेट Charles Louis de Secondat) था। सात वर्ष की अवस्था में ही उसकी माता की मृत्यु हो गयी। माता की मृत्यु से बोर्डो के निकट ही उसे ला ब्रेडे की सम्पत्ति उत्तराधिकार मे मिल गयी। इसके फलस्वरूप उसके नाम के साथ 'ला ब्रेडे' संलग्न हो गया और अब वह चार्ल्स लुई सेकेण्डेट ला ब्रेडे कहलाने लगा। ग्यारह वर्ष की अवस्था में वह पेरिस से बीस मील उत्तर-पूर्व मे स्थित ज्युली (Juilly) में ओरेटोरियन्स (Oratorians)[1] द्वारा सचालित विद्यालय मे भेजा गया। वहाँ उसने अपने जीवन के पाँच महत्त्वपूर्ण वर्ष बिताये। बोर्डो आने पर वह विधि-शास्त्र के अध्ययन में लग गया। इस विषय में उसने स्वतः लिखा था कि, "जब मैने विद्यालय छोड़ा, उन्होने मेरे हाथों मे विधि-शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ थमा दिये, मैने उनके मूल मे निहित उनकी आत्मा खोजने का प्रयास किया।" १७०८ ई० मे विधि-शास्त्र की उपाधि प्राप्त करने पर उसने बोर्डो की पार्लमेण्ट[2] मे वकालत करने के लिए प्रवेश किया। १७१३ ई० में उसके पिता की मृत्यु हो गयी। उसके अगले वर्ष उसका विवाह हो गया। इस विवाह से भी प्रभूत सम्पदा उसके हाथ लगी। १७१६ ई० मे उसके पिता के ज्येष्ठ बन्धु (जो बोर्डो की पार्लमेण्ट के अध्यक्ष तथा 'डि मान्तेस्क्यू' (De Montesquieu) की उपाधि के स्वामी थे) की मृत्यु हो गयी। उनकी मृत्यु से वह बैरन द मान्तेस्क्यू के नाम से प्रख्यात हुआ। बारह वर्ष तक उसने बोर्डो के इस न्यायपीठ के अध्यक्ष के रूप में कार्य किया। १७२८ ई० में उसने यूरोप भ्रमण के लिए प्रस्थान किया। उसने ऑस्ट्रिया, हंग्री,

१. 'ओरेटोरियन्स' द्वारा संचालित विद्यालयों की व्यवस्था जेन्सनवादियों तथा जेसुइट लोगों के विद्यालयों की अपेक्षा अधिक सुगठित, आधुनिक और उत्कृष्ट थी। उनकी शिक्षा का माध्यम लैटिन न होकर फ्रेंच भाषा थी। पाठ्यक्रम में प्रकृति-विज्ञान एवं इतिहास को अच्छा स्थान मिला था।

२. १७८९ ई० की क्रान्ति के पूर्व पुरातन व्यवस्था में उच्चतर प्रादेशिक न्यायालय पार्लमेण्ट कहलाते थे।

इटली, जर्मनी और इंग्लैण्ड का पर्यटन किया। इग्लैण्ड मे वह अठारह महीने तक रहा, इस अवधि मे उसने आग्ल राजनीतिक सस्थानो का अध्ययन तथा इंग्लैण्ड के ख्यातिनामा राजविज्ञो एव मनीषियो से सम्पर्क स्थापित किया। वह ब्रिटिश राजनीतिक संस्थान तथा ब्रिटिश राष्ट्र का बड़ा प्रशसक था। उसने अपने ग्रन्थ में ब्रिटिश संविधान की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। फ्रास वापस आकर वह अपने जन्म-स्थल ला ब्रेडे में रहने लगा। यहाँ आकर उसने अपना शेष जीवन, अध्ययन, मनन, चिन्तन और ग्रन्थ-प्रणयन मे बिताया। १७५५ ई० मे उसका देहावसान हो गया।

रचनाएँ—जहाँ तक मान्तेस्क्यू की रचनाओ का प्रश्न है, उसने अनेक ग्रन्थो का प्रणयन किया। किन्तु इनमे राजनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण और विशेष ख्याति-लब्ध रचनाएँ तीन है। (१) 'पर्शियन लेटर्स' (Persian Letters), (२) 'रिफलेक्शन्स आन द काज़ेज़ आफ द ग्रेटनेस एण्ड द डिकेडेस आफ द रोमन्स' (Reflection on the Causes of the Greatness and the Dicadence of the Romans) तथा (३) 'दि स्प्रिट आफ द लाज़' (The Spirit of the Laws) है।

'पर्शियन लेटर्स' (Persian Letters) मान्तेस्क्यू की प्रथम प्रसिद्ध रचना है। यह १७२१ ई० में प्रकाशित हुई थी। इसमे ऐसे दो ईरानी यात्रियो का काल्पनिक चित्रण है जो फ्रांस का भ्रमण कर रहे है और अपने मित्रों को पत्रों के माध्यम से फ्रांस की तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति से अवगत कराते है। फ्रास की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक विकृतियो का यथातथ्य, सजीव एवं तीखा व्यंग्य जैसा इन पत्रो मे है वैसा अन्यत्र कम दिखायी पड़ता है। १७३४ ई० में उसकी अन्य प्रसिद्ध रचना 'दि ग्रेटनेस ऐंड द डिकेडेन्स आफ द रोमन्स' प्रकाशित हुई। इस ग्रन्थ में उसने ऐतिहासिक घटनाओं के कारण और परिणामों का दार्शनिक विवेचन करते हुए यह कहा है कि ऐतिहासिक गतिविधियो को निश्चित करने मे जलवायु, भूगोल और जनसंख्या का गहरा प्रभाव पड़ता है। मान्तेस्क्यू की सर्वाधिक ख्याति-लब्ध रचना १७४८ ई० में प्रकाशित 'दि स्प्रिट आफ द लाज़ (le Espirit de Lois) है। मान्तेस्क्यू की रचनाओ मे इसे मूर्धन्य स्थान प्राप्त है। इसके प्रणयन में मान्तेस्क्यू ने अपने जीवन के लगभग बीस महत्त्वपूर्ण वर्ष लगाये थे।[1] इस ग्रन्थ की सामग्री के संकलन तथा विषय-

१. इस ग्रन्थ की समीक्षा में पत्रकार रेनाल ने लिखा था—

"There is no study so neglected in France as that of jurisprudence. The few works we have on this subject, are very bad and even if they were good, they would not be read. It took a very great man and in addition, one *a la mode*, to change in that respect the taste of a nation. Monsieur le President de

प्रतिपादन में पूरी सावधानी बरती गयी थी। प्रतिपाद्य विषय और भाषा के परिष्कार का यथाशक्य प्रयास किया गया था। एक-एक वाक्य और एक-एक शब्द को चुन-चुन कर रखा गया था। जैसा कि उसके नाम से ही स्पष्ट होता है इस ग्रन्थ का केन्द्र-विन्दु मान्तेस्क्यू की विधि विषयक धारणा है। प्रोफेसर जोन्स ने मान्तेस्क्यू के विधि सम्बन्धी विचारों को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण, सर्वाधिक मनोरंजक तथा सर्वाधिक कठिन अंग बताते हुए यह कहा है, "उसके द्वारा परिकल्पित विधि की परिकल्पना एक ऐसी कड़ी है जिसके माध्यम से वह शिक्षा, फ्रासीसी राजतन्त्र के इतिवृत्त, अर्थशास्त्र, जलवायु, भूगोल, सामन्तवादी व्यवस्था, ब्रिटिश ससदीय परम्परा प्रभृति विषयों को एक स्थान पर सूत्रबद्ध करने का प्रयास करता है।"[१] उसके अनुसार विधि अपने व्यापक अर्थ में प्रकृति या स्वरूप से उत्पन्न होने वाले आवश्यक सम्बन्ध है। दूसरे शब्दो में वे ऐसे अनिवार्य सम्बन्ध हैं जो किसी भी वस्तु की प्रकृति से उत्पन्न होते है। वस्तुओं की विविधता तथा सम्बन्धों की विभिन्नता के कारण विधियों मे विभिन्नता पायी जाती है। इस दृष्टि से विधियों के विभिन्न रूप होते है, यथा देवताओं की अपनी विधियाँ, भौतिक जगत् की अपनी विधियाँ, मानव से श्रेष्ठ मनीषा की अपनी विधियां, पशुओं की अपनी विधियाँ तथा मानव की अपनी विधियाँ।

मान्तेस्क्यू का कहना था कि मानव समाज के सनातन सत्य के उद्घाटन के लिए विधियां मे अन्तर्निहित उनकी भावना का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होगा। मान्तेस्क्यू का विचार था कि विधियाँ न तो विवेक से निःसृत हैं और न कोई उच्चतर सत्ता ही उनका स्रोत है। विधियों के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए हमें उनके मूल को देखना चाहिए, उनके उद्भव और विकास के आधार पर विद्यमान कारण और परिणाम के पारस्परिक सम्बन्धों का पता लगाना चाहिए। उसका विचार था कि प्रत्येक देश की भौगोलिक, प्राकृतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं नैतिक परिस्थितियों के साथ उस देश के कानूनों का गहरा सम्बन्ध होता है। इसलिए कोई विधि या कानून सार्वभौमिक रूप से सब देशों एवं जातियों के लिए सर्वोत्तम नहीं होता। प्रत्येक देश के लिए उपयोगी विधि वही हो सकती है जो कि उस देश की परिस्थिति के अनुसार विवेक के आधार पर निर्मित की गयी हो।

Montesquieu has just brought about this change. His book, entitled the Spirit of Laws......has turned the heads of the whole French people. We find this work in the liabraries of our scholars and on the dressing tables of our ladies and our fashionable youngmen." Quoted G. R. Haven's in The Age of Ideas. p. 127.

१. W. T. Jones (Ed.) Masters of Political Thought p. 220.

विधियों की इसी व्याख्या के प्रकाश में मान्तेस्क्यू ने शासन के विविध स्वरूप पर भी विचार किया है। उसने शासन को तीन वर्गो मे विभक्त किया है : गणतन्त्र, राजतन्त्र और निरंकुशतन्त्र। मान्तेस्क्यू का कथन था कि कोई भी शासन-प्रणाली पूर्णतया सर्वोत्तम नहीं कही जा सकती। उसके अनुसार अपने-अपने स्थान पर सभी शासन अच्छे भी हो सकते हैं और बुरे भी। विशिष्ट परिस्थिति में विशिष्ट सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए वह प्रणाली उपयुक्त भी दिखायी पड़ सकती है। किन्तु परिस्थिति बदलने पर और उस सिद्धान्त के समाप्त होने पर वह शासन-प्रणाली उपयुक्त नहीं कही जायगी।

मान्तेस्क्यू की विचार-श्रृंखला की अन्य महत्त्वपूर्ण कड़ी उसका स्वतन्त्रता सम्बन्धी चिन्तन है। उसके अनुसार स्वतन्त्रता एक ऐसी धारणा है जिसके माध्यम से मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार बिना किसी प्रतिबन्ध के उचित आचरण करता है। उसे क्या करना चाहिए और क्या नही करना चाहिए--इसकी कसौटी विधि है। मान्तेस्क्यू का विचार था कि स्वतन्त्रता केवल लिखित घोषणाओं द्वारा नही प्राप्त की जाती। स्वतन्त्रता का सार उन भावनाओं में निहित होता है जिनके अनुसार किसी देश में उन्हें कार्यान्वित किया जाता हैं। इसके लिए शासन का विधि-सम्मत होना आवश्यक होता है। उसके अनुसार विधि-सम्मत शासन की दो अनिवार्यताएँ हैं : (१) शक्ति का पृथक्करण (२) नियन्त्रण एवं सन्तुलन का सिद्धान्त। जहाँ तक शक्ति के पृथक्करण (Separation of Powers) के सिद्धान्त का प्रश्न है, उसका कहना था कि शासन के तीनों अंग यथा कार्यपालिका, व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका को पृथक-पृथक व्यक्तियों अथवा निकायों के हाथों मे होना चाहिए। उसका विश्वास था कि एक ही स्थान पर शक्तियों के केन्द्रीकरण से अनेक विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इस प्रसंग में उसने इंग्लैण्ड के संविधान की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। उसका कहना था कि इंग्लैण्ड के शासन में नागरिकों को सर्वाधिक स्वतन्त्रता प्राप्त है और इसका प्रधान कारण वहाँ शक्ति के पृथक्करण तथा अवरोध और सन्तुलन (Checks and Balances) के सिद्धान्तों की प्रतिष्ठापना है। उसका कथन था कि इस प्रकार की व्यवस्था से एक तो किसी व्यक्ति या सत्ता में शक्तियों का केन्द्रीकरण नहीं होता, दूसरे प्रत्येक शक्ति एक-दूसरे के मनमाने कार्यो पर रोक या अवरोध लगा देती है जिससे शासन के तीनों अंगों में सन्तुलन बना रहता है।

इस प्रकार मान्तेस्क्यू ने राजनीति-विज्ञान के क्षेत्र में कई महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त प्रतिपादित किये। वस्तुत: उसका प्रधान उद्देश्य तत्कालीन फ्रांसीसी व्यवस्था में सुधार करना था। उसने मनु, लाइकरगस और सोलन जैसे श्रेष्ठ विधि-निर्माताओं की भाँति उन तत्त्वों का विश्लेषण किया जिनके आधार पर किसी देश की विधि-व्यवस्था को आधारित

किया जा सकता है। सुव्यवस्थित विधि-व्यवस्था सुशासन की आधार-शिला होती है, इसलिए उसके प्रकाश में समग्र शासन का यथाविधि परिष्कार किया जा सकता है। यह सत्य है कि मान्तेस्क्यू के दर्शन में अनेक न्यूनताएँ या शिथिलताएँ हैं किन्तु उसके योगदान की उपेक्षा नही की जा सकती। वस्तुतः मान्तेस्क्यू फ्रास के उन महान दार्शनिको मे से एक है जिन पर फ्रांस गर्व कर सकता है।

वाल्तेयर (१६९४-१७७८ ई०)—फ्रेंक्वाय मेरी एरुए (Francois Marie Arouet) का जन्म २१ नवम्बर, १६९४ ई० को पेरिस के एक सम्भ्रान्त धनाढ्य परिवार मे हुआ था। इतिहास मे फ्रेक्वाय एरुए फ्रेक्वाय द वाल्तेयर के नाम से प्रसिद्ध है। १७०४ ई० मे दस वर्ष की अवस्था मे वाल्तेयर ने 'लुई ल ग्रेंद' (Louis le Grand) नामक प्रख्यात जेसुइट विद्यालय मे प्रवेश किया। यहाँ उसे लैटिन और ग्रीक भाषाओं के अतिरिक्त इतिहास, काव्य एवं नाट्य-शास्त्र का अच्छा ज्ञान हो गया। १७११ ई० में इस विद्यालय की शिक्षा समाप्त हुई। उसका व्यवसाय-बुद्धि पिता चाहता था कि उसका पुत्र एक यशस्वी अधिवक्ता बने किन्तु वाल्तेयर का उद्देश्य यशस्वी अधिवक्ता न बन यशस्वी साहित्यकार बनना था। निस्सन्देह वाल्तेयर ने अपने उद्देश्य में आशातीत सफलता प्राप्त की, ऐसी सफलता जिसे प्राप्त करने का सौभाग्य फ्रांस के इने-गिने साहित्यकारों को ही मिल सका। वाल्तेयर ने पूरी कर्मठता और मनोयोग से आजीवन साहित्य-सेवा की। शोकान्त और सुखान्त नाटक, इतिहास, महाकाव्य, निबन्ध, पत्र प्रभृति के द्वारा उसने फ्रांसीसी साहित्य की श्री-वृद्धि करने का स्तुत्य प्रयास किया। इन रचनाओं मे अपने समकालीन फ्रास की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकृतियों, असंगतियो एवं शिथिलताओं का सजीव चित्रण करते हुए उसने तत्कालीन व्यवस्था की तीव्र भर्त्सना की है। उसकी प्रतिपादन-शैली अत्यन्त प्रभावपूर्ण एव हृदय-स्पर्शी थी। उसकी व्यंग्योक्तियां इतनी प्रखर और सटीक थीं कि इनके कारण उसे कारावास और देश-निर्वासन जैसी यातनाएँ भी भोगनी पड़ी थीं। किन्तु बहुमुखी प्रतिभा के धनी इस दार्शनिक का कीर्त्ति-कोष कभी खाली न हुआ।[1] उसे अपने जीवन-

१. फ्रांस के विचार-जगत में इस मनीषी के स्थान का कुछ परिचय 'काम्ते द सेगर' नामक एक प्रबुद्धवादी के निम्नलिखित उद्धरण से मिल जाता है। काम्ते द सेगर ने ये उद्गार उस समय व्यक्त किए थे जब कि वाल्तेयर निर्वासन के पश्चात् फ्रांस वापस आया था।

"Voltaire, the prince of poets, the patriarch of the philosophes, the glory of his century, and of France, had been an exile for many years. The whole of France read his writings with rapture and hardly anyone had seen him. To him his contemporaries were in a sense posterity."—Comte de Segur quoted by M. Roustan in 'The Pioneers of the French Revolution.' p. 279.

काल मे ही वह सम्मान और गौरव प्राप्त हुआ जो सामान्यतया कुछ को ही सुलभ होता है। उसे 'साहित्य-केशरी', 'सम्पादक-सम्राट्' और 'साहित्य-सूर्य' जैसी उपाधियों से अभिहित किया गया था। सम्राट् फ्रेडरिक महान उसे अपना मित्र और मनीषी मानता था। सामन्त और पुरोहित भी, जिनकी उसने खुलकर आलोचना की थी, उसका लोहा मानते थे। उसकी रचनाएँ सारे पुस्तकालयों को सुशोभित करती थी और उसके विचार जन-साधारण के मानस-पटल पर अंकित थे।

वाल्तेयर की रचनाओं की संख्या लगभग सौ है किन्तु इन रचनाओ में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथा इस सन्दर्भ मे उल्लेखनीय रचनाएँ 'लेटर्स आन दि इंगलिश' (Letters on the English), 'फिलसाफिकल डिक्शनरी' (Philosophical Dictionary), 'एसे आन द मैनर्स ऐंड स्प्रिट आफ नेशन्स' (Essay on the Manners and Spirit of Nations), 'ट्रीटाइज आन टालरेन्स' (Treatise on Tolerance) तथा 'हिस्ट्री आफ द एज आफ लुई फोर्टींथ (History of the Age of Louis XIV) है।

वाल्तेयर ने तत्कालीन फ्रासीसी समाज की बहुमुखी शिथिलताओ एव विकृतियों का गहरा अध्ययन किया था। उसने फ्रास के रगमच पर होने वाले अनाचार, अन्याय, निर्दयता, नृशंसता और शोषण का ताण्डव नृत्य अपनी आँखों देखा था। इस अन्याय-अनाचार का वह स्वयं शिकार हुआ था। उसे कारावास की यातनाएँ भोगनी पड़ी थी और बाध्य होकर अनेक वर्षों के लिए फ्रांस छोड़ना पडा था। अतएव वाल्तेयर जैसे प्रबुद्ध, सजग, सहिष्णु मानववादी के लिए उन विकृतियो का खाका खींचना, उनकी भर्त्सना करना और उनके सुधार का संकेत करना स्वाभाविक था।

वाल्तेयर के बौद्धिक आक्रमण का सर्वप्रमुख लक्ष्य तत्कालीन चर्च था। चर्च प्रतिक्रियावाद, अन्धविश्वास और मिथ्याचार का अड्डा तथा विचार-स्वातन्त्र्य का प्रबल शत्रु था। वाल्तेयर का विचार था कि चर्च रूढ़िवादिता, अनाचार और सकीर्णता का प्रतीक ही नहीं, वह मानवता का घोर शत्रु है। उसके सारे कार्य विवेक से परे है।[1] उसने मानव का हित करने की उपेक्षा उसका अहित किया है। जब तक वह बना रहेगा मानव के वास्तविक कल्याण की आशा नही की जा सकेगी। उसका कहना था कि

१. इस प्रसंग में यह स्मरण रखना चाहिए कि अपने युग के अधिकांश दार्शनिकों की भाँति वाल्तेयर भी ईश्वरवादी या आस्तिक (डीस्ट) था। उसका ईश्वर की सत्ता में तो विश्वास था किन्तु वह नहीं मानता था कि ईश्वर दैनिक जीवन में पद-पद पर हस्तक्षेप करता है। उसका कहना था कि मनुष्य में विवेक है, बुद्धि है और उसकी सहायता से वह स्वयं अपने पथ का निर्माण कर सकता है।

इस कलंक का शमन कर देना ही श्रेयस्कर है। उसके शब्दों में 'Crush the infamous thing'—Ecrascz l' infame उसका विचार था कि सारे धर्माधिकारी पाखण्डी और धूर्त हैं और सारी देववाणियाँ मनुष्य की मनगढ़न्त रचनाएँ हैं।[१]

वाल्तेयर मनुष्य की वैयक्तिक स्वतन्त्रता और उसके प्राकृतिक अधिकारो का प्रबल पोषक था। उसका विचार था कि वैयक्तिक स्वतन्त्रता कानून की स्वेच्छाचारिता से बचने के लिए अपरिहार्य होती है। प्राकृतिक अधिकारों को वह व्यक्तियों के रक्षा-कवच की संज्ञा देता था। किन्तु वाल्तेयर ने प्राकृतिक अधिकारों की वैज्ञानिक और विधिवत् व्याख्या नही की। इंग्लैण्ड की वैधानिक व्यवस्था के प्रसंग मे उसने लिखा है कि 'इंग्लैण्ड समस्त नागरिकों को वैयक्तिक एवं सम्पत्ति सम्बन्धी स्वतन्त्रता, प्रेस की स्वतन्त्रता, समस्त फौजदारी अपराधों में स्वतन्त्र व्यक्तियों की एक जूरी द्वारा न्याय किये जाने का अधिकार विधि के अनुसार अपराध-निर्णय तथा धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार प्राप्त है।'[२] वाल्तेयर के अनुसार इन्हें ही प्राकृतिक अधिकारों की संज्ञा दी जा सकती है। इस प्रसंग में यह स्मरण रखना आवश्यक है कि समानता के अधिकार को वाल्तेयर प्राकृतिक अधिकारो, की कोटि में नहीं रखता। उसका कहना है कि नैसर्गिक साधनो की सीमितता के कारण समानता की स्थापना असम्भव है। वास्तव में वाल्तेयर प्रजातन्त्रीय या उदारवादी विचारो का समर्थक नहीं था। सारी जनता में प्रशासनिक क्षमता हे या जनता द्वारा शासन में यथेष्ट सुधार किया जा सकता है, इसमें उसे सन्देह था। इस प्रकार जब १७७१ ई० में मापिओ की सलाह से लुई पन्द्रहवें ने फ्रांसीसी पार्लमेण्ट का दमन किया था तब वाल्तेयर ने सम्राट् के इस कार्य की प्रशंसा करते हुए कहा था कि उसका यह कार्य वस्तुतः प्रान्तवाद और वर्गीय विशेषाधिकार पर प्रहार है। उसने लिखा था, 'क्या ये 'पार्लमेण्ट' बर्बर और अत्याचारी नहीं रही हैं? क्योकि आज्ञा-पालन मेरा धर्म है, इसलिए मैं अपनी जाति के दो सौ चूहों की आज्ञा मानने की अपेक्षा उच्च वश में जन्मे एक सिह का अनुगमन करना अधिक श्रेयस्कर समझता हूँ।'[३]

१. वाल्तेयर चर्च का कितना विरोधी था इसका कुछ परिचय उसके द्वारा फ्रेडरिक महान को लिखे गये पत्र से भी मिल जाता है। उसने फ्रेडरिक को लिखा था,

"Your idea of attacking superstition through the monks is a master-stroke when once monks are abolished error is exposed to universal contempt."

२. Hearnshaw: The social and Political Ideas of some Great French Thinkers of the Age of Reason p. 151

३. 'The Revolutionary and Nepoleonic Era' : J. Holland Rose p. 21.

अपने युग के कतिपय अन्य विचारकों की भाँति वाल्तेयर भी विधि-सम्मत शासन और विधि की सर्वोपरिता में विश्वास करता था। उसका कहना था कि सृष्टि के समस्त उपादान विभिन्न नियमों के अधीन होते हैं। इन नियमों या विधियों के अनुगमन द्वारा ही मनुष्य अपना कल्याण कर सकता है। उसका विचार था कि विधियों का निर्माण शासितों के हितों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। उसका कथन था कि वह संविधान, जिसमें सम्राट्, सामन्त और जनता के अधिकारों का सम्यक् निरूपण होता है, स्थायी होता है। इन गुणों के अभाव में उसका टिकना असम्भव हो जाता है। विधि की विचार-शृंखला में वाल्तेयर ने तत्कालीन फ्रांस की विधि-व्यवस्था के सुधार विषयक भी उपयोगी विचार प्रस्तुत किये थे। वह सारे फ्रांस की दंड-विधि एवं व्यवहार-विधि की एकरूपता का समर्थक था। दंड के सम्बन्ध मे उसका कहना था कि दंड अपराध के अनुपात के अनुसार दिया जाना चाहिए। जब तक अपराधी के विरुद्ध पूर्ण साक्ष्य या प्रमाण न उपलब्ध हों तब तक किसी भी व्यक्ति को उसकी स्वाधीनता से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। विधि की भाषा इतनी स्पष्ट और सरल होनी चाहिए कि साधारण से साधारण व्यक्ति को भी उसको समझने में कठिनाई न हो।

वाल्तेयर के उपर्युक्त विचारों से उसके चिन्तन की मूल प्रवृत्तियों का परिचय मिल जाता है। उसके चिन्तन को तत्कालीन विचारधारा का दर्पण कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। क्रान्ति के पूर्वकालीन फ्रासीसी समाज की सारी मनोव्यथाएँ उसकी कृतियों में बिखरी पड़ी हैं। यद्यपि उसने स्वत: क्रान्ति का विरोध कर क्रमिक सुधार का समर्थन किया किन्तु फिर भी उसके विचारों से फ्रांसीसी क्रान्तिकारियों को जो बल मिला, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

रूसो (१७१२-१७७८ ई०)—ज्याँ जाक रूसो का जन्म २८ जून, १७१२ ई० को स्विट्जरलैण्ड के जिनेवा नामक नगर में हुआ था। उसका पिता एक घड़ीसाज था। उसकी माँ उसके जन्म के थोड़े ही दिन बाद दिवंगत हो गयी। जब वह दस वर्ष का था तब उसका पिता जिनेवा से भाग गया और रूसो के पालन-पोषण का दायित्व उसके परिवार के अन्य लोगों पर आ गया। उसको प्रारम्भिक शिक्षा के लिए एक विद्यालय में भेजा गया किन्तु अधिक दिनों तक रूसो पाठशाला में न रह सका। इसके बाद उसे कुछ प्रौद्योगिक ज्ञान दिलाने का प्रयास किया गया परन्तु वहाँ भी उसका मन न लगा। जब वह सोलह वर्ष का था तभी अपने घर से भाग निकला और चौदह वर्षों तक फ्रांस के विभिन्न स्थानों में घुमक्कड़ की भाँति जीवन बिताता रहा। इस प्रकार रूसो अनुशासन और सुव्यवस्थित शिक्षा की उन सुविधाओं से वंचित रहा जो सामान्यतया अन्य बालकों को प्राप्त होती हैं। पर कौन जानता था कि फ्रांस में दर-दर भटकने वाला बालक एक

दिन विश्व-विख्यात दार्शनिक बन जायगा। कुछ वर्षों तक इधर-उधर भटकने के पश्चात् रूसो पेरिस मे बस गया। १७४९ ई० में उसके जीवन में एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी। इस वर्ष 'डिज्जन' (Dijjon) की अकादमी ने एक निबन्ध प्रतियोगिता आयोजित की। निबन्ध का विषय था—'कला और विज्ञान की उन्नति ने नैतिक जीवन को उन्नत किया है या उसे भ्रष्ट किया है।' रूसो ने प्रतियोगिता में भाग लिया और अपने निबन्ध में यह दर्शाने का प्रयास किया कि कला और विज्ञान के कारण मनुष्य का नैतिक पतन हुआ है। रूसो का निबन्ध पुरस्कृत हुआ। थोड़े ही समय में रूसो और उसका यह निबन्ध बौद्धिक जगत् की चर्चा का प्रमुख विषय बन गया। इसके बाद के वर्षों मे रूसो एकनिष्ठ हो अध्ययन, चिन्तन और ग्रन्थ-प्रणयन मे लगा रहा।

रूसो की अन्य प्रसिद्ध रचनाओं में 'डिस्कोर्स आन द ओरिजिन ऐण्ड फाउण्डेशन आफ इनइक्वालिटी एमंग मेन' (Discourse on the Origin and Foundation of Inequality Among Men), 'डिस्कोर्स आन पोलिटिकल एकोनामी' (Discourse on Political Economy), एमिल (Emile) तथा 'सोशल कांट्रेक्ट (Social Contract) मुख्य है। 'एमिल' और 'सोशल कांट्रेक्ट' वस्तुतः रूसो के प्रतिनिधि ग्रन्थ है जिनके माध्यम से उसके विचारों की रूपरेखा का परिचय मिल जाता है। 'सोशल कांट्रेक्ट' को उसकी शीर्षस्थ रचना कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी।

'सोशल कांट्रेक्ट' में रूसो ने यह बतलाने का प्रयास किया है कि राजनीतिक संगठन एवं राजनीतिक दायित्व का आधार जन-सहमति है। इस तथ्य को उसने बड़े ही आकर्षक ढंग से चित्रित करने का प्रयास किया है। 'सोशल कांट्रेक्ट' का प्रथम वाक्य है—'मनुष्य स्वतन्त्र जन्मा है किन्तु वह सर्वत्र शृंखलाओं मे जकडा हुआ है।' इसकी व्याख्या में वह आगे कहता है कि जब बालक जन्म लेता है तब वह किसी भी प्रकार के बन्धन में नही रहता किन्तु शनैः शनैः वह परिस्थितियों का दास होने लगता है। उसके अनुसार मनुष्य यह दासता स्वतः अपनी इच्छा से स्वीकार करता है। जन-सहमति के आधार पर राज्य-निर्माण की प्रक्रिया का चित्रण करने में अपने युग की प्रचलित पद्धति के अनुसार रूसो भी मनुष्य की आदिम अवस्था या प्राकृतिक अवस्था का चित्रण करता है। रूसो के अनुसार प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य अत्यन्त, सहज स्वाभाविक और सुन्दर जीवन व्यतीत करता था। उस समय उसके अनुसार सब लोग समान थे, स्वतन्त्र थे, न तो उनकी समानता का अन्त करने वाला शासन था और न उनकी स्वतन्त्रता को छीनने वाले कानून। संक्षेप में एक प्रकार से मनुष्य सज्जन बनचारी (Noble savage) था। बाह्य नियन्त्रणों से मुक्त, प्रकृति की गोद में रह कर वह स्वतन्त्र, स्वस्थ तथा सुखी जीवन व्यतीत करता था। (किन्तु कालान्तर में कुछ मनुष्यो की स्वार्थपूर्ण प्रवृत्ति के कारण

'सम्पत्ति रूपी सर्प' का उदय हो गया। इसके कारण प्राकृतिक अवस्था का रूप बदल गया। उसका स्थान पारस्परिक द्वेष, संघर्ष, दरिद्रता, शोषण और असमानता ने ले लिया। स्वतन्त्र जन्मा मनुष्य अनेक बन्धनों में जकड़ गया। अतएव मनुष्यों ने इन बन्धनों से मुक्त और सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए एक समझौता किया। समझौता करने वाले सारे व्यक्ति एक स्थान पर एकत्रित हो कर यह कहते हैं: "हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपने शरीर को और समूची शक्ति को अन्य सबके साथ सामान्य इच्छा को सौपते है, उसके सर्वोच्च नियन्त्रण में रखते है और हम इस सामूहिक रूप में प्रत्येक सदस्य को सम्पूर्ण का अविभाज्य अग मानते है।"[१] इस प्रकार के अनुबन्धन द्वारा व्यक्ति का समग्र समाज मे समन्वीकरण हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप एक नैतिक एवं सामूहिक निकाय का निर्माण होता है। रूसो के अनुसार 'समस्त व्यक्तियो से निर्मित इस निकाय को पहले नगर कहते थे, अब उसे गणराज्य कहते है और जब सक्रिय होता है तब सम्प्रभु तथा ऐसे ही अन्य निकायो से इसकी तुलना करने पर इसे शक्ति कहते है।' रूसो के मतानुसार इससे एक नये सभ्य समाज और राज्य का निर्माण होता है, व्यक्ति नागरिक का रूप धारण करता है, उसके कार्य नैतिक हो जाते है और उसकी प्राकृतिक स्वतन्त्रता नागरिक स्वतन्त्रता में परिणत होती है। रूसो का कहना है कि इस समझौते के कारण वैयक्तिक इच्छा का स्थान एक सामान्य इच्छा (General will—Volonte Generale) ले लेती है। यह सामान्य इच्छा सर्वोपरि है, अविभाज्य और स्थायी है। यही विधि का स्रोत है। यह इच्छा अपने समस्त सदस्यों के लिए न्याय-अन्याय का निर्धारण करती है। इस इच्छा के कार्य व्यक्ति के वास्तविक हित के अनुकूल होते हैं। सामान्य इच्छा ही राज्य का आधार है।[२] इस प्रकार रूसो ने अनुबन्ध तथा सामान्य इच्छा की इस परिकल्पना द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि राज्य की आधार-शिला जन-सहमति है। सत्ता का अधिकारी कोई एक व्यक्ति या व्यक्ति-समूह

१. Each of us puts his person and all his power in common under the supreme direction of the general will, and, in our corporate capacity, we receive each member as an indivisible part of the whole" 'The Social Contract' edited by Ernest Rhys Bk 1, Chapt IV, p 15.

२. **प्रो० चेस्टर मैक्सी ने रूसो के सामान्य इच्छा विषयक विचारों को उसके दर्शन का सर्वाधिक मौलिक एवं महत्त्वपूर्ण अंग बताते हुए उसकी व्याख्या इस प्रकार की है :**

"The general will, then, would seem to be the will of the people functioning as a body politic—the will of society viewed as a living and rational political organism." C. C. Maxey : Political philosophies p 357

न होकर सारा समाज है। इस दृष्टि से रूसो एक प्रकार से लोकप्रिय सम्प्रभुता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है।

रूसो ने इस प्रसंग में स्वतन्त्रता और व्यक्ति के अधिकारों पर भी विचार किया है। रूसो के अनुसार बन्धनों के अभाव या उच्छृंखलता का अर्थ स्वतन्त्रता नहीं। स्वतंत्रता का आशय विधियों का पालन है। उसका कहना है कि सामाजिक अनुबन्ध द्वारा व्यक्ति ने अपने सारे अधिकार राज्य को दे दिये किन्तु राज्य व्यक्ति का वृहत्तर या सामूहिक रूप है और व्यक्ति उसका एक अंग है इसलिए राज्य की आज्ञा-पालन में व्यक्ति एक प्रकार से अपनी ही आज्ञा-पालन करता है। व्यक्ति के स्वतन्त्रता और समानता के अधिकार प्राकृतिक अधिकार न होकर वस्तुत: नागरिक अधिकार हैं जो उसे राज्य के नागरिक के रूप में प्राप्त हुए हैं। क्योंकि विधि उसकी सामान्य इच्छा से नि:सृत होती है, उसमें उसका कल्याण निहित होता है इसलिए विधियों का अनुगमन ही स्वतन्त्रता की उपलब्धि है। इस प्रकार रूसो का विश्वास था कि राज्य और विधियों के अनुरूप ही व्यक्ति को कार्य करना चाहिए।

रूसो के शिक्षा सम्बन्धी विचार भी महत्त्वपूर्ण हैं। उसके शिक्षा सम्बन्धी विचार हमें उसकी प्रसिद्ध रचना 'एमिल' (Emile) में मिलते है। इस ग्रन्थ के कारण रूसो को प्रगतिवादी शिक्षा का जनक माना जाता है। इस सम्बन्ध में उसका कहना था शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे कि शिक्षार्थी की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विकास हो। दूसरे शब्दों में शिक्षा व्यावहारिक और उपयोगी होनी चाहिए। उसका विचार था कि जो बातें व्यावहारिक जीवन में उपयोगी नहीं होतीं उनके जानने से कोई लाभ नहीं होता।

रूसो के उपर्युक्त विचारों से उसके मूल सिद्धान्तों का कुछ परिचय मिल जाता है। यह सत्य है कि उसके दर्शन में कतिपय शिथिलताएँ थीं जिनके कारण उसके समकालीन एवं परवर्ती विचारकों द्वारा उसकी कटु आलोचना की गयी है। दिदरो उसके दर्शन को स्वर्ग और नर्क के मध्य की गहरी खाई कहता है। उसका कहना था कि रूसो की कल्पना करते हुए ऐसा प्रतीत होने लगा है कि कोई तुच्छ आत्मा मेरे निकट खड़ी है। वाल्तेयर का कहना था कि रूसो और दार्शनिक में उतना ही साम्य है जितना बन्दर और आदमी में।[1] लार्ड मार्ले का कथन था कि क्या संसार के लिए यह अधिक अच्छा न होता कि रूसो का जन्म ही न हुआ होता। किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी रूसो के योगदान और उसके महत्त्व की उपेक्षा नही की जा सकती। साहित्य, दर्शन, राजनीति सभी

१. William Durant 'Story of Philosophy' p. 270.

पर उसका व्यापक प्रभाव पड़ा। डा० वेयर के शब्दों मे उसने अपनी सबल एवं मौलिक प्रतिभा की छाप राजनीति, शिक्षा, धर्म तथा साहित्य पर छोड़ी और लैन्सन के इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि आधुनिक युग को लाने वाले समस्त मार्गो पर हम उसे खड़ा पाते हैं।[1] साहित्यिक क्षेत्र मे रूसो को छायावाद (Romanticism) का अग्रदूत कहा जाता है। रूसो स्वत: प्रकृति का पुजारी था। प्राकृतिक सुषमा से वह आत्मविभोर हो उठता था। उसका नारा था 'प्रकृति की ओर वापस चलो' (Back to Nature), उसके इन विचारों का तत्कालीन समाज पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि बड़े-बड़े नगरों में सम्भ्रान्त परिवार के पुरुष और नारियाँ नैसर्गिक जीवन-यापन का स्वाँग रचने लगे थे। स्वत: महारानी मेरी अन्त्वायनेत ने वार्साई में एक छोटी सी पशुशाला का निर्माण कराकर एक ग्वालिन का अभिनय किया करती थी। रूसो के दर्शन से तत्कालीन क्रान्तिकारियों को बड़ा प्रोत्साहन मिला। उसके द्वारा प्रतिपादित स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व (Liberty, Equality and Fraternity) के सिद्धान्त जन-मानस पर अंकित हो गये। फ्रांस की क्रान्ति पर विचार करते हुए एडमण्ड बर्क ने लिखा है, "रूसो ही उनकी बाइबिल है, उसे ही वे पढ़ते है, मनन करते हैं और जो समय बचता है उसकी रचनाओं के पन्ने पलटने में लगा देते हैं।"

ऊपर हमने फ्रांस की बौद्धिक क्रान्ति के तीन प्रतिनिधि-विचारकों पर प्रकाश डाला। इन विचारको के अतिरिक्त अर्थशास्त्री या 'फिजियोक्रेट्स (Physiocrats) तथा विश्व-कोषकारों का चिन्तन भी बौद्धिक क्रान्ति का महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है। यहाँ हम इन दोनों परम्पराओं के चिन्तन की मूल प्रवृत्तियों पर संक्षेप में विचार करेंगे।

आर्थिक विचारक या 'फिजियोक्रेट्स (Physiocrats)

'फिजियोक्रेट' शब्द ग्रीक भाषा के 'फिजिस' (Physis) शब्द से नि:सृत है। ग्रीक भाषा में 'फिजिस' शब्द का प्रयोग प्रकृति के लिए किया जाता है। फ्रांसीसी विचारकों का वह विशिष्ट समूह जिसने प्रकृति को धन मानकर अपने राजनीतिक-आर्थिक विचार व्यक्त किये, इतिहास में 'फिजियोक्रेट्स' कहलाते है। इन विचारकों में फ्रांकाय क्वेने (Francois Quesnay १६९४-१७७४), जीन द गूर्ने (Jean de Gournay १७१२-१७५९), मर्सियर द ला रेवियर (Mercier de La Raviere १७२०-१७९३), जेक्स त्यूरगो (Jacqus Turgot १७२७-१७८१) तथा ड्यूपान्त द नेमर्स (Dupont de Nemours १७३९-१८१७) मुख्य हैं।

१. Dr. C. L. Wayper : 'Political Thought' p. 136.

इन विचारकों का कहना था कि भूमि, सम्पत्ति का मूल स्रोत है। कृषि और खनिक उद्योग ही आर्थिक व्यवस्था के आधार-स्तम्भ हैं। इन्हें ही वस्तुओं का वास्तविक उत्पादक कहा जा सकता है। इनके द्वारा ही राष्ट्र की सम्पत्ति का उत्पादन और उसकी अभिवृद्धि होती है। इससे भिन्न प्रकार के उत्पादन को उत्पादन की संज्ञा नही दी जा सकती। वह तो केवल वस्तुओं का रूप-परिवर्त्तन है। इसलिए शासन का यह कर्त्तव्य है कि वह भूमि सम्बन्धित दो प्रमुख उद्योगों—कृषि एव खनिक उद्योग—को विकसित होने का पूरा अवसर दे। उनका कहना था कि फ्रांस मे खाद्यान्नो पर आरोपित आन्तरिक शुल्क समाप्त कर दिये जाने चाहिए और उसके स्थान पर केवल एक भूमि-कर लगाया जाना चाहिए। इस प्रसग में उन्होंने तत्कालीन फ्रासीसी राजतन्त्र की कर प्रणाली की तीव्र भर्त्सना की थी। उनका विचार था कि भूमि से अधिकाधिक सम्पत्ति का दोहन कर उसके विकास का सम्यक् प्रयास करना चाहिए। वे अन्य उद्योग-धन्धे तथा व्यापार के विषय में शासन द्वारा न्यूनतम हस्तक्षेप के पक्षपाती थे। उनकी धारणा थी कि वाणिज्य-व्यवसाय एवं उद्योग-धन्धों में सरकार के कम से कम नियन्त्रण से कल्याण की आशा की जा सकती है। इस प्रकार इस क्षेत्र में उन्होंने मुक्त व्यापार, नीति Laissez faire—Laissez Passer) का प्रवर्त्तन किया।

राजनीतिक क्षेत्र में भी उन्होंने कतिपय महत्त्वपूर्ण विचारों का प्रतिपादन किया। इन विचारों के माध्यम से उन्होने अपनी आर्थिक मान्यताओं की परिपुष्टि करने का प्रयास किया। उनका विचार था कि न्याय, सारी समाजिक व्यवस्था की आधार-शिला है। उनके अनुसार न्याय का अर्थ स्वतन्त्रता तथा सम्पत्ति विषयक अधिकारों से है। ये अधिकार वस्तुतः मनुष्य के प्राकृतिक अधिकार हैं। स्वतन्त्रता सम्बन्धी अधिकार के अन्तर्गत वे मूलतया विनिमय की स्वतन्त्रता, श्रम की स्वतन्त्रता तथा सम्पत्ति-उपभोग में बाधक अवरोधों से मुक्ति की स्वतन्त्रता को रखते थे। सम्पत्ति के अधिकार के अन्तर्गत वैयक्तिक सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार, चल सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार तथा भू-सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार आते थे। इन अधिकारों की रक्षा के लिए एक सम्प्रभु का होना आवश्यक है। किन्तु ये सम्प्रभु को विधि का स्रोत न मान कर न्याय एवं नैतिकता के नैसर्गिक नियमों के प्रशासक के रूप में स्वीकार करते थे। वे वशानुगत राजतन्त्र के समर्थक थे किन्तु उनका कहना था कि शासक को उदार और प्रबुद्ध होना चाहिए।

अध्याय ३

प्राचीन व्यवस्था (आँशियाँ रेजीम)

पिछले अध्याय में हमने फ्रांस की बौद्धिक क्रान्ति या वैचारिक क्षेत्र में होनेवाली क्रान्ति के विभिन्न पक्षों पर विचार किया। इस क्रान्ति के प्रवर्त्तकों ने जिस व्यवस्था के विरुद्ध अपना असन्तोष व्यक्त किया था वह व्यवस्था फ्रास के राज्य-क्रान्ति के पूर्व की व्यवस्था थी। • फ्रांसीसी इतिहासकारों ने क्रान्ति के पूर्व की इस व्यवस्था को 'आँशियाँ रेजीम' (Ancien Regime) या पुरातन व्यवस्था की सज्ञा दी है। वस्तुत. पुरातन-व्यवस्था से आशय बूर्बा सम्राटो के राजत्व की उस राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक व्यवस्था से है जो क्रान्ति के पूर्व फ्रांस मे प्रचलित थी और जिसका क्रान्ति के द्वारा अन्त हुआ। इस अध्याय में हम इसी प्राचीन व्यवस्था के विविध पक्षों पर प्रकाश डालेंगे।

प्राचीन राजनीतिक व्यवस्था

स्वेच्छाचारी और भ्रष्ट शासनतन्त्र—फ्रांस मे राज्यक्रान्ति के पूर्व की शताब्दियाँ वस्तुत बूर्बां राजवंश के स्वेच्छाचारी शासन की शताब्दियाँ है। बूर्बां राजवंश के विभिन्न शासकों ने किस प्रकार से शासन किया, इसका कुछ परिचय प्रथम अध्याय में दिया जा चुका है। यहाँ हम क्रान्ति के पूर्व की शासन-व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं पर विचार करेंगे। क्रान्ति के पूर्व की शासन-व्यवस्था एक केन्द्रीकृत, अमर्यादित, भ्रष्ट और व्ययसाध्य शासन-व्यवस्था थी। राजा शासन का शीर्षस्थ अधिकारी था वह सामान्यतया अपने को धरती पर ईश्वर का प्रतिनिधि समझता था। कोई ऐसी संस्था नही थी और कोई ऐसा वर्ग नहीं था जो राजा पर अपना अंकुश रखता। एकमात्र प्रतिनिधि-सभा, 'इस्टेट्स जेनरल' की अन्तिम बैठक १६१५ ई० में हुई और उसके बाद के १७५ वर्षो तक उसका कोई अधिवेशन न हुआ। चर्च, सामन्त या अन्य कोई वर्ग ऐसा नहीं था जो राजा की स्वेच्छाचारी प्रवृत्तियों को नियन्त्रित करता। राजा ही विधि का स्रोत था। उसके आदेश ही कानून थे। राज्य के समस्त अधिकारियों की नियुक्ति का एकमेव अधिकार उसी को था और उसी के प्रसाद-पर्यन्त ये अधिकारी अपने पद पर बने रहते थे। राजा के

निकट रहने वाले उच्च अधिकारियों में 'चांसलर,' वित्तीय महानियन्त्रक, राज्य के चार सचिव तथा शाही परिषद् के सदस्य प्रमुख थे। चांसलर का पद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। राज्य का प्रशासन, सेकेण्डरी और उच्चतर शिक्षा, पुस्तक एवं प्रकाशन-संस्थान इत्यादि महत्त्वपूर्ण कार्य उसके अधिकार-क्षेत्र मे थे। वही अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की सहायता से राज्य के समस्त विधायी आदेशों का निर्माण करता था। वही राजा की अनुपस्थिति मे शाही परिषद् की अध्यक्षता करता था। शाही परिषद् प्रधानतया चार भागों में विभक्त थी। एक भाग आन्तरिक प्रशासन-नीति से सम्बन्ध रखता, दूसरा भाग वित्तीय विषयों की व्यवस्था करता, यह भाग वित्तीय-परिषद् (Bureau of Finances) के नाम से विश्रुत था। तीसरी परिषद् उच्चतर परिषद् या राज्य-परिषद् थी। चौथा अंग 'प्रिवी परिषद्' कहलाता था। यह अंग सबसे बड़ा अंग था। इसे तत्कालीन फ्रांस के उच्चतम न्यायालय की संज्ञा दी जा सकती है। परिषद् के इन विभिन्न अंगो तथा केन्द्रीय प्रशासन के अन्य भागों में सहयोग का अभाव था। उनमें प्रायः तनाव या वैमनस्य बना रहता। शक्तियों एवं अधिकारो के वितरण के अभाव में एक-दूसरे के क्षेत्राधिकारों का अतिक्रमण भी होता रहता था। शासन का अन्य प्रमुख दोष केन्द्रीय सरकार के हाथ में शक्तियों का अत्यधिक केन्द्रीकरण था। छोटी-छोटी बातों के लिए भी केन्द्रीय सरकार की अनुमति लेनी आवश्यक थी। उदाहरण के लिए किसी दरिद्र-आश्रम में कितने लोग निवास करते हैं, इसका भी पता केन्द्रीय कौंसिल को रखना आवश्यक था। किसी ग्रामीण चर्च को यदि अपने भवन की मरम्मत कराने की आवश्यकता होती तो उसका भी प्रार्थना-पत्र केन्द्रीय सरकार के पास भेजा जाता था। एक बार एक चर्च ने अपने चर्च की मरम्मत का आवेदन केन्द्रीय सरकार को भेजा। दस साल की प्रतीक्षा करने के पश्चात् उस प्रार्थना-पत्र का उत्तर मिला था। शासन के इस अत्यधिक केन्द्रीकरण और पग-पग पर केन्द्रीय हस्तक्षेप के कारण जनता को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था।

प्रशासन की दृष्टि से सारा फ्रांस ३४ भागों में विभक्त था। ये प्रान्तीय भाग 'इंटेण्डेंसीज़' (Intendancies) या 'जेनरेलटीज' (Generalities) कहलाते थे। इनके शासक 'इंटेण्डेण्ट' (Intendent) कहे जाते थे। इनकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती थी। साधारणतया बुर्जुआ या कुलीनेतर वंश के लोग इस पद पर नियुक्त होते थे। प्रान्तीय शासन का सारा दारोमदार इन्हीं शासकों पर था। उनके अधिकार अत्यन्त व्यापक थे। अपने क्षेत्र के प्रशासन का सारा दायित्व इन्हीं पर था। वित्तीय क्षेत्र में वे प्रत्यक्ष करों के निर्धारण एवं उनके संग्रह की व्यवस्था करते। अपने अधीनस्थ वित्तीय अधिकारियों के कार्यों की जाँच, सार्वजनिक मण्डियों का नियन्त्रण, सार्वजनिक कार्यों का निर्माण, जैसे कार्य उनके अधिकार-क्षेत्र में थे। 'पार्लमेण्ट्स' को छोड़कर प्रान्तों

के सारे न्यायालय उनके अधीन थे। वे अपने अधीनस्थ न्यायालयों की अध्यक्षता करते तथा एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में विवादों का हस्तान्तरण कर सकते थे। अवसर पड़ने या आवश्यकता होने पर वे स्वयं भी विवादों का निर्णय कर देते थे। वे स्थानीय पुलिस तथा सेना के गमनागमन व सिपाहियों की भर्त्ती इत्यादि पर भी नियन्त्रण रखते थे। वे अपने क्षेत्र की शिक्षा एव धार्मिक व्यवस्था पर भी नियन्त्रण रखते थे। प्रान्तों में स्वायत्त शासन के अभाव के कारण प्रान्तीय शासन की सभी कड़ियाँ उनके हाथों मे थी। कहा जाता था कि जो राजा केन्द्र में सारे फ्रांस के लिए कर सकता है, वही कार्य प्रान्तों में प्रान्तीय शासक या 'इंटेण्डेण्ट' कर सकते है। फ्रांस के ये चौंतीस 'इंटेण्डेण्ट' एक प्रकार से फ्रांस के चौतीस राजा थे जो प्रान्तों में अपने अमर्यादित आचरण तथा प्रशासनिक अत्याचार के कारण फ्रासीसी जनता द्वारा घृणा की दृष्टि से देखे जाते थे।

कानून और न्याय की दृष्टि से भी प्राचीन व्यवस्था अत्यन्त भ्रष्ट और विशृंखलित थी। एकात्मक शासन होने पर भी शासन मे एकरूपता नही थी। कानूनों की कोई एक प्रामाणिक सहिता नही थी। लगभग चार सौ प्रकार के कानूनों का प्रचलन था। एक स्थान पर जो कार्य वैध था वही कुछ मील दूर पर अवैध माना जाता था। न्यायालयो के क्षेत्राधिकार अस्पष्ट और अव्यवस्थित थे। यह जानना कठिन हो जाता था कि किस न्यायालय में किस विवाद का निर्णय होगा। कई प्रकार के न्यायालय थे। राजकीय न्यायालय अलग थे, चर्च के न्यायालय अलग थे और सामन्तो के न्यायालय अलग। इनमें स्वभावतः राजकीय न्यायालयों का स्थान श्रेष्ठ था। पेरिस की पार्लमाँ (Parlement)[1] तथा १२ अन्य पार्लमाँ की गणना उच्च न्यायालयो में की जाती थी। इन पार्लमाँ की स्थिति अन्य न्यायालयों से कुछ श्रेष्ठतर थी। उदाहरण के लिए पेरिस की पार्लमाँ को यह अधिकार था कि राजा की आज्ञाएँ बिना इस न्यायालय मे दर्ज किये कानून का रूप नहीं धारण कर सकती थीं। राजकीय न्यायालयों में अन्य प्रमुख प्रशासकीय न्यायालय, सैनिक न्यायालय, एडमिरेल्टी न्यायालय तथा वाणिज्य न्यायालय थे। न्याय की व्यवस्था अत्यन्त विलम्बकारी, भ्रष्ट, स्वेच्छाचारी तथा व्ययसाध्य थी। न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति उनकी योग्यता के आधार पर नही होती थी। वे पद बिकते थे और प्रायः वंशानुगत या मौरूसी हुआ करते थे। एक ही अपराध के लिए कई प्रकार के दण्ड की प्रथा प्रचलित थी। छोटे-छोटे अपराधों के लिए भी प्राणदण्ड दे दिया जाता था। अपराधियो को अनेक घोर यातनाएँ भुगतनी पड़ती थीं। इस दिशा में एक अन्य निंद्य प्रथा का प्रचलन था। यह प्रथा थी 'लेटर्स द काशे' (Letters de Cachet) की। 'लेटर्स द काशे' राजा के

१. फ्रांस में पार्लमाँ (Parlement) का आशय न्यायालयों से था।

हस्ताक्षर युक्त गिरफ्तारी के एक प्रकार के आदेश होते थे जिनके आधार पर कभी भी किसी भी व्यक्ति को अकारण ही गिरफ्तार किया जा सकता था। राजा ही नही उसके अधीनस्थ अधिकारी और सामन्तगण इनका दुरुपयोग कर जिस किसी से भी मनमाने ढग से बदला ले सकते थे। वाल्तेयर और मिराबो जैसे जन-नायक इस कुप्रथा के शिकार हो कारावास की यातना सहने के लिए बाध्य हुए थे।

नागरिक प्रशासन की भाँति सैनिक शासन के क्षेत्र में भी अनेक विकृतियाँ थी। सेना के उच्च पद कुलीनो के लिए सुरक्षित थे। किसी भी पराक्रमी योद्धा के लिए अपनी प्रतिभा के कारण उच्च सैनिक पद पर पहुँचना सम्भव नहीं था। अनुशासन अत्यन्त कठोर था किन्तु सिपाहियों की आवश्यकताओ की उपेक्षा की जाती थी। इन्हीं कारणों से सैनिको मे भी असन्तोष था और साधारणतया कोई भी सम्भ्रान्त व्यक्ति प्रसन्नता से सेना मे भर्ती होना पसन्द नहीं करता था।

सामाजिक व्यवस्था

फ्रास की राज्यक्रान्ति के पूर्व की सामाजिक व्यवस्था का आधार असमानताएँ, विषमताएँ, विशेषाधिकार, विमुक्ति एवं रियायत पर आधारित थी। एक ओर ऐसा वर्ग था जो विशेषाधिकारों और अनेकमुखी सुविधाओ से समलंकृत था तो दूसरी ओर ऐसा वर्ग था जो इन सुविधाओ से सर्वथा वंचित उपेक्षा और विपन्नता का जीवन बिताता था। पुरातन व्यवस्था में फ्रांसीसी समाज तीन वर्गो या 'इस्टेट्स' (Estates) में विभक्त था। याजक वर्ग या पादरीगण प्रथम 'इस्टेट' के अन्तर्गत आते थे। सामन्तगण दूसरी कोटि के अन्तर्गत आते थे और जनसाधारण तीसरे 'इस्टेट' के सदस्य कहलाते थे।

चर्च और पादरी वर्ग—प्रथम 'इस्टेट' (पादरी-वर्ग) अत्यन्त प्रभावशाली वर्ग था। फ्रांस में उस समय लगभग १,३०,००० पादरी-गण थे। इन पादरियों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता था—एक तो उच्च या समृद्ध पादरी वर्ग और दूसरा निम्न या निर्धन पादरी वर्ग। पादरियों के समृद्ध वर्ग के हाथों मे चर्च के उच्च पद थे और आय के अनेक स्रोत थे। यह वर्ग विशेषतया जन्म से ही अभिजात होता था। (अधिकांश उच्च पादरियो की वार्षिक आय डेढ़-दो लाख रुपये से कम नही थी) (कुछ बड़े पादरियों की वार्षिक आय तो नौ-दस लाख रुपये तक पहुँच जाती थी)। (स्ट्रासबर्ग और रुएन के बिशपों का नाम इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। छोटे पादरियो की आय इनकी अपेक्षा नही के बराबर थी। उच्च पादरियो का धार्मिक कृत्यो से कोई सम्बन्ध नहीं होता था। (सन्देह और नास्तिकता उनके जीवन के मूल मन्त्र थे। यहाँ तक जब लुई सोलहवें को पेरिस के एक आर्च बिशप को नियुक्त करने

की आवश्यकता हुई तो तुलूस के आर्च बिशप विएन ने उस पद-प्राप्ति का प्रयास किया। इस पर लुई ने उसे अस्वीकार करते हुए कहा था, 'हमे कम से कम पेरिस का तो ऐसा आर्च बिशप रखना चाहिए जो ईश्वर मे विश्वास करता हो।' इस प्रकार चर्च के मठाधीश ज्ञानोपार्जन, धर्म-प्रचार और जन-कल्याण की अपेक्षा अपना सारा समय राग-रंग और आमोद-प्रमोद के भ्रष्ट कार्यो मे लगाते थे। समग्र रूप से चर्च के पास अतुल धनराशि थी। उसके पास समस्त देश की भूमि का पाँचवाँ भाग था। यह आय का प्रमुख स्रोत था। इस आय के अतिरिक्त चर्च को तमाम भेटें, उपहार तथा अपनी भूमि जोतने वाले किसानो से अनेक सामन्ती कर मिलते थे। अपने आन्तरिक अनुशासन में चर्च स्वतन्त्र था। उसे किसी प्रकार के राजकीय कर नही देने पडते थे। प्रजा के आध्यात्मिक जीवन का नियन्त्रण, शिक्षा, निर्धन तथा दीन-दुखियो की सेवा के कार्य उनके अधीन थे। धर्म विरुद्ध आचरण करनेवाले व्यक्तियों को दण्ड देने का भी अधिकार उसी को था। चर्च की अपनी अलग एसेम्बली थी और अपने अलग न्यायालय थे। यह सब कुछ होते हुए भी चर्च अन्धविश्वास और पाखण्डवाद का अड्डा वन गया था। जनता के हृदय मे उसके प्रति वह श्रद्धा नही रह गयी थी जो चर्च जैसी धार्मिक संस्थाओं के लिए आवश्यक होती है।

द्वितीय 'इस्टेट'—सामन्त-वर्ग—फ्रांस की प्राचीन व्यवस्था का द्वितीय वर्ग सामन्तो का वर्ग था। (प्रो० गर्शाय के अनुसार क्रान्ति के पूर्व इस वर्ग के अन्तर्गत अनुमानतः पचास हजार परिवार और डेढ़ से लेकर ढाई लाख तक व्यक्ति आते थे। द्वितीय वर्ग समाज का दूसरा समृद्ध वर्ग था जिसके पास सुख-समृद्धि के प्रचुर साधन थे और अगणित विशेषाधिकार तथा सुविधाएँ थीं। शासन, सेना और चर्च के उच्चतम पद इन्ही के हाथों में थे। सामन्तो के इस वर्ग के दो भाग किये जा सकते है: एक तो वह वर्ग था जो अपनी जागीरो मे न रह कर सम्राट् के साथ वार्साई मे रहा करता था और दूसरा वह वर्ग था जो अपनी जागीरों मे रहना पसन्द करता था। वार्साई मे रहने वाला सामन्त वर्ग भिक्षुकों की भाँति सम्राट् की कृपा के लिए हाथ फैलाये रहता था। उनका कार्य राज्य की सेवा न रह कर राजा या सम्राट् की सेवा रह गया था। राजा की सेवा के लिए लालायित वे उसके इर्द-गिर्द मँडराते रहते थे। वार्साई के राजप्रासाद मे राजा की निजी सेवा यथा दातौन कराना, स्नान कराना, शयनागार का प्रबन्ध कराना, वस्त्रालकार पहनाना उनका कार्य था और इन कार्यों को करने में वे अपना गौरव समझते थे। उनकी उपयोगिता का थोड़ा आभास इसीसे हो सकता है कि एक बार जब सम्राट् की वालिका एक वर्ष की थी तो उसकी सेवा के लिए ८० सामन्त नियुक्त किये गये थे।

वार्साई मे रहने वाला यह सामन्त-वर्ग अपने को जन-साधारण तथा ग्रामों मे रहनेवाले

अपेक्षाकृत असम्पन्न सामन्तों से ऊँचा समझता था। गाँवों में रहने वाले सामन्तों को भी प्रजा या अपने असामियों के कल्याण की कोई इच्छा नही थी। यहाँ उनके दो ही प्रमुख कार्य थे—शिकार जैसे आमोद-प्रमोद में अपना समय बिताना तथा कृषकों को यातनाएँ देना। सारे सामन्तों को अनेक सुविधाएँ, अनेक विशेषाधिकार प्राप्त थे। वे प्रत्यक्ष कर से मुक्त थे। शासन, सेना और चर्च के उच्चतम पद उनके लिए सुरक्षित थे। कृषकों से उन्हें अनेक प्रकार के कर, शुल्क व बेगार मिलती थी। इससे भी जब खर्च नहीं चलता था तो वे समृद्ध व्यवसायियों से कर्ज लेते थे। मान्तेस्क्यू ने इनकी इसी स्थिति पर व्यंग्य करते हुए एक स्थल पर लिखा है कि सामन्त से आशय उस व्यक्ति से है जो सम्राट् की सेवा में अनुरत है, जो सम्राट् के मन्त्रियो के साथ उठता-बैठता है, जिसे अपने पुरखों पर गर्व है, जो कर्ज से लदा हुआ है और जो राजकीय वृत्तियों पर जीता है।

वास्तव में सामन्तों की विचित्र स्थिति थी। अपनी परम्परागत अयोग्यता और प्रशासन के प्रति उदासीनता के कारण उनकी राजनीतिक शक्ति समाप्त हो चुकी थी। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय शासन में प्रभावशाली वर्ग के रूप में उनका कोई हाथ नहीं था। राजकाज में भाग न लेने से राजा पर उनका कोई प्रभाव नहीं था। जनसाधारण उनको घृणा की दृष्टि से देखता था। कृषक और नवोदित समृद्ध व्यवसायी सभी उनसे असन्तुष्ट थे। फिर भी अपने विशेषाधिकारों और अक्षम राजा की कृपा पर वे जी रहे थे। उनके कारिन्दे और वे स्वयं अपने कृषकों का शोषण करने और उन्हें यातनाएँ देने के लिए तथा तृतीय वर्ग के किसी भी व्यक्ति का तिरस्कार करने के लिए मुक्त थे।)

तृतीय इस्टेट—तृतीय 'इस्टेट' के अन्तर्गत समाज का जनसाधारण वर्ग था। यह वर्ग विशेषाधिकार या सुविधाओं से वंचित था। इस वर्ग के लोगों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है: प्रथमतः उच्च मध्यम वर्ग के लोग या 'बुर्जुआ', तथा द्वितीय शिल्पी, कृपक या श्रमिक गण जिन्हें 'पेटी बुर्जुआ' या निम्न मध्यम वर्ग की संज्ञा दी गयी थी। फ्रांस की समस्त जनसंख्या का ९९ प्रतिशत भाग इसी तृतीय वर्ग का था। संख्या, सम्पदा तथा प्रभाव की दृष्टि से उच्च मध्य वर्ग उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। इस वर्ग के अन्तर्गत व्यापारी, साहूकार, उद्योगपति, शिक्षक, डाक्टर वकील इत्यादि आते थे। सम्पत्ति, योग्यता, शिक्षा और संस्कृति में यह वर्ग सामन्तों का समकक्षी ही नही था प्रत्युत उनसे कही श्रेष्ठ था। परन्तु सुयोग्य और समृद्ध होने पर भी इसे सामन्तों की भाँति राज-शासन और सुविधाएँ प्राप्त नहीं थीं। पदों की बिक्री-प्रथा के कारण कुछ बुर्जुआ लोगों ने कतिपय सरकारी पदों को खरीद लिया था किन्तु उच्च पदों के द्वार उनके लिए बन्द थे। उच्च पद तो केवल सामन्तों या कुलीनों के लिए सुरक्षित थे। इस प्रकार तत्कालीन फ्रांसीसी समाज में उन्हें वह स्थान प्राप्त नहीं

था जो कि इन साधनों के सम्पन्न होने पर प्राप्त होना चाहिए था। यही नहीं उन्हें अनेक अवसरों पर सामन्तों द्वारा तिरस्कृत और अपमानित होना पड़ता था। सामन्तो के सम्पर्क मे आने पर उन्हें अपनी हीनावस्था का आभास हो जाता था। उदाहरणार्थ एक बुर्जुआ की माता को एक थियेटर से इसलिए निकाल दिया गया था कि वह एक बुर्जुआ या मध्यम वर्गीय व्यक्ति की माता थी। इसी तरह 'मदाम रोलाँ' नामक एक सम्भ्रान्त बुर्जुआ महिला को एक भोज में निमन्त्रित किया गया किन्तु उसने उस महिला के भोज का प्रबन्ध अपने नौकर के यहाँ किया था। बौद्धिक क्रान्ति के अग्रदूत तथा स्वतन्त्रता के देवदूत वाल्तेयर को भी कुलीनों द्वारा तिरस्कृत होना पड़ा था। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण है।

इस सामाजिक अवमानना के अतिरिक्त मध्यम वर्ग को कतिपय व्यावसायिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था जिसके कारण वह अपने भावी आर्थिक विकास के मार्ग को अवरुद्ध समझता था। यह वर्ग जैसा कि हम पहले कह चुके है प्रधानतया व्यवसायियों और साहूकारों का वर्ग था। औद्योगिक क्रान्ति की प्रारम्भिक प्रभाव-रश्मियों के प्रकाश मे यह वर्ग औद्योगिक प्रगति के लिए सन्नद्ध था। पिछले दशकों मे होने वाले वाणिज्य और व्यवसाय की अभिवृद्धि के कारण उसके पास पर्याप्त पूँजी आ गयी थी किन्तु अनेक आर्थिक नियन्त्रणों के कारण वह अपने ढंग से अपनी आर्थिक प्रगति करने में अपने को असमर्थ पा रहा था। सरकार और सामन्तों की ओर से उसके व्यवसाय पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध थे। (उत्पादन, मूल्य, क्रय-विक्रय श्रमिकों के कार्यकाल, सीमा-शुल्क, आयात-कर प्रभृति पर राज्य का पूरा आधिपत्य था और ये प्रतिबन्ध ऐसे थे जिनके कारण आर्थिक प्रगति पंगु सी हो रही थी। उदाहरण के लिए सीमा-शुल्क को ले लीजिए। सीमा-शुल्क जगह-जगह पर लगता था। इससे देश के अन्दर ही माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में काफी खर्च और समय लगता था। उदाहरणार्थ दक्षिणी फ्रांस से मदिरा ले जाने वाली नौका को चालीस स्थानों पर चुंगी देनी पड़ती थी और इसीमें उसे पन्द्रह दिन लग जाते थे। इस प्रकार नियन्त्रणों और प्रतिबन्धो से आन्तरिक और वैदेशिक व्यापार दोनों को ही क्षति पहुँचती थी।) इसलिए यह मध्यम वर्ग इस प्रकार के प्रतिबन्धों को हटाने और मुक्त व्यापार-नीति या यद्माध्यम नीति (Leissez Faire) को अपनाने के लिए सरकार से आग्रह कर रहा था। दूसरे इस वर्ग के अधिक समृद्ध लोगों ने सरकार को ऋण दे रखा था अतएव वे यह चाहते थे कि सरकार की वित्तीय व्यवस्था सुस्थिर रहे किन्तु यह तभी सम्भव था जब कि शासन मे सुव्यवस्था और सुस्थिरता हो। इसलिए यह वर्ग शासन में सुधार के लिए प्रयत्नशील था। वास्तव में फ्रांस की १७८६ ई० की क्रान्ति को यदि हम बुर्जुआ वर्ग की क्रान्ति कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। क्रान्ति को आरम्भ करने में

इसी वर्ग का अधिक हाथ था। क्रान्ति-पूर्व फ्रास के अधिकांश, विचारक, लेखक, दार्शनिक, मनीषी ओर नायक इसी वर्ग के थे।

तृतीय 'इस्टेट' का एक निम्नतर वर्ग था। इसके अन्तर्गत शिल्पी और कृषक आते थे। जहाँ तक शिल्पियो का प्रश्न हे उनकी दशा इस समय अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। मशीनो का प्रयोग प्रारम्भ हो गया था और इस कारण शिल्पियों के कुटीर उद्योगों पर घातक प्रभाव पडा था। कितने ही उद्योग-धन्धे वन्द हो गये थे। इससे शिल्पियो में बेकारी बढ़ गयी। वे असन्तुष्ट हो काम की खोज मे पेरिस आये। क्रान्ति के समय यह वर्ग भी अन्य असन्तुष्ट तत्त्वो से मिल गया।

तृतीय 'इस्टेट' के अन्तर्गत आने वाले लोगों मे कृपको की स्थिति का उल्लेख करना अत्यन्त आवश्यक है। वस्तुत: पुरातन व्यवस्था में सर्वाधिक उपेक्षित और विपन्न वर्ग कृषकों का था। यद्यपि फ्रांस एक कृषि-प्रधान देश था और उसकी जन-सख्या का अधिकाश (लगभग दो करोड़) कृषि के द्वारा अपना जीवकोपार्जन करता था फिर भी फ्रांस का किसान सबसे अधिक दरिद्र था, सबसे अधिक त्रस्त था। आये दिन अन्नाभाव बना रहता था। अकाल, भुखमरी ओर खाद्यान्नों के अभाव की पूर्त्ति के लिए रोज ही विद्रोह और उपद्रव होते रहते थे। इसके कई कारण थे, प्रथमत: भूमि पर सामान्यतया सामन्तो का स्वामित्व था और कृषक उनके असामी के रूप में कार्य करते थे। कुछ कृषकों ने सामन्तो से भूमि खरीद ली थी और बाकी अर्द्धदास की भाँति अपना जीवन बिताते थे। अधिकांश कृषकों के खेत छोटे-छोटे होते थे जिनमें इतना भी पैदा नहीं हो पाता था कि उससे वे अपना और अपने परिवार का पूरी तरह भरण-पोषण कर लेते। कितने ही कृषकों के पास तो भूमि ही नहीं थी। कृषि की प्रणाली मध्ययुगीन थी। खेती का प्रत्येक कार्य यथा बुआई, जुताई फसल की कटाई, उत्पादन का स्थानान्तरण, बिक्री इत्यादि सभी पर सरकार का पूरा नियन्त्रण था।[१] अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक ये नियन्त्रण बड़े ही कठोर रूप मे बने रहे। कृषको पर कर का सबसे बड़ा भार था। राज्य, चर्च और सामन्त सभी उससे कर उगाहते थे। रेन के अनुसार एक कृषक अपनी आय के १०० फ्रैंक मे से ५३ फ्रैंक कर के रूप मे राज्य को दे देता था, १४ अपने सामन्त को देता था ओर १४ अपने चर्च को देता था। बचे हुए १९ फ्रैंक में से वह कर-संग्रहकों को देता तथा अपना पेट पालता था। इस प्रकार एक कृषक अपनी आय का ८०% से भी अधिक कर के रूप में दे देता था।

राज्य, चर्च और सामन्तों को कृषकों द्वारा दिये गये करों और देयो के अतिरिक्त

१. Gershey: The French Revolution & Napoleon, p 50 तथा Hollen Rose: The French Revolution p. 16.

अनेक ऐसे कार्य करने पड़ते थे जो सामन्तो के अधिकार थे और कृषकों के कर्त्तव्य। उदाहरण के लिए कृषको से पथ-निर्माण इत्यादि के लिए बलात श्रम लिया जाता था। यह अधिकार 'कार्वी' (Corvce Seignneuriale) कहलाता था। यही नहीं, कृषक अपने जमीदार की चक्की पर अपना आटा पिसवाने, उसके तन्दूर पर अपनी रोटी सिकवाने, मांस के लिए जमीदार के बूचड़खाने मे पशुओ का वध कराने, जमीदार के कोल्हू पर जैतून का तेल निकलवाने, उसकी भट्टी मे शराब बनवाने के लिए अंगूर भेजने के लिए बाध्य थे। कुलीनों या सामन्तों को ये अधिकार 'बेनातिटीज़' (Banatities) कहलाते थे। इन सब कार्यो के लिए किसानों को शुल्क के रूप मे काफी पैसा देना पड़ता था और इन कार्यों के लिए प्रायः कई मील दूर जाना पड़ता था। इन कार्यो के अतिरिक्त कृषकों को सामन्तों के एक अधिकार से और भी कठिनाई होती थी। यह अधिकार था कुलीनों का कपोत पालने और शिकार खेलने का अधिकार (Droits de colombier et chasse)। शिकार के इस अधिकार के कारण किसान की फसल को बड़ी हानि पहुँचती थी। जमीदार का कोई शिकार यदि किसी किसान के खेत मे चला जाता था तो किसान उस शिकार को भगा नही सकता था। जमीदार या उसके सहयोगियो के घोड़े उसके खेत को कुचल देते थे, उसकी फसल नष्ट हो जाती थी और निरीह कृषक इन सबके विरुद्ध कोई आवाज नही उठा सकता था। ऐसे संकटमय जीवन से फ्रास का कृपक अत्यन्त व्यग्र हो चुका था। अतएव ऐसी स्थिति में जब क्रान्ति के स्वर ऊँचे उठे तो वे भी अपनी कठिनाइयो से मुक्ति पाने के लिए क्रान्तिकारियों से मिल गये। उन्होंने राजा, चर्च तथा सामन्तों के बन्धनों से छुटकारा पाने का जोरदार आग्रह किया; करों में समानता, मैनोरियत प्रथा का अन्त तथा अपने जीविकोपार्जन के लिए अधिक भूमि की माँग की।

आर्थिक जीवन

पुरातन व्यवस्था में फ्रांस का आर्थिक जीवन अत्यन्त जर्जरित, जटिल और बोझिल था। समाज के दो समृद्ध वर्गो को छोड़कर शेप जन-वर्ग अत्यन्त कष्ट मे था। कहा जाता है कि सामन्त लड़ते थे, पादरी पूजा करते थे और तृतीय वर्ग के लोग उनका खर्च जुटाते थे। तृतीय वर्ग मे उच्च मध्यवर्ग की आर्थिक स्थिति अवश्य अपेक्षाकृत अधिक सुधर गयी थी किन्तु कृषकों तथा शिल्पियों का जीवन तो कठिनाइयों और अनेक प्रकार की परवशता का जीवन था। तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री और प्रबुद्धवादी विचारकों के लेखो से कृषको की आर्थिक विपन्नता का कुछ परिचय मिल जाता है। रेन इस सामग्री के आधार पर फ्रांस की पुरातन व्यवस्था विपयक अपनी पुस्तक (Origines de la France Contemporaire (L' Ancien Regime) इस विपन्न वर्ग की स्थिति पर

अच्छा प्रकाश डाला है। वास्तव में इस समय अधिकांश कृषकों को पेट भर भोजन नहीं मिल पाता था। नमक बहुत ही महँगा था, मास और मदिरा का आहार सबके लिए सुगम नहीं था। मटर और फलियाँ इत्यादि भी बहुत महँगी थी। उनके पास पूरे वस्त्र नहीं थे, शीत-काल मे भी वे चीथड़ो मे लिपटे रहते थे। उनके रहने के स्थान कच्चे, प्रकाश और वायु से रहित थे।[1]

इधर तो कृषक-वर्ग की यह दशा थी। उधर सरकार मे आर्थिक गठन और नीति के क्षेत्र में भयकर शिथिलताएँ थी। शासन के अन्य क्षेत्रो यथा न्याय और प्रशासन की भाँति कर-व्यवस्था मे निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता थी। वास्तव में पुरातन युग की कर-व्यवस्था को व्यवस्था की संज्ञा देना ही भूल होगी। जन-साधारण पर करो का असह्य बोझ था। उच्च विशेषाधिकार या सुविधालंकृत वर्ग करों के दायित्व से एक प्रकार से मुक्त ही था। आय-व्यय पत्रक का प्रचलन नहीं था। आय-व्यय का कोई खाता नही रखा जाता था और किसी भी अधिकारी को राजकीय वित्त की वास्तविक स्थिति का कोई ज्ञान नहीं रहता था। कर-संग्रह की पद्धति भी अत्यन्त व्ययसाध्य, भ्रष्ट और असन्तोषजनक थी। साधारणतया अनेक कर वसूल करने के लिए ठेके की प्रथा का प्रचलन हो गया था। गैरसरकारी संस्थाएँ या व्यक्ति कर-उद्गाहक का कार्य करते थे। करारोपण में किसी सिद्धान्त का अनुसरण नही किया जाता था, मनमाने ढंग से कर लगा दिया जाता था। जो व्यक्ति वाहर से सम्पन्न दिखलायी पड़ता उस पर कस कर कर बाँध दिया जाता था। कर के भय से कोई व्यक्ति अच्छे वेश-विन्यास या वस्त्र धारण करने का साहस नहीं करता था।

कर प्रधानतया दो प्रकार के थे : प्रत्यक्ष कर और परोक्ष कर। जन-साधारण पर लगने वाले करों में टैली (Taille), 'गेबेल' (Gabelle), उत्पत्ति-कर (aides), सीमा-शुल्क (traites and douanes), शराब तथा तम्बाकू पर लिये जाने वाले कर मुख्य थे। 'टैली' यह एक प्रत्यक्ष कर था जो कुछ प्रान्तों में तो सम्पत्ति कर के रूप में उगाहा जाता था और कुछ मे पोल कर (Poll-tax) के रूप में। इस कर की राशि कभी-कभी इतनी अधिक ले ली जाती थी कि कर दाता का ५०% से भी अधिक भाग इस कर के रूप में चला जाता था। 'गेबेल' नमक-कर का पर्याय था। यह अत्यन्त ही अनैतिक और कष्टकारक कर था। वास्तव में नमक की बिक्री का एकाधिपत्य सरकार ने एक

१. "The peasant dwelling was a cabin of clay, without any windows. In this poor hevel the luckless wright weak and warm and puny made his home. Attired in rags even in the depth of winter he sometimes went stockingless and bootless wearing instead sandals or slippers made of strings or strips of leather." M. Roustan : 'The pioneers of the French Revolution'.

कम्पनी को दे रखा था और प्रत्येक व्यक्ति को निश्चित परिमाण में नमक खरीदना आवश्यक था। कम्पनी नमक का मनमाना दाम निश्चित कर देती थी। उधर जो व्यक्ति निश्चित परिमाण मे नमक खरीदने में असमर्थ होता था[1] वह राज्य की ओर से दण्ड पाता था। प्रो० हेज़न ने लिखा है कि नमक के अवैध व्यापार के लिए प्रति वर्ष ३०,००० व्यक्तियों को कारावास तथा ५०० व्यक्तियों को मृत्यु-दण्ड मिलता था।[1] किसानो को चर्च को भी निश्चित कर देना पड़ता था। कर की यह राशि उपज के १/२० भाग से लेकर १/१२ भाग तक होती थी। प्रायः लोग इस कर से बचने का प्रयास किया करते थे। क्रान्ति प्रारम्भ होने के पूर्व इस मामले के लगभग ४,००,००० मुकदमे न्यायालयों में चल रहे थे।

इधर करों के क्षेत्र मे यह अराजकता थी, उधर दूसरी ओर राजा तथा उसके परिवार की अपव्ययिता एवं शान-शौकत के कारण पानी की तरह धन बह रहा था। राज्य-कोष एक प्रकार से रिक्त हो गया था। राज्य ने धनिकों से लम्बी राशि में ऋण ले रखा था। इसके लिए उसे ब्याज के रूप में लम्बी रकम देनी पड़ती थी। १७८९ ई० मे क्रान्ति के प्रारम्भ होने के पूर्व फ्रांस का राजकीय ऋण ४०० करोड़ पौंड था जिस पर २३ करोड़ ६० लाख पौंड वार्षिक सूद होता था। सूद की यह राशि राज्य की कुल आय से कुछ ही कम थी।

इस प्रकार पुरातन-व्यवस्था के राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन की असंगतियों ने फ्रास को एक महान क्रान्ति की ओर अग्रसर किया, वह क्रान्ति जिसने फ्रांस ही नहीं समस्त यूरोप के इतिहास को नयी दिशा दी।

१. Hazen: The French Revolution Vol. 1, p. 70.

अध्याय ४

फ्रांस की संविधान सभा

सभा का अधिवेशन

जनता की माँग के अनुसार ५ मई सन् १७८९ को स्टेटस जनरल का अधिवेशन बैठा। सबकी आँखें वार्साई की ओर लगी हुई थीं। सर्वसाधारण का ध्यान इस बात पर केन्द्रित था कि जिन प्रतिनिधियों को उन्होंने बड़े उत्साह और आशा से चुना था वे सुधारो को क्रियात्मक रूप कैसे देगे। सबसे बड़ी समस्या मतो के विभाजन की थी। यह निश्चय किया जाना था कि सभा मे उपस्थित तीनों श्रेणियों के प्रतिनिधि श्रेणी के अनुसार अपना-अपना मत दें अथवा सभा का प्रत्येक सदस्य मतदान मे स्वतन्त्र समझा जाय। लोकसभा (अथवा तृतीय श्रेणी) के प्रतिनिधियो को एक राजकीय आदेश के द्वारा दोहरा प्रतिनिधित्व करने की अनुमति दी जा चुकी थी। फिर भी जनता के प्रतिनिधियों ने यह बात काफी अच्छी तरह से समझ ली थी कि यदि तीनों सभाएँ मत देने में एक दूसरे से नितान्त स्वतन्त्र हुईं तो उनका बहुमत अभिजातवर्ग का प्रनिनिधित्व करने वाली दोनों सभाओं की सम्मिलित शक्ति के सामने नगण्य हो जायगा। दूसरी ओर उच्च वर्ग और धार्मिक वर्ग के लोगों ने यह देखा कि यदि विधान बनाने का कार्य तीनों सभाएँ मिलकर करेगी तो वे लोग तृतीय श्रेणी के सामने अपनी रक्षा नहीं कर सकेंगे और सर्वथा प्रभुत्वहीन बना दिये जायँगे। यह बात ध्यान में रखते हुए उन्होंने तृतीय श्रेणी के साथ मिलकर कार्यवाही करने के प्रत्येक प्रयास को विफल करना चाहा और इस प्रकार से कई दिनों तक विधान सभा का कार्य बिलकुल स्थगित हो गया। राजा की सहायता से नेकर ने इस निष्क्रियता को तोडकर काम आगे बढ़ाने के अनेक प्रयत्न किये पर वे सब व्यर्थ सिद्ध हुए। अन्ततः दस जून को आब्बेसिये के प्रस्ताव पर उच्च वर्ग और धार्मिक वर्ग के प्रतिनिधियों को तृतीय श्रेणी से मिलकर काम करने का एक अन्तिम निमन्त्रण भेजा गया और यह निश्चय हुआ कि यदि मिलकर काम करने का यह निमन्त्रण दोनो सभाएँ स्वीकार नहीं करेंगी तो तृतीय श्रेणी के प्रतिनिधि स्वयं ही एक विधान बनाने वाली सभा का रूप ले लेंगे। उच्च वर्ग के प्रतिनिधियों ने निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया और बहुत थोड़े-से स्थानीय पादरियों

ने तृतीय श्रेणी के साथ मिलकर काम करना स्वीकार किया। प्रतिनिधियों ने बेली नाम के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी को अपना अध्यक्ष निर्वाचित किया। सोलह जून को उन्होंने अपने आपको फ्रास की राष्ट्रीय सभा घोषित कर दिया। राजा और उसके मन्त्री इस प्रकार की कार्यवाही से बड़े परेशान हुए। यह सुझाव रखा गया कि मतभेद के सभी प्रश्नो को सुलझाने के लिए एक राजकीय समिति (सेयाँ रोयाल) का आयोजन किया जाना चाहिए। बीस जून को राजा की आज्ञा से तृतीय श्रेणी के प्रतिनिधियो को सभा स्थानो मे प्रवेश करने से रोक दिया गया। उन लोगों ने वैधानिक सभा स्थान को छोड़कर उसके पास ही एक टेनिस कोर्ट में अपना काम जारी रखा। वहाँ उन्होने यह शपथ भी ली कि जब तक वे फ्रांस के लिए एक संविधान का निर्माण नहीं कर लेंगे तब तक वे वहाँ से नही हटेंगे। यह एक क्रान्ति और राजविद्रोह की घोषणा थी। बाईस जून को ये लोग वार्साई मे सन्त लुई के गिरजाघर में सम्मिलित हुए। यहाँ निम्न वर्ग के पादरियों के १४९ प्रतिनिधि भी इन लोगों से मिल गये। दूसरे दिन राजकीय समिति की बैठक हुई और राजा ने जनता के प्रतिनिधियों की अनुमति के बिना किसी प्रकार के राज कर न लगाने और शासन में सुधार न करने का वचन दिया; किन्तु उसने जन प्रतिनिधियों को वहाँ से हट जाने के लिए कहा और आदेश दिया कि वे अपनी वैधानिक कार्यवाही अलग होकर करे। जन प्रतिनिधियों में राजविद्रोह फैल गया और उन्होंने राजाज्ञा के उल्लंघन करने का निश्चय कर लिया। उस समय यदि राजा ने अपने आपको समिति का अध्यक्ष बनाकर साहसपूर्वक सुधार-नियम बना दिये होते तो फ्रांस का इतिहास कुछ भिन्न ही होता। पर सोलहवें लुई में राजनीतिक योग्यता और दृढ़ता इन दोनों ही चारित्रिक गुणों का अभाव था। राज प्रासाद के शिष्टाचारों का संचालक जब प्रतिनिधियों के सामने प्रकट हुआ और उसने उनको तितर-बितर हो जाने के लिए कहा तो सभा में सन्नाटा छा गया और सभासदों के चेहरे पर खेद की स्पष्ट रेखाएँ दिखायी पड़ने लगीं। परन्तु मिराबो वीर की तरह आगे बढ़ा और गरजकर बोला—"जाओ और अपने स्वामी से कह दो कि हम यहाँ जनता की इच्छा के अनुसार हैं और संगीनों की तेज नोक के सिवा हमें यहाँ से कोई नहीं हटा सकता।" मिराबो एक शक्तिशाली वक्ता और जनता के लिए लडने वाला एक अजेय वीर नायक था। उसके इस साहसपूर्ण प्रस्ताव पर सभासदों ने वहाँ से हटने से इन्कार कर दिया और इस प्रकार वहाँ राजा तथा उसके दरबार, और सभा के बीच एक खुले संघर्ष का दृश्य उपस्थित हो गया। शीघ्र ही राजा को जन प्रतिनिधियों की इच्छा के सामने झुकना पड़ा और उसने उच्च वर्ग तथा धार्मिक वर्ग के प्रतिनिधियों को भी तृतीय श्रेणी के साथ मिलकर काम करने के लिए तैयार कर लिया। इस प्रकार समाज के तीनों वर्ग एक ही संसद में सम्मिलित हो गये; यही संसद

फ्रांस की राष्ट्रीय संसद कहलायी।

राजा ने सोचा कि नेकर की सलाह मानने के कारण ही उसका सारा प्रभाव और अधिकार चला गया था। अतः नेकर के शत्रुओं—रानी और पुरातन राज्य व्यवस्था के दृढ़ पोषक काम्ते दार्तुआ—के परामर्श से अब वह पेरिस के पड़ोस में सेनाएँ इकट्ठी करने लगा। मिराबो ने राजा की नीति की आलोचना की और सेनाओं को शीघ्रातिशीघ्र वहाँ से हटा लेने का अनुरोध किया। राजा ने इसके उत्तर में बारह जुलाई को नेकर को उसके पद से हटा दिया और उसके स्थान पर शासन-कार्य से अनभिज्ञ एक अनुभवहीन व्यक्ति की नियुक्ति कर दी। मिराबो ने राजा के इस मूर्खतापूर्ण कार्य से लाभ उठाकर उसके पास एक प्रतिनिधि मण्डल भेजने की संविधान सभा की इच्छा का विरोध किया। इसी बीच पेरिस भी प्रतिरोध करने के लिए तैयार हो गया। राजधानी की रक्षा के लिए रखी गयी फ्रांस की सुरक्षा-सेना ने भी अब जनता के विरोध में नही प्रत्युत उसके पक्ष में लड़ने का निश्चय कर लिया। जन समूह ने रोगियों के आवास में रखे हुए शस्त्र अपने अधिकार में कर लिये। सब तरफ एक भीषण राज्य क्रान्ति की तैयारियाँ होने लगीं। सामाजिक बैठकों (Salons) का कार्यक्रम खूब व्यस्त रहने लगा। मादम दे ब्यूहानीए, ज्यूली तल्मा तथा मैदम वाज़ेल तेरोअन ने दे मेरीकुर्त नाम की तीन अभिजात्य महिलाओं का प्रभाव काफी बढ़ गया और इनके यहाँ होने वाली बैठकों में लगभग प्रतिदिन उग्र क्रान्तिकारी दल के राजनीतिज्ञ और पत्रकारो का जमघट होने लगा। क्रान्तिकारी उग्रता का वातावरण पैदा करने में क्लबों का विशेष हाथ था। इन क्लबो में विशेष प्रसिद्ध दो थे, पहला लिसे जिसका सभापति काण्डार्से था और दूसरी काले लोगों के मित्रों की सभा (सोसियेते दे-जामी देन्वार) थी जिसकी संस्थापना ब्रिस्सौ ने की थी। सेंट अन्तुआन और सेंट मर्सियाँ नगरों मे सम्मिलित किये गये नये जिलों के लोगों मे बहुत असन्तोष फैला हुआ था। राज प्रासाद के उद्यानों में हर प्रकार के विचारो और मतों का प्रतिनिधित्व करने वाले राजनीतिक नेता प्रायः इकट्ठे होते रहते थे और राज विद्रोह सम्बन्धी बड़ी महत्त्वपूर्ण बातों के सम्बन्ध में वार्तालाप करते थे। फ्रांस के होटल, कैफे, शराबखाने और जुए के अड्डे सभी स्थानों में शासन के प्रति गहरा असन्तोष साफ झलक रहा था। इन स्थानों पर जिन सामयिक पत्रों की बिक्री होती थी वे भी राजविद्रोह का खुला प्रचार करते थे। फ्रांस में इस समय बेकारो की संख्या बहुत बढ़ी हुई थी। राज प्रासाद में बल्वा करने वाले और बास्ती (Bastille) पर विजय पाने वाले लोगों में अधिक संख्या इन्हीं बेकारों की थी। बेकारों की बहुसंख्या, बुरी फसल के कारण भुखमरी और अनिश्चित भविष्य की चिन्ता, ये सब बातें इन लोगों को विक्षिप्त और पागल बना रही थीं। १७८९ ई० के फ्रांस की दशा के सम्बन्ध में आर्थर यंग ने इस प्रकार लिखा

है—"राज्यो का संकट क्या कर सकता है, केवल इसी बात की चिन्ता और आशंका के सम्बन्ध मे इन दिनों मैं सुनता रहा हूँ। इस समय लोगो की घबड़ाहट बहुत बढ़ी हुई है। प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि फ्रांस मे कोई मन्त्रिमण्डल नही है; रानी अपना निकट सम्बन्ध दिन-प्रति-दिन राजकुमारों के दल से बढाती जा रही है जिनका मुखिया अर्तुआ का सरदार है और इस दल का प्रत्येक सदस्य श्री नेकर के विरुद्ध है। यह भी सभी मानते हैं कि फ्रांस मे इस समय सब कुछ अव्यवस्थित है; परन्तु राजा जो कि व्यक्तिगत रूप से संसार मे सबसे अधिक ईमानदार आदमी है, केवल एक ही इच्छा रखता है और वह है सही काम करने की; फिर भी उसमे उन निश्चयात्मक गुणों का अभाव है जो एक व्यक्ति को कठिनाइयों और उनको दूर करने के उपायो का पूर्वज्ञान करा देते हैं। इन सब बातों से राजा इतना घबड़ा गया है कि वह यह भी निश्चय नहीं कर सकता कि किसके परामर्श को वह ठीक माने..............।[१]

नेकर को पदच्युत करने के समाचार ने पेरिस में बहुत उत्तेजना फैला दी। कामिय देमूलाँ नामक प्रतिभाशाली जन्मजात पत्रकार और एक उग्र क्रान्तिकारी राजनीतिज्ञ ने जनता को खूब उत्तेजित कर दिया और जब किसी ने पूछा कि हम किस रंग के कपड़े पहनें तो उसने बगल में खड़े एक पेड़ से एक हरी शाखा तोड़कर उसके हरे रंग की ओर संकेत कर दिया और जनसमूह ने उसके आदेश का अनुकरण किया। एक बड़ी-सी भीड़ इकट्ठी हो गयी और रोगियों के आवास की तरफ बढ़ने लगी। आवास में रखे सभी शस्त्र भीड़ ने हथिया लिये। इसके बाद उस विशाल जन समूह ने बास्ती पर आक्रमण कर दिया। बास्ती एक पुराना किला था जहाँ राजनीतिक अपराधी नजरबन्द किये जाते थे। राजमहल की निरंकुशता के परिचायक राजमुद्रित आदेशों से गिरफ्तार किये गये लोग ही विशेष रूप से इसमें बन्द रखे जाते थे। इसमें नजरबन्द किये गये व्यक्तियो में मदाम दे स्ताल नाम की एक महिला भी थी जो अभी कुछ महीनों से इसमें कैद थी। विशाल जनसमूह ने इसी किले पर आक्रमण कर दिया; किले के बाहर का गतिशील पुल ऊँचा उठा दिया गया और भीड पर गोला-बारूद की वर्षा होने लगी। इतना करने पर भी किले के व्यवस्थापक और संरक्षक उसकी रक्षा न कर सके और भीड़ ने १४ जुलाई को उसे अपने अधिकार में कर लिया। इस समय यद्यपि बास्ती मे एक दर्जन से भी कम व्यक्ति नजरबन्द थे पर इसका पतन एक गहरा प्रतीकात्मक महत्त्व रखता था। शताब्दियो से यह पुराना किला राजकीय निरंकुशता का प्रतीक बनकर जनता की उत्तेजना का कारण बना हुआ था। अतः इसके पतन पर फ्रांस की जनता को

१. Travels in France, पृ० १५६-६०।

अत्यधिक हर्ष हुआ। १५ जुलाई को नेकर पुनः अपने पद पर बुला लिया गया। वह यदि फ्रांस के हितो को अपने स्वार्थों से ऊँचा समझता तो वह एक महान् जन नेता बना होता, पर वह बडा घमंडी ओर स्वार्थी मनुष्य था और उचित अवसर से लाभ उठाना नहीं जानता था। अव्यवस्था बढ़ती ही गयी। इस दशा में सुरक्षा-सेना का एकदम संघटन करना बहुत कठिन था। यहाँ तक कि ला फायेत भी व्यवस्था कायम रखने में सफल न हो सका और पेरिस की सड़को पर भयंकर हिसापूर्ण दृश्य उपस्थित होने लगे। बास्ती के पतन का समाचार पाकर राजा को बहुत आश्चर्य हुआ और उसने कहा—"यह राजविद्रोह है।" लियांकुर्त के ड्यूक ने राजा के कथन में संशोधन करते हुए कहा—"नही महोदय, यह तो राज्यक्रान्ति है।"

इसके बाद चार अगस्त को सभा ने सामन्तवाद का उन्मूलन कर दिया और इसको 'सम्पत्ति का बार्थोलोम्यू (विनाश)" कहा गया। इस दिन को कार्लालय ने 'सामन्तवाद के अन्तिम समय के अभिपेक का दिन' कहा था। इसी दिन पुराने सामन्ती विशेषाधिकार भी नष्ट कर दिये गये। कबूतरों के दरबे रखना, खेलों के नियम बनाना और सामन्ती व्यवस्था में जनता से बेगार लेना इत्यादि सामन्तों के विशेषाधिकार भी इस दिन से समाप्त कर दिये गये। नोआइय और दयूक दायकिलाँ नामक दो व्यक्तियों की तरह उच्चवर्ग के कुछ महानुभाव स्वेच्छापूर्वक अपने विशेपाधिकारों को त्यागने के लिए आगे बढ़े और जान पड़ता था कि आत्मत्याग के आवेश में प्रत्येक व्यक्ति उन्मत्त हो रहा था। पोप को दिये जाने वाले पुराने खर्चे भी अब बन्द कर दिये गये। विधान की दृष्टि में प्रत्येक व्यक्ति समान उद्घोषित किया गया; सार्वजनिक सेवाओं के लिए सभी व्यक्तियों की योग्यता सिद्धान्त रूप में मान्य कर ली गयी; निःशुल्क न्याय की व्यवस्था हो गयी; सभी व्यापारिक संघ और निगम (कार्पोरेशन्स) नष्ट कर दिये गये और श्रम तथा श्रमिक स्वतन्त्र कर दिया गया। सर्वसम्मति से यह आज्ञप्ति मान्य हुई कि 'फ्रांस की स्वतन्त्रता के पुनः संस्थापक' के रूप में राजा सोलहवें लुई की एक मूत्ति की प्रतिष्ठापना की जाय। राजनीति के मामले में मिराबो की व्यावहारिक सूझ कमाल की थी; उसने चार अगस्त की रात्रि को 'एक रात का आनन्दोत्सव' मात्र कहा था। लैम्ली तोलेन्दल ने पूरी परिस्थिति को इन थोड़े से शब्दों में अभिव्यक्त किया था—"कोई भी व्यक्ति अब अपना नियन्ता नहीं रहा; अधिवेशन को स्थगित कर दो।"

सामन्तवाद का उन्मूलन मात्र पर्याप्त न था। फ्रांस की जनता अमरीका का आदर्श सामने रखकर मनुष्य के अधिकारो का घोषणा-पत्र बनाने के लिए तत्पर हो गयी। बहुत देर तक इस विषय पर वाद-विवाद होता रहा। संसद के सामने घोषणा-पत्र के पक्ष में और उसके विपक्ष में हर प्रकार के मत उपस्थित किये गये। अन्त में यह निश्चय हुआ

कि 'मनुष्य के नैसर्गिक, अपरिवर्तनीय और पवित्न अधिकारों' की घोषणा अवश्य ही कर देनी चाहिए जिससे कि शासन-तन्त्र के सूत्रधार सदा अपने अधिकारों और कर्त्तव्यो के प्रति सचेष्ट रह सकें। घोषणा-पत्न २७ अगस्त १७८६ को पेश किया गया। इसकी कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण धाराएँ इस प्रकार है—

१. अपने अधिकारों की दृष्टि से मनुष्य स्वतन्त्र तथा समान पैदा होता है और जीवन-पर्यन्त (स्वतन्त्र तथा समान) रहता है।

२. सभी राजनीतिक संघों का उद्देश्य मनुष्य के नैसर्गिक और अभौतिक अधिकारों की रक्षा करना है। ये अधिकार है—"स्वतन्त्रता, सम्पत्ति, सुरक्षा और अत्याचार का प्रतिरोध करने के अधिकार।"

३. जनसम्मति (या सामान्य इच्छा) की अभिव्यक्ति का नाम विधान है। विधान बनाना सर्वोच्चसत्ता का कार्य है और जनता ही सर्वोच्च है।

४. कोई भी व्यक्ति अपने विचारो के लिए अपराधी नही ठहराया जाना चाहिए, चाहे वे धार्मिक विचार हो या अन्य व्यक्तिगत विचार। यद्यपि इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि ऐसे विचारों की अभिव्यक्ति सार्वजनिक व्यवस्था मे किसी प्रकार का उपद्रव न खड़ा कर दे।

५. विधान की दृष्टि मे सभी नागरिक समान होने के कारण हर तरह के राजकीय पदों, प्रतिष्ठाओं और ओहदों को बिना किसी प्रकार के भेदभाव के अपनी व्यक्तिगत योग्यता के अनुसार समान रूप से पाने के अधिकारी है।

६. प्रत्येक सार्वजनिक कार्यकर्ता से उसके शासन-कार्य का विवरण माँगने का पूरा अधिकार समाज को है।

मिराबो का विचार था कि घोषणा-पत्न अभी स्थगित रखा जाय। उसने कहा "इस समय अधिकारों की नहीं वरन् नागरिकों के कर्त्तव्यों की घोषणा कर देना अधिक उचित होगा।" उसे भय था कि जनता शक्ति का दुरुपयोग ही करेगी और इसीलिए उसने संयमित रहने का उपदेश दिया। पर उसका उपदेश सुनने का अवकाश किस को था? फ्रांस की राज्यक्रान्ति का इतिहास लिखने वाले अधिकांश विद्वानों ने घोषणा-पत्न की खरी आलोचना की है। एडमण्ड बर्क का रोष भी इसी घटना पर अधिक था। वह अधिकारों की घोषणा को जनता की भूल मानता था। फ्रांस में रहने वाले उस समय के दो विदेशियो ने इसको 'शब्दों पर व्यर्थ की कलह, रहस्यवाद का एक गड़बड़झाला' कहा था। पर औलार के अनुसार यह घटना पूर्णतः प्रजातन्त्रवादी और जन-तन्त्र के अनुकूल है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अधिकारों की घोषणा बहुत बड़े महत्त्व का राजनीतिक प्रलेख है। लॉर्ड एक्टन ने इसके सम्बन्ध में इन शब्दों में लिखा है—

"इस (घोषणापत्र) का एक पृष्ठ कई पुस्तकालयों के महत्त्व को नगण्य कर देता है, और नेपोलियन की समस्त सेनाओं से भी अधिक बलशाली है।" आलार ने भी यह माना है कि प्रजातन्त्रवादी विचारों के इतिहास मे इस घटना ने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अध्याय का समारम्भ किया है। अधिकारो के घोषणा-पत्र से उद्धृत ऊपर लिखी धाराएँ सैद्धान्तिक दृष्टि से चाहे जितनी भी दोषपूर्ण हों, पर अप्रत्यक्ष रूप से वे चिरकाल से चली आती हुई ऐसी कुरीतियो का शक्तिशाली विरोध थी जो उस समय के फ्रांस तथा यूरोप के प्रायः प्रत्येक देश मे प्रचलित थीं और जो आज भी विश्व के कुछ भागो मे अपना अस्तित्व बनाये हुए है। घोषणा-पत्र की इन धाराओं का उद्देश्य पुरातन राज्य-व्यवस्था के समयानुसार परिवर्तित न होने वाले दोषो का सार्वकालिक विनाश करना और जनता को मुक्ति का शुभसन्देश देना था। इन धाराओं ने फ्रांस के प्राप्तव्य आदर्श को स्थगित कर दिया और यूरोपीय देशों के राजनीतिक विचारों तथा आचारो पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला। इन्होने जनता को सर्वोच्च बना दिया पर उनको पूर्ववत् अशिक्षित और असभ्य छोड़ देने की भारी भूल की। ये धाराएँ इस बात का पूर्वानुमान न कर सकी कि राजनीतिक महत्त्वाकांक्षी किस प्रकार अपने स्वार्थों के लिए जनता को उत्तेजित कर सकते हैं, और जनता का आवेश, दुराग्रह तथा आक्रोश कैसा भयंकर रूप धारण कर सकते हैं। इन दोषों से बचने के लिए इन धाराओं ने कोई उपाय न सुझाया था और फ्रांस को इन दोषों का काफी कड़ुआ अनुभव था। यदि हम घोषणा-पत्र की सावधानी से परीक्षा करें तो स्पष्ट हो जायेगा कि इसमें उन सिद्धान्तों के विवरण से अधिक और कुछ नहीं जिनका पालन एक सभ्य राज्य को करना चाहिए। राज्य के ये सिद्धान्त सभी देशों और सभी कालों के लिए समान रूप से सत्य हैं। ड्यूपोर ने इनके सम्बन्ध मे कहा था, "ये सार्वदेशिक और सार्वकालिक हैं।" इन धाराओं ने विश्व के कई देशों में सुधार-नियम बनवा दिये और वहाँ की साधारण जनता के दुःखों और कष्टों को कम किया। जिस समय इनकी घोषणा हुई उस समय भी ये किसी नये विचार को अभिव्यक्ति नहीं दे रहे थे। अठारहवी शताब्दी के कई विचारक इस प्रकार के स्वतन्त्र विचारों को अभिव्यक्ति दे चुके थे और उन्होंने राज्य की कार्यनीतियों में सुधारो की आवश्यकता पर बल दिया था।

परन्तु फ्रांस अभी तक राजतन्त्रवादी ही था। १७८९ में कोई भी जनतन्त्री सरकार नहीं चाहता था। यहाँ तक कि ब्रिस्सौ का 'पात्रियोत्' भी जनतन्त्र के पक्ष में न था। फ्रांस की नाट्यशाला में नौ सितम्बर, १७८९ को जनता 'मारी दे ब्राबो' नामक दुःखान्त नाटक की निम्नलिखित पंक्तियों को रंगमंच पर दुबारा सुनने का आग्रह कर रही थी–

ओह! राजा! " सारे फ्रांस की उपास्यमूर्ति,
अनेक फणवाले सर्पो की तरह् सामन्तों की शक्ति का विनाशक,
राजकीय व्यवस्था में वह अपनी प्रिय प्रजा को प्रसन्न रख सका,
बीस अत्याचारी शासकों की सेवा से एक भले राजा की सेवा उत्तम है।"

सभा मे भी कोई जनतन्त्रवादी दल न था। सितम्बर में सभा के अध्यक्ष ने कहा था, "यह् सोचना असम्भव है कि इस संसद में किसी भी व्यक्ति ने राजतन्त्र को जनतन्त्र मे परिवर्तित करने की हास्यास्पद युक्ति को मन मे स्थान दिया होगा।" एक वक्ता ने जनतन्त्रवादियों को उत्तेजित भी किया कि वे अध्यक्ष की इस बात का प्रतिरोध करें पर किसी ने उस पर ध्यान न दिया। इस प्रकार घोषणा-पत्र स्वीकार करने वाले सभी फ्रांसीसी राजतन्त्रवादी ही थे।

संविधान

घोषणा-पत्र स्वीकार कर लेने के बाद सभा के सामने सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य अब फ्रांस के लिए एक सविधान का निर्माण करना था। प्रतिनिधियों ने इस कार्य की महत्ता को समुचित प्रकार से नही समझा। आर्थर यंग ने कुछ उपहासमिश्रित स्वर में कहा है कि सभा के प्रतिनिधि नया संविधान बनाने के कार्य को ऐसे समझते थे 'जैसे कि संविधान एक स्वादिष्ट पकवान हो जो किसी पाकशास्त्रीय नुस्खे से झटपट तैयार किया जा सकता था।' इस सभा के रूप और रचना के सम्बन्ध मे कुछ सामान्य बातें जान लेना बड़ा मनोरंजक होगा। सभा के अधिकांश सदस्य अव्यावहारिक सिद्धान्तवादी थे जिनकी प्रेरणा का स्रोत फ्रांस के महान् विचारको और बुद्धिजीवियो के विचार थे। रूसो के प्रसिद्ध ग्रन्थ "सामाजिक समझौता" ('कौंत्रा सोसियाल') की शिक्षाओं का उन पर अत्यधिक प्रभाव था। वे इस पुस्तक को बाइबिल का समादर देते थे और इसके सिद्धान्तों का राजनीतिक जीवन मे पालन करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। इन सदस्यों में देहातों से आये हुए दीन-धनहीन स्क्वायर (या चौधरी) भी शामिल थे जो कभी सभ्यो की किसी सभा में सम्मिलित नही हुए थे। इनमें ऐसा एक भी नही था जिसने कभी किसी सार्वजनिक पद अथवा सार्वजनिक आन्दोलन के नेतृत्त्व को सँभाला हो। निम्न श्रेणी के पादरियो की संख्या चालीस के लगभग थी और ये सभी जनतन्त्र का समर्थन करते थे। इन सदस्यों में कुछ विधिवक्ता (या वकील) भी थे जो अपने आप को जनभावनाओं के अधिवक्ता समझते थे। इन लोगो के अतिरिक्त सभा में वैद्य, हकीम, व्यापारी और किसान भी सम्मिलित थे जिनके विचारों पर अभिनव राज-नीतिक सिद्धान्तों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा था। राजकीय उच्च अधिकारी विधान

सभा मे नहीं बैठ सकते थे पर मालोने नाम का एक सामान्य राजकर्मचारी इस नियम का अपवाद था। अंग्रेज विचारक बर्क ने राष्ट्रीय संसद के स्वरूप की कड़ी आलोचना की थी। उसकी आलोचना का मुख्य आधार निम्नलिखित तथ्य है–

(१) इस ससद मे न्यायालय की शोभा बढ़ाने वाले उच्च श्रेणी के विधिवक्ता अधिक नही थे वरन् इसमे निम्न श्रेणी के अपरिपक्व, बुद्धिहीन और केवल यन्त्रवत् कार्य करने वाले लोगो की सख्या ही अधिक थी;

(२) इसमे पूँजीपतियों के वर्ग का समुचित प्रतिनिधित्व नही हो सका;

(३) उच्च श्रेणी के और अभिजात कुल के लोगों को इसमें बैठने की अनुमति नहीं दी गयी, तथा

(४) अनुभव को निरक्षर भट्टाचार्यो के उपदेशों की तरह तुच्छ समझा गया।

अन्य विद्वानो ने भी प्राय. बर्क के विचारो से सहमति ही प्रकट की है। अमरीका के मॉरिस महाशय ने उन सदस्यों के सम्बन्ध में जनवरी, १७६० मे लिखा था कि इस सभा में 'वैतण्डिक विधिवक्ताओं' में से कुछ 'विक्षिप्त व्यक्तियों' को भर्ती कर लिया गया था; श्रीमती रोलाॅ इन लोगो को 'अठारह फ्रांक प्रतिदिन के हिसाब से किराये पर लिये गये लकड़ी के लट्ठों का ढेर' कहती थीं। मिरावो ने इनका नाम 'लाल गदहे' रखा था। बर्क की आलोचना मे अत्युक्ति का अंश अधिक है; इसमे कोई सन्देह नही कि सदस्यों में योग्य और देशभक्त भी थे जो देश का भला करने की शुभेच्छा से उत्प्रेरित थे।

सभा अर्द्धमण्डल बनाकर बैठी, मण्डल के केन्द्र में अध्यक्ष का आसन था। सभा के मध्य में राजतन्त्र के समर्थक, उदार विचारो के परिपोषक जिनमें हम अभिजातवर्ग के उदार व्यक्तियों की गणना भी कर सकते है; राजनीतिज्ञ, पादरी और संकुचित विचारों वाले बुर्जुआ वर्ग के प्रतिनिधि बैठते थे। सभा में बैठने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण सदस्यों के नाम इस प्रकार हैं--'लौली तोलैन्दल, ला रोशेफूकॉल, लियाँकुर्त। मूनिये एक प्रख्यात वक्ता तथा शक्तिशाली आलोचक था और गणित का प्राध्यापक होने के कारण बड़े नपे-तुले शब्दों का प्रयोग करता था। बेली एक बड़ा घमण्डी और अभिमानी ज्योतिषी था जिसके मित्र तक उसका उपहास करते थे। वे लोग उसकी तुलना लाफोन्तेन की कथा के एक ऐसे ज्योतिषी पात्र से करते थे जो कुऐं मे गिर पड़ा था। सभा भवन में दायीं ओर उच्चकुल के प्रतिनिधि और प्रतिष्ठा-प्राप्त महाजन बैठे थे जिनमें सबसे प्रसिद्ध अब्बे मॉरी नाम का एक पादरी और परम सौभाग्यशाली कजले महाशय थे। मालोने यद्यपि मध्यवर्ग का प्रतिनिधि था पर उसका आसन भी यहीं था, सभा में उसका प्रभाव बहुत ही कम था और वास्तव में वह कभी सभा के वातावरण के अनुकूल

अपने आप को नहीं बना पाया। बायी ओर बैठे हुए प्रतिनिधियों में सबसे महत्त्वपूर्ण मिराबो था। मिराबो एक महा शक्तिशाली वक्ता था, उसका सिर काफी बड़ा और चेहरे पर चेचक के दाग थे। उसके स्वभाव मे दृढता या सिद्धान्तों मे स्थायित्व न था, वह बडा अवसरवादी राजनीतिज्ञ था। तल्लीराँ, अब्बेसिये और व्राँशे जैसे अन्य भी कई प्रतिनिधि इस ओर बैठे हुए थे, ये सब के सब तत्कालीन शासनतन्त्र को उलट देने के लिए कमर कसे बैठे थे। बायी ओर कोने मे कुछ ऐसे प्रतिनिधि भी बैठे हुए थे जो राज्यक्रान्ति के दिनो मे पर्याप्त प्रसिद्धि अर्जित करने वाले थे। ये लोग उग्रविचारों के समर्थक थे और ड्यूपोर, बार्नाव और लामथ जैसे महानुभाव इनके नेता थे। ये दल ब्रिटिश लोकसभा के राजनीतिक दलो की तरह सुव्यवस्थित नही थे, ये तो वास्तव में राजनीतिक समुदाय मात्र थे। सदस्यो मे से अधिकांश तो किसी भी राजनीतिक दल के अनुयायी न थे और किसी भी नेता का अनुशासन मानने से इनकार करते थे।

सभा ने अपने पथप्रदर्शन के लिए किसी भी प्रकार की कार्यविधि पहले से निश्चित नहीं की थी। सभा में होने वाले विवाद प्रायः निरर्थक और बहुधा पुस्तकीय तथा सैद्धान्तिक होते थे। भाषण बड़े लम्बे, आक्रोश से पूर्ण और अप्रासागिक होते थे। सदस्य दीर्घ तथा आवेशपूर्ण भाषण अपने साथ पहले से लिखकर लाते थे और सभा मे खड़े होकर पढ देते थे। उन्हें इसका भी ज्ञान नही होता था कि उनसे पहले बोलने वाले वक्ता क्या-क्या बोल गये है। उन्हे दर्पपूर्ण वक्तृताओ और आवेश से भरे हुए भाषणों में बड़ा आनन्द मिलता था। सभा ने यदि यह निर्णय लिया कि अमुक सदस्य का वक्तव्य मुद्रित होना चाहिए तो एक दूसरा सदस्य चिल्ला उठता था कि मुद्रित वक्तव्य की प्रतियों पर सुन्दर-सी जिल्द भी अवश्य ही मढी जानी चाहिए। प्रतिनिधियो की सख्या बारह सौ से चौदह सौ के बीच में होने के कारण संसद भवन मे भीषण कोलाहल मचा रहता था। कई सदस्य एक साथ खड़े होकर बोलना चाहते थे और अध्यक्ष के मना करने पर भी बैठना नही चाहते थे। वक्ता की आवाज इस भीषण कोलाहल में ही खो जाती थी और एक प्रतिनिधि तो सचमुच चिल्ला उठा था, "बिना यह जाने हुए कि यह सब कुछ क्या हो रहा है मैं प्रत्येक बात के लिए अपनी देस मम्तित हूँ।" गैलरियाँ दर्शको की भीड़ से ठसाठस भरी रहती थी। कभी-कभी तो संसद भवन मे से जलूस तक ले जाने की अनुमति दे दी जाती थी। यह था सभा का वातावरण जिसने कि फ्रांस के लिए सविधान बनाने का कार्य आरम्भ किया था। आर्थर यंग ने इस सम्बन्ध मे बड़ी रोचक भाषा मे इस प्रकार लिखा था—

"उनके कार्य की सामान्य विधि का जहाँ तक प्रश्न है दो ऐसी बातें है जिनमें वे लोग दोषी ठहराये जा सकते हैं; गैलरियों में बैठे हुए दर्शक वाद-विवाद में ताली बजाकर

और अन्य प्रकार की कोलाहलपूर्ण प्रशंसात्मक अभिव्यक्तियों के द्वारा हस्तक्षेप करने के लिए स्वतन्त्र है, यह व्यवहार बडा अशिष्ट है; यह हानिकारक भी है; ...... दूसरी बात यह है कि प्रतिनिधियों में परस्पर किसी भी प्रकार की सुव्यवस्था का अभाव है; आज ही एकाधिक बार ऐसा हुआ कि सौ सदस्य एक साथ खडे होकर बोलने का प्रयास कर रहे थे और श्री बेली व्यवस्था ठीक रखने में बिलकुल असमर्थ थे। विषम प्रस्तावों के पारित किये जाने से इस तरह के कोलाहल खूब उठते थे, एक ऐसा प्रस्ताव प्रस्तुत करना जो उनकी पद-प्रतिष्ठा, उनके अधिकारों, सार्वजनिक करों तथा ऋण इत्यादि से सम्बन्ध रखता हो; ये सब कुछ एक ही वक्तव्य मे बाँध देना, इंग्लैण्ड की जनता को सुनने में बड़ा असंगत सा लगता है और सच पूछिए तो यह असगत है भी।"

सभा में सबसे ऊँचा मिराबो खड़ा था। उसमें एक कुशल राजनीतिज्ञ की प्रतिभा थी और व्यावहारिक राजनीति का वह पण्डित था। परन्तु उसमें दृढ़ता का अभाव था और धन अर्जित करने के लिए या किसी स्त्री को फँसाने में वह किसी भी उपाय को प्रयोग में ला सकता था। उसने यह स्पष्ट ही देख लिया था कि राजत्व (राजकुल) का विनाश अतिनिकट है और यदि राज्य की कार्यकारिणी शिथिल पड़ गयी तो अव्यवस्था का फैल जाना अनिवार्य है। अतः उसने जनता की शक्ति से बनी हुई एक बलशाली कार्यकारिणी के निर्माण का सुझाव दिया। फ्रांस के लिए वह राजतन्त्र को सर्वोपयुक्त समझता था। वास्तव में वह फ्रांस के लिए एक ऐसा परिमित अधिकारों वाला राजतन्त्र चाहता था जैसा कि इंग्लैण्ड में था। पर उसकी सलाह नहीं मानी गयी और सभा हठपूर्वक अपना पूर्वनिश्चित कार्य बिना विशेष बाधा के करती रही।

अक्तूबर मास के आरम्भ में यह समाचार फैल गया कि राजकीय अधिकारियों के आग्रह पर राजा एक प्रतिरोधी राज्य-क्रान्ति की योजना बना रहा है और पेरिस छोड़कर वह एक प्रादेशिक नगर में निवास करने जा रहा है। पत्रकारों ने जनमामान्य की क्रोधाग्नि खूब प्रज्वलित कर दी और मारा ने अपने पत्र "जन-मित्र" (आमी द पल्प) में राजा के विरुद्ध विद्रोह खडा करने के विषय में चेतावनी दी। वार्साई में एक सम्मिलित भोज हुआ जिसमें यह कहा गया कि (टोपी का) तिरंगा फीता पैरों के नीचे कुचला गया है। जनता अत्यधिक उत्तेजित हो उठी और पाँच अक्तूबर को महिलाओं की एक भीड़ पेरिस में एकत्रित हुई और उसने यह घोषणा कर दी कि वे लोग अनशन कर रही हैं। महिलाओं का एक प्रतिनिधि-मण्डल सभा मे गया और वहाँ उसका अच्छा स्वागत हुआ। संध्या समय राजमहल के पास एक विशाल जनसमुदाय एकत्र हुआ और छह अक्तूबर को उस जनसमुदाय ने राजमहल पर आक्रमण कर दिया। राष्ट्रीय सुरक्षा-सेना के अध्यक्ष ला फायत ने बढ़ती हुई अव्यवस्था को रोकने का कोई प्रयास नहीं किया। उसने राजा

को जनता के समक्ष प्रकट होने का परामर्श दिया और राजा ने उसका परामर्श मान लिया। जनता राजमहल के नीचे से चिल्लायी, "राजा पेरिस में ही रहे"; और राजा को उनकी इच्छा का पालन करना पडा । रानी और अपने बच्चो को लेकर राजा महल से नीचे उतरा। महल के नीचे स्त्रियो और स्त्री वेष मे छिपे हुए पुरुषो का भीषण समूह एकत्रित था। राजा को इसी जनसमूह मे से त्यूलरीज ले जाया गया। जलूस में नगर के अधिकांश दुराचारी और नीच लोग थे। "ऋण और अपराध से नष्ट-भ्रष्ट" हुआ समाज का एक विशिष्ट वर्ग भी इस जनसमूह मे सम्मिलित था। जैसे-जैसे यह समूह आगे बढ़ रहा था लोगो का चीत्कार भी बढ़ता जा रहा था। इन लोगों ने अपने साथ एक रोटी बेचने वाला (बेकर), उसकी पत्नी और उसके बच्चो को भी साथ ले लिया था। राजपरिवार को शिल्पशालाओ मे ठहराया गया। राष्ट्रीय सभा भी पेरिस मे ले आयी गयी और क्रान्तिकारी आन्दोलन मे एक नया उत्साह उमड़ आया। ला फायत ने इन बढ़ते हुए भीपण संघर्पो को रोकने का कोई प्रयास नही किया और वार्साई की नगरपालिका भी इन दुष्ट कृत्यो मे अपनी निष्क्रियता के कारण सहायक हो रही थी।

इन अव्यवस्थाओ के रहते हुए भी सभा अपने सविधान निर्माण के कार्य को आगे वढ़ा रही थी। दो बातो का निर्णय पहले ही किया जा चुका था, (१) ससद मे केवल एक ही सभा होनी चाहिए; और (२) राजा को केवल एक निलम्बमान (सस्पे-सिव) मत का अधिकार होना चाहिए। कार्यकारिणी को विचारणीय रूप से निर्बल बना दिया गया और विधान सभा को सम्पूर्ण प्रभुशक्ति दे दी गयी । "छः सौ व्यक्तियों से बनी हुई एक प्रभुशक्तिसम्पन्न सत्ता का होना, इतना भयकर है कि इस से अधिक भयंकर कल्पना मैं नही कर सकता," मिराबो ने इस सभा के सम्बन्ध में कहा था, पर उसके विरोध पर किसी ने ध्यान न दिया। राष्ट्र के एक सर्वोच्च कर्मचारी से अधिक राजा कुछ भी नही रह गया था, यद्यपि सिद्धान्त रूप से अभी तक वह राजकीय कार्यकारिणी का अध्यक्ष था। वह अभी तक "परमेश्वर के अनुग्रह से फ्रांस और नेवारे का राजा लुई" ही था। अक्तूबर १७८९ के बाद से उसे परमेश्वर और राष्ट्रीय संविधान दोनों के ही अनुग्रह पर राजा होना था। इसका अर्थ स्पष्ट ही यह था कि उसे शासन करने का अधिकार जनता ने दिया था। उसका राजकुल व्यय (सिविल लिस्ट) नियत कर दिया गया और अपनी रक्षा का व्यय-भार उसे स्वयं वहन करना था। उसे मन्त्रियो को नियुक्त करने और उनको पदच्युत करने का भी पूरा अधिकार दिया गया, पर विधान सभा में मन्त्रियों के लिए कोई स्थान न था। विधान सभा में मन्त्रियो के प्रवेश का निषेध इस उद्देश्य को ध्यान मे रखकर किया गया था कि राजा सदस्यों

को पदलिप्सा मे कर्त्तव्य-च्युत न कर सके। विधान सभा के प्रति मन्त्रियों का न तो कोई उत्तरदायित्व था और न ही उस पर उनका कोई प्रभाव था। राजकीय पदाधिकारियो को नियुक्त करने का राजा का अधिकार पर्याप्त परिमित कर दिया गया। सशस्त्र सेना, नौ सेना और कूटनीतिक विभाग के कुछ उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति अभी तक राजा के ही अधीन थी, परन्तु सार्वजनिक अधिकारियों, कार्यकारिणी के पदाधिकारियो, न्यायाधीशो, उच्च पादरियो और साधारण पादरियो का चुनाव जनता स्वय ही करती थी। विधान सभा की सहमति होने पर युद्ध की घोषणा अथवा सन्धि करने का अधिकार राजा को था, पर विधान कार्य मे वह पहला कदम नही ले सकता था। विधान सभा को भग करने का अधिकार भी उसे नही था, क्योकि संविधान के अनुसार दो वर्ष तक विधान-सभा अपना कार्य निर्वाध रूप से चला सकती थी। सभा सब कुछ करने मे निरकुश थी और राष्ट्र मे किसी प्रकार की याचना या प्रार्थना नही की जा सकती थी। इस प्रकार से राजा को केवल 'एक दास और उच्च अधिकारी' की दयनीय स्थिति मे रख दिया गया था। मताधिकार का निर्णय सम्पत्ति के अनुसार होता था। नागरिक दो वर्गो मे विभक्त थे—सक्रिय और निष्क्रिय। पहले वर्ग मे वे लोग आते थे जो अपना तीन दिन का पारिश्रमिक राजकर के रूप मे देते थे और पच्चीस वर्ष की आयु के थे। केवल सक्रिय नागरिक ही मतदान के अधिकारी थे। यह विभाजन 'मानव-अधिकारों के घोषणा पत्र' से मेल नही खाता था और राज्यक्रान्ति के सिद्धान्तो के बिलकुल प्रतिकूल था।

पुराने प्रान्तों को नष्ट कर दिया गया था और फ्रांस का मानचित्र एक रिक्तपट की तरह समझा गया था। सम्पूर्ण देश समान आकार के ८३ विभागों मे बँटा हुआ था। प्रत्येक विभाग जिलों मे बाँटा गया था और जिलों का उपविभाग समान आकार के केण्टनों में कर दिया गया था और केण्टन आगे कम्यूनों मे बाँटे गये थे। मिराबो ने देश को इस प्रकार के रेखागणितीय विभागों में बाँटने का विरोध किया था पर इस बार भी उसकी सलाह नही मानी गयी। प्रत्येक विभाग की एक साधारण परिषद् और एक कार्यकारिणी समिति थी। जिले का भी वैसा ही शासनतन्त्र था। कम्यून अपने आप में एक छोटा-सा गणराज्य बन गया था और कम्यून की अपनी नगरपालिका और महानागरिक होते थे। स्थानीय शासन का पूर्ण रूप से विकेन्द्रीकरण कर दिया गया था और इस शासन का महत्त्वपूर्ण अंश विभागीय परिषदो और नगरपालिकाओं के अधिकार मे था। स्थानीय पदाधिकारियो का चुनाव होता था और यद्यपि सिद्धान्त रूप में उनका कर्त्तव्य राष्ट्रीय विधियों (कानूनों) का ही अनुपालन मात्र करना था, परन्तु वास्तविक व्यवहार में केन्द्रीय शासन का उन पर दिखावे मात्र

का ही नियन्त्रण था।

राज्यक्रान्ति के पूर्व फ्रास की न्याय-व्यवस्था पूर्णत. अनियमित और अव्यवस्थित थी। उस समय अनेक प्रकार के न्यायालयों का प्रचलन था—राज्य के सार्वजनिक न्यायालय, सामन्ती न्यायालय और धार्मिक न्यायालय, और बहुधा इन न्यायालयों मे अधिकार क्षेत्र की समस्या पर मुठभेड़ हो जाती थी। फ्रास की राष्ट्रीय सभा भी न्याय-कार्यो में सक्रिय भाग लेती थी। सभी पुराने न्यायालय तोड़ दिये गये और उनके साथ ही साथ पुराने शासन के बहुत से दोष भी दूर हो गये, जैसे मनमानी कैद, कठोर यातनाएँ और अनुचित प्रकार से कटोर दड। प्रत्येक विभाग का अपना दण्ड न्यायालय (फौजदारी अदालत) था और अब ज्यूरी की अध्यक्षता मे न्याय-कार्य चलाने का नियम बन गया था। प्रत्येक जिले मे एक वित्त न्यायालय (दीवानी अदालत) की स्थापना की गयी और इन सब के अतिरिक्त कुछ ऐसे न्यायालय भी स्थापित किये गये जहाँ कि शान्ति के न्यायाधीश (ज्युज द पे) न्याय करते थे। पेरिस में एक उच्च न्यायालय की स्थापना की गयी जिसका कार्य निम्न न्यायालयो के निर्णयों से सम्बन्धित अपीलो पर पुर्नविचार करना था। न्यायाधीशो को किसी प्रकार का पुरस्कार तथा उपहार लेने से वर्जित कर दिया गया और विधि-निर्माण के कार्य मे किसी भी रूप मे भाग लेना न्यायालयो के लिए निषिद्ध था। ओर्ल्या मे एक उच्च न्यायालय की स्थापना की गयी जिसमे सभा द्वारा भेजे गये राजनीतिक अपराधो पर न्याय किया जाता था। इस न्यायालय के अधिवेशन विधान सभा से दूर होते थे जिससे कि न्याय की सुचारुता पर पेरिसवासियो का कोई अनुचित प्रभाव न पड़ सके। इस नयी व्यवस्था से अनेक लाभ हुए। इससे न्याय की प्राप्ति सब के लिए सुलभ हो गयी और ज्यूरी का नियम हो जाने से मनमाने निर्णयों के अवसर भी अतिन्यून हो गये। परन्तु इस नयी व्यवस्था के दोष भी बड़े गम्भीर थे। न्यायाधीशों का चुनाव होता था और इस प्रकार उनका पद जननेताओ की दया पर अधिक निर्भर था। वे लोग बहुधा अनुचित प्रभाव में आ जाते थे और उनकी यशोलिप्सा यथार्थ न्याय में बाधा बनती थी। कानूनो मे सुधार हुआ। न्याय-कार्य सब के सामने होता था और कानून का विलम्ब अब समाप्त हो चुका था। एक राजनियम संग्रह (सिविल कोड) और एक दण्डविधि संग्रह (कोड ऑव क्रिमीनल प्रोसीजर) का निर्माण हुआ। राजमुद्राकित गुप्तादेशो की प्रथा का उन्मूलन कर दिया गया। प्राण-दण्ड कुछ विशिष्ट अपराधो के लिए अभी भी रखा गया, जैसे राजद्रोह, षड्यन्त्र, जाली मुद्रा चलाना, गृहदाहापराध, सभा के सदस्यो द्वारा मत-विक्रय इत्यादि। परन्तु सभा ने एक बहुत बडी भूल की। इसने क्षमापण-अधिकार के नियम को नष्ट कर दिया जोकि फ्रांस के विधान में बहुत प्राचीन समय से चला आ रहा था और न्याय

के परिपालन कार्य में जिसका बड़ा मांगलिक प्रभाव था।

सेना पर राजा का अत्यल्प नियन्त्रण रह गया। राज्य की सुरक्षा के लिए वह सैनिक दलों का प्रयोग कर सकता था पर अन्तर्देशीय व्यवस्था के लिए नही। सेना के ऊपर उसका प्रभुत्व बहुत परिमित कर दिया गया। इसमे भी चुनावो का प्रचलन हुआ और उच्च पदाधिकारियो का चुनाव उनके आदमियों द्वारा होता था। अधिक वेतन पाने वाले पदाधिकारियो की संख्या घटा दी गयी और साधारण सैनिक की स्थिति मे सुधार किया गया। राष्ट्रीय सुरक्षा सेना पर राजा का कोई नियन्त्रण नही रहा और यह स्पष्ट शब्दों मे नियमबद्ध कर दिया गया कि यह सेना राजकीय सेवा करने वाला सैनिक दल नहीं समझा जायगा। राष्ट्रीय सुरक्षा सेना मे बिना नाम लिखाये कोई भी व्यक्ति मतदान का अधिकारी नही बन सकता था। पदाधिकारी केवल एक वर्ष के लिए चुने जाते थे और एक निश्चित समय के बाद वे चुनाव में भाग लेने के अयोग्य माने जाते थे। इस प्रकार फ्रांस की सशस्त्र सेना एक निष्क्रिय और अनुशासनहीन भीड़ बन गयी थी जो अपने पदाधिकारियों का चुनाव स्वय करती थी। सार्वजनिक शासन के प्रति इनका कोई उत्तरदायित्व नही था और जैसा कि एक आधुनिक लेखक ने इस सम्बन्ध में ठीक ही कहा है, यहाँ अराजकता को पक्तिबद्ध किया जाता था, शस्त्रों से सुसज्जित किया जाता था, विश्वव्यापी और असाध्य रोग का रूप दिया जा रहा था।

एक फ्रासीसी इतिहासज्ञ ने लिखा है, "इतिहास मे अद्वितीय सुधार का यह महान् कार्य वास्तव में एक चिरस्मरणीय घटना थी, परन्तु इसका निर्माण बहुत घटिया और क्षणस्थायी रूप से हुआ था।" केन्द्रीय शासन बलहीन था; पहले से ही निष्क्रिय कर दी गयी कार्यकारिणी के आदेशों का उल्लंघन बिना किसी प्रकार के दण्ड की आशंका के किया जा सकता था। उदार और सच्चरित्र लोगों को चुनावों से घृणा हो गयी थी और इन भले लोगों ने पेशेवर राजनीतिज्ञों के लिए स्थान रिक्त कर दिया था। चुनावों में धन का व्यय किया जाता था और संविधान बनाने का भार ऐसे लोगों को सौंपा गया था जो न तो चारित्रिक गुण ही रखते थे और न जिनमें प्रतिभा का ही लेश था। विधान-सभा और कार्यकारिणी के पारस्परिक सम्बन्धों का निर्णयात्मक विभाजन नही किया गया और मॉन्तेस्क्यू के सत्ता-विभाजन के सिद्धान्त का अक्षरशः पालन किया जाता था। मिराबो ने सत्ता-विभाजन के इस सिद्धान्त का प्रतिरोध किया पर उसका स्वर अरण्य-रोदन-मात्र रह गया। लोक सभा की भूलों को सुधारने वाली कोई उच्च सभा तो थी नहीं और लोकसभा की दशा इस समय राजनीति के प्रलयकर समुद्र में एक असहाय नौका की थी। संविधान के निर्माता अत्यधिक सिद्धान्तवादी थे; वे लोग 'सामाजिक समझौता' ग्रन्थ के अन्धानुयायी और शासनतन्त्र के व्यावहारिक अनुभव से पूर्णतः

अनभिज्ञ थे। राजतन्त्र और राष्ट्रीय सभा के पारस्परिक सम्बन्धो मे समस्वरता लाने का कोई भी साधन नही था और राष्ट्रीय सभा इस भ्रान्तिपूर्ण दुराग्रह से ग्रस्त थी कि स्वतन्त्रता और सबल कार्यकारिणी परस्पर विरोधी चीजे है। आने वाले अनुभव उनकी आँखें खोलने वाले थे कि कितना त्रुटिपूर्ण संविधान उन लोगो ने बनाया था। राज्यपाल (गवर्नर) मॉरिस ने १७६८ मे लिखा था, "सविधान इस प्रकार का है कि सर्वशक्तिमान परमेश्वर भी इसको तब तक चालू नही कर सकता जब तक कि वह मनुष्यो की एक नयी जाति की सृष्टि न कर ले।" मिराबो का सत्परामर्श अनेक अवसरों पर अस्वीकार किया जा चुका था और वास्तव मे वही एक व्यक्ति व्यावहारिक राजनीतिज्ञ की प्रतिभा रखता था। उसने घोषणा की थी कि राज्य की यह दुर्व्यवस्था और अधिक अच्छे ढग से योजनाबद्ध नही की जा सकती थी।

कुछ अन्य सुधार तथा विधानसभा का भंग होना

सभा ने अन्य सुधार भी किये जिनका संक्षिप्त विवरण यहाँ देना आवश्यक है। सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य आर्थिक समस्याओं का सुलझाना है। सितम्बर १७८६ मे स्पष्ट रूप से फ्रास राज्य के दीवाले की बात जनता तक पहुँची। नेकर के सुझाये आश्वासनो और अर्थ प्राप्त करने के उपायो का कोई लाभप्रद परिणाम होता दिखायी नही दिया। जब एक प्रतिनिधि चिल्लाया, "महाषड्यन्त्रकारी (कैटीलाइन) (Catiline) शत्रु द्वार पर खड़ा है," तो मिराबो ने ताने के स्वर में कहा था, "महाषड्यन्त्रकारी शत्रु तुम्हारे द्वार पर नही है, न वह कभी वहाँ आयेगा। परन्तु वहाँ पर दिवालियापन है, भयंकर दिवालियापन; यह दिवालियापन तुम्हे, तुम्हारी सम्पत्ति, तुम्हारे सम्मान को आत्मसात् करने की चेतावनी दे रहा है—और तुम्ही इसकी योजना बना रहे हो।" नेकर की सुझाई हुई 'देशभक्तिकर' की योजना पूर्णतः विफल सिद्ध हुई। देशसेवा के लिए दान देने का विचार भी बिलकुल व्यर्थ सिद्ध हुआ, और यद्यपि अनेक महिलाओ ने अपने आभूषण सभा को भेट किये तथा समाज के प्रत्येक वर्ग ने बलिदान और सम्पत्ति दान किया, यहाँ तक कि एक अध्यापक ने निःशुल्क पढ़ाने का दान किया तथापि फ्रास घोर आर्थिक कठिनाइयो मे फँसा रहा। फ्रांस के ऋण को चुकता करने के लिए और शासन-कार्य को चलाने के लिए एक बहुत बड़ी धनराशि की आवश्यकता थी। सभा का ध्यान चर्च की तरफ गया और एक ही लिखित आदेश मे उसने चर्च को दिया जाने वाला सर्वसाधारण की आय का दशमांश कर रोक दिया और चर्च की सम्पूर्ण सम्पत्ति को राष्ट्रीय सम्पत्ति घोषित कर दिया। औतुन के बिशप ताल्ली रॉ ने ससद मे चर्च की भूसम्पत्ति को जब्त करने का विधेयक प्रस्तावित

किया और उसके समर्थन मे यह तर्क प्रस्तुत किया कि भूसम्पत्ति की हानि चर्च को उसका पुराकालीन सम्मान पुनः प्राप्त कराने में सहायक होगी। मिराबो ने उसका समर्थन किया और उसने यह दिखलाने का प्रयास किया कि पादरी लोग इस भूमि के स्वामी नही बना दिये गये थे जो उनके अधिकार मे थी वरन् वे उसके प्रबन्धकर्त्ता मात्र थे। काफ़ी देर तक इस विधेयक पर विवाद होता रहा और अन्त मे यह सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार चर्च की सारी सम्पत्ति राज्य की सम्पत्ति हो गयी। इस सम्पत्ति के मूल्य के बराबर राज्य ने कागज़ी मुद्राएँ चला दी जिन्हे 'एसाइनेट्स' (अधिकार-पत्र) कहा जाता था और अप्रैल १७९० मे ४०,००,००,००० लीव्र के मूल्य की भूसम्पत्ति बेच दी गयी। एसाइनेट्स वास्तव मे भूसम्पत्ति के आधार पर लिये गये बन्धनामे थे। राज्य की आय उसके व्यय को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं थी, अतः कागज़ी मुद्राएँ अधिकाधिक मात्रा में चलायी गयी। इस प्रकार अपरिमित कागजी मुद्राओं का परिचालन हुआ और उन मुद्राओं का अवमोल (या मूल्यपात) भी, और इस प्रकार एसाइनेट्स का मूल्य गिर गया।

इस प्रकार फ्रास की अर्थ-समस्या सुलझ न सकी। राज्य का घाटा बढ़ गया और सभा के लिए आय-व्यय को सन्तुलित करना कठिन हो गया। आर्थिक कठिनाइयों का एक भीषण जाल-सा बन गया था, और मन्त्रियो मे ऐसा प्रतिभाशाली कोई भी नही था जो देश को इस आर्थिक जाल से बाहर निकालता। यह आशा की गयी थी कि चर्च की भूमि के विक्रय से एक ऐसा साधारण जमींदार वर्ग बन जायगा जो क्रान्तिकारी सिद्धान्तों का पोषक होगा, पर यह आशा फलीभूत होती दिखायी न दी। चर्च की भूमि का अधिकांश धनी किसानों, बुर्जुआ वर्ग के प्रतिनिधियों और अन्य अभिजात कुल के लोगों ने खरीदा था। पादरी लोग अत्यधिक असन्तुष्ट थे और उनमें से अधिकांश तो क्रान्ति का घोर विरोध करने लगे थे। कॉन्दॉर्से ने जोकि कैथोलिक मत का परिपोषक नहीं था, बाद में यह घोषित कर दिया था कि चर्च की भूमि के हरण का कार्य 'न तो पक्षपातरहित होकर किया गया न दूरदर्शिता से', और क्रान्ति ने पादरियों के हितों की बलि देकर अपने ही पक्ष में हानि पहुँचायी है।

सभा ने कुछ ऐसे कानून बनाये जो चर्च को प्रभावित करते थे। सन्यासियों के मठों को बन्द कर दिया गया और संन्यासी तथा संन्यासिनियों को सासारिक जीवन अपनाने की अनुमति दे दी गयी (फरवरी १३, १७९०)। जो इस प्रकार का जीवन नहीं अपनाना चाहते थे उनको विशिष्टघरो (या मठों) मे रहने की अनुमति मिल गयी। मठों के दबाये जाने का कोई कड़ा विरोध नहीं हुआ। चर्च से न केवल उसकी सम्पत्ति छीन ली गयी, वरन् उसकी स्थिति राज्य के एक सामान्य विभाग की बन गयी। इसके

बाद सभा एक ऐसे विवादास्पद विषय की ओर बढी जिसने चर्च मे फूट डाल दी और जनता मे रोष भर दिया. यह विषय था पादरियों का सार्वजनिक सविधान (सिविल कांस्टीट्यूशन)। इस सम्बन्ध मे पोप की सम्मति नही ली गयी और सभा ने सर्वोच्च पादरी (पोप) के साथ समझौता करने के प्रत्येक सुझाव को अस्वीकार कर दिया। बहुसख्यक पादरी-प्रदेशो (डायोसीजेज्) को नष्ट कर दिया गया और उनकी सख्या अब प्राय. विभागो की सख्या के बराबर कर दी गयी। प्रत्येक पादरी-प्रदेश मे पादरियों की सख्या कम कर दी गयी और उसकी प्रादेशिक सीमाएँ भी निर्धारित कर दी गयी। अब से विभाग मे बिशप और जिले मे क्योरे का चुनाव वहाँ की जनता करने लगी। चुनाव चर्च मे ही रविवार के दिनो मे होता था। इन चुनावो मे प्रोटेस्टेण्ट, कैथोलिक, यहूदी तथा अन्य लोग भी भाग लेते थे—धर्मपरायण पादरी इस चुनाव-व्यवस्था से बहुत चिढते थे। चुनावों मे पोप का कोई विशेषाधिकार (वीटो) नही था। सोलहवी शताब्दी के (फ्रांसिस प्रथम तथा पोप के बीच हुए) सौहार्द-बन्धन के उन्मूलन पर विचार-विमर्श हुआ और पोप की श्रेष्ठता अमान्य घोषित की गयी। एक प्रतिनिधि चिल्लाया, "यही सबसे उपयुक्त अवसर है कि फ्रास का चर्च भृत्यभाव से पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर ले।" पहले बिशपो को अपनी उन्नति पर पोप को जो कर-विशेष देना पडता था, उसका अब उन्मूलन कर दिया गया। जो बिशप चुन लिया जाता था उसे केवल पोप को अपने चुनाव के सम्बन्ध मे सूचित कर देना होता था और अपने धर्मपालन के सम्बन्ध मे घोषणा करनी होती थी। सम्पूर्ण पादरी समाज को सभा द्वारा पारित तथा राजा द्वारा स्वीकृत सविधान के प्रति प्रभुभक्त रहने की शपथ लेनी पडती थी। जो इस प्रकार की शपथ ले लेते थे उनको वैधानिक पादरी कहा जाता था और जो अपने ही सिद्धान्तो से चिपके रहते थे उन्हें 'निर्वैधानिक' घोपित कर दिया गया था।

बिशप पूर्णत. स्वतन्त्र नही था, उसकी स्वेच्छाचारिता पर एक ऐसी परिषद् का नियन्त्रण था जिसकी नियुक्ति वह स्वयं ही करता था। पादरियों को राज्य से नियमित वेतन मिलता था, इस वेतन का परिमाण सभा निश्चित करती थी। पादरियों को अपने व्यवसाय के अनुकूल ही जीवन-यापन करना पडता था। सामान्य पादरी की स्थिति मे सुधार हुआ। पादरियों का सार्वजनिक सविधान १२ जुलाई, १७९० को पारित हो गया और राजा ने अत्यन्त तीव्र मानसिक वेदना के साथ उस पर अपनी सम्मति दी। उस जैसे कैथोलिक के लिए इस तरह की लूट पर सम्मति देना बहुत ही दु खदायी था और उसकी अन्तरात्मा पर यह एक बड़ा बोझ था। चर्च की राजनीतिक प्रभुता और महत्ता का अपहरण कर लिया गया और पादरियों से उनके विशेषाधिकार और परम्परानुगत अधिकार छीन लिये गये।

सार्वजनिक संविधान एक बड़ी अवांछनीय और आपत्तिजनक व्यवस्था थी। इसने चर्च मे फूट डाल दी। ताल्लीराँ तथा कुछ अन्य को छोड़कर सभी बिशपो ने शपथ लेने से इन्कार कर दिया। उनको पदच्युत किया गया और उनके उत्तराधिकारियो का अभिषेक ताल्लीराँ ने किया। ताल्लीराँ का न तो कोई सिद्धान्त था और न ही उसकी अन्तरात्मा में कोई बल था। वही नूतन चर्च का पिता (संरक्षक) बनने के लिए आगे बढ़ा। पोप ने इसको भेद-मूलक बतलाकर इसकी निन्दा की। सोलहवें लूई ने, जोकि मरण-पर्यन्त एक भला कैथोलिक बना रहा, सोचा कि उसने इस संविधान पर अपनी सम्मति देकर महापाप किया है और उसने इस सम्बन्ध में बड़ा खेद प्रकट किया। इस प्रकार तीखापन बढ़ा और वह उन मित्रो से मुक्ति पाने की कामना करने लगा जिन्होंने उस की राजकीय प्रतिष्ठा को नष्ट कर दिया था और उसकी कैथोलिक अन्तरात्मा को कलंकित किया था। क्रान्ति-कार्य मे भी इससे बडा धक्का लगा और लुई मादलाँ का तो विचार है कि—

"अब पहली बार, क्रान्ति पर ऊपर से (अर्थात् राजकीय वर्ग से) आपत्ति आयी; और साथ ही साथ नीचे की साधारण जनता की अत्यन्त दृढ़ भावनाओ से—अर्थात् इसकी कैथोलिक भावनाओ से—भी इसकी मुठभेड़ हो गयी।"[1]

मिराबो के राजतन्त्र को बचाने के सभी प्रयास विफल हो गये; एक उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल बनाने की उसकी योजना भी पूरी होती दिखलायी न दी। तब उसने राजा और रानी को पेरिस छोड़ देने का परामर्श दिया और समस्त फ्रांस को राजा-रानी के विरुद्ध एक होने की सलाह दी। यह एकता केवल एक महान् नेता के द्वारा ही सम्भव थी और मिराबो पर कोर्ट का विश्वास नहीं था। इतना सब होने पर भी उसका प्रभाव बढ़ता ही गया और वह जैकोबिन क्लब का सभापति चुन लिया गया, बाद में वह सभा का भी अध्यक्ष निर्वाचित हुआ। २ अप्रैल, १७९१ में उसकी मृत्यु ने न केवल राजनीति के रंगमच से एक शक्तिशाली नेता को हटा लिया प्रत्युत् उसने एक ऐसे अद्वितीय राज-नीति विशारद को भी छीन लिया जो क्रान्ति के पास उस समय था। मरते समय उसने कहा था, "मैं अपने हृदय में राजतन्त्र का मरणसंगीत ले जा रहा हूँ; वे लोग तो इसके शव पर झगडा करेंगे।" राजतन्त्र के विनाश का दिन आ गया था। फ्रांस में अब कोई नहीं था जो इसकी रक्षा करने में समर्थ होता।

राजा को अपनी दीन-अवस्था देखकर अत्यन्त दुःख हुआ। वह स्वतन्त्रता की कामना करता था और फ्रास को छोड़ देना चाहता था। १८ अप्रैल, १७९१ को उसने

१. फ्रेंच रिवोल्यूशन, पृ० १७५।

निकल भागने का एक प्रयास किया पर वह विफल हुआ। सभा सावधान हो गयी और राजा को एक प्रकार से उसी के महल मे बन्दी बना दिया। इस असह्य दशा को देखकर राजा ने फिर एक बार अपने परिवार सहित निकल भागने का प्रयास किया। निकल भागने की पूरी व्यवस्था करने का भार राजा ने काउन्त दे फर्सन को सौपा, जो रानी का एक मित्र था। २० जून की रात को राजा ने रानी तथा बच्चों समेत राजप्रासाद छोड दिया, परन्तु वे गिरफ्तार कर लिये गये और बड़े तिरस्कार तथा अनादरपूर्ण दृश्यो मे से उनको पुनः राजप्रासाद मे लाया गया। राजा के इस निकल भागने के प्रयास ने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न जनता के सामने उपस्थित कर दिया, वह था कि फ्रांस मे किस प्रकार का शासनतन्त्र स्थापित किया जाय? कोई भी वक्ता खुले रूप में प्रजातन्त्रवाद का समर्थन नही करता था और अन्ततोगत्वा यद्यपि उसका स्पष्टतः कड़ा विरोध नही हुआ था, उसे निर्दोष ठहराया गया और उसके परामर्शदाताओ की घोर निन्दा की गयी।

इसी बीच पेरिस उत्तेजित हो उठा और लुई की शिरोमूर्त्तियाँ तोड दी गयी। ला फायत् की लोग निन्दा करने लगे क्योकि उसने राजा को निकल भागने की अनुमति दी थी। जैकोबिन क्लब मे इस सम्बन्ध मे मतैक्य नहीं था, पर कार्डेलियर्स क्लब ने राजा के इस कार्य की निन्दा की और उस पर यह अभियोग लगाया कि वह स्वदेश से भाग कर अपनी प्रजा के विरुद्ध विदेशी सहायता लेना चाहता था। शाँ द मार पर एक विशाल जनसमुदाय प्रार्थनापत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए एकत्र हुआ, परन्तु १७ जुलाई को राष्ट्रीय सुरक्षा सेना ने इस एकत्र समुदाय को छितरा दिया। कुछ लोगों को मृत्यु के घाट उतारा गया और ऐसे लोगो के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की गयी जो राजा को सिहासन-च्युत करने के पक्ष मे थे। ला फायत् की आशाओ को भी घोर निराशा में परिणत होना था। उसने आशा बाँध रखी थी कि बुर्जुआवर्ग अपने प्राणो और सम्पत्ति की रक्षा के लिए उसकी सहायता की याचना करेगा परन्तु यह उसका भ्रम था। मिने लिखता है कि शाँ द मार्स का प्रयास लोकप्रिय आन्दोलनो पर एक प्रतिबन्ध था जिसकी परिणति १० अगस्त में हुई।[1]

फ्रांस के बाहर राजा के भागने के प्रयास का यह प्रभाव हुआ कि जनता और विदेशी राजशक्तियाँ यह सोचने लगी कि लुई सभा का एक बन्दी है। ऑस्ट्रिया का सम्राट् अपने आप को राजवंश के हितों और निरंकुश अधिकारो का सबसे बड़ा समर्थक घोषित करता था।

१. फ्रेंच रिवोल्यूशन, पृ० १०७।

राष्ट्रीय सभा का कार्य अब पूरा हो चुका था। २१ सितम्बर को राजा ने सविधान पर अपनी स्वीकृति दे दी। उसने उस अवसर पर कहा था—"मै सविधान को स्वीकार करता हूँ। मैं स्वदेश मे इसके पालन करने का वचन देता हूँ, विदेश के सभी आक्रमणों से बचाने का वादा करता हूँ, और मेरे अधीन जितने प्रदेश है उनमे उन सभी उपायो से इसको कार्यान्वित कराने का भी वचन देता हूँ जो मेरे अधिकार मे है।" ३० सितम्बर, १७६१ को सभा भग कर दी गयी। इसके भग होने से पहले ही रोबेस्पियर ने अपना आत्म-निषेधक अध्यादेश भी उपस्थित कर दिया जिसमे अभी तक के सदस्य चुनाव के लिए अयोग्य घोषित कर दिये गये। इस प्रकार एक भ्रान्त वैधानिक आदेश के द्वारा परम मूल्यवान् अनुभव उपेक्षित कर दिया गया।

बहुत से लेखकों ने सभा के कार्यों की कटु आलोचना की है। इस आलोचना मे कम औचित्य नही है। सविधान के दोषो का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है, इसको बनाने वाले मध्यवर्ग के लोग थे और इस पर इस बात की छाप लगी हुई थी कि सर्व-साधारण जनता की समस्त शक्तियो का मूलस्रोत है। जिन लोगो ने इसका प्रारूप तैयार किया था, वे इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को समझ न सके कि सर्वसाधारण जनता नागरिक शिक्षा के अभाव मे अपनी शक्तियों का उपयोग करने मे पूर्णत: असमर्थ है। इन सविधान-निर्माताओं मे व्यावहारिक अनुभव का अभाव था और वे सिद्धान्तो के अन्ध-पोषक थे। सिद्धान्तों को वे वास्तविक तथ्यों के चौखटे मे जमाने का असफल प्रयास कर रहे थे। सभा के वाद-विवादों मे तर्कसंगत विचार-विमर्श से अधिक एक स्कूल के विद्यार्थी की अपरिपक्व वाक्यचातुरी ही थी और शासन की कुछ समस्याओं का विश्लेषण कभी-कभी तो बड़े बचकाने स्तर पर उतर आता था। अनुभव और बीते हुए इतिहास के प्रति घृणा का भाव उनका सबसे गम्भीर दोष था जिससे सदस्यों ने बड़ी भयकर भूलें कर दी। समूचे राष्ट्र को चुनाव की सनक ने आ घेरा, इसका परिणाम यह हुआ कि जब जनतान्त्रिक जोश का पहला उबाल शान्त हुआ तो किसानो ने मतदान-स्थान तक जाने से भी इन्कार कर दिया। मॉन्तेस्क्यू की वह अर्थपूर्ण शिक्षा कि वैधानिक परिवर्तन सदैव जनता के स्वभाव को ध्यान मे रखते हुए करने चाहिए, भुला दी गयी। सदस्य लोग यह सोचते थे कि निरंकुश शासन और कैथोलिक कट्टरता के अधीन शताब्दियो से बनी जनता की आदतें और मनोवृत्तियाँ कुछ ही दिनो में बदली जा सकती है। इतना सब होने पर भी सभा ने कुछ बहुत उपयोगी कार्य भी किये जिसके लिये हमें उसकी सराहना करनी ही चाहिए। इसने कुछ ही दिनों मे वे महत्त्वपूर्ण सुधार कर दिखाये जिन्हें पूरा करने में दूसरी संसदों को शताब्दियाँ लग जाती। इसने 'प्राचीन शासन' के बीहड़ जंगल को निर्दयता के साथ साफ कर डाला, जिसका समुचित समर्थन किये बिना

हम नही रह सकते। इसने स्वाधीनता और स्वायत्तशासन के राजमार्ग पर फ्रांस के पॉव जमा दिये। युगो से चली आती हुई कुरीतियाँ थोड़े ही समय मे दूर कर दी गयी और राजनीति-विज्ञान की बहुमान्य विधियो के अनुसार शासन का परिचालन करने के प्रयास किये जाने लगे, यद्यपि निस्सन्देह ये प्रयास बडे अपरिपक्व और प्राथमिक अवस्था के ही थे। विधान की दृष्टि मे सब मनुष्यो के समान होने की घोषणा की गयी और विशेषाधिकार की निन्दा की जाने लगी। ज्यूरी की अध्यक्षता मे न्याय-कार्य होने लगा; कानूनो को सरल और सर्वबोध बनाया गया, और परस्पर-विरोधी वैधानिक व्यवस्थाओ से उत्पन्न होने वाली भ्रान्ति का अन्त कर दिया गया। यह सब कुछ करने मे बड़ी गम्भीर गलतियाँ हुई पर पुर्ननिर्माण की किसी भी महान् योजना को कार्यान्वित करने मे ऐसी गलतियो का होना अनिवार्य है। चर्च चिरकाल से अपनी शक्तियों का दुरुपयोग कर रहा था और आधुनिक विचारो के अनुकूल इसके कार्यो का नियमन ईश्वरीय वरदान था जो क्रान्ति ने फ्रास को भेंट किया। धार्मिक सहिष्णुता पर आग्रह और पादरियो के विशेपाधिकारो का अन्त उस जनता के लिए बहुत बडे वरदान थे जो पुरोहित वर्ग के कपटपूर्ण व्यवहार से तंग आ गयी थी। सभा द्वारा प्रतिष्ठापित संस्थाएँ आज तक जीवित है और इन्होने फ्रास के ही नहीं प्रत्युत् समस्त यूरोप के जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया है। वे उदारमना मानव जिन्होने यह सब किया अत्यधिक देशभक्तिपूर्ण भावनाओं से उत्प्रेरित थे, और वह व्यक्ति निश्चय ही हृदयहीन होगा जो उनके इन प्रयासो की सराहना नही करता, जिन प्रयासो को उन्होंने मानवता को विचार और क्रिया के उच्चतर स्तर पर लाने के लिए किया था। वे लोग जनकल्याण की भावना से प्रेरित थे और बहुत अशो मे वे इसमे सफल भी हुए। यह कार्य निस्सन्देह बड़ा अद्भुत और कठिन था, परन्तु उनका नि.स्वार्थ उद्योग और देशभक्ति उनकी आंशिक विफलता का बड़ा आकर्षक प्रसग है।

ससद के अभिनव सिद्धान्तो और ढगो ने भूत से पूर्णत: सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया था। युगों के अनुभव के स्थान पर सिद्धान्तो को स्थापित करने के प्रयास ने बड़े हानिकारक प्रसगो को जन्म दिया। सभा के कार्य पर गीजो की टिप्पणी बड़ी रोचक है—

"कार्यकर्ताओ का कार्य उनको उनके उद्देश्यो से भी परे ले गया है। अधमतम और सर्वाधिक नीतिज्ञ लोग वापस लौटने शुरू हो गये है, पर उन सब के लिए, तथा उनमे से महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्वो के लिए भी यह कार्य बहुत विलम्ब से हुआ। उन्होंने सभी प्रतिबन्ध तोड दिये है और राज्यक्रान्ति अब और अधिक दिनो तक उनके निर्बल हाथों मे नही रह सकती है। 'गहराई गहराई मे ले जाती है' ऐसा पवित्र ग्रन्थ कहते है ; और जब सभा ने उस पतवार का सहारा छोड दिया जिसको उसने झझावात के

आरम्भ में बलपूर्वक पकड़ा था तो उच्छृंखल समुद्र अपने साथ ही जहाज को बहा ले गया।'[1]

मिराबो के कार्य की समीक्षा

ऑनरे गैब्रियल रिक्तेती, काँत द मिराबो दिग्ने और मार्सेई के एक अभिजात कुल में उत्पन्न हुआ था। उसका पिता मार्क्विस द'मिराबो एक अर्थशास्त्री था जो क्वेस्ने के मत का अनुयायी था, जो कृषि को सम्पत्ति का मुख्य स्रोत मानता था। वह एक विचारक-सम्प्रदाय का नेता था। १७५७ मे उसने अपनी पुस्तक "ला'मी द'ज़ोम उ त्रेत् दे ला पापूलास्यों" (जनसंख्या सम्बन्धी विषयों पर विचार करने वाला मनुष्यो का मित्र) लिखी जिसमें उसने समाज के संघटन और इस सुधार का वियाकेचनकिवे था। यह पुस्तक मानवीय सहानुभूति से परिपूर्ण और सामाजिक उन्नति के लिए एक उत्कट कामना की अभिव्यक्ति थी। मार्क्विस 'ला'मीदे' ज़ोम' (मानव-हितैषी) उपनाम से लिखता था और अपने आपको समस्त मानव-जाति का मित्र समझता था और समाज में प्रत्येक वर्ग के मनुष्यो के भोजन और वस्त्र की आवश्यकता पर ज़ोर देता था।

कनिष्ठ मिराबो का जन्म ६ मार्च, १७४६ को हुआ था और वह बाल्यकाल से ही अपनी स्वच्छन्द-प्रकृति का परिचय देने लगा था। तीन वर्ष की अवस्था में उस पर चेचक का प्रकोप हुआ और इसने निदर्यतापूर्वक उसके मुख को विकृत कर दिया। इस मुख-विकृति की चर्चा वह अपने परवर्ती जीवन में बड़े दुःख के साथ करता था। जब वह अभी छोटा-सा ही बालक था उसने अपनी नर्स को पीट दिया था और बड़े स्वच्छन्द एवं उच्छृंखल स्वभाव का हो गया था। उसका पिता उसे 'भयंकर शिशु' (लाफां तारीब्लल) कहकर पुकारता था और उसके लिए जिस शिक्षा का प्रबन्ध किया गया वह उसके नैतिक स्वभाव को सुधारने में नितान्त असफल रही। आयु के साथ-साथ उसमें दुष्ट रुचियाँ बढ़ती गयीं। अपनी पत्नी से उसने झगड़ा किया, उसको तलाक दे दिया और अपने मित्र की पत्नी को भ्रष्ट किया। उसपर भारी ऋण हो गया। उसकी उच्छृंखलता ने उसके पिता को इतना अप्रसन्न कर दिया कि उसके पिता ने उसको कारागार में बन्दी कराने के लिए बहुधा राजमुद्रित आज्ञापत्रों की प्रार्थना की थी। परन्तु कोई भी उपाय मिराबो के स्वभाव में परिवर्तन न कर सका। उसके प्रेम-व्यापारो ने तथा स्त्रियों के साथ उसके व्यवहारों ने उसे काफी कुप्रसिद्ध बना दिया था और सभ्य तथा संस्कृत समाज में तो उसका नाम एक कहावत-सा हो गया था। कोई व्यक्ति

१. हिस्ट्री ऑव् फ्रांस, पृ० ७२।

उसपर विश्वास नही करता था और कोई भी उसके व्यवहार के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ भी नही कह सकता था। वह कुछ काल के लिए प्रशा और इंग्लैण्ड में रहा और प्रशा राजतन्त्र पर उसने एक पुस्तक लिखी जिसमे बड़ी अशिष्ट आलोचनाएँ थी, जैसे 'युद्ध प्रशा का राष्ट्रीय उद्योग है'। उसने बड़ी अशिष्ट एवं रुक्ष भाषा का प्रयोग किया और अनेक छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ लिखी जिनमे उसने समकालीन संस्थाओं और व्यक्तित्वो पर ऐसी अनुचित भाषा मे आक्रमण किया कि उसे गाली देना ही कहा जा सकता है। वैधानिक नियमो को भंग करने के परिणामो को भुगतने से बचने के लिए वह देश की सीमाओ को पारकर निकल भागा पर फिर लौट आया। १७८६ में वह 'स्टेट्सजेनराल् (राष्ट्रीय संसद) का सदस्य निर्वाचित हो गया। शीघ्र ही उसने सभा में अधिकारपूर्ण प्रभाव स्थापित कर लिया और मृत्युपर्यन्त उसका वह प्रभुत्व बना रहा। वास्तव मे मिराबो ही सभा मे एक ऐसा व्यक्ति था जिसमें राजनीतिक सूझ-बूझ थी। विधाता ने जैसे उसे नेतृत्व करने के लिए ही बनाया था, उसका प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व, बुद्धि और उत्साह से परिपूरित था। उसका बड़ा-सा सिर, घुघराले और पाउडर से सिक्त केश, मुख चेचक से विकृत और अग्निशिखा की तरह चमकती हुई आँखें, ये सब मिराबो के व्यक्तित्व को नेता का रूप देते थे। वह ऐसा कहता हुआ भी सुना गया था कि 'मेरा भद्दापन ही मेरी शक्ति है।' उसकी वाक्यपटुता ने शीघ्र ही उसे प्रसिद्ध बना दिया, यद्यपि उसके साथी उसको पसन्द नही करते थे और राजसभा में उस पर अविश्वास किया जाता था। उसका पूर्व चरित्र उसकी सफलता मे बाधक बन रहा था और बहुधा वह दुःख से चिल्ला उठता था जबकि उसके युक्तिपूर्ण सत्परामर्श भी अस्वीकार कर दिये जाते थे--"यह मेरी युवावस्था की भ्रष्टता जनकल्याण के कार्यों में कैसे बाधा डालती है?" मिराबो चाहता क्या था? वह एक संवैधानिक राजतन्त्र के पक्ष मे था। ऐसा राजतन्त्र जो आत्मनियन्त्रित निरकुश संस्थाओ पर आश्रित न होकर उस शक्ति पर आश्रित हो जिसका मूल स्रोत जनता और मूलाधार समता एवं स्वतन्त्रता हो; तथा जिसका सीधा सम्बन्ध जनमत के साथ हो। राजसभा मे दिये गये अपने प्रथम पत्रक में उसने यह मत अभिव्यक्त किया था कि संविधान-निर्माण की ओर पहला कदम राजा को उठाना चाहिए न कि ससद को। स्थानीय शासन निश्चित रूप से केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण के अधीन होना चाहिए और ससद का संचालन राजा को उसी मे से चुने हुए कुछ नेताओ को उत्तरदायित्वपूर्ण मन्त्रिमण्डल के रूप में तैयार करके कराना चाहिए। उसने कार्यकारिणी की दुर्बलताओं को देख लिया था और अराजकता की दिन-प्रति-दिन बढ़ती हुई बाढ़ भी उसने देख ली थी। उसको इस तथ्य से बड़ा क्षोभ हुआ था कि राजा पेरिस की जनता का एक बन्दी मात्र है। उसने सुझाव रखा

कि राजा में और विधान सभा में मतभेद होने पर राजा को विधेयको पर अपनी सहमति देने से इन्कार करने का अधिकार अवश्य होना चाहिए और साथ ही साथ सभा को भंग करके देश से अपील करने का भी अधिकार होना चाहिए। उसे इस बात का पूर्ण निश्चय था कि यदि यह बात न की गयी तो राजसिंहासन जनता द्वारा कुचल दिया जायगा। वह चाहता था कि राजा पेरिस छोड दे और किसी अन्य प्रादेशिक राजधानी मे चला जाय। वहाँ जाकर सविधान बनाने के लिए एक नयी ससद बुलाये। वह कार्यकारिणी परिषद् मे प्रवेश पाना चाहता था, यह एक ऐसा कार्य था जिसके लिए उसके पास अनेक योग्यताएँ थी। सभा मे किसी प्रतिनिधि ने यह प्रस्तावित किया कि विधान सभा के किसी भी सदस्य का अपना स्थान रिक्त किये बिना राजतन्त्र के अधीन कोई कार्यभार सँभालना अवैधानिक घोषित कर दिया जाय। यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और मिराबो ने फ्रास मे एक शक्तिशाली शासन स्थापित करने की सभी आशाओं को त्याग दिया। अन्य भी कई कारण थे जिन्होंने उसकी प्रगति मे विघ्न उपस्थित किया। सभा मे वह काफी कुख्याति लेकर आया था; उस पर ऋण का भारी बोझा था; उसके साथी जो उसकी प्रतिभा, उसकी अलोकिक भाषण-शक्ति और शारीरिक बल की प्रशंसा करते थे, वे नहीं चाहते थे कि राज सभा में उसका प्रभाव स्थापित हो और वे स्पष्ट शब्दों में उसकी ईमानदारी पर सन्देह करते थे। ला फायत् उसे पसन्द नही करता था और अपने आप को उस जैसे कुख्यात लफंगे के साथ सम्बद्ध नही करना चाहता था। बार्नाव और लाम्बेत् जैसे लोग उसकी लोकप्रियता से ईर्ष्या करते थे और उसको गिराने का कोई प्रयत्न छोड़ते नही थे। नेकर उससे एक आलसी और विलासी जन नेता के रूप में घृणा करता था। रानी ने एक दिन कहा था—"मै आशा करती हूँ कि हम कभी ऐसी दुःखद सीमा तक नही पहुँचेंगे कि हमे मिराबो की सहायता माँगनी पड़े।" इस प्रकार से अविश्वास और निन्दा के पात्र मिराबो ने शासन को निर्बल करने और मन्त्रियों के प्रभाव को नष्ट करने का कोई प्रयत्न छोडा नहीं। जब तक आभिजात्य जनों, चर्च तथा राजसभा का सभा मे साधिकार प्रभाव रहा उसने अपने पूर्ण बल के साथ उनको कलंकित और पराजित किया। उसने पादरियों के सार्वजनिक संविधान के पक्ष में मत दिया क्योंकि चर्च ने एकाधिक बार उसको उसके कुत्सित् आचरण के लिए दण्डित किया था। जब पादरियों ने सत्याग्रह करने की धमकी दी तो उसने सुझाव दिया था, "इन क्रान्ति-नेताओं को निश्चय ही कुचल दिया जाना चाहिए और कुछ को जन-न्यायालय के समक्ष उपस्थित करके अन्यो को सावधान कर देना चाहिए।" एसाईनेट्स् चालू करने के विषय मे उसकी पूरी सहमति थी; राष्ट्रीय सभा ने चर्च की अपहृत सम्पत्ति का आधार लेकर ये एसाईनेट्स् चलाये थे। बाद मे

उसने एसाईनेट्स्-पद्धति को अधिक विस्तार देने का भी सुझाव रखा था।

मई १७९० में मिराबो ने राजा को एक पत्र लिखा जिसमे उसने राजतन्त्र की पुनःस्थापना के सम्बन्ध मे अपने विचार अभिव्यक्त किये थे। इस कार्य को उसने फ्रास की सबसे पहली आवश्यकता बतलाया था। उसने सुझाव दिया कि राजा के हाथ मे वास्तविक अधिकार होने चाहिए, और अव्यवस्था को नष्ट करने के लिए कार्यकारिणी के पास पूर्ण शक्ति होनी चाहिए। उसमे और राजसभा में परस्पर समझौते की बातें चलने लगी। उसने प्रार्थना की कि उसके ऋणो को चुकता किया जाय और उसको सौ लूई प्रतिमास मिलने चाहिए। राजा और रानी ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसका लगभग २,०८,००० लीव्र का ऋण उन्होंने चुका दिया। इसी बीच मई और जून मे इस समस्या पर विवाद चलने लगा कि राजा को युद्ध अथवा शान्ति की घोषणा करनी चाहिए या नही। मिराबो ने राजतन्त्र का पक्ष लिया और क्रान्तिवादियो तथा वाममार्गियो मे वह बडा कुप्रसिद्ध भी हो गया। एक नयी पुस्तिका विक्रय के लिए प्रकाशित हुई, उसका शीर्षक था 'काम्ते दे मिराबो का महान् राजविद्रोह'। यह समाचार फैल गया कि मिराबो ने अपने आपको बेच दिया है। रानी ने उसकी सहायता की प्रशसा की और ३ जुलाई, १७९० को उसने उससे राजप्रासाद मे भेट करने के लिए कहा। मिराबो ने वचन दिया कि वह अपने शब्दो को कदापि वापस नही लेगा चाहे कुछ भी हो। परन्तु रानी उस भेट से प्रसन्न न हो सकी और उसने घोषित किया कि वह मिराबो से बहुत आतकित हो गयी है यद्यपि वह राजतन्त्र का समर्थक है। बाद मे वह उसके कुछ प्रतिकूल भी हो गयी। इस विरोध का कारण मिराबो का पॉचवी और छठी अक्तूबर के राजद्रोहियों के बलवे मे भाग लेना था।

मिराबो राज दरबार का गुप्त मन्त्री हो गया और राजा को अपनी मन्त्रणाएँ देता था। उसने लुई को सुझाव दिया कि वह राष्ट्र के विश्वास को पुनः प्राप्त करने के लिए अपने आपको जन-आन्दोलन का मुखिया बना दें। उसने राजा से कहा कि वह अपने आपको भूत से बिलकुल पृथक् करके और क्रान्ति के उदात्त वरदानो—धार्मिक स्वतन्त्रता, प्रकाशन की स्वतन्त्रता और मनमाने कैद से स्वतन्त्रता—को स्वीकार करके एक महान् प्रतिक्रिया का कारण बन जाय। ऐसा होने पर उसने यह आशा दिलायी कि मध्यवर्ग राजसिहासन का अनुचर हो जायगा और एक शक्तिशाली कार्यकारिणी की स्थापना हो सकेगी। उसने अपना वही पहले वाला परामर्श फिर दोहराया कि राजा पेरिस को छोड़कर किसी प्रान्त मे चला जाय, इससे उसके विचार से राजतन्त्र की रक्षा हो सकती थी। राजा ने उसका सुझाव स्वीकार नहीं किया। उसने कुछ कड़े शब्द कहे और उसने लामार्क से कह दिया—"वह गृह-युद्ध से क्यों डरे? गृह-युद्ध, यह राजा की

रक्षा का एक उपाय होगा, और वह सदा के लिए नष्ट हो जायेगा यदि वह पेरिस में ही टिका रहा।"। मिराबो का परामर्श स्वीकार नही किया गया क्योकि रानी उसका विश्वास नही करती थी और उसका स्त्री-मन फ्रेंच राजतन्त्र के स्वरूप मे हुए अभिनव परिवर्तन को पहचान न सका। यद्यपि यह स्पष्ट नही था कि प्रान्तो ने राजा की शक्तियो को अक्षुण्ण रखने के लिए क्या किया होता, परन्तु इतना तो निश्चित है कि नीति बड़ी महत्त्वशाली थी। इससे कदाचित् प्रान्त पेरिस के विरुद्ध एकतासूत्र मे बँध जाते और राजा के सम्मान तथा प्रभाव को बढ़ाने का प्रयास करते। इसके अतिरिक्त मिराबो का चरित्र उसकी योजनाओ को व्यर्थ कर देता था। अपने साथियो मे वह अपना प्रभाव खो चुका था। राजा के साथ उसके अर्थ-सम्बन्धी व्यवहारो की उन्होने निन्दा की। राजा और रानी भी उसमे पूर्ण रूप से विश्वास नही करते थे और उसको 'एक खरीदा हुआ और भयकर जन-नेता' मात्र समझते थे। राष्ट्र के हितो को बेचने का अभियोग उस पर हर तरफ से लगाया जाता था।

जनवरी १७९१ मे वह ज्वर से पीड़ित हुआ और २६ मार्च को उसे गुर्दे के भयंकर रोग ने घेर लिया। जब ताल्लीराँ उसके पास आया तो उसने कहा, "मेरे मित्र, मैं राजतन्त्रवाद के अन्तिम चिथड़े अपने साथ ले जा रहा हूँ।" उसे पैन्थीअन मे दफनाया गया, यह ऐसा स्थान था जो उन लोगों के लिए सुरक्षित था जिन्होंने देश की कोई बड़ी सेवा की हो। साथ चलने वाले जनसमुदाय ने धूलि के बादल इकट्ठे कर दिये थे, एक महिला ने नगरपालिका की सड़को को पानी न देने की भूल की शिकायत की थी। एक मछुवे की पत्नी ने उत्तर दिया था, "महोदया, वे हमारे अश्रुओ पर आश्रित है।" यह कहानी अपने युग की एक महत्त्वपूर्ण गाथा है।

मिराबो एक महान् राजनीतिज्ञ था। वही राजतन्त्र को बचा सकता था और फ्रांस के भाग्य को बदल सकता था। लुई मादलाँ ठीक ही कहता है, "केवल वही एक नये राज्य का निर्माण कर सकता था और एक द्वितीय रिशेल्यू की तरह एक द्वितीय तेरहवें लुई के अधीन देश को शान्त कर सकता था और इसको विजय के साथ सम्राट् का शासन पुन: दे सकता था।[1] मिराबो का वास्तविक बल उसके राजनीतिक यथार्थ-वाद में था। वह सियें को अपना गुरु मानता था परन्तु वह कभी उसके दर्शन से अथवा उसकी नैतिकता से सम्प्रेरित नहीं हुआ। टामसन का विचार दोनो के सम्बन्ध मे रोचक है—

"दोनों व्यक्ति राज्यक्रान्ति का पथप्रदर्शन करने में असफल रहे, परन्तु भिन्न

१. रिवोल्यूशनरीज ऑव् फ्रांस, पृ० ५४।

कारणों से। सिये, क्योकि उसने अपना उद्देश्य बहुत ऊँचा बना लिया था; मिराबो, क्योकि उसने अपना उद्देश्य बहुत नीचा रखा।"

राष्ट्रीय सभा की विदेशी नीति

फ्रांस यूरोप के साथ किसी प्रकार का भी युद्ध नही करना चाहता था। उसे अपने नये सिद्धान्तों का प्रचार करने की प्रबल कामना थी, और उसकी रुचि एक नयी व्यवस्था को प्रतिष्ठापित करने में अन्य किसी भी कार्य से अधिक थी। संविधान सभा ने बिलकुल स्पष्ट शब्दो मे यह घोषित कर दिया था कि उसकी नीति देशों को जीतने की नीति नही है और क्षेत्रीय विस्तार के विचार को तो कभी उसने अपनी नीति के निर्णय में स्थान दिया ही नही है। १७८६ मे पूर्वीय यूरोप के राज्य अपने ही मामलों में व्यस्त थे। रूस और ऑस्ट्रिया तुर्को के विरुद्ध लड़ रहे थे और पोलैण्ड को हथियाने की योजनाएँ बना रहे थे; प्रशा की अपनी ही योजनाएँ थी और उसका राजा अपने लिए अधिक से अधिक लाभ उठाने के प्रयास कर रहा था। इग्लैण्ड अपनी ही समस्याओं मे उलझा हुआ था और विलियम पिट के पास अपने ही आर्थिक और वित्त सम्बन्धी सुधारो मे व्यस्त रहने से अधिक समय नही था। इसके अतिरिक्त कोई भी राज्य फ्रांस के मामलो में हस्तक्षेप नही करना चाहता था क्योंकि आरम्भ में वे राज्यक्रान्ति को फ्रांस के राजा के विरुद्ध एक राजद्रोह मात्र समझते थे। उन्होंने इस क्रान्ति की सर्वविनाशकारी शिक्षाओं की उन्नति और अभिवृद्धि की कल्पना भी नहीं की थी। पहले-पहल उन्हें फ्रांस की कठिनाइयाँ देखकर हर्ष हुआ और जब बास्ती पर जनता ने आक्रमण किया तो उन्होंने इसमें "वार्साई के अपने अच्छे भाई" की शक्ति के क्षय को ही देखा। इस समय तक युद्ध की कोई आशंका नही थी पर एक दूरदर्शी आँख के लिए यह बिलकुल स्पष्ट था कि आज नही तो कल अवश्य ही फ्रांस तथा अन्य यूरोपीय राजशक्तियो में संघर्ष होने वाला है।

संविधान सभा के सुधारों ने इस संघर्ष के बीज बोये। ४ अगस्त को सामान्तवाद के उन्मूलन ने जर्मन हितों को गम्भीरतापूर्वक प्रभावित किया और इसी ने सब प्रकार के संघर्ष को जन्म दिया। संघर्ष का दूसरा कारण एमिग्रेज् (राजतन्त्रवादियो) की स्थिति का प्रश्न था जिन्होंने रहाईन के छोटे जर्मन राज्यो मे शरण ली थी। वे लोग निरन्तर राज्यक्रान्ति को विफल करने की योजनाएँ और षड्यन्त्र बना रहे थे और कामना करते थे कि पुरानी राज्य-व्यवस्था पुनः स्थापित हो जाय।

वेस्टफालिया की राजसन्धि (१६४८) के अनुसार अल्सस फ्रांस के अधिकार में आ गया था और उस पर प्रभुसत्ता के वे सब अधिकार भी फ्रांस को मिल गये थे जिन्हें

पहले ऑस्ट्रिया उपयोग में लाता था। जर्मनी के राजकुमारों की कुछ सैनिक जागीरें अल्सस में थीं, अतः उनके कुछ सामन्ती अधिकार भी थे। सभा के आदेशों ने राजकुमारों के इन अधिकारों को गम्भीरतापूर्वक प्रभावित किया। इन अधिकारों के अनुसार सभा का किसी प्रकार का भी हस्तक्षेप डाके और लूट से कम न था। फ्रांस ने क्षतिपूर्ति करने के लिए कहा; असमृद्ध राज्यों ने तो यह बात स्वीकार कर ली; परन्तु अधिक समृद्ध राज्यों ने प्रशा और ऑस्ट्रिया को उनके हितों की रक्षा करने के लिए उत्तेजित किया। सभा ने उन राजसन्धियों को महत्त्वहीन समझा जिनके आधार पर राजकुमार अपने अधिकारों की माँग करते थे। सभा ने उन वचनों पर भी कोई ध्यान नहीं दिया जो चौदहवें लुई ने उनके साथ किये थे।

एक और भी ऐसा मामला था जिसमे सभा ने एक अत्याज्य रूप ग्रहण किया। १७६१ के बाद से फ्रास और स्पेन परस्पर मित्र राज्य थे। १७६१ में इन दोनों राज्यों में एक सन्धि हुई थी जिसे परिवार-समझौता (फेमिली कम्पैक्ट) कहा जाता है। १७६० में उत्तरी प्रशान्त महासागर पर कुछ वाणिज्य सम्बन्धी अधिकारों को लेकर एक मतभेद खड़ा हो गया। इसको नूट्कासाउण्ड का काण्ड कहा जाता है। नूट्कासाउण्ड वांकुवर द्वीप के पश्चिमी तट पर अवस्थित है। इग्लैण्ड और फ्रास मे एक कलह उत्पन्न हो गयी और इग्लैण्ड ने फ्रास के कुछ जलयानों पर अपना अधिकार जमा लिया। परिवार-समझौते का सहारा लेकर स्पेन ने फ्रास से सहायता की याचना की, परन्तु संसद ने दोनों देशों में हुई सन्धि की शर्तों को पूरा करना अस्वीकार कर दिया। मिराबो के बहुत विरोध करने पर भी संसद ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया कि फ्रास राष्ट्र विजय के उद्देश्य से किये गये किसी प्रकार के युद्ध में भाग लेना अनुचित समझता है। सूक्ष्म सिद्धान्तों के वाद-विवाद में वास्तविक समस्या पर किसी की दृष्टि नहीं गयी और इंग्लैण्ड तथा फ्रांस में संघर्ष बिलकुल अपरिहार्य हो गया। यूरोप पर फ्रांस का जो प्रभाव पड़ा था वह उसके हित में बड़ा घातक था। यहाँ तक कि लण्दन के फ्रांस के राजदूत ने लिखा था—

> "इंग्लैण्ड अब फ्रांस से किंचित् भय नहीं करता और दोनों ही गोलार्द्धों में वह अपना प्रभुत्त्व घोषित कर सकता है, बिना किसी भय के और बिना किसी भी शंका के।"

थोड़े ही समय के बाद अविग्नौ का प्रश्न भी उठ खड़ा हुआ। अविग्नौ फ्रास में पोप की एक सैनिक जागीर थी। पोप के नियुक्त किये हुए प्रतिनिधि ही इसका शासन-कार्य चलाते थे और फ्रांस की धरा पर एक विदेशी भूमि होने के कारण यह अपराधियों और फ्रांस के द्रोहियों को शरण देती थी। इस सब अव्यवस्था से फ्रांस की सरकार

वड़ी परेशान थी, यहाँ तक कि वह पोप की इस सैनिक जागीर को 'सार्वजनिक उपद्रव का स्थान' समझती थी। जून १७६० मे अविग्नौ की जनता ने क्रान्तिकारी उत्साह से उत्प्रेरित होकर अपने प्रदेश को स्वेच्छापूर्वक फ्रांस के अधीन करने के पक्ष मे घोषणा कर दी। कुछ प्रतिनिधियो ने सभा मे इसका विरोध किया। परन्तु रोबेस्पियर ने जो एक चतुर नीतिज्ञ था स्वेच्छापूर्वक अनुयोजन और बलपूर्वक विजय में सूक्ष्म भेद समझा दिया। इस प्रकार अनुयोजन की योजना स्वीकार कर ली गयी और नवम्बर १७६० में फ्रेंच सैनिक दलो ने इस सैनिक जागीर मे प्रवेश किया और इसको अधिकार में कर लिया। एक समकालीन इस सम्बन्ध में लिखता है--

"यह निश्चित है कि इस प्रकार के आचरण के बाद फ्रास सभी राज्यों से युद्ध मोल लेगा; वह उनको आन्तरिक विप्लव से आतंकित करेगा और यह विप्लव विजय के रूप मे परिणत हो जायगा।"

इससे कुछ ही समय पहले संसद पादरियो का सार्वजनिक संविधान स्वीकार कर चुकी थी। लुई मादलाँ के शब्दो मे यह जादूगर का पिटारा था जिसमें हर प्रकार के घरेलू युद्धों के बीज भरे हुए थे। यूरोप को इससे चेतावनी मिल गयी थी और फ्रांस के साथ कलह का प्रश्न केवल समय की प्रतीक्षा कर रहा था।

इस प्रकार से यह स्पष्ट हो जाता है कि यूरोप की स्थिति मे बहुत-कुछ ऐसा था जो एक विस्फोट का रूप धारण करता। एमिग्रेज़ (राजतन्त्रवादी) विदेशो में रहते थे और फ्रांस के विरुद्ध घोर दुर्भावना की सृष्टि कर रहे थे। ये ऐसे लोग थे जिनको घृणा और स्वार्थ ने अन्धा कर दिया था। प्रतिशोध की अग्नि मे ये सन्तप्त थे और वास्तविकताओं का सामना करने से डरते थे। इनके पास राजनीतिक प्रतिभा नही थी। भविष्य को देखने की इनके पास शक्ति नही थी और पुरानी शासन-व्यवस्था के पुन-रागमन को ये लोग उस प्राचीन राजतन्त्र की पुनः प्रतिष्ठापना समझते थे जो निरंकुश स्वेच्छाचारिता से परिपूर्ण था, और वे इस पुनरागमन को उन लोगों का विनाश भी समझते थे जिन्होने, इनके अनुसार, अपनी बुद्धिहीन नीति के कारण फ्रांस पर अपमान और कलंक का बड़ा-सा टीका लगा दिया था। उनके नेता थे कॉन्द के राजकुमार काउन्त दा'अर्तुआ और मन्त्री कैलौन जो राज्य-क्रान्ति आरंभ होने से पहले अर्थ-संकट को सुलझाने मे विफल हुआ था। यूरोप के सभी राजदरबारो में इन लोगों के दूत थे और ये लोग राज्य-क्रान्ति के विरुद्ध षड़यन्त्र रचने मे सलग्न थे। इन परिस्थितियों में युद्ध को अब अधिक समय के लिए स्थगित नही किया जा सकता था।

जून, १७६१ मे राजा का वैरीनीज में भाग जाना महासंघर्ष की पूर्वभूमिका थी। ऑस्ट्रिया के सम्राट् लियोपोल्द को सोलहवें लुई के अपमान और अपनी बहन मारी

अन्त्वांनेत् के कष्टों से अत्यधिक दु:ख हुआ और उसने ही अन्ततोगत्वा इस सम्बन्ध मे कुछ कार्यवाही करने का निर्णय किया। ६ जुलाई, १७६१ को उसने पैडुआ से एक पत्र स्पेन, इंग्लैण्ड, प्रशा, नेपल्स्, रूस और सार्दीनिया के राजाओं के नाम भेजा जिसमे उसने लिखा था कि सभी राजागण परस्पर विचार-विमर्श कर ले और "सर्वोत्तम ईसाई सम्राट् तथा उसके परिवार की स्वतन्त्रता एव सम्मान की पुन: प्रतिष्ठापना करने के लिए और फ्रेंच राज्य-क्रान्ति के उग्र कार्यों को रोकने के लिए" सहायता करें। २५ अगस्त, १७६१ को पिल्नित्ज़ की प्रसिद्ध घोषणा भी कर दी गयी।

अध्याय ५

विधान सभा

(१ अक्तूबर, १७९१—२९ सितम्बर, १७९२)

राजनीतिक दल तथा उनका प्रारम्भिक कार्य

जब राजा ने नया संविधान स्वीकार कर लिया तो फ्रांस की जनता क्रान्ति का अन्त चाहने लगी। १७८९ में जिन लोगों ने क्रान्ति का सूत्रपात किया था उनका अभीष्ट सिद्ध हो चुका था। सामन्तवाद का उन्मूलन कर दिया गया था तथा पुरातन व्यवस्था के अन्य दोष भी दूर हो चुके थे। बहुसंख्यक लोग शान्तिमय जीवन बिताने के इच्छुक थे और राजनीति की चिन्ताओं तथा धूलधक्कड़ से बचना चाहते थे। इस समय ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं था जो राजा को फाँसी देना चाहता हो अथवा यूरोप के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करना चाहता हो।

सम्पूर्ण देश में चुनाव हुए, किन्तु रोबेस्पियर के आदेश के अनुसार पिछली सभा के सभी सदस्य चुनाव में भाग लेने के अनधिकारी घोषित कर दिये गये। इस समय तक जैकोबिन क्लब की शक्ति काफी बढ़ चुकी थी; उसका संघटन पर्याप्त सुदृढ़ था और उसकी शाखाएँ सारे देश में फैली हुई थीं। उसके सदस्य रूसो के आदर्शों से अनुप्राणित थे और उसके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'सामाजिक समझौता' को अपनी बाइबिल समझते थे। वे लोग हिंसात्मक उपायों को भी अनुचित नहीं मानते थे और अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सदैव ऐसे उपायों का प्रयोग करने को उद्यत रहते थे। एक अन्य राजनीतिक दल था जो कोर्दीलिये क्लब के नाम से विख्यात था, यह प्रजातन्त्रवाद का केन्द्र था। इसके सदस्यों में बहुसंख्या समाज के निम्नस्तर के लोगों की थी, और इनका श्रमिक वर्गों पर गहरा प्रभाव था। अपने भाषणों में वे लोग अत्यन्त कटु और निर्भय थे तथा अपने विरोधियों पर सीधा प्रहार करने को सदा तत्पर रहते थे। इसीलिए उनके अनुयायियों की संख्या दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही थी। एक बार दाँतों इस क्लब का अध्यक्ष रह चुका था। इन दोनों दलों ने जनमत को पर्याप्त उत्तेजित किया और विधान सभा में अपना साधिकार प्रभुत्व स्थापित करने का भी प्रयास किया। इनके

अधिकांश सदस्यो का निर्माण उसी धातु से हुआ था जिससे शहीद बनते हैं।

संसद के अधिकांश सदस्य उग्र क्रान्तिकारी विचारों वाले नवयुवक थे, उनमे युवक पत्रकारों और वकीलों की संख्या अधिक थी। उनके पास न अनुभव था और न ज्ञान, किन्तु जैकोबिन सिद्धान्तों का प्रभाव उनके विचारो पर अत्यधिक था। राजनीतिक क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए तो वे प्रत्येक मूल्य चुकाने को तैयार थे। एक बड़ी संख्या पेशेवर राजनीतिज्ञों की थी, जो राजनीति के द्वारा धन कमाना चाहते थे। पादरियों की संख्या नगण्य थी, परन्तु कुछ ऐसे लोग भी थे जो साहित्य तथा विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुके थे। सभा के कुछ सदस्यों की प्रतिभा एवं वाक्शक्ति तो आश्चर्य में डालने वाली थी; पेरिस के जीवन की चमक-दमक ने उनको बहुत आकृष्ट कर लिया था। वे समझते थे कि इस बढ़ती हुई अराजकता और अव्यवस्था से हमे आगे बढ़ने का अच्छा अवसर मिलेगा।

संसद के दक्षिणपन्थियों में संविधानवादियों का बहुमत था, इनको फ्यूलाॅ (सन्त) कहा जाता था। ये लोग राजतन्त्र के समर्थक थे तथा उसकी प्रतिरक्षा में बड़ा साहस दिखला रहे थे। इनकी इच्छा थी कि १७९१ के संविधान का ही पालन किया जाय। वार्नाव, ड्यूपोर तथा लामेथ, इनके प्रमुख नेता थे। इन लोगों का संसद के बाहर फ्यूलाँ लोगों के क्लब में बड़ा प्रभाव था। वामपक्ष में जैकोबिन लोग बैठते थे, उस समय तक उन लोगों ने एक सुसंघठित दल का रूप धारण कर लिया था। ये लोग फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना करना चाहते थे। १७९२ के प्रारम्भिक महीनों में इस दल में फूट पड़ गयी और बिगड़े हुए जैकोबिनों ने अपना एक अलग गुट बना लिया। आगे चलकर ब्रिस्सौ के अनुयायी जैकोबिन लोगों ने भी अपना एक दल बना डाला, जो जिरोन्दिस्त[1] दल के नाम से विख्यात हुआ। जैकोबिन दल के प्रमुख नेता दाँतों, रोबेस्पियर और माराँ थे। किन्तु वे सभा के बाहर थे, इसलिए दल पर ब्रिस्सौ का नेतृत्व स्थापति हो गया। उसकी योग्यता अत्यन्त साधारण थी किन्तु वह वाचाल बहुत था। वह क्वेकर जैसे वस्त्र पहनता था और साम्यवादियों की तरह बातचीत करता था। सभा के बाहर श्रीमती रोलाँ और सिये उसके दो महान् समर्थक थे। श्रीमती रोलाँ का मुख्य उद्देश्य

१. इस दल का यह नाम इसलिए पड़ा कि इसके तीन सदस्य बोर्दो नगर के निवासी थे और बोर्दो जिरोन्द नामक विभाग की राजधानी था। आरंभ में वामपक्ष में एकता थी; जिरोन्दिस्त और जैकोबिन लोगों में परस्पर किसी प्रकार का भी मतभेद नहीं था। बाद में उनमें फूट पड़ गयी और जैकोबिन लोगों के एक पक्ष ने जिरोन्दिस्त नामक दल बना लिया।

था रानी से बदला लेना, जिससे वह अत्यधिक घृणा करती थी। सियें भी उस समय की राजनीतिक व्यवस्था को उलटना चाहता था जिससे उसे अपनी संविधान बनाने की प्रतिभा दिखाने का अवसर मिल सके। किन्तु धीरे-धीरे कुछ जिरोन्दिस्त प्रतिनिधि अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय देने लगे। उनमे दल का प्रमुख वक्ता वर्निऔ, इसनार, गौदें, जेन्सौन्न, कौन्दॉर्से प्रभृति मुख्य थे; वे सब अपनी देदीप्यमान प्रतिभा के कारण चमक उठे। वे 'रोमन' कहलाने लगे, क्योकि वे रोम के से गणराज्य की स्थापना करना चाहते थे, और रोम की चीजो से उन्हें इतना प्रेम था कि उनमे से कुछ ने तो रोमन नाम तक अपना लिया जैसे सैम्प्रोनियस, ग्रैक्कस, टाइबीरियस, तिवेरियस ग्रैक्कस, ब्रूटस इत्यादि। असली जैकोबिन लोगों के विपरीत ये लोग हिंसा तथा रक्तपात से घृणा करते थे, इनमें संघठनात्मक योग्यता तथा दृढ़ राजनीतिक कार्यवाही करने की क्षमता का सर्वथा अभाव था। शब्द-जाल से इन्हें विशेष प्रेम था, और इनका आदर्शवाद एक घातक दुर्गुण सिद्ध हुआ। अपने विरोधियों पर सफलता पाना इनके लिए असम्भव था, क्योंकि उस समय देश में उग्रक्रान्तिकारी विचारों का इतना प्रभुत्व था कि उदार विचारो के लोग नपुंसक और बुद्धिमान देशद्रोही समझे जाते थे।

इन दोनो दलो के बीच का केन्द्रीय दल दुर्बल था, उसके सदस्यों में दृढ़ निश्चय, साहस तथा ठोस सिद्धान्तों का अभाव था, इसलिए उन पर वामपक्षी सदस्यों की वक्तृता का आसानी से प्रभाव पड़ सकता था। इस दल की कोई निश्चित नीति नहीं थी, यही कारण था कि इसके सदस्यों ने महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर वामपक्ष के साथ अपना मत दिया।

यहाँ पर हमें इस बात का भी विचार करना है कि राजदरबार का विधान सभा के प्रति क्या दृष्टिकोण था। राजा तथा फ्यूलाँ लोग दोनों ही संविधान में संशोधन करने के पक्ष में थे, किन्तु वे एक दूसरे से सहयोग न कर सके। राजा को उनका विश्वास न था। राजतन्त्र की रक्षा के लिए पेरिस को छोड़कर चला जाना आवश्यक था, किन्तु लुई इस बात के महत्त्व को कभी न समझ सका। सम्भवत: प्रथम पलायन की असफलता की कटु स्मृति ने उसका साहस भंग कर दिया था, फिर भी कठिनाइयों से बचने का और कोई उपाय न था। रानी को राजसभा से विशेष आशा न थी, किन्तु विदेशियो के हस्तक्षेप में उसका अधिक विश्वास था। एक तो वारेन्न में उसकी प्रथम योजना का भंडाफोड़ हो चुका था, और दूसरे वह घोर निराशा में डूबी हुई थी, इसलिए वह समझती थी कि अपनी खोयी हुई शक्ति तथा प्रतिष्ठा को प्राप्त करने और क्रान्ति की प्रगति को रोकने का एकमात्र उपाय विदेशी सहायता ही है।

जिस समय विधान सभा का सत्र आरम्भ हुआ, उस समय के पेरिस के सम्बन्ध में

भी यहाँ दो शब्द लिखना अनुपयुक्त न होगा। इस समय का पेरिस १७८९ के पेरिस से पूर्णतया भिन्न था। अतिथि-गृह, मंडलियाँ तथा पत्र-पत्रिकाएँ सब बदल चुके थे। अनेक नये अतिथि-गृह स्थापित हो चुके थे जिनमें नेकर की प्रतिभासम्पन्न पुत्री मदाम दस्तेल, मदाम रोलाँ और जिरोन्दिस्त दल के दार्शनिक कॉन्दोर्से की पत्नी के कमरे सब से अधिक प्रसिद्ध थे। मदाम द स्तेल के गृह मे सभी फ्यूलॉ युवक तथा जिरोन्दिस्त दल के नेता जाया करते थे। यद्यपि राजा तथा रानी उसकी तनिक भी परवाह नहीं करते थे, फिर भी पेरिस में उसका बडा प्रभाव था। इसलिए राजा को अन्त मे बाध्य होकर उसके मित्र नारबौन को मन्त्रिमण्डल मे सम्मिलित करना पडा। श्रीमती रोलाँ के पति की आयु इतनी अधिक थी कि वह उसका पिता होने योग्य था और वह स्वयं एक आकर्षक युवती थी। उसके विचार गणतन्त्रवादी थे और रानी के विरुद्ध वह ऐसी कठोर भाषा में लिखा करती थी कि जिसका दूसरा उदाहरण मिलना असम्भव था। स्वतन्त्रता की इस पुजारिन के अतिथि-गृह मे जिरोन्दिस्त दल के युवक एकत्र हुआ करते थे जिनमें ब्यूज़ो उसका सबसे बड़ा कृपापात्र था, और उस पर उसका विशेष अनुराग था। फ्रांस के सर्वाधिक प्रतिभा-सम्पन्न तथा यशस्वी व्यक्तियों की श्रद्धा-पात्र श्रीमती रोलाँ शक्ति का केन्द्र बन गयी थी और वह देश के प्रमुख राजनीतिक दल को उत्प्रेरणा देने लगी। उपर्युक्त अतिथि-गृहो के अतिरिक्त साधारण सत्कार-गृहों और नाट्य-शालाओं का भी जनता के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव था। पत्र-पत्रिकाओ के कारण भी लोगों की भावनाओं और विचारों में बड़ी कटुता आ गयी। माराँ का 'जनमित्र' नामक पत्र सबसे अधिक प्रभावशाली था; वह रात-दिन जनता की रक्त-पिपासा तथा अपराधी मनो-वृत्तियों को उत्तेजित करने मे लगा रहता था। माराँ के सिर पर राजनीतिक पागलपन सवार रहता था, इसलिए वह हिंसा तथा हत्या का उपदेश दिया करता था। पेरिस की जनता से वह कहता—"जब हम लोग भूखों मर रहे हैं, तो दूसरों को दावत उड़ाने का क्या अधिकार है?" वास्तव में उसने सामाजिक न्याय के आदर्शो का प्रतिपादन किया, इसीलिए उसके विचार उसके सहस्रों देशवासियों के हृदयों मे प्रतिध्वनित होने लगे।

क्रान्तिकारियों का दो वर्गो के लोगों के प्रति विशेष रूप से शत्रुतापूर्ण भाव था। पहला वर्ग उन पादरियों का था जिन्होंने संविधान के प्रति वफ़ादार रहने की शपथ नहीं ग्रहण की थी, और दूसरे में वे लोग थे जिन्होने फ्रांस से भागकर विदेशों मे शरण ली थी। नवम्बर, १७९१ में एक अध्यादेश जारी किया गया कि सभी पादरी एक सप्ताह के भीतर शपथ ले लें अन्यथा उन्हे उनके पदो तथा निर्वाह-वृत्तियों से वंचित कर दिया जायगा। लुई पक्का कैथोलिक था, इसलिए उसके लिए ऐसे ईसाई धर्म विरोधी तथा अपहरण-मूलक नियम पर अनुमति देना कठिन था। १९ दिसम्बर को उसने इस अध्यादेश को

रद्द कर दिया और इस प्रकार अपने अन्त:करण को सन्तुष्ट करने के लिए क्रान्तिकारियों की शत्रुता मोल ले ली। उसके इस कार्य से उसके विरोधियो को एक नया हथियार मिल गया, उन्होने उसके उद्देश्यो का गलत अर्थ लगाया और उसको देशद्रोही ठहराया। औलार का कहना है कि राजा की इस नीति के लिए वास्तव मे सभा के भूतपूर्व सदस्य उत्तरदायी थे।

यही नहीं भागने वालो का प्रश्न भी सभा के सम्मुख उपस्थित हुआ। उन लोगों में से अधिकतर सामान्तवर्ग के सदस्य थे, और राजतन्त्र में उनकी आस्था थी। क्रान्ति से तंग आकर वे फ्रांस को छोड़ गये थे और भाग कर उन्होने विदेशो में शरण ली थी तथा अपनी मातृभूमि के विरुद्ध वहाँ के शासकों और जनता को भड़काने लगे। इनमें राजा का भाई अर्तुआ मुख्य था, उसने अपने भेदियो को देश की सीमाओ पर तैनात कर रखा था। कॉब्लेन्ज मे बहुत से भगोडे जमा थे, वे विदेशी सेनाओं की सहायता से फ्रांस में नही लौटना चाहते थे और इसलिए प्रतिक्रान्ति के पक्षपाती थे। भगोड़ों का इससे भी खतरनाक केन्द्र वर्म्स था। यहाँ पर राजकुमार कॉन्दे ने २३,००० सेना एकत्र कर ली थी। उसकी सहायता से वह राजतन्त्र तथा सामन्तो के पुराने विशेषाधिकारो की पुन: स्थापना करना चाहता था। वह सेना वास्तव मे फ्रास के लिए एक महान् संकट का कारण थी। कॉन्दे ने स्ट्रासबर्ग पर अधिकार करने के लिए एक षड्यन्त्र रचा, वह नगर फ्रास की सीमाओं पर स्थित था और वहाँ जर्मनी से सहायता भी सरलता से मिल सकती थी। भगोड़ों के इस आक्रमण से सभा का चिन्तित हो उठना उचित ही था। ९ नवम्बर को सभा ने आदेश जारी किया कि १ जनवरी, १७९२ तक सब भगोड़े लौटकर देश आ जायँ अन्यथा वे मृत्युदण्ड के भागी होंगे और उनकी सम्पत्ति ज़ब्त कर ली जायगी। यह आदेश उन सरकारी अधिकारियों पर भी लागू था जो लौटकर नही आये थे और जिन्होंने देशद्रोही सभाओं में भाग लिया था। आदेश को राजा के सामने उसकी अनुमति के लिए प्रस्तुत किया गया, किन्तु वह अपने ही कुटुम्बियों की मृत्यु के आदेश पर कैसे हस्ताक्षर कर सकता था, यद्यपि वह उनके कुचक्रों से भलीभाँति परिचित था। १२ नवम्बर को उसने आदेश रद्द कर दिया। किन्तु इसका परिणाम अच्छा नहीं हुआ। उसके विरोधी उसपर आरोप लगाने लगे कि प्रतिक्रान्ति के समर्थक भगोडे राजतन्त्रवादियो से उसका गुप्त सम्बन्ध है। इसमे सन्देह नही कि इस विषय में राजा ने भारी भूल की, क्योंकि भगोड़े इस योग्य न थे कि उनके प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति दिखायी जाती। स्वभाव से कोमल तथा शान्तिप्रिय होने के कारण वह देश के शत्रुओं के विरुद्ध कठोर कार्यवाही करने में झिझकता था, किन्तु यह स्वीकार करना पड़ेगा कि आवेश में आकर सिद्धान्त की रक्षा के लिए अपनी अवशिष्ट लोकप्रियता का बलिदान

करना उसकी भारी मूर्खता थी।

जिरोन्दिस्त दल के सदस्य विदेशी शक्तियों से युद्ध करना चाहते थे जिससे कि राजा के लिए फ्रांस के शत्रुओं से सहायता प्राप्त करना असम्भव हो जाय। उसके बाद उस पर देशद्रोह का आरोप लगाना तथा गणतन्त्र की स्थापना करना सरल हो जाता। इधर ३ दिसम्बर को राजा ने प्रशा के शासक को एक गुप्त पत्र लिखा और कहा कि फ्रांस में शान्ति स्थापित करने तथा क्रान्ति की प्रगति को रोकने के लिए एक सशस्त्र सम्मेलन बुलाया जाय। किन्तु इस बीच में क्रान्ति का ज्वार बढ़ता ही गया और यूरोप के स्वेच्छाचारी शासक 'सशस्त्र सिद्धान्त' की प्रगति को देखकर भयभीत होने लगे। रोबेस्पियर को छोड़कर शेष सभी लोग युद्ध के समर्थक थे। अपने समसामयिक लोगो मे केवल वही एक ऐसा व्यक्ति था जिसने भविष्य की गति का अनुमान कर लिया और कहा कि विजय हो चाहे पराजय, युद्ध से स्वतन्त्रता का लोप हो जायगा।[1]

पेरिस में भारी उत्तेजना फैल गयी। सर्वत्र भाले, लालटोप आदि दिखायी देने लगे और क्रान्तिकारी उत्साह प्रज्वलित हो उठा। एक आधुनिक लेखक के शब्दो में, "मानवता तथा समता के आवेश का बाँध टूट गया।" विधान सभा भी इस प्रभाव से अछूती न रह सकी।

सभा द्वारा युद्ध की घोषणा

पिछले अध्याय में हम देख चुके है कि किस प्रकार क्रान्तिवादी फ्रांस तथा यूरोप के राज्यतन्त्रों के बीच युद्ध के अनेक कारण उत्पन्न हो गये थे। क्रान्ति के सिद्धान्तो तथा आदर्शों से यूरोप की शक्तियों के लिए घोर संकट उपस्थित हो गया था, और वे अपने वंशगत अधिकारों तथा हितों की रक्षा के लिए चिन्तित एवं भयभीत हो उठी थीं। जुलाई, १७९१ मे पैदुआ का घोषणा-पत्र प्रकाशित हुआ, और उसके बाद अगस्त के महीने में पिलनिट्स नामक स्थान से एक घोषणा की गयी जिसके अनुसार ऑस्ट्रिया एवं प्रशा के शासक लुई की पूर्वशक्ति तथा प्रतिष्ठा स्थापित करने के लिए एकमत हो गये। जर्मन साम्राज्य को फ्रांस से दो विशेष शिकायतें थीं—एक तो एल्सैस तथा लौरेन के प्रान्तों में

१. माले ड्यूपाँ लिखता है—"मैं इस बात को बार-बार दुहराये बिना नहीं रह सकता और भविष्य की घटनाओं से यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जायगी कि युद्ध से राजतन्त्र का सर्वनाश सर्वथा पूर्ण हो जायगा अथवा उस पर एक नया प्रतिबन्ध लग जायगा। यदि युद्ध सफल हुआ तो एक सामन्ती गणतन्त्र की स्थापना होगी और यदि युद्ध विफल रहा तो एक भीषण प्रतिक्रान्ति का सूत्रपात होगा ······।"

सामन्ती अधिकारों को समाप्त कर दिया गया था, और दूसरे १७६१ में फ्रांसीसियों ने एवीनौ को अपने राज्य में मिला लिया था। उक्त घोषणा मे उन अधिकारों को वापस देने की माँग की गयी और साथ ही साथ यह धमकी भी दी गयी कि यदि वे माँगें पूरी न हुई तो बल का प्रयोग किया जायगा। संसद ने जर्मन सम्राट् से कहा कि आप अपने राज्य से फ्रासीसी भगोड़ो को बाहर निकाल दीजिए, किन्तु उसने बड़ी अपमानजनक भाषा में उत्तर दिया, और उसको संसद के सामने पढकर सुना दिया गया। उससे उग्र गणतन्त्रवादियों की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी और वे लोग युद्ध की घोषणा के लिए आतुर हो गये। जैकोबिन नेताओं में केवल रोबस्पियर युद्ध के विरुद्ध था। जिस समय सभा में सम्राट् के उत्तर पर विवाद हो रहा था, उसी समय समाचार मिला कि सम्राट् का देहावसान हो गया है (१ मार्च, १७६२)। उसकी मृत्यु से फ्रांस में राजतन्त्र को भारी आघात पहुँचा। उसका पुत्र फ्रांसिस द्वितीय उसके पितागत राज्य का अधिकारी बना, किन्तु वह एक अनुभवहीन नवयुवक था और इस योग्य न था कि उन तूफानी दिनों में राज्य की नौका को भलीभाँति चला ले जाता।

ज़िरोन्दिस्त दल के सदस्य ऑस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध-घोषणा चाहते थे। परन्तु मन्त्रिमण्डल मे मतैक्य न था। युद्ध मन्त्री नारबौन बहुत ही चचल स्वभाव का व्यक्ति था और सुविधा के लिए झूठ बोलने में कभी नही हिचकता था; उसको पदच्युत कर दिया गया (२३ मार्च) और एक नये मन्त्रिमण्डल की प्रतिष्ठापना की गयी। द्यू मूरिये वैदेशिक मन्त्री नियुक्त हुआ। श्रीमान् रोलाँ को गृहविभाग तथा क्लेवियेर को वित्त विभाग सौपा गया। ये सब ज़िरोन्दिस्त दल के लोग थे। इस प्रकार के मन्त्रिमण्डल के होते हुए राजतन्त्र के बने रहने की आशा नहीं की जा सकती थी। मन्त्री लोग अपने दलगत स्वार्थों की रक्षा में व्यस्त थे, सिहासन की उन्हें तनिक भी चिन्ता न थी। साथ ही साथ वे लोग आवेश के उस भयंकर तूफ़ान में बहे जा रहे थे जिसने देश को अभिभूत कर रखा था। नये मन्त्रिमण्डल के परामर्श से राजा ने २० अप्रैल को ऑस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। यह एक अविचारित कार्य था और इसके कारण प्रशा से भी लड़ना अत्यावश्यक हो गया।

औलार ने लिखा है कि फ्रांस तथा गणतन्त्रीय दल दोनों के ही इतिहास में यह तिथि अधिक महत्त्वपूर्ण तथा चिरस्मरणीय है; इसी युद्ध के परिणामस्वरूप अन्त में गणतन्त्रवादी दल का प्रभुत्व स्थापित हो सका। किन्तु यह भी याद रखने की बात है कि इसी युद्ध ने अन्त में गणतन्त्र का विनाश किया और इसी ने बाद में चलकर सैनिक अधिनायकत्व का मार्ग प्रशस्त किया। यह प्रचार किया गया कि यह लड़ाई एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र के साथ युद्ध नहीं है, वरन् इसमें एक स्वतन्त्र जाति को एक अन्यायी राजा

मे बचाने का प्रश्न है। सभी राजनीतिक दल आदर्शवाद की लहर में बह गये। केवल सात सदस्यो ने युद्ध-घोषणा के विपक्ष में मत दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि जिरोन्दिस्त वक्ताओं का सभा पर इतना गहरा प्रभाव पडा कि युद्ध के सम्बन्ध में उसके सभी सदस्य लगभग एकमत हो गये।

द्यूमूरिये ने आस्ट्रिया की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। वह देश के क्रान्तिकारी उत्साह को ठीक प्रकार से समझ न सका और सोरे का कथन है कि उसके साथ उसने वैसा ही खिलवाड़ किया जैसे द रेज ने फ्रॉन्द के अन्तर्निहित उत्साह से खिलवाड़ किया था। वह समझता था कि ऑस्ट्रिया की पराजय से फ्रांस एक महान् राष्ट्र बन जायगा। इसलिए सबसे अधिक महत्त्व इस बात का है कि ऑस्ट्रिया को यूरोप के अन्य देशों की मैत्री और सहानुभूति से वंचित कर दिया जाय। इस उद्देश्य से उसने इंग्लैण्ड तथा प्रशा को तटस्थ रखने का प्रयास किया। रूस बहुत दूर था और इस बात की सम्भावना न थी कि वह फ्रांस और ऑस्ट्रिया के बीच होने वाले युद्ध को अधिक प्रभावित कर सकेगा। किन्तु द्यूमूरिये की यह चाल सफल न हुई।

फ्रांससीसी सेना को तीन भागों में विभक्त किया गया। वाम पार्श्व में ४३,००० योद्धा थे और उसका संचालन-भार ला फ़ायत को सौंपा गया। इस सेना का अधिकांश बेल्जियम की सीमा पर ख़ेमे गाड़कर खड़ा था, और १६,००० सैनिक सेदां में वौक्स के नेतृत्व मे तैनात थे। मध्य में लकनर की अध्यक्षता मे १७,००० सैनिक फ्रांस के भीतर आने वाले मार्गों की रक्षा के लिए नियुक्त किये गये। दक्षिण पार्श्व की रक्षा करने वाली सेना बिरौं की अध्यक्षता मे राइन के तट पर डटी हुई थी। इसके अतिरिक्त एक दल स्वासों में सुरक्षित रखा गया, किन्तु उसका संघटन ढीला-ढाला था और उसमें युद्ध के उत्साह का भी अभाव था।

मित्रराज्यों की सेना बहुत शक्तिशाली थी। प्रशा का ४२,००० सैनिकों का एक दल १६ जुलाई तक काब्लेन्ज में पहुँच चुका था। पास ही में ५,५०० ऐसियाँ सैनिक तथा ४,५०० भगोड़े भी थे। किन्तु भगोड़ों पर भरोसा नहीं किया जा सकता था और वे लोग विश्वासघात भी कर सकते थे। ऑस्ट्रिया ने १५,००० सैनिक नीदरलैण्ड से भेज दिये थे और होहैन्लोहे १,४०० योद्धाओं के साथ राइन के तट पर डटा हुआ था। ऑस्ट्रिया की पूरी सेना ८१,००० से कम न थी। ऐसी स्थिति में इन मित्रराज्यों के विजयी होने की आशा ही अधिक थी। परन्तु उनमे एक विशेष दुर्बलता भी थी। ऑस्ट्रिया और प्रशा के स्वार्थ एक दूसरे से टकराते थे। अपनी पुरानी ईर्ष्या के कारण वे कन्धे से कन्धा मिलाकर नही लड़ सकते थे।

युद्ध की योजना इस प्रकार थी। ला फायत दस सहस्त्र सैनिकों को लेकर नामूर

पर आक्रमण करेगा और फिर ब्रुसेल्स तथा लियेज़ की ओर बढेगा। उत्तरी सेना की तीन टुकड़ियाँ उसकी सहायता के लिए नियुक्त थी। एक अन्य दल को बिरौ के नेतृत्व मे मौस पर आक्रमण करने के लिए नियुक्त किया गया। दिलौ को लिल्ले से ४,००० सैनिक लेकर तूर्ने की ओर बढ़ने का आदेश मिला। इसके अतिरिक्त यह भी निश्चय हुआ कि कार्ले नामक सेनानायक १५,००० सैनिको को लेकर डन्कर्क से चलेगा और फर्नेस पर आक्रमण करेगा। द्यूमूरिये को फ्रासीसी सेना की दुर्बलताओ का ज्ञान न था, अतः योजना विफल हुई। दिलौ के सैनिक भयग्रस्त होकर भाग खड़े हुए और लिल्ले की गलियों मे ही २६ अप्रैल को उसकी हत्या कर दी गयी। मौस के समीप ऑस्ट्रिया की अश्वारोही सेना ने बिरौ पर भयंकर आक्रमण किया और उसको परास्त कर दिया। उसके सैनिक भाग गये और युद्ध सामग्री शत्रु के हाथ लगी। ला फायत को भी पीछे लौटना पड़ा और उसने नामूर को हस्तगत करने का विचार ही छोड दिया।[१]

फ्रांसीसी सेना की इन पराजयो से देश में भारी आतक और अशान्ति छा गयी। सर्वा अब युद्ध मन्त्री नियुक्त हुआ, उसने सेना का पुनःसघटन किया। ४ जून को उसने संसद में प्रस्ताव रखा कि पेरिस की दीवार के बाहर विभिन्न विभागो के २०,००० स्वय-सेवको का एक शिविर स्थापित किया जाय। उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। वैनिओ ने शपथ न लेने वाले पादरियो के विरुद्ध एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि यदि किसी कैण्टन, डायरेक्टरी अथवा विभाग के बीस नागरिक अपने क्षेत्र के पादरी को निर्वासित करना चाहे तो वह निर्वासित कर दिया जाना चाहिए। परन्तु राजा ने इन दोनो अध्यादेशो को अपने विशेषाधिकार से रद्द कर दिया। रोलाँ, क्लेवियेर और सर्वा को मन्त्रिमण्डल से हटा दिया गया (३० जून)। द्यूमूरियेस को ससद के घोर विरोध एवं शत्रुता का सामना करना पड़ा। अतः वह भी त्यागपत्र देकर चला गया। तीन दिन बाद ला फ़ायत का एक पत्र ससद मे पढ़कर सुनाया गया जिसमें उसने जैकोबिन लोगो की अति कटु निन्दा की थी और इस बात की माँग की थी कि राजा के विशेपाधिकारो की रक्षा की जाय। उसने यह भी धमकी दी कि यदि सविधान का उल्लघन किया गया तो मुझे बाध्य होकर बल का प्रयोग करना पड़ेगा। जिरोन्दिस्त दल के सदस्य

१. इन पराजयों की आलोचना करते हुए मारॉ ने अपने पत्र में लिखा था—

"छः महीने से भी पहले मैंने यह भविष्यवाणी कर दी थी कि तुम्हारे सेनापति राष्ट्र के साथ विश्वासघात कर देंगे और अपनी सीमाओं को शत्रु के हवाले कर देंगे। मुझे आशा है कि अब राष्ट्र की आँखे खुल जायेंगी और वह निश्चय करेगा कि उसका सबसे पहला काम है अपने सेनापतियों की हत्या कर डालना।"

अत्यन्त उत्तेजित हो उठे और राजा के सम्बन्ध मे उनके जो सन्देह थे उनकी पुष्टि हो गयी। राजा की नीति मे उनका जो अविश्वास था उसको स्पष्ट रूप से प्रकट करने का उन्होने सकल्प कर लिया।

राजा और रानी के विरुद्ध सर्वसाधारण की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी और दरबारी दल को 'ऑस्ट्रिया की परिषद्' कहकर बदनाम किया जाता था। २० जून को ३०,००० नर-नारियो और बच्चो का एक विशाल जलूस निकला; लोग अपने हाथों में झण्डे और भाले लेकर 'राष्ट्र की जय हो', के नारे लगाते हुए संसद भवन के निकट से गुजरते हुए और राज-प्रासाद एव राजोद्यानो की ओर बढ़े। जलूस का नेतृत्व सान्तैर, और मारकिस सेंट सूरुग्यूस कर रहे थे। ये लोग पाँच और छः अक्तूबर के दंगों में पहले ही ख्याति प्राप्त कर चुके थे। एक व्यक्ति एक कसाई की दुकान से एक बछड़े का कलेजा ले आया और उसपर यह लिख दिया गया था 'एक सामन्त का कलेजा'। जनसमुदाय 'प्लास दु कैराउजल' में घुस गया और राजा को ढूँढने लगा। राजा को देखकर वे लोग अनेक प्रकार के नारे लगाने लगे और एक कसाई राजा से बोला—"श्रीमान् जी! सुनिए!! आपको बाध्य होकर मेरी बात सुननी पड़ रही है। आप देशद्रोही है, आपने हम लोगों को सदैव धोखा दिया है, और अब भी आप हमे धोखा दे रहे है। अपने विषय मे जरा सावधान रहिए। आप के पाप का पात्र भर गया है और लोग अब आपके हाथ की कठपुतली बनते-बनते तग आ गये हैं।" राजा को बलपूर्वक स्वतन्त्रता की लाल टोपी पहना दी गयी और जनसमूह ने नारा लगाया 'राष्ट्र की जय हो'। रानी का भी अपमान किया गया। एक व्यक्ति भूल से श्रीमती एलिजाबेथ को रानी समझ बैठा और चिल्लाकर बोला, "यह है ऑस्ट्रिया की नारी"। ज़िरोन्दिस्त नेता जनसमुदाय को शान्त करने के लिए राज प्रासाद की ओर बढे और पेस्यों ने भाषण दिया और एकत्र जनसमूह को तितर-बितर हो जाने के लिए कहा। ला फायत सहायता देने के लिए उद्यत हुआ और अपने राष्ट्रीय सुरक्षा दल की सहायता से संविधान की रक्षा करने का प्रयत्न करने लगा, किन्तु राजा को उसपर विश्वास न था। मिनें लिखता है "उसका प्रयत्न इस बात का अन्तिम प्रमाण था कि संविधानवादी दल मे अब भी कुछ जीवन बचा है।"

रानी भी ला फायत पर अविश्वास करती थी। उसने कहा, "मै जानती हूँ कि श्रीमान् दे लाफायत हमें बचाना चाहता है, किन्तु श्रीमान् ला फायत से हमारी कौन रक्षा करेगा।" राजा इस विषम संकट से निकलने के लिए विदेशी शक्तियों पर ही अधिक से अधिक भरोसा करने लगा। नेता लोग भी अपना धीरज खो बैठे, उनको विश्वास हो गया कि जब तक राजा विदेशियों से मिलकर कुचक्र रचता रहेगा तब तक

युद्ध में विजय असम्भव है। वे उसको अपदस्थ करने की योजनाएँ बनाने लगे। राज-तन्त्र के जीवित रहने की अन्तिम आशा भी लुप्त हो गयी।

ला फायत वास्तव में बूर्बा राजवंश के लिए घातक सिद्ध हुआ। अपने अभिमान के कारण उसने बाद में राजतन्त्र की रक्षा का कोई प्रयत्न नहीं किया, और रानी का उसपर विश्वास न करना उचित ही था। एक जाना हुआ शत्रु उस स्वार्थी मित्र से अवश्य ही अच्छा होता है जो अपने ही यश और लाभ के लिए सदा प्रयत्नशील रहता है।

दस अगस्त की क्रान्ति

ला फायत का राजतन्त्र को बचाने का प्रयास विफल हुआ और ससद पुनः देश की स्थिति पर विचार करने लगी। जिरोन्दिस्त दल के प्रसिद्ध वक्ता वर्निऔद ने अपने ओजस्वी भाषण मे कहा कि देश पर संकट के वादल मँडरा रहे है और राजा स्वतन्त्रता तथा संविधान का गला घोटने के लिए विदेशियो से मिलकर कुचक्र रच रहा है। वर्निऔद ने विलकुल स्पष्ट शब्दों में यह घोषित नही किया कि मैं राजा के विरुद्ध हूँ, किन्तु कुछ दिन बाद ब्रिस्सौ नामक एक दूसरे नेता ने संकट की भयंकरता को स्पष्ट किया और सारा दोप राजा के सिर मढ़ दिया। उसने कहा, "हमको यह बतलाया जाता है कि प्रशा और हंगरी के राजाओ से डरना चाहिए परन्तु उन राजाओ की प्रधान शक्ति इस राजसभा मे ही है, इसलिए उन पर विजय पाने के लिए हमे सबसे पहली विजय इसी पर प्राप्त करनी होगी।" देश मे सकट की घोषणा कर दी गयी ; क्रान्तिकारी उत्साह पराकाष्ठा पर पहुँच गया और लोग उत्तेजना से पागल हो उठे। इस सबमें पेस्यो खूब लोकप्रिय हो गया। ला फायत को लोग राजतन्त्रवादी कहने लगे। उसकी तथा उसकी नीति की घोर निन्दा की गयी। इस प्रकार राजनीतिक दलों मे परस्पर दुगुना भयकर संघर्प छिड़ गया, और इन सब क्रिया-कलापों में आने वाले दस अगस्त के भीषण तूफान के लक्षण स्पष्ट दिखायी पड़ने लगे (१७६२)।

राज्य-शक्तियों के कार्यो से सकट मे दृढ़ता आ गयी थी। पेरिस के राज प्रासाद और उद्यानों के दमन तथा राज-परिवार की दीनता के समाचार ने इन राज्य-शक्तियो को तुरन्त कार्यवाही करने के लिए विवश कर दिया। सम्राट् फ्रांसिस अपनी फूफी (मौसी या बुआ) की सहायता करने के लिए बड़ा उत्सुक था और प्रशा की सहायता ने उसे और भी उत्साहित किया। यहीं पर अत नही हुआ। इस संयुक्त शक्ति में प्रशा इस समय सर्वाधिक शक्तिशाली साझीदार था और इसकी नीति का संचालन एवं नियन्त्रण वास्तव में अब फ्रेड्रिक विलियम द्वितीय के हाथ में ही था। मित्र सेना का सचालन-भार ब्रून्जविक के ड्यूक पर था। इसके कार्यो का संचालन तीन केन्द्रो से निर्देशित होता था। प्रशा के

लोगों के अध्यक्ष के रूप में ब्रून्जविक के ड्यूक को सीमाप्रान्त पार कर के लांग्वी, वर्दा और शालों के मार्ग से राजधानी की ओर बढ़ना था। होहेन्लोहे के राजकुमार को मैंज की ओर अग्रसर होना था, और सेनानायक क्लेयर फेयत (क्लायर फाय) को ऑस्ट्रियनों के साथ ला फायत की प्रगति को रोकना और पेरिस की ओर बढना था। इस प्रकार मोसेल, राइन और नीदरलैण्ड्स से राजधानी पर आक्रमण करने का निश्चय हो चुका था।

जब सेना काब्लेन्ज़ से चली तो ब्रून्जविक के ड्यूक ने एक मन्तव्य प्रकाशित किया जिसमे उसने ससद और उसके नेताओ के लिए बड़ी अपमानजनक भाषा का प्रयोग किया और राजपरिवार के अपमान के लिए अत्यन्त कठोर प्रतिशोध की धमकी दी। मन्तव्य में क्रान्ति के अत्याचारो का विवरण दिया गया और इसके संचालकों को अपनी भूलें स्वीकार करने और भविष्य मे अच्छा आचार दिखलाने के लिए कहा गया। फ्रांस की जनता से कहा गया कि वह फिर से अपनी पुरानी राजभक्ति को लौटाये और क्रान्ति के आदर्शो का त्याग कर दे। यदि यह सब न किया गया तो बड़े भयंकर परिणाम हो सकते हैं।

इस दु:शिष्ट पत्रक ने अंगार को धधकती ज्वाला में परिवर्तित कर दिया। देशभक्ति उग्र रूप से प्रज्वलित हो उठी, और फ्रास के एक कोने से दूसरे कोने तक यही शब्द गूँज रहे थे कि देश खतरे मे है और शत्रुओं से इसकी अवश्य ही रक्षा करनी चाहिए। जनता 'राजा के विश्वासघात' से बड़ी दु.खी हुई और उसे भविष्य में अन्य कोई अपकार करने के सर्वथा अयोग्य बना देना चाहती थी। इस प्रकार दसवी अगस्त के राजविद्रोह का सिद्धान्त, जैसा कि औलार का कथन है, देशभक्तिमूलक है, न कि गणतन्त्रमूलक। इकसठ नागरिकों के हस्ताक्षर कराकर एक प्रार्थनापत्र राजा को दिया गया जिसमे हस्ताक्षरकर्त्ताओं ने राजा के व्यवहार पर अपना असन्तोष एवं निन्दामूलक असहमति प्रकट की। अन्य बहुत-सी बातो के साथ-साथ उसमें निम्नलिखित वक्तव्य भी थे जो उस समय की भावनाओं को बहुत स्पष्ट रूप से बतलाते है—

"देश एक बहुत ही बड़े खतरे मे है। सर्वत्र स्वतन्त्रता पर आक्रमण हो रहे है। कार्यकारिणी शक्ति खुले रूप मे संविधान का ही आश्रय लेकर संविधान का विनाश कर रही है। हमने इसकी रक्षा की शपथ ली थी; परन्तु सबसे पहले, हमने यह शपथ ली थी कि या तो स्वतन्त्रतापूर्वक जियेंगे या मर जायेंगे।

"राष्ट्र अब कदापि उन हथकड़ियों को फिर से नही पहनेगा, जिन्हे वह क्रूरता की भीषण कन्दरा मे तोड़ चुका है; यह अपने प्रभुसत्ता के अधिकार को नही छोड़ेगा, जो कि तीसरी धारा के मनुष्य के अधिकारो के घोषणा-पत्र मे गम्भीरतापूर्वक स्वीकार किया जा चुका है।"

कुछ ऐसे लोग भी थे जो राजा के पतन की माँग कर रहे थे। 'मार्सेईवासियों के

गीत' को गाती हुई मार्सेईवासियों की विशाल सेना पेरिस की ओर बढ़ी। इस गीत का नाम बाद में मार्सेईयाई पड़ गया। भिन्न-भिन्न नगरों से आकर पेरिस मे स्वयंसेवक एकत्र हुए और १४ जुलाई, १७९२ को समागम के उत्सव पर 'राजा दीर्घजीवी हों' (वीव ले ओ) के उच्च स्वर नही सुनायी पड़े और राजा का बड़ा उल्लासहीन-सा स्वागत हुआ। विभाग (सेक्शनों) राजसिहासन का पतन चाह रहे थे। यह स्पष्ट है कि दसवी अगस्त से पहले ही फ्रांस का मन बदल चुका था और संघवादी (फेदेरल लोग), पेरिसवासी, पत्रकार और सेक्शनों के सभी लोग राजा को पदच्युत करने के पक्ष मे थे। संसद के सामने यह प्रश्न आ ही रहा था। नौ अगस्त को जनप्रिय नेताओ ने एक नयी कम्यून (म्युनिसिपैलिटी) की संस्थापना की और एक विद्रोह की योजना बनायी। राजा को यद्यपि इस बात का पूर्ण परिज्ञान था कि भाग्य का विकट खेल उसे अपना लक्ष्य बना रहा है, उसने अपने मन्त्रियो, राष्ट्रीय सुरक्षा सेना के उत्तरी सेनानायक (कमाण्डर) मादां, और नगराध्यक्ष (मेयर) पेस्यों को बुलाया और उन लोगो से अपने सुरक्षा की तैयारियाँ कर लेने के लिए कहा। मादा की योजना विफल हुई; जनसमूह ने राजकीय प्रासाद और उद्यानो (तुईलरीज्) पर आक्रमण कर दिया; स्विट्ज़रलैण्ड की सुरक्षा-सेना का एक-एक सैनिक बड़े वीरतापूर्ण प्रतिरोध के बाद मौत के घाट उतार दिया गया, और राजा तथा रानी ने आठ और नौ बजे के बीच राजप्रासाद को छोड़ दिया जिसमें उन्होंने फिर कभी प्रवेश नही किया। संसद भवन मे अध्यक्ष के आसन के पीछे स्थित एक छोटे-से कक्ष मे उनको टिकाया गया और वहाँ वे लोग ४८ घण्टे तक रहे। संसद ने राजा को उसकी रक्षा का आश्वासन दिया।

सर्वसाधारण जनसमुदाय राजप्रासाद में घुस पड़ा और वहाँ की बहुमूल्य वस्तुओ को उन्होंने हथिया लिया और फर्नीचर को तोड़-फोड़ दिया। उनके अतिचारों से तो विधान सभा के सदस्य भी आतकित हो गये। दाँतो की अध्यक्षता मे पेरिस की नयी नगरपालिका (म्युनिसिपैलिटी) के एक प्रतिनिधि मण्डल ने राजा की सिहासन-च्युति और एक राष्ट्रीय सम्मेलन को बुलाने की माँग की। वेर्निऔ ने प्रस्तावित किया कि राष्ट्रीय संसद यह आदेश देती है कि फ्रांस की जनता एक राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लेने के लिए आमन्त्रित की जाती है और "कार्यकारिणी का अध्यक्ष उस समय तक के लिए अपने पद से हटाया जाता है जब तक कि राष्ट्रीय सम्मेलन उन कार्य-नीतियो की घोषणा नहीं कर देता जिन्हें वह जनता की प्रभुसत्ता और स्वतन्त्रता तथा समानता के शासन को आश्वासनपूर्वक निर्विघ्न रूप से चलाने के योग्य समझता है।" दस अगस्त को राजतन्त्र की पदच्युति पर संसद के आदेश की मुहर लग गयी। एक अन्य अध्यादेश से यह स्वीकार हुआ "राजा और उसका परिवार ज़मानती कैदियों की तरह रहेगा और राजकुल-व्यय

(सिविल लिस्ट) का नियम अब से नही रहेगा।''

संसद ने अब जिरोन्दिस्त मन्त्रियो को फिर से पदभार दे दिया। रोलाँ, क्लैवियेर और सर्वा को उनके पूर्व पदो पर पुनः प्रतिष्ठापित किया गया, दाँतो को न्याय मन्त्री नियुक्त किया गया। उसके पक्ष मे २२० तथा विपक्ष मे ६० मत थे।

राज-परिवार को महान् कष्टो का सामना करना पड़ा। परिवार के बच्चो को भूखे और प्यासे रहना पड़ा, पर रानी का साहस अपराजेय था। मिराबो ने एक बार कहा था, "राजा के समीप केवल एक पुरुष है, वह है उसकी पत्नी," और यह कथन सत्य प्रमाणित हुआ। वह जानती थी, दुःख कैसे सहे जाते है। जब राजा की पदच्युति के अध्यादेश पर हस्ताक्षर हुए, तो सुना जाता है कि उसने कहा था, "ब्रून्जविक का ड्यूक, चाहे कुछ भी हो, तेईस तारीख को यहाँ पर पहुँच जायगा।" लुई अधिक यथार्थवादी था, उसने शोकाकुल स्वर मे इतना जोड़ दिया, "वे लोग कदाचित् मेरा प्रतिशोध ले सकें परन्तु वे मेरी रक्षा नही कर पायेंगे।" ससद ने लक्जम्बर्ग को राजा के निवास के लिए निश्चित किया, परन्तु अब पेरिस की कम्यून के आदेशानुसार उसे टैम्पिल मे भेज दिया गया, जहाँ उसे एक बन्दी के रूप मे रखा गया। महानियुक्तक (प्रोक्यूरर-जनराल) ने संसद को सूचित किया था—

"वे सडकें जिन पर वे चलेंगे दोनो तरफ से क्रान्ति के उन सैनिको मे भरी होंगी जो उन्हे इस मान्यता पर विश्वास करने के लिए लज्जित कर देंगे कि उन्ही मे वे दास है जो सदा निरकुशता के उत्साही समर्थक रहते थे। सबसे बडा दण्ड तो यही होगा कि वे इस प्रकार के नारे सुनेंगे—राष्ट्र दीर्घजीवी हो! स्वतन्त्रता दीघजीवी हो।"

इसके बाद से फ्रांस मे राजतन्त्र का अस्तित्व सर्वथा समाप्त हो गया और जैसा कि मिने ने ठीक ही कहा है, "अब से क्रान्ति का तानाशाही और मनमाना युग आरम्भ हो गया।" नेताओं के समक्ष इस समय सबसे बड़ी समस्या स्वतन्त्रता की नहीं वरन् सुरक्षा की थी।

राजा की सिंहासन-च्युति के पक्ष मे संसद ने क्यों अपना मत दे दिया? इस प्रश्न का उत्तर हमें ब्रिस्सौ के उस वक्तव्य में मिल जाता है जो उसने १७९३ मे जिरोन्दिस्त सिद्धान्तो के समर्थन में दिया था—(१) राजा की सिहासन-च्युति दोषो के मूल पर कुठाराघात होती, क्योंकि सोलहवें लुई का उत्तराधिकारी एक शिशु होता और एक राज-प्रतिनिधि मण्डल बनाया गया होता। पद-विरति इस प्रकार की सम्भावना को ही नष्ट कर देती थी। (२) यदि विधानसभा ने राजतन्त्र का विनाश कर दिया होता तो उसने अपनी शक्तियो को बहुत बढ़ा लिया होता। (३) पद-विरति तो गणतन्त्रवादी सिद्धान्तों का आश्रय लेकर किया गया कार्य था।

कार्यकारिणी शक्ति का भार एक समिति पर था जिसका अध्यक्ष था दाँतो। दाँतो एक महाशक्तिशाली क्रान्तिकारी था और मन्त्रिमण्डल में उसका लिया जाना जनतन्त्र की विजय का स्पष्ट लक्षण था। परन्तु कम्यून ने इस समिति की शक्ति को अति निर्बल कर दिया था। कम्यून फ्रांस की राजनीति में एक अतिभीषण तत्त्व बन चुकी थी। इसके प्रमुख नेताओ मे ये लोग थे—रॉबर्ट, ताल्लियाँ, हर्बर्ट, रोबेस्पियर, बिलौवारेन्न, फाब्र-देंग्लैन्तीन, शौमेत तथा अन्य लोग।

दस अगस्त की घटनाओं का स्पष्ट परिणाम हुआ बुर्जुआ-व्यवस्था का विनाश। औलार लिखता है, "इसी प्रकार से राजा के पतन ने बुर्जुआ-व्यवस्था का भी अन्त कर दिया; देशभक्तिमूलक भावो से सम्प्रेरित तथा बाह्य आतंक के भय से परिचालित सोलहवे लुई के विरुद्ध जनविप्लव का अन्त उसी दिन हुआ जिस दिन जनतन्त्र की सुप्रतिष्ठापना मे विजय मिली।[1]

युद्ध की प्रगति

ससद के सामने सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न था विदेशी शत्रुओ से देश की रक्षा करना। दाँतों इस समय शासनतन्त्र की आत्मा था और उसी को फ्रांस के साधनो को सुसघटित करने का भार सौपा गया था। दाँतो का जन्म शाम्पें के एक वकील-परिवार मे हुआ था, वह एक प्रतिभावान् स्नातक था और दाँते, शेक्सपियर, कार्नेई तथा रैबेलास की रचनाओं को उसने गम्भीरतापूर्वक पढ़ा था, और बाद मे उसने वकील का पेशा अपना लिया था। परन्तु उसने वकालत छोड़ दी और वह राजनीति मे कूद पड़ा; उसमे वह शक्ति और उत्साह था जो उसके समकालीनों में बडा दुर्लभ था। वह कोर्देलियर लोगो के क्लब का सदस्य बन गया और अपनी प्रतिभा के बल पर अन्य सहयोगियो की अपेक्षा शीघ्र विख्यात हो गया। वह एक चतुर एवं देशभक्त पुरुष था। अपने आरम्भिक जीवन मे वह एक निर्दय राजनीतिक वक्ता था, परन्तु जब वह मन्त्री बना तो उसने पर्याप्त अनुभवी प्रतिभा का परिचय दिया। उसके सहयोगियों की तुलना घबड़ाये हुए लिपिको के जत्थे से की जाती थी, परन्तु वह उन लोगों के बीच में एक पुरुष था। फ्रांस के प्रति उसका अनुराग बड़ा भावनात्मक था, और उसका साहस, धृष्टता तथा हिसात्मकता ये सब एक ही उद्देश्य से सम्बद्ध थे, वह उद्देश्य था फ्रांस की रक्षा और पुनः संघटन। मिशले के शब्दों मे वह भीषण रूप से सच्चा था और उसकी जोशीली प्रार्थनाएँ जो उसने अपने देशवासियों से की थी उसके अन्तःकरण की गहराइयों से निकलती थीं। यह सच है कि वह एक उथला राजनीतिज्ञ था परन्तु उसके

१. औलार, पृ० ७८।

पास मस्तिष्क और हृदय था ; और देश के संकट का विचार उसके आन्तरिक हृदय को झकझोर डालता था। 'मेरे नाम की सत्ता सर्वथा नष्ट कर दो, यदि सिर्फ फ्रास स्वतन्त्र हो सके' इन्ही शब्दो में वह चिल्लाया था और उसके साहस ने अभीष्ट-सिद्धि की थी। उसकी वाक्पटुता, उसकी अद्भुत इच्छा-शक्ति, उसकी सर्वोच्च देशभक्ति, उसकी असावधानी इन सबने उसे फ्रांस का सर्वस्व बना दिया था। उसका आदर्श था एक सयुक्त गणतन्त्र और वह एक अनुभवी राजनीतिज्ञ की स्पष्ट वाणी में कहता था कि यह केवल एकता के द्वारा ही स्थापित किया जा सकता है, फूट से नही। उसका चरित्र दोषों से विहीन नही था। वह आलसी और लालची था, और अपने कर्मचारियो का चुनाव करने में बड़ा असावधान था। उसके कार्यकर्त्ता कभी-कभी अयोग्य और बेईमान भी साबित हुए जैसे कामीय, देमूलाँ, और फ़ाब्रीदेग्लान्तीन्। श्रीमती रोलाॅ, जिसके पति का प्रभुत्व उसके कारण कम हो गया था, उससे अत्यधिक घृणा करती थी, और उसे 'अतिनिर्दय तथा क्रूर' कहती थी।

१६ अगस्त को संयुक्त शासन की सेना ने फ्रास मे प्रवेश किया और हंगरी की उस बाह्य सीमा पर घेरा डाला जिसकी भली प्रकार से सुरक्षा नहीं की गयी थी। २४ अगस्त को दुर्ग ने आत्मसमर्पण कर दिया।

३० अगस्त को विजेता लोग वर्दाँ की ओर बढ़े। वर्दाँ सीमा प्रान्त का एक अन्य महत्त्वपूर्ण दुर्ग था। पेरिस की कम्यून ला फायत् को एक बड़े भयंकर व्यक्ति के रूप मे देखती थी। उसने जन समुदाय के अनाचारो को सदा अस्वीकारात्मक दृष्टि से ही देखा। वह अपने आपको एक ऐसे दल के साथ सम्बद्ध नही करना चाहता था, जिसने देश मे अराजकता फैला दी हो। उसने इस बात का कड़ा विरोध शामदेमार में किया था। अगस्त की राज्यक्रान्ति के दिनो में पुनः उसने इस मनोवृत्ति का खण्डन किया। जिन घटनाओं को वह अपने समक्ष घटते देख रहा था उनमे उसे क्रान्ति का सर्वनाश स्पष्ट ही दिखायी दे रहा था, और क्रान्ति के प्रति पूर्ण आज्ञाकारी और ईमानदार रहने की वह शपथ ले चुका था। वह सेदां में अपनी सेना के साथ था जहाॅ उसे तीन कार्य-नियुक्त प्रतिनिधि मिले जो उसीके पास भेजे गये थे, उन्हें उसने बन्दी कर लिया। सेनानायक दिल्लौ और दयूमोरिये को उसने एक आदेश-पत्र भेजा कि वे उससे मिल जायँ। सेनानायक के इन विद्रोहपूर्ण कार्यो से चिन्तित होकर संसद ने उसको बन्दी करने का आदेश दे दिया। उसको अपने सैनिको से किसी प्रकार की सहायता की आशा नही थी, वे लोग उसको एक देशद्रोही के रूप में देखते थे। अतः वह फ्रांस की सीमाएँ पार करके नीदरलैण्ड में पहुॅच गया और वहाॅ तत्कालीन ऑस्ट्रियन सेनानायक के द्वारा बन्दी कर लिया गया। इस प्रकार ऑस्ट्रियन लोगों ने ही उसे वन्दी बना दिया, और जब नेपोलियन ने कैम्पो फोर्मियो की शान्ति-सन्धि पर १७६७ मे हस्ताक्षर किये तो उन्होने उसको मुक्त किया था।

संसद ने ला फायत् के भाग जाने पर आराम की साँस ली और ड्यूमोरिये को उसके स्थान पर नियुक्त कर दिया। इस प्रकार के अवसर पर वह फ्रेंच सेनाओ के लिए एक आदर्श नेता था, और अपनी ओजस्विता तथा उत्साह से उसने सैनिको में एक नयी आशा और साहस का संचार कर दिया। उनमे एक प्रकार का अजेय उत्साह भर दिया गया और वे लोग तूफानी ऋतु के होते हुए भी युद्ध के लिए पूर्णरूप से तैयार हो गये। सेना का यह अभिनव बल सेनानायक की व्यक्तिगत शक्ति और सघटनात्मक योग्यता के कारण था। यदि मित्रराष्ट्र राजधानी की ओर बढ़े होते तो निश्चय ही वे विजय प्राप्त कर लेते परन्तु ब्रून्ज़विक शीघ्रता में किये गये कार्यो में विश्वास नहीं रखता था। उसकी प्रगति बड़ी धीमी थी और फ्रांसीसी लोगों ने उसकी सावधानी से लाभ उठा लिया। दूसरी सितम्बर को वंर्दा ने आत्मसमर्पण कर दिया और पेरिस का मार्ग सर्वथा प्रशस्त हो गया। पेरिस पर इसका बड़ा भयंकर प्रभाव पड़ा। भूतलीय कारागृहो मे पाँच दिन तक तो बन्दियो का जनसंहार हुआ और इस सर्वसंहार में न आयु का और न पद का ही ध्यान रखा गया।

मित्रराष्ट्रों के इस प्रकार आगे बढ़ने से उत्पन्न जो भयकर दृश्य थे उनमें दाँतो ने राष्ट्रीय सुरक्षा का सघटन किया और स्वयंसेवकों को एकत्र करने मे उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी.। ड्यूमोरिये ने अपनी सेना का पुन: संघटन कर लिया था और वह एक ऐसी विजय की तैयारियाँ कर रहा था जिससे उसे व्यक्तिगत रूप से यश और फ्रांस को सुरक्षा की प्राप्ति होने वाली थी। अर्गा के मार्ग को अवरुद्ध करके उसने प्रशा के लोगों को राजधानी की ओर अग्रसर होने से रोक लिया, अर्गा उस समय फ्रांस का तापमापक-यन्त्र था। जब वह ब्रून्ज़विक के द्वारा अपने पद से च्युत किया गया तो रातोरात वह शीघ्रता-पूर्वक वहाँ से भाग गया और सेण्ट मेनिहोल्ड के समीप एक स्थान पर चला गया। यहाँ उसे केलरमान मिल गया। फ्रांसीसी सेनाओं की संख्या ६०,००० तक बढ़ गयी, और सब में विदेशी शत्रु से अपने देश की रक्षा करने की भावुक इच्छा अग्नि की तरह धधक रही थी। ब्रून्ज़विक की सेना घटा कर ४०,००० कर दी गयी और उसके लिए पेरिस की ओर बढ़ना बड़ा कठिन हो गया। वामी के गाँव के समीपस्थ एक छोटे से पठार पर केलरमान की सेना ने अधिकार जमा लिया और यहाँ २० सितम्बर को वह प्रसिद्ध युद्ध हुआ जिसका परिणाम फ्रांस के पक्ष में पूर्ण विजय हुआ। प्रशा की रक्षक-सेना ने लांगवी और वर्दा को छोड़ दिया और कोब्लान्ज़ को लौट पड़ी।

एक फ्रांसीसी लेखक वामी के युद्ध का वर्णन इन शब्दों में करता है—

"...और अब फ्रांसीसी तोपची जर्मनों पर गोलों की बौछार करने लगे। प्रशा के लोगों को भ्रम हो गया। वे लोग अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए। ये नीली सदरी वाले 'दर्जी और मोची' बिलकुल ठीक निशाने पर गोला छोड़ते थे, और इसके अतिरिक्त उनके

उत्साह ने पर्याप्त प्रभाव भी डाला। एकाएक ब्रुन्जविक प्रशा के राजा की ओर अभिमुख हुआ और उसने सुझाया कि युद्ध को अब समाप्त कर देना चाहिए। निरन्तर होनेवाली वर्षा में अब बाढें आने लग गयी थी ; और उसने अपना विरोध प्रकट किया। फ्रेड्रिक ने अपनी स्वीकृति दे दी। प्रशा के लोगों ने इस प्रकार अपने आपको नैतिक रूप में हर प्रकार से पराजित स्वीकार कर लिया।[1]

वामी के युद्ध ने राज्यक्रान्ति के इतिहास में एक नये युग का आरम्भ कर दिया। गणतन्त्रीय सेनाओं के सम्मान मे इस विजय से वृद्धि हुई और इसके नैतिक प्रभावों का मूल्यांकन सर्वत्र किया गया।

कम्यून तथा सितम्बर का जन संहार

राजा के सिहासन च्युत होने के बाद ऐसी सस्था जिसका फ्रास पर अत्यधिक आतंक हो वह थी पेरिस की कम्यून। समस्त वास्तविक सत्ता इसीमे केन्द्रित थी। दाँतों ने अपने उद्देश्यो की सिद्धि के लिए इसका पूर्ण उपयोग किया। संसद ने कम्यून की इस निरंकुशता का विरोध किया ; परन्तु यह अब अपनी इच्छा को साधिकार प्रकट करने मे अथवा विरोध का सफल प्रदर्शन कर सकने में असमर्थ थी। रोबेस्पियर जो अब जैकोबिन क्लब का अध्यक्ष था वह अब कम्यून का भी नायक बन गया। वह एक संकीर्ण, वितंडावादी, स्वार्थी और चालाक बना हुआ वकील था; मूर्खता की मात्रा उसमे अधिक थी। उसका स्वभाव बडा नीरस और कठोर था जिसका मुख्य उद्देश्य सत्ता प्राप्त करना था और इसके लिए वह हर प्रकार के सम्भव उपायों का प्रयोग कर सकता था। इस नीच अन्त:प्रकृति को वह अपने कृत्रिम बाह्याचारो से बिलकुल छिपा लेता था। कम्यून से धमकियाँ मिलने पर संसद ने स्विस सुरक्षा सेनाओ के बचे हुए लोगो के सैनिक न्यायाधिकरण द्वारा जॉच करने का आदेश दे दिया। नयी न्यायपरिषदो की माँग की गयी और उन सबको बन्दी करने का अधिकार मिल गया जिनके विरुद्ध राजकीय सुरक्षा से सम्बन्धित अपराध सिद्ध हो जायें। यह धमकी भी मानी गयी कि यदि कम्यून की उक्त माँग पूरी न हुई तो वह विप्लव खड़ा कर सकती है। इन अधिकारो को लिए हुए कम्यून इच्छानुसार कभी भी लोगो के घरो की तलाशी ले सकती थी।

न्याय-व्यवस्था में कम्यून का हस्तक्षेप सर्वाधिक भयंकर और विप्लवकारी था। सत्रहवी अगस्त की न्यायपरिषद् के नाम से एक नया न्यायालय स्थापित किया गया। इसमें दसवीं अगस्त की राज्यक्रान्ति से सम्बन्धित अपराधो की जॉच की जाती थी। इसके

१. मादलाँ : फ्रेंच रिवोल्यूशन, पृ० २६५।

निर्णयो पर कही भी अपील नही की जा सकती थी। अपराधियो की न्यायसम्मत जाँच करने के लिए नयी न्यायसमितियाँ नियुक्त की गयीं। कम्यून ने यह निर्णय दे दिया कि जिन बन्दियों को विशिष्ट न्यायपरिषद् दण्डित करेगी उस दण्ड-विधान का पालन करूजेल के भवन मे किया जाना चाहिए और वहाँ पर स्थायी रूप से फाँसी देने (गिलोटिन) का एक यन्त्र स्थापित कर देना चाहिए। याय-सम्मत जाँचे की जाती थी और अनेक व्यक्तियो को वहाँ दण्ड दिया जाता था। जब फाउन्तेन्वलो के राज्यपाल मान्तमोरे को अपराधमुक्त किया गया, जनसमुदाय इतना अधिक कुपित हुआ कि न्यायाधीश को उसके प्राण बचाने के लिए उसे पुनः बन्दी खाने मे ले जाना पडा।

लौग्वी के आत्मसमर्पण कर देने के निश्चय ने एक गम्भीर प्रभाव को जन्म दिया। दाँतो ने, जो कि उस समय न्याय-मन्त्री था, इस बात पर कम्यून की सहमति प्राप्त कर ली थी कि वह बारूद वाले शस्त्रो की खोज मे लोगो के घरो पर निवास-सम्बन्धी जाँच करने जायगा। उसका कहना था कि केवल पेरिस मे ८०,००० बारूद वाले शस्त्र होगे। उसका वास्तविक उद्देश्य प्रतिक्रियावादियो को बन्दी करना था और उदार लोगो के हृदय मे भीषण आतक पैदा करना था। सम्मेलन के चुनाव अब निकट होते जा रहे थे और दाँतों जो कि इस चुनाव मे एक प्रत्याशी था कम्यून का समर्थन एव सहाय्य प्राप्त करना चाहता था। इस तरह की जाँचें २८ से ३१ अगस्त तक चलती रही और सैकड़ो घरो की तलाशी ली गयी। अनेक व्यक्ति बन्दी हुए। ३१ अगस्त की सन्ध्या तक बन्दीखाने राजतन्त्रवादियो और न्याय-कार्य न करने वाले पादरियो मे भर गये थे। इन बन्दियो मे ऐसे लोग भी थे जिनपर देशभक्तो के विरुद्ध प्रतिक्रान्ति रचने का सन्देह किया जाता था।

वर्दा के पतन ने (२ सितम्बर) कम्यून की आशंकाओं को और भी बढ़ा दिया। दाँतों ने इस संकट को मिल-जुलकर पारकर करने की प्रार्थना की और उसने कम्यून तथा ससद मे इस विषय मे सयुक्त सघर्ष की याचना की, क्योंकि यह भीषण संकट दोनो के लिए समान था। जनसाधारण को शाँ द मार मे एकत्र होने के लिए कहा गया और यह भी कह दिया गया था कि जब सकटकालीन घण्टा बजेगा तो स्वयंसेवको के एक नये दल की भर्ती होगी। जनता के शक्तिशाली वक्ता कह रहे थे कि यहाँ प्रत्येक दिशा में देशद्रोही है और उनसे प्रतिहिसा तथा प्रतिशोध के लिए चिल्ला रहे थे। सभी देशभक्त भयभीत हो गये थे और उन्होने यह निश्चय कर लिया था कि बन्दीगृहो मे बन्द सभी बन्दियो को मार डाला जाय। कम्यून ने बन्दियो के सहार की योजना बनायी और इस कार्य की सम्पन्नता के लिए किराये पर जनहत्यारे लिये गये। बन्दीगृह खाली कर दिये गये और सिर्फ पेरिस मे लगभग १४०० व्यक्तियो की हत्या हुई। यही स्थिति

प्रान्तों में भी हुई। विभागो में एक अध्यादेश भेजा गया, जिसमें कहा गया था कि सार्वजनिक सुरक्षा के लिए आवश्यक सभी तरह की विधियों को प्रयोग में लाया जाय।

यह था फ्रांस के देशभक्तो का कसाईपन जो उन्होंने सार्वजनिक सुरक्षा के नाम पर किया था। बिलौ-वारेन्न बन्दीगृहों में यह कहता हुआ जाता था; "नागरिको, तुम अपने शत्रुओ का वध कर रहे हो, तुम अपना कर्त्तव्य पूरा कर रहे हो।"

रोलाँ ने इन दुःखद घटनाओं के सम्बन्ध में संसद को एक कड़ा पत्र लिखा, पर उसमें इतना साहस नही था कि वह इन हत्यारो की निन्दा करता। उसकी कायरता उसके इन शब्दों में स्पष्ट प्रकट होती है, "मै जानता हूँ कि जनता की प्रतिहिसा में क्रूरता है पर उसमें एक प्रकार का न्याय भी मिला हुआ है।" संसद भी इस जनसंहार को रोकने में सर्वथा असमर्थ थी और इसने शासन-व्यवस्था की पुनःस्थापना के लिए जिन विशेषाधिकारियों की नियुक्ति की थी वे लोग भी कुछ नही कर पाये। प्रत्युत उनमे से एक यह सूचना लाया कि अन्धकार के कारण वे लोग वहाँ जो कुछ हो रहा है उसे देख नहीं पाते हैं।

इन जनसंहारों का उत्तरदायी कौन था ? बन्दियो की सुरक्षा का उत्तरदायित्व दाँतों और रोलाँ पर था और यह स्वीकार कर सकना सर्वथा असम्भव है कि दाँतों को कम्यून की योजनाओं का ज्ञान नहीं था। वास्तव मे वह ये सब योजनाएँ जानता था। श्रीमती रोलाँ के शब्दों मे वह 'इन जनसंहारों मे एक नेता नहीं वरन् एक सहायक था।' ये जनसंहार उसके उद्देश्य को सुचारु रूप से पूरा करते थे और यद्यपि वह कम्यून के अत्याचारों को रोक सकता था, उसने उस आतंक को रोकने का भी कोई उपाय नहीं किया जो कम्यून ने सारे देश पर फैला रखा था। यह उसी के प्रयत्नो का फल था कि कम्यून अपने पूर्व पद पर प्रतिष्ठित हो सकी थी और यह उसी के प्रयास का परिणाम था कि बन्दीगृह ऐसे बन्दियों से भर दिये गये थे जिन पर राजनीतिक अपराधों का सन्देह किया जाता था। न्याय-मन्त्री की हैसियत से उसका यह कर्त्तव्य था कि वह प्रत्येक बन्दी की सुरक्षा का प्रबन्ध करे और उसको इस तरह की क्रूरता से बचाये। परन्तु उसने तो अपने उत्तरदायित्व को त्याग दिया जब उसने कम्यून के साथ संघर्ष को हटाने का प्रयत्न किया। उस अध्यादेश-पत्र पर जिसे फाब्र दे'ग्लान्तीन ने प्रचारित किया था, उसके (दाँतों के) हस्ताक्षर थे और इस मत के पक्ष में पर्याप्त प्रमाण है कि उसका व्यवहार एक 'अमानुषिक उदासीनता' का था। उसने कहा था, "मैं परवाह नहीं करता यदि वे लोग मुझे रक्त पीने वाला कहते हैं।" यही बात उसने एक अन्य अवसर पर भी दोहरायी और उसके दल के लोगों ने न केवल उस भीषण संहार को न्याय बतलाया, बल्कि वे लोग इसे 'आवश्यक' और 'क्षम्य' मानते थे। माउन्तेन के एक उदार प्रतिनिधि

रॉबर्ट लिन्दें ने इन 'जनसंहारों' को सैनिक विधान (मार्शियल लॉ) के सिद्धान्तो का पक्षपातहीन व्यावहारिक रूप कहा था। परन्तु उसने भी यह स्वीकार किया था कि यदि संसद, मन्त्रिपरिषद् और पेरिस के नगराध्यक्षों (मेयर) ने कम्यून के प्रस्तावो को मानने से इन्कार कर दिया होता तो इस अति दुखद घटना को रोका जा सकता था।

सितम्बर के इन जनसहारों मे प्राण देने वाले लोग राजनीतिक बन्दी और सामान्य अपराधी थे। अब्बे तथा ला फोर्स नाम के पेरिस के दो प्रधान बन्दीखानों मे लोगों को एक झूठी न्यायसम्मत जाँच करके मृत्युदण्ड दे दिया गया। सडकों पर शव बिखरे पड़े थे और मन्त्री एवं प्रतिनिधि इतने आतंकित हो गये थे कि कम्यून की इस अत्याचार-मूलक पैशाची नीति की निन्दा करना भी उनकी सामर्थ्य के बाहर था।

आतंक की इस भीषण छाया में सम्मेलन के लिए चुनाव हो रहे थे और उदार विचारो वाले लोगों ने भयभीत होकर अपने आपको इन चुनावो से दूर ही रखा। कम्यून का प्रभुत्व अब क्षीण होने लगा था; संसद बड़ी कठोरता एवं सतर्कता से इसके अतिचारो की जाँच करने लगी थी। विभागों में अपने विशेषाधिकारियों को भेजने का अधिकार कम्यून से छीन लिया गया था। एक अभिनव जनसंहार की योजना बनायी गयी परन्तु वेर्निओ ने इसका दृढ़ विरोध किया, और इस प्रकार यह पापाचार रुका।

वामी के युद्ध के बाद विधानसभा भंग कर दी गयी और फ्रांस के लिए एक नया संविधान बनाने के लिए राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन का अधिवेशन २१ सितम्बर १७९५ को हुआ। इसने राजतन्त्र का उन्मूलन कर दिया और फ्रांस को एक गणतन्त्र राज्य घोषित किया। इसी दिवस से फ्रांस मे गणतन्त्रीय वर्ष का आरम्भ हुआ। इस नयी व्यवस्था के आगमन के साथ-साथ (एमिग्रे) भगोड़ों और राजतन्त्र-वादियों को स्थायी देशनिकाले का आदेश भी मिल गया। राजा को अब शीघ्र ही न्याय समिति का सामना करना था।

अध्याय ६

राष्ट्रीय सम्मेलन

(२१ सितम्बर, १७६२—२६ अक्तूबर १७६५)

राजतन्त्र का पतन तथा ज़िरोन्दिस्त पार्टी

राष्ट्रीय सम्मेलन की बैठकें २१ सितम्बर, १७६२ से शुरू हुई। चुनावो में हिंमात्मक उपायो का प्रयोग किया गया और जैकोबिन्स के खरीदे हुए दलालों के द्वारा हानि पहुँचाये जाने के भय मे अधिकाश उदार सज्जनो ने अपने आपको निर्वाचन-कार्यो मे बिलकुल अलग ही रखा। अब रोबेस्पियर के आत्मनिषेधक अधिनियम जैसा कोई आदेश भी नही था और विधानसभा के लगभग २०० सदस्य निर्वाचित हुए, इनमें गरम दल के प्राय: सभी प्रमुख सदस्य आ गये थे: जैसे रोबेस्पियर, दाँतों, मारां तथा अन्य जैकोबिन नेता बहुसख्यक मतो से निर्वाचित हुए थे। और इनके अतिरिक्त प्रतिनिधियो का एक एसा नीच दल भी था जिसमे कोलो दे'र्बुआ, बिलौ-वारेन्नेस्, ताल्लिआँ प्रभृति लोग भी थे, ये सब लोग उग्र हिसात्मक प्रजातन्त्रवादी थे। फिलिप एगालिते (ऑर्लियाँ का ड्यूक) नाम का एक नागरिक भी निर्वाचित कर लिया गया था, जो कि सन्त लुई का वशज था। जैकोबिन्स ने उसको इसलिए सहायता दी थी कि यदि किसी प्रकार से प्रजातन्त्र राज्य सफल न हो सका तो वह राजसिहासन के लिए एक अच्छा उम्मेदवार होगा। इस सम्मेलन के सदस्य, जिनकी सख्या ७८२ थी निम्नलिखित दलों मे विभक्त थे—दक्षिण या उदार दल मे जिरोन्दिस्त पार्टी के सदस्य थे, इनके उद्देश्यों और सिद्धान्तो का परिचय अन्तिम अध्याय में कराया गया है। यद्यपि ब्यूजों जिरोन्दिस्त नही था, परन्तु वह उन्ही में बैठता था और मदाम रोलाँ उसे बहुत चाहती थीं। पूर्ववर्ती ससद मे बैठने वाले वक्ताओं के अतिरिक्त लान्जुनाए, राबौ, तथा बारेर भी थे। ये लोग बड़े चतुर और नीतिज्ञ थे तथा सबल पक्ष की ओर ही रहते थे। अन्य कुछ नये प्रसिद्ध व्यक्तियो ने भी यह दल स्वीकार किया था। जैसे लूवे, यह एक महाशक्तिशाली वक्ता था और जीवन को एक 'रोमांचकारी षड्यन्त्र' समझता था, मार्सेईय का छोटा बारबरो, यह बडा वाक्पटु और उत्साही था, इसे 'अदोनी जैसा सुन्दर' कहा

जाता था। इनके अतिरिक्त अन्य भी महत्त्वशाली लोग थे। इन प्रतिनिधियो का मन्त्रिपरिषद् पर अच्छा प्रभाव था, जिसमे इनके तीन सहायक थे—रोलॉ, क्लेवियर तथा लेब्रियॉ। लेब्रियॉ वैदेशिक कार्यो का मन्त्री था।

जिरोन्दिस्त लोग शासन के पक्षसमर्थक थे अत. सभी उदारमना व्यक्तियो की वे लोग आशा बन गये थे। वे फ्रास की एकता चाहते थे, परन्तु अपने विरोधियो के ढंग से नही। राजनीतिक अर्थ मे उनका एक सुव्यवस्थित दल नहीं था। उनकी एकता का आधार उनका सामाजिक मेलजोल के प्रति विशेष अनुराग था। श्रीमती रोलाँ और श्रीमती कौन्दोर्से की विलासपूर्ण बैठको का आकर्षण इन लोगो को एकता के सूत्र मे बॉधता था, इन महिलाओ के सम्पर्क मे ये लोग बड़ा आनन्द मनाते थे। जैसा कि एक आधुनिक लेखक ने कहा है, उन लोगो का एक 'विचित्र झुण्ड' था, जिसको केवल स्त्रियों के हाथों ने ही एकता मे बॉध रखा था। मध्यभाग मे वे लोग आसीन थे जो कभी दक्षिण और कभी वाम भाग के लोगों का समर्थन करने लग जाते थे। ये लोग बलहीन और अपने मतो के विषय में बडे अनिश्चित थे और इनका नाम उपहास मे 'दलदल मे फँसे हुए मेढक' रख दिया था। इन लोगों में कुछ योग्य लोग भी थे जैसे बर्ट्रण्ड बारेर, ग्रेगुआर, ब्लोआ का विशप, यह व्यक्ति नास्तिकता और भौतिकवाद की घोर निन्दा करता था और जिसकी सहानुभूति न जिरोन्दिस्त लोगो मे थी और न जैको-बिन लोगों से; तथा आब्बे सिये, जो सदा सविधानो को अपनी जेब मे रखता था और जिसके पास कठिन परिस्थितियो को हास्यरसपूर्ण चुटकुलो मे व्यक्त करने की अद्भुत कला थी। इसी दल के साथ लारेवलियेर—लेप्यू नाम का एक विलक्षण व्यक्ति भी बैठता था; प्रकृति, दर्शन और रहस्यवाद पर इस व्यक्ति के बडे मनोरजक और अद्भुत विचार थे। इन व्यक्तियो में ऐसा एक भी नही था जो सम्मेलन मे चलने वाले विवादों पर अधिकारपूर्ण प्रभाव डालने में समर्थ होता और क्योंकि इन लोगो मे दृढ़ निश्चय का अभाव था यह लोग राजनीति के तूफानी सागर मे इधर-उधर धक्के खा रहे थे। जैसा कि भावी घटनाओं से स्वयं ही ज्ञात हो जायेगा कि उनको तब अवसर मिला जब उदार और क्रान्तिकारी दोनों दलों ने अपने आपको पूर्णत· अयोग्य बना लिया।

सबसे मनोरंजक दल वामपक्ष का था, इसे अब गिरिशिखर कहा जाने लगा था क्योंकि इसके सदस्यो ने सबसे ऊँचे आसन अधिकार मे किये हुए थे। सामान्य रूप से ये लोग प्रजातन्त्रवादी थे यद्यपि ये लोग एक-दूसरे के मत से परस्पर सहमत नहीं थे। ये लोग शक्तिशाली और सुसंघटित थे। एक बार दृढ़ निश्चय कर लेने पर फिर ये लोग किसी बात से डरते नही थे और इहलोक के या परलोक के किसी भी निर्णय की परवाह नहीं करते थे। ये लोग विना किसी मनोव्यथा या अनुताप के अपना काम करते चले

जाते थे। प्राचीन शासन-व्यवस्था का इन पर भीषण आतंक-सा छा गया था और इसके पुनरागमन को रोकने के लिए ये लोग कठोर से कठोर उपाय प्रयोग में ला सकते थे। इन लोगों की कार्यनीति ज़िरोन्दिस्त लोगों से नितान्त भिन्न थी। एक आधुनिक लेखक ने इसको इन शब्दों मे संक्षिप्त किया है–

> "एक अत्यधिक अनुभवसिद्ध नीति : एक सामूहिक तानाशाही, राष्ट्र को एक घेरे की स्थिति में रख दिया गया, सभी प्रकार के विरोध कुचल दिये गये, देश को एक सर्वथा 'नया जन्म' लेना पड़ा, और उसके विचाराधीन हो जाने पर सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियम के समक्ष घुटने टेकना; एक अमानुषिक नीति, पर ऐसी जिसका औचित्य परिस्थितियाँ अनुमोदित करने वाली थी।"[१]

सुप्रसिद्ध जैकोबिन नेता थे, दाँतों, अपने मित्रो काउथोन और सन्त जस्ट के साथ रोबेस्पियर तथा मारां–'आमी दू प्यूपिल' (जन-मित्र) का रक्त-पिपासु सम्पादक जो वैज्ञानिक निर्दयता के साथ हत्या और प्रतिशोध का प्रचार करता था। उसकी प्रतिशोध की आकांक्षा ने उसकी बुद्धि को आच्छन्न कर लिया था और गन्दी गलियों के अनुभव ने उसको विचारों में उग्र तथा निराशावादी बना दिया था। यदि रोबेस्पियर जैकोबिन क्लब का प्रिय नेता था तो मारां उन लोगो का पूजा-पात्र था जो मानवीय उल्लास की अभिवृद्धि के लिए विनाश को एकमात्र उपाय मानते थे। इनके अतिरिक्त अन्य महत्त्वशाली लोग भी इस दल मे थे जिनका नामोल्लेख यहाँ आवश्यक है। ये लोग थे—कामीय देमूलें, फब्रें देग्लान्तीन्, लिजान्द्र नाम का कसाई, मानुअल, बिल्लौ-वारेन्न और कौलों दे'बुंआ। राज्यक्रान्ति के इतिहास में ये लोग अपने नामो को प्रसिद्धि देने वाले थे।

समग्र रूप से देखने पर सम्मेलन के सदस्यो के पास न कोई निश्चित नीति थी न निश्चित कार्यक्रम। इनकी स्थिति ठीक नौसिखिये वैज्ञानिकों की थी जो सत्य के अन्वेषण में एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग पर बढते जाते हैं। फ्रांस को एक प्रजातन्त्र राज्य घोषित कर देने का उनमें साहस नहीं था; वैदेशिक नीति की कोई योजना उनके पास न थी और चर्च तथा राज्य के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में उनके कोई सुव्यवस्थित विचार न थे। इसलिए उनके आचरण में समस्त समानता स्थापित करने वाले सिद्धान्तों के विरुद्ध प्रतिक्रिया सर्वथा स्पष्ट थी; और यही कारण था कि रोबेस्पियर, जो कि पादरियों का इतना विरोधी नही था और जिसने धनिक वर्गो को कहा था—"कीचड़ की आत्माओ, मै आप लोगो की सम्पत्ति पर कोई आक्रमण नही करूँगा," सम्मेलन पर

१. लुई मांदलें : फ्रेंच रिवोल्यूशन, पृ० ३०३।

इतने दीर्घ समय के लिए अधिकारपूर्वक छाया रहा। परन्तु इन प्रतिनिधियों के अन्तः-करण के भीतर द्वेष और ईर्ष्या का वास था जिसे वे और भी पुष्ट कर रहे थे; और सम्मेलन को शीघ्र ही प्रतिरोधी दलो के समर्थको के प्राणघातक युद्ध की रणभूमि का विकृत रूप लेना था।

सम्मेलन ने सबसे पहला कार्य जो किया वह था कूतों का प्रस्ताव स्वीकार करना। इस प्रस्ताव के अनुसार प्रत्येक वह व्यक्ति जो राजतन्त्र तथा जनता की प्रभुता के अपहरण के प्रयास की निन्दा नही करता था, 'राष्ट्र-द्रोह' (लेस-नासियों) के अपराध का भागी माना जाना चाहिए था। दाँतों ने प्रस्ताव रखा कि जीवन और सम्पत्ति की सुरक्षा का भार राष्ट्र को लेना चाहिए और सविधान जनता के समक्ष रखा जाना चाहिए। इसके बाद राजतन्त्र के उन्मूलन की बारी आयी, और कहा जाता है कि ब्लोआ के बिशप ग्रेगुआर ने कहा था, "नैतिक व्यवस्था मे राजाओ का वही स्थान है जो भौतिक व्यवस्था मे भयंकर जन्तुओं का।" २५ सितम्बर, १७६२ मे फ्रास को 'एक तथा अविभाज्य' प्रजातन्त्र राज्य घोषित कर दिया गया, और इस घोषणा का सम्पूर्ण फ्रास में अत्यधिक उल्लास से स्वागत हुआ।

दोनों दलों के पारस्परिक मतभेद पुनः द्विगुणित उत्साह और शक्ति लेकर बढ़ने लगे। दाँतो जिरोन्दिस्त लोगो के साथ मिलकर कार्य करने को प्रस्तुत था परन्तु उन लोगों ने बड़ी शेख़ी से उसके प्रस्तावों को अस्वीकृत कर दिया और उस पर सितम्बर के मनुष्य संहार मे अपराधी को सहायता देने का और निरंकुशता को लक्ष्य बनाने का अभियोग लगाया। उसने यह कहकर कि कदाचित् श्रीमती रोलाँ को भी मन्त्रिमण्डल में ले लिया जाय, रोलाँ पर आक्रमण किया था और इसने उन लोगों की भावनाओ को कड़ी चोट पहुँचायी थी। दोनों के विवाद के विषय थे—रोलाँ, रोबेस्पियर, मारां और पेरिस। सभी जैकोबिन प्रतिनिधि रोलाँ की निन्दा करते थे और उसके मन्त्रिमण्डल का उपहास करते थे। लूबे ने रोबेस्पियर के विरुद्ध बड़े गम्भीर अभियोग लगाये थे परन्तु वे प्रमाणित नहीं किये जा सके थे। यह एक प्रकार से पराजय को स्वीकार करना था। कुछ समय के बाद ब्रिस्मौ, लूवें और रोलाँ को जैकोबिन क्लब से बाहर निकाल दिया गया। इस प्रकांर दोनों दलों ने अपने समय को पारस्परिक दोषारोपणों में ही नष्ट कर दिया। जब राजा की मृत्यु का कठोर प्रश्न सामने आया तो उसने ज़िरो-न्दिस्त दल के भाग्य का निर्णय किया।

राजा की मृत्यु का प्रश्न राजनीतिक दलों के सामने सबसे निर्णयकारी समस्या थी। जैसा कि लार्ड ऐक्टन ने कहा है, यह प्रश्न इसलिए विशेष महत्त्व रखता था कि यह इस बात का निर्णय करने वाला था कि जैकोबिन और ज़िरोन्दिस्त लोगों में कौन

बचेगा और शासन करेगा। जैकोबिनो ने जिरोन्दिस्तों पर यह आरोप लगाया कि ये लोग राजा की सेवा करना चाहते थे, परन्तु यह अभियोग सत्य नहीं था। जैकोबिन लोग राजा को जनशत्रु कहकर धिक्कारते थे और उसका नाम लुई कापे रख दिया था। सम्मेलन मे इस विषय पर पर्याप्त वाद-विवाद चला और सॉंत जूस्त ने जोकि मृत्युदण्ड के पक्ष मे था, कि राजा ने जो कुछ किया था उसके लिए वह मृत्युदण्ड का अधिकारी नही बनाया जा रहा है, वरन् वह जो कुछ था वही उसे मृत्युदण्ड के योग्य बना रहा है। रोलाँ ने एक लौह सन्दूक मे से कुछ विश्वस्त पत्रक प्रस्तुत किये जिन्हे वह बड़े परिश्रम के बाद खोज पाया था। अब तो राजा के ऊपर यह अभियोग लगाना बड़ा सरल हो गया कि उसने अपने स्वार्थो की सिद्धि के लिए अनुचित उपायो का प्रयोग किया था और उसने मिराबो को घूस दी थी। यह निर्णय हुआ कि राजा की न्याय-सम्मत जाँच खुले रूप से की जाय। उसे यह अनुमति दे दी गयी कि वह अपनी सुरक्षा के लिए एक परामर्श समिति रख सकता है। राजा ने मैलशेर्वे को अपनी सुरक्षा के लिए चुना, उसके साथियो मे एक सुप्रसिद्ध न्यायवेत्ता त्रॉंशे और दसेज भी थे। राजा को जैसे अपने भावी दुर्भाग्य का पूर्वाभास हो गया था, सुना जाता है उसने कहा था, "मुझे विश्वास है कि वे लोग मेरे प्राण ले लेंगे, परन्तु चिन्ता की कोई बात नही। मेरी जाँच सब लोग देख लेंगे, यही बात मै चाहता भी था। सच तो यह है कि मुझे इससे लाभ ही है, मैं अपनी स्मृति पर कोई भी लाछन नही लगा रहने दूँगा।" राजा ससद के न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ। जिरोन्दिस्त उसको बचाना चाहते थे, पर उनमे इतना साहस नही था कि वे दृढ होकर कोई कार्य कर पाते। वे लोग अपने आपको न तो अभियुक्त के पक्ष मे और न विपक्ष में घोषित करना चाहते थे और उनकी इस द्विविधा-पूर्ण मनोवृत्ति ने ही उनके सर्वनाश के बीज बोये। राजा के पक्ष मे किसी भी प्रकार की भावधारा देश मे उत्पन्न नही की जा सकती थी। पेरिस मे एक राजतन्त्रवादी पुस्तिका का प्रचार किया गया परन्तु जनता इस विषय मे उदासीन रही। सेनाएँ भी इस समाचार से विक्षुब्ध नही हुई। दया और करुणा की भावनाएँ जगाने के लिए गीत गाये गये, परन्तु सब व्यर्थ हुआ। औलार लिखता है, कि इस समय राजा का देशद्रोह कुछ विशिष्ट गुप्तपत्रो द्वारा सिद्ध हो चुका था जो राजप्रासाद एव उद्यानो से प्राप्त हुए थे। होटलों और सार्वजनिक मण्डलियों में अब इन्ही की चर्चा विशेष रूप से होती थी। एक झूठ-मूठ की जॉच के बाद राजा को अपराधी घोषित कर दिया गया। राजा की जॉच समय की भावनाओ को प्रदर्शित करती है। सम्मेलन के सम्मुख चार प्रश्न रखे गये।

१. क्या राजा सार्वजनिक स्वतन्त्रता तथा राज्य की सामान्य रक्षा के विरुद्ध षड्यन्त्र करने का दोषी है? इसका उत्तर सभी प्रतिनिधियों (७०७) ने

'हाँ' के रूप मे दिया।

२. क्या सम्मेलन का लुई के विरुद्ध निर्णय जनता मे अनुमोदित कराया जायगा।
   ४२४ प्रतिनिधियो ने 'नही' और २८७ ने 'हाँ' कहा।

३. लुई को क्या दण्ड दिया जायगा ?
   एक के बहुमत से निश्चय हुआ कि राजा को फाँसी पर लटकाया जाय।

४. क्या राजा को दण्ड देना स्थगित किया जाय ?
   यह प्रस्ताव ७० अधिक मतो से अस्वीकृत हुआ। ३८० समर्थन में और ३१० विरुद्ध हुए।

जिरोन्दिस्तो ने फाँसी को मुल्तवी कराना चाहा परन्तु उन्हे समर्थन नही प्राप्त हुआ। राजतन्त्रवादियो ने राजा को बचाने की चेष्टा की परन्तु वे बढ़ती हुई जनरोष तथा वैमनस्य की लहर को न रोक सके।

इस घोषणा के पक्ष मे केवल एक मत अधिक था (३६१ पक्ष मे और ३६० विपक्ष मे)। मृत्यु-दण्ड स्वीकार कर लिया गया। उसके वकील ने दया की याचना की, परन्तु उसकी किसी ने न सुनी। जिरोन्दिस्त लोगो ने राजा के मृत्युदण्ड को कुछ समय के लिए स्थगित करने की प्रार्थना की, परन्तु माउन्तेन के दबाव के कारण यह प्रार्थना भी नही मानी जा सकी। २१ जनवरी, १७९३ की प्रातः को राजा (अब उसे 'लुई कापे' कहा जाता था) तांपल मे से क्रान्ति-स्थान (प्लास दे ला रेवोल्युस्यो) पर लाया गया जहाँ फाँसी देने के लिए एक मचान पहले ही बना लिया गया था। फाँसी देने वाले ने उसके हाथो को बाँधना चाहा पर राजा ने विरोध किया, और तभी अपने हाथ बँधने दिये जब उसके दोष स्वीकार कराने वाले ने उसे विरोध करने से मना किया। अपने निकट एकत्र हुए विशाल जनसमुदाय को वह कुछ शब्द कहना चाहता था और उसने सचमुच इतना कहा भी, "मैं निरपराध मर रहा हूँ, मै अपने शत्रुओं को क्षमा करता हूँ; और आप सब भाग्यहीन जनो. . . .।" उसकी बात पूरी होने से पहले ही उसका स्वर उन ढोलों की ध्वनि में समा गया जिनको उस समय बजाने का आदेश पहले से दिया जा चुका था। राजा का सिर काट दिया गया। सच बात तो यह है कि लुई ने भूल से अपने पूर्वजों के अपराधो का प्रायश्चित किया; वे उसके लिए एक क्रान्ति की वसीयत कर गये थे। वह उन भावावेशो का शिकार हुआ जिनको उत्तेजित करने मे उसका कोई हाथ नही था। वह एक भला ईसाई था। अपनी प्रजा का हृदय से कल्याण चाहता था। वह एक बहुत ही सफल एव श्रेष्ठ राजा हुआ होता यदि उसकी इच्छा शक्ति मे बल और दृढ़ता का अभाव न होता।

इस प्रकार सोलहवाँ लुई राष्ट्रीय सम्मेलन के आदेश से विनष्ट हो गया। वह

बलहीन और अस्थिर चित्त था, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता। जब रीक्स में उसके सिर पर राजमुकुट रखा गया, तो उसने कहा था, "यह मुझे कष्ट पहुँचाता है।" उसके भाई ने, जो कि उसे खूब अच्छी तरह से जानता था, कहा था कि राजा का किसी एक निर्णय पर दृढ़ रहना उतना ही कठिन था जितना कि तेल में भींगी हुई हाथी दाँत की गेंदों का इकट्ठा रखना। वह दूसरों से बड़ी सरलतापूर्वक प्रभावित किया जा सकता था, और रानी से तो वह शीघ्र प्रभावित हो जाता था। वह एक संवैधानिक राजा की तरह कार्य करने के लिए सदा तैयार रहता था परन्तु दुर्दैव के क्रूर हाथों ने उसके सभी प्रयासों को निष्फल कर दिया। दृढ और योग्य मन्त्रियों की सहायता से वह फ्रांस को इस महा संकट से बचा सका होता, परन्तु न्याय निर्णय के अनुकूल कार्य करने की उसमें योग्यता नही थी। उसके जीवन की सबसे बड़ी भूल थी उसका फ्रांस से भाग निकलने का प्रयास। इस कार्य ने उसे क्रान्ति का एक शत्रु प्रमाणित कर दिया और उसके सम्बन्ध में हर प्रकार के सन्देह पैदा कर दिये। उसकी ईमानदारी और सच्चाई पर सन्देह किया जाने लगा और सर्वसाधारण के आतक को दूर करने का कोई उपाय उसके पास नही था। लुई विफल हुआ क्योंकि वह एक तूफान को संचालित करने के लिए पैदा नहीं हुआ था; शान्त और सामान्य परिस्थितियो में वह पर्याप्त कुशल शासक हुआ होता परन्तु उन तूफानी दिनो मे वह इस कार्य के सर्वथा अयोग्य था। उसे एक सन्त या एक वीर नायक के रूप में चित्रित करना नितान्त भ्रामक है, और न ही उसे दोष से सर्वथा मुक्त किया जा सकता है। यह सत्य है कि उसने विदेशी शक्तियों की सहायता से अपनी खोयी हुई प्रभुता को पुनःस्थापित करने का प्रयास किया था और ऐसा करने मे वह फ्रांस के लिए दुर्गति और युद्ध का सन्देशा लाया। यह बहुत ही दुःख की बात है कि उसने कभी इस बात का अनुभव नही किया कि उसने देश के हितों के विरुद्ध कार्य किया था। जैसाकि लार्ड ऐक्टन ने लिखा है, "उसके जीवन-नाट्य का सबसे दुःखान्त अंक उस की फाँसी नही है प्रत्युत यह तथ्य है कि वह मृत्यु के समय आन्तरिक रूप से सन्तुष्ट, अपने अपराध से अपरिचित, उन अवसरों को भूला हुआ जिनका उसने स्वयं ही दुरुपयोग किया था तथा उसके कारण हुई जनता की दुर्गति से अपरिचित था। उसकी मृत्यु एक पश्चात्ताप करने वाले ईसाई की तरह हुई पर वह अन्त तक एक अनुतापहीन राजा रहा।"

अब जिरोन्दिस्त लोगों का पतन नितान्त अनिवार्य था। राजा की फाँसी ने विदेशी शक्तियों को भयभीत कर दिया था। क्रान्ति पर राजहत्या का दोष लग चुका था। स्पेन ने हथियार उठा लिये और तत्काल ही गणराज्य ने उसकी चुनौती को स्वीकार कर लिया। रूस के राजदरबार में शोक मनाया गया और गणतन्त्र के समर्थकों की

निन्दा की गयी। यूरोप की कतिपय राज्य-शक्तियों ने मिलकर फ्रांस के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा बनाया और १७६३ के प्रारम्भिक महीनों मे प्रगति बिलकुल शून्य रही। फ्रांस के सेनानायक द्यूमोरिये की पराजय और पदच्युति ने बहुत ही गम्भीर प्रभाव डाला और देश के समक्ष उपस्थित होने वाले महासंकट के प्रति सम्मेलन अब सर्वथा सचेत हो गया था। दाँतों ने एक शक्तिशाली कार्यकारिणी के निर्माण का सुझाव दिया। उसने यह भी कहा कि जो लोग क्रान्ति के विरुद्ध रहे थे उनकी यथोचित न्यायसम्मत जाँच करने के लिए एक जाँच समिति की स्थापना की जाय। सामान्य रक्षा (जेनरल डिफेन्स) समिति के स्थान पर अब एक सार्वजनिक सुरक्षा समिति बनायी गयी, इसमें नौ व्यक्ति थे और इसको पूरे-पूरे अधिकार दिये गये थे। ज़िरोन्दिस्त लोग इन सब कार्यवाहियों से सहमत नही थे, परन्तु उन्होने इसको रोकने का कोई भी प्रयास नही किया।

कुछ ही समय के अनन्तर दोनों राजनीतिक दल आमरण संग्राम मे जुट गये। मारां ने ज़िरोन्दिस्त लोगो को 'लघु राजनीतिज्ञ' कहा और उसके उनके विरुद्ध कहे गये अपमानजनक एवं निन्दापूर्ण शब्दों ने उनकी बड़ी हेठी कर दी। उस पर मुकदमा चलाये जाने का आदेश हुआ पर वह छूट गया और इस बात ने ज़िरोन्दिस्त लोगों को बड़ा बदनाम कर दिया। कम्यून की कार्यवाहियों को रोकना अब आवश्यक समझा जाने लगा और इसके आचरणों की जाँच करने के लिए बारह व्यक्तियों की एक समिति नियुक्त की गयी। ऐबर को बन्दी कर लिया गया और जब उसके नज़रबन्द होने का विरोध हुआ तो सम्मेलन के अध्यक्ष आइनार (ज़िरोन्दिस्त) ने उत्तर दिया, "यदि राष्ट्र के प्रतिनिधियों पर जरा सी उँगली भी लगायी जाती है तो विश्व के मानचित्र से पेरिस का अस्तित्व ही पूर्णतः लुप्त हो जायगा, और सैन नदी के तट पर भ्रमण करने वाले महानुभावों को यह खोजना पड़ जायगा कि इस प्रकार का नगर कभी यहाँ था भी या नही।" दाँतों दक्षिणपन्थियो की ओर अभिमुख होकर बोला, "माउन्तेन (गिरिशिखर) और उन कायरों में कोई समझौता नहीं जो एक अत्याचारी को बचाना चाहते थे।" राष्ट्रीय सुरक्षा सेना के अधिनायक आँरूआँ की सहायता से कम्यून ने यह माँग की कि ज़िरोन्दिस्त दल के २२ नेता आत्मसमर्पण कर दें। उन्होने गृहमन्त्री की पत्नी श्रीमती रोलाँ को नजरबन्द कर लिया। संसद-भवन को घेर लिया और चारों तरफ सेनाएँ तैनात कर दी गयी जिससे कि कोई भी भागने न पाये। सम्मेलन ने आत्मसमर्पण कर दिया। ज़िरोन्दिस्त प्रतिनिधियों का बहिष्कार कर दिया गया और उनको नज़रबन्द करने के प्रश्न पर मत लिये गये। यह था दो जून का राजकीय अवैधानिक निर्णय (कुदे'ता)। जब कूथों ने २२ सदस्यों को नज़रबन्द करने का प्रस्ताव रखा तो एक ज़िरोन्दिस्त चिल्ला उठा, "कूथों को रक्त से पूरित एक गिलास दे दो; वह प्यासा है।"

अब फ्रांस को एक ऐसे निरंकुश शासन मे रहना था जिसका समानधर्मी उसने कभी पहले नही देखा था। यह आतंक का निरंकुश शासन था।

प्रथम आतंक

दूसरी जून के अवैधानिक कार्य ने गिरिशिखर (माउन्तेन) को अपने समय का स्वामी बना दिया। सम्मेलन में उनका ही प्रभुत्व था और कछार या मैदान को वे बलपूर्वक सहमत कर लेते थे। परन्तु पेरिस के कम्यून के रूप मे उनका एक भीषण प्रतियोगी अभी वर्तमान था जो अब तो बड़ा शक्तिशाली बन चुका था। अब प्रभुत्व का संघर्ष तो केवल जैकोबिन लोगों और कम्यून में ही रह गया था। फ्रास के बाहर गणतन्त्री सेनाओं की पराजय और प्रान्तो में होने वाले विद्रोह ने एक नयी समस्या खड़ी कर दी। सार्वजनिक सुरक्षा समिति के, साधारण बचाव समिति के (पोलीस), क्रान्तिकारी न्यायाधिकरण (ट्राइब्यूनल) के और अपने-अपने कार्य मे लगे हुए उन प्रतिनिधियों के जो स्वेच्छाचारिता तथा मनमाने अधिकारो से सज्जित होकर प्रत्येक विभाग मे भेजे जाते थे, अधिकारों में वृद्धि करके उन्होंने इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया। वे लोग एक नये संविधान का आधार लेकर सभी विभागों को पुन: संघटित करके अपनी पूर्ण प्रभुता स्थापित करना चाहते थे। इसका प्रारूप हेरौल्त सेशेलीज़ ने तैयार किया था और २४ जून, १७६३ को एक संक्षिप्त बहस के बाद यह स्वीकार कर लिया गया। यह एक बहुत जनतन्त्रवादी संविधान था; (१) विधान सभा का चुनाव करने में सभी पुरुष मताधिकारी हों। घरेलू नौकर इस अधिकार से वंचित समझे जायें। गुप्त मतदान अब आवश्यक नही रह गया। (२) विधान सभा का चुनाव प्रतिवर्ष हो, वास्तव में विधान सभा का स्वरूप अब केवल प्राथमिक सभाओं की एक समिति का रह गया था। यह आदेश दे सकती थी, पर सार्वजनिक समिति के बिना कानून नहीं बना सकती थी। (३) सर्वोच्च कार्यकारिणी परिषद् में २४ सदस्य रखे गये। ये लोग विभागों के द्वारा परोक्ष निर्वाचन से चुने गये सदस्यो की एक सूची में से विधान सभा के द्वारा मनोनीत किये जाते थे। इस परिषद् को सभी सदस्यों एवं कार्यकारिणी के अधिकारियों का अनुशासन एवं नियन्त्रण रखना था। (४) यह स्पष्ट रूप से घोषित किया गया कि सर्वोच्च प्रभुसत्ता जनता में निवास करती है। (५) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, प्रकाशन की स्वतन्त्रता, धार्मिक सहिष्णुता तथा सभा करने के अधिकारों की रक्षा के नियम बनाये गये। शिक्षा को सर्वजनसुलभ कर दिया गया। एक निर्धनों का अधिनियम (पूअर लॉ) भी बनाया गया और राजविद्रोह को किसी मत के विरोध करने का वैधानिक उपाय स्वीकार कर लिया गया। मानव के अधिकारों में समानता को

सबसे प्रथम स्थान दिया गया और सभ्य समाज का प्रधान लक्ष्य सुखी जीवन घोषित किया गया। यह संविधान कभी भी क्रियात्मक रूप न ले सका। जिस समय में इसका निर्माण हुआ था उसके लिए यह बिलकुल अनुपयुक्त था। इस समय तो फ्रांस को एक शक्तिशाली और अविभाजित कार्यकारिणी की आवश्यकता थी जो अव्यवस्था और हिंसा के तत्त्वों को निर्दयतापूर्वक कुचल सकती।

भगोड़ों और न्याय-कार्य मे भाग न लेने वाले पादरियों के विरुद्ध और भी ज्यादा कठोर कानून बना दिये गये और उनको सदा के लिए देशनिष्कासन मिल गया। प्रकाशन की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। मण्डलियाँ और समितियाँ जनता की उत्साहित भावनाओ को दबा देती थीं और उनको पूर्णतः राजभक्त बना रही थीं। प्रान्तों में होने वाले झगड़ों के समाचारो ने पर्याप्त उत्तेजना फैला दी और ज़िरोन्दिस्त प्रतिनिधियों में से कुछ के वन्दी होने और कुछ के भाग जाने ने इस उत्तेजना को और भी तीव्र कर दिया। काएँ राजद्रोहियों का मुख्य केन्द्र बना हुआ था। ला बान्दो मे एक भयंकर कृषि-आन्दोलन चल रहा था। क्रुद्ध किसानों ने बहुत से अत्याचार किये और राजद्रोहियो और सम्मेलन के सेनानायकों में अनेक युद्ध भी हुए। अन्त में वैन्दीं निवासी पराजित हुए और गणतन्त्री सेनाओ ने उन पर बड़े से बड़े अत्याचार किये। नगर भी शस्त्र लेकर जाग पड़े। ल्यो एक महान् औद्योगिक केन्द्र था और यह क्रान्ति के विरुद्ध था क्योंकि वहाँ उत्पादित किये गये पदार्थों का विक्रय उच्च वर्गो के लोग ही करते थे। इस नगर की प्रगति को कुचल डाला गया और स्थानीय नेता का जीवनान्त कर दिया गया। सम्मेलन क्रोधाग्नि से प्रज्वलित हो उठा। इसने एक अध्यादेश जारी कर दिया कि ल्यों का सर्वनाश कर दिया जाय और उसका नाम बदल दिया जाय। मार्सेई, बोर्दो, तूलौ तथा अन्य स्थानो पर होने वाले इस प्रकार के आन्दोलन भी शीघ्रतापूर्वक दबा डाले गये और राजतन्त्रवादियो को कुचल दिया गया। तूलौ पर घेरा डालने में बोनापार्ट ने भी भाग लिया और यह वीरकृत्य उसके सम्माननीय सैनिक जीवन की प्रथम महत्त्वपूर्ण घटना है। सम्मेलन के शत्रु एक-एक करके कुचल डाले गये, परन्तु ऐक्टन के शब्दों में, "वह पुरुष ढूँढ़ा जा चुका था जिसे क्रान्ति को तलवार के शासन का एक सोपानमात्र बना देना था।[1]

आतंक के हथियारों ने अब तक अपना काम करना आरम्भ कर दिया था।[2] कई

१. लेक्चर्स ऑन दि फ्रेंच रिवोल्यूशन, पृ० ३१६।

२. ये हथियार थे—राष्ट्रीय सम्मेलन, सार्वजनिक सुरक्षा समिति, सर्वजन-बचाव-समिति, और अपने कार्य पर गये हुए प्रतिनिधिगण।

लोगों को फाँसी दे दी गयी, इसने जनता के हृदयों को करुणा और जुगुप्सा से परिपूरित कर दिया। यही वह समय था जब मारां के वक्ष पर एक शान्त, सभ्य और सुन्दर लड़की ने, जिसका नाम शालौंत कौर्दे था, छुरे का मरणान्तक आघात किया (१३ जुलाई)। वह पकड़ ली गयी और जब पूछा गया कि उसने ऐसा क्यों किया तो उसने उत्तर दिया, "लाखों व्यक्तियों के प्राण बचाने के लिए।" उसका सिर काटने का आदेश दिया गया और कहा जाता है कि वह अपनी मृत्यु के समय भी वैसी ही प्रसन्नमुख थी। यह तथ्य सबसे आश्चर्य का कारण बन गया था। मारां की मृत्यु ने बड़े कुपरिणामों को जन्म दिया। इसने जिरोन्दिस्त लोगों की स्थिति को और भी अधिक दु:सह बना दिया क्योंकि उनके शत्रु खुले रूप से उन पर यह अभियोग लगाते थे कि उन्होने ही शालौंत को अपना कार्य-साधक बनाया था। दूसरी बात यह थी कि इसने ऐबर नाम के एक बड़े उग्र विचारो वाले व्यक्ति की उन्नति का मार्ग प्रशस्त कर दिया था, जिसका 'पिता दयूशेन' (ल पेयर् दयूशेन) नाम का पत्र 'जनमित्र' से कहीं अधिक उग्र हिंसात्मक था। यह भी मारां की तरह फ्रासियो का समर्थक, सिर काट देने का पोषक था और कार्देलिये क्लब तथा कम्यून में इसका विशिष्ट प्रभाव था। उसका एक दूसरा मित्र कम्यून मे था जिसका प्रभाव भी उसी की तरह बहुत अधिकारपूर्ण था।

फ्रांस का शासन इस समय घोर अव्यवस्था की दशा में था। इसमें कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ थी जिनमें बहुधा परस्पर मतभेद रहता था। सम्मेलन अब अपना पुराना प्रभुत्व खो चुका था। सार्वजनिक सुरक्षा समिति[1], जिसमे बारह सदस्य थे, अब अपने अध्यादेशों को मनवाने में असमर्थ थी। कम्यून बहुत शक्तिशाली बन गयी थी। न सम्मेलन और न समिति ही इसको अब अपने नियन्त्रण में रख सकते थे। इसने वैतनिक गुण्डे रखे हुए थे; राष्ट्रीय सुरक्षा सेना इसके अधिकार में थी और इसे सर्वसाधारण का समर्थन प्राप्त था। कम्यून में सबसे अधिक प्रभाव ऐबर और शौमेत का था, ये दोनों ही हृदयहीन सिद्धान्तवादी थे। ये दोनों सभी पुरुषों को समान स्तर पर ला देने के लिए समुत्सुक और पुरुष-पुरुष के समस्त भेदों का सर्वथा अन्त कर देने के लिए अत्युत्कण्ठित थे। अपने उद्देश्यों की पूर्ति में उन्होने आतंक को अपना साधन बनाया। ऐबर ने, जो एक कठोर और निर्दय आततायी था, पेरिस के सभी गुण्डो, डाकुओं, हत्यारो और बदमाशो को एकत्र किये हुए था, जो

१. बारह सदस्य ये थे—जों बौं सें आन्द्रे; बारेयर; काउतों; एरौल्त दे सशेल; मार्न के प्रियूर; सेंज्युस्त; राबर्ट लिन्दें; रोबेस्पियर; कर्नो; कोतेदो'र का प्रियूर; कोलों दे'बुंआ; और बिलौद-बारेन। ये नाम आयुक्रमानुसार दिये गये हैं। दाँतों निर्वाचित नहीं हुआ था।

सदा उसके आदेशों की प्रतीक्षा करते रहते थे और उसकी अमानुषिक आज्ञाओ को पूरा करने के लिए सदा प्रस्तुत रहते थे। जैसा कि एक प्रसिद्ध लेखक ने इस सम्बन्ध मे कहा है, "ऐवर के नेतृत्व मे कम्यून के शासन की व्यापक विशेषताएँ थी अराजकता और हिसा।"

सबसे पहली बात जिसे कार्यरूप में परिणत करने के लिए सभी राजनीतिक दल एकमत और उत्सुक थे, वह था बलपूर्वक सबका सेना मे भरती किया जाना। कम्यून के कहने पर सम्मेलन ने यह अध्यादेश जारी किया कि उन सभी पुरुषों को अपना नाम लिखा देना चाहिए जो शस्त्र धारण करने में समर्थ हैं। १७ सितम्बर को सन्दिग्धों का अधिनियम पारित हो गया। इसके अनुसार फ्रांस का प्रत्येक स्त्री अथवा पुरुष नयी व्यवस्था का विरोध करने के अभियोग में क्रान्तिकारी न्यायाधिकरण के समक्ष उपस्थित किया जा सकता था। इस अधिनियम का जन्मदाता दुआए का मर्लां था और यह अधिनियम भगोडों के विरुद्ध पड़ता था। यह भगोड़ों के सम्बन्धियों तथा उन सबके हितों का विरोधी था जो भूत को पुनर्जीवित करना चाहते थे। इसके बाद अधिकतम-अधिनियम पारित किया गया। इसके अनुसार जीवन के लिए आवश्यक सभी वस्तुओं के मूल्य निर्धारित कर दिये गये थे और इस मूल्य-निर्धारण का उल्लंघन करने वाले के लिए कठोरतम दण्ड का विधान किया गया था। इसका उद्देश्य मध्यवर्ग (पेटी बुर्जुआ) को तंग करना था, क्योंकि यह वर्ग अन्य किसी भी प्रकार से कानून के फन्दों में फँसाया नहीं जा सकता था। पेरिस में तथा सभी जिलो और गाँवो में क्रान्तिकारी समितियाँ प्रतिष्ठापित की गयीं थी। इन में जैकोबिन लोग ही होते थे। इन लोगों को क्रान्तिकारी न्यायाधिकरण के लिए अभियुक्त एकत्र करने पड़ते थे और उनके लिए शीघ्र ही सिर काटने का आदेश जारी कर दिया जाता था। जैसा कि एक लेखक का कथन है, "क्रान्तिकारी समितियाँ कारागृहों को भरती थीं—उनको खाली करने का कार्य क्रान्तिकारी न्यायाधिकरण के सिपुर्द था।" इस प्रकार से सैकड़ों व्यक्ति फाँसी के शिकार बने और आतंक की सुप्रतिष्ठापना हो गयी।

अब यह हिंसाजीवी दल उन लोगों की ओर अभिमुख हो गया जिन्हें यह क्रान्ति के शत्रु समझता था तब इस कोप का सवसे पहला भाजन बनी रानी मारी आँत्वानैत (क्रान्तिकारी शब्दावली में 'कापे विधवा'), इसकी आयु उस समय केवल ३८ वर्ष की थी, किन्तु एलीज़ाबेत और उसके अपने बच्चों के वियोग से बढ़े हुए दुःखों एवं कष्टों ने उसे झुका दिया था। उसे पहली अगस्त को राजकारावास में बन्दी कर दिया गया और उसकी जाँच शुरू होने तक उसे वहीं रखा गया। वह रमणीय और आकर्षक राजकुमारी आज एक सामान्य करुणा-पात्र बन गयी थी ; उसका स्वाभाविक सौन्दर्य एवं यौवन आतंकवादियों के दुष्ट व्यवहार से अपरूप हो गया था ; उसके दोषो के एकत्रीभूत भार से उसके बाल सफेद हो गये थे। परन्तु उसका साहस एवं धैर्य अपराजेय था। १४ अक्तूबर को वह क्रान्ति-

कारी न्यायाधिकरण के समक्ष 'गणतन्त्र दीर्घजीवी हो' के ऊँचे नारों के साथ उपस्थित की गयी। अभियोक्ता ने उस पर लगाये गये अभियोगों को पढ़ा और उसे 'फ्रांसीसी लोगों का पीड़ायन्त्र और उनका रक्त पीने वाली' कहा गया। वह इतना बढ़कर बोलने लगा कि उसने उस पर ज्येष्ठ राजकुमार को दूषित करने का अभियोग भी लगा दिया। इस लज्जाजनक दोषारोपण पर, जिसने कि श्रोताओं के हृदय पर भी आघात किया, रानी का सम्मान स्वतः बोल उठा और दृढ़ता एवं घृणा के साथ वह गैलरियों की ओर मुड़ी और चिल्लायी, "मैं यहाँ पर उपस्थित माताओ से अपील करती हूँ।" कहा जाता है कि रोबे-स्पियर ने जब यह घटना सुनी तो कहा था, "ये मूर्ख, इतना ही पर्याप्त नही रहने दिया कि वह एक मस्सालिना है, परन्तु वे तो उसे अवश्य ही एक ऐग्रिप्पिना बनाकर छोड़ेंगे और उसके अन्तिम क्षणों में उसे सार्वजनिक अवधान का केन्द्र बनने की विजय दे ही देंगे।"

उसे मृत्युदण्ड दे दिया गया और १६ अक्तूबर को उसका सिर धड़ से अलग कर दिया गया। उसका हृदय एक वीरनायक का हृदय था और वह पुराने सीजरो (रोमन योद्धाओं) की एक वीरपुत्नी के अनुरूप साहस एवं सम्मान के साथ मरी भी।

मारी आँत्वानेत में अनेक दोष थे। वह बड़ी छिछोरी और अपव्ययी थी। मानवीय कष्टों एवं दुःखो के प्रति पूर्णतः उदासीन, और जब तक उसने इनको शारीरिक रूप में नही देखा वह इसी प्रकार उदासीन रही। वह फ्रांस से नितान्त अपरिचित थी। वह अपने पति की दुष्ट प्रकृति थी और संकटपूर्ण अवसरों पर उसे गलत परामर्श देती थी। उसके पास न तो पर्याप्त बौद्धिक समझ थी और न राजनीतिक सूझ जो उसे क्रान्तिकारियों की शक्तियों को ठीक-ठीक नापने और जाँचने के योग्य बना सकती। क्रूर दुर्दैव ने उसकी आशाओं और मृगतृष्णाओं को ध्वस्त कर डाला। तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वह राजतन्त्रवादियों और भगोड़ों से कहीं अच्छी थी। लार्ड ऐक्टन ने जिनका कि नैतिक पैमाना सदा ऊँचा रहा है, लिखा है, "वह उन अधिकांश व्यक्तियों से अपेक्षाकृत अच्छे व्यवहार की अधिकारिणी थी जिनकी हम उसके साथ तुलना कर सकते हैं।"[१]

नेपोलियन बोनापार्ट ने रानी की फाँसी के सम्बन्ध में ये विचार प्रकट किये थे, "रानी की मृत्यु एक ऐसा अपराध था जो राजहत्या से भी बढ़कर था। यह एक अत्यन्त असभ्य कार्य था, क्योंकि उससे एक विदेशी राजकुमारी का अन्त कर दिया गया, जो कि एक सर्वाधिक पवित्र अमानत थी।"

१. लेक्चर्स ऑन दि फ्रेंचरिपब्लिक, पृ० २७६।

अब ज़िरोन्दिस्त लोगो की बारी आयी। ये लोग संख्या में २१ थे। क्रान्तिकारी न्यायाधिकरण ने इनकी जाँच की और वर्निऔ तथा ब्रिस्सौ के शक्तिशाली भाषणो एवं वकालत के होते हुए भी ये लोग दण्डित किये गये और ३१ अक्तूबर को इनके सिर इनके धड़ों से अलग कर दिये गये। विधि के सभी नियमो को उस समय स्थगित कर दिया गया और उन्हें 'गणतन्त्र की एकता और अविभाजकता तथा फ्रांसीसी जनता के कल्याण और सुरक्षा के विरुद्ध षड्यन्त्र' रचने का अपराधी घोषित कर दिया गया। एक ज़िरोन्दिस्त ने जिसका कि सर्वनाश हो गया था, न्यायाधीशों से कहा था,

"मैं ऐसे समय पर मर रहा हूँ जब जनता अपने होश गवाँ चुकी है ; तुम तब मरोगे जब उनका होश लौट आयेगा।" वे लोग शिरच्छेदन के लिए प्राचीनों जैसे साहस के साथ गये और मार्सेईआईज का उच्च स्वर से गान करते जा रहे थे।

श्रीमती रोलां का सिर ८ नवम्बर को धड से अलग हुआ। अपने उन मित्रो की ही तरह उसने अपनी प्रतिष्ठा का एक लेशमात्र भी कम नहीं होने दिया जो उसके पुजारी थे और उसके वक्तव्यों को दैवी वाणी का समादर देते थे। उसने एक रोमन गृहिणी की तरह साहसपूर्वक अपने प्राणों का त्याग किया। उसने निर्णायकों से कहा था, "आप लोगों ने मुझे उन महात्माओं के सौभाग्य के योग्य होने का निर्णय दिया है जिन्हें आप पहले प्राण-दण्ड दे चुके हैं। मैं प्रयत्न करूँगी कि मै उसी साहस के साथ फाँसी के फन्दे को ग्रहण करूँ जो वे लोग दिखा चुके है।" फॉसी के तख़्ते के सामने स्थित स्वतन्त्रता की मूर्ति की ओर उन्मुख होकर उसने कहा था, "हे स्वतन्त्रता की देवी ! देख कैसे-कैसे अपराध तेरे नाम पर किये जा रहे हैं।" एक अन्य वाक्य भी है जो उसी का उच्चरित किया हुआ कहा जाता है जो उसकी निराशा की भावना को बहुत प्रखर करके सामने रखता है, श्री रोलां ने अपनी पत्नी की मृत्यु का समाचार सुनकर तीन दिन बाद ही आत्म हत्या कर ली। इस दल का दार्शनिक सदस्य कॉन्दौर्से ने, जो कि अभी तक रंगमंच पर नहीं आया था, विषपान द्वारा अपना जीवनान्त कर डाला। यही था ज़िरोन्दिस्त दल का दुःखपूर्ण अन्त !

जिरोन्दिस्त लोगों के पतन के कारण क्या थे ? एक दल के रूप में वे लोग बलहीन और असंघटित थे। उनमें नैतिक बल का अभाव था। वे बड़े ऊँचे आदर्शो की बातें करते थे परन्तु व्यवहार में वे सर्वथा स्वार्थी, महत्त्वाकांक्षी और सिद्धान्तहीन सिद्ध हुए। उनमें कोई दलगत अनुशासन नहीं था और वे लोग दृढ़तापूर्वक कार्य करने की अपेक्षा सुन्दर-सुन्दर वक्तव्यों का उच्चारण करने को अधिक महत्त्व देते थे। उन्होंने यह कभी नहीं अनुभव किया कि शासन-कार्य का संचालन चित्ताकर्षक वाक्यों से नही हो सकता और न चमकते हुए वाक्य-खण्डों से व्यवस्था ही क़ायम रखी जा सकती है। उनके दल में ऐसा कोई भी नेता नही था जिसमें राजनीतिक व्यावहारिकता की बुद्धि होती। यहाँ तक कि र्बनिओ

ने भी अपना अधिक समय निरर्थक शब्दों में ही नष्ट कर दिया और अपने दल के व्यक्तियों का वह कभी भी प्रभावपूर्ण नेतृत्व न कर सका। यह सत्य है कि इनमें कुछ योग्य व्यक्ति भी थे जिनका वक्तृत्व, ज्ञान और गणतन्त्रवाद हमें पुराने रोमनों की याद दिला देता है। परन्तु किसी में भी रचनात्मक प्रतिभा अथवा निश्चयात्मक दृढ़ता नहीं थी। वे लोग देश का नेतृत्व करने में विफल रहे और पेरिस तो निश्चयपूर्वक उनके विरुद्ध था। फ्रांस का अधिक भाग उनके विचारों से कोई सहानुभूति नहीं रखता था। वे हिंसा के विरोधी थे परन्तु उनके भाषणों और कार्यों ने सर्वथा विपरीत प्रभाव डाला। उनके पास कोई भी संयुक्त योजना नहीं थी और न वे लोग एक होकर कार्य ही कर सकते थे। उनकी अस्थिरता और निर्णयहीनता उनके दुर्भाग्य का सबसे बड़ा कारण बनी और उन्हें इसीने उन व्यक्तियों का सुगमतापूर्वक शिकार बना दिया जो निःस्सन्दिग्ध रूप से संघटन, अनुशासन एवं उद्देश्य तथा लक्ष्य में एकता की दृष्टि से इनसे कही बढ़कर थे।

उनकी दुर्बलता ही उनको ऐसे कार्यों को करने से रोक देती थी जिनकी वे योजना बनाते थे। सुरक्षा विभाग से सम्बन्धित उनका अध्यादेश कभी भी कार्यरूप में परिणत न हो सका। संघ मे जो उनके समर्थक थे उनको अपना सम्बन्ध मौन्तनार्द से स्थापित करने की अनुमति दे दी गयी। सितम्बर हत्याकाण्ड के कर्ताओं को कभी भी जॉच करने के लिए नहीं बुलाया गया यद्यपि उनको इसकी धमकी दी गयी थी। राजा के मृत्युदण्ड के पक्ष में मत देना एक और भी बुद्धिहीनता का कार्य था जिसने उनके अन्त को निकट कर दिया। उन्होंने विदेशी युद्ध को आगे बढ़ाया परन्तु इसे समुचित प्रकार से चलाने में वे विफल हुए। दस अगस्त के एक दिन पूर्व वे लोग झिझक में पड़ गये और फ्रांस की आर्थिक कठिनाइयों का हल ढूँढ़ने में असफल हुए। उन्होंने अन्धहठ से उन असाधारण उपायों का विरोध किया जिनकी माँग स्वयं परिस्थितियाँ कर रही थीं। वे लोग पेरिस से घृणा करते थे और उन्होंने कभी भी यह बात हृदयंगम नहीं की कि पेरिस का कितना महत्त्व है। पेरिस को निर्बल करने के लिए उन्होंने घरेलू युद्ध को जन्म दिया, उस समय यह बात उनके मस्तिष्क में घुस न सकी कि यह उनके ही सिरों पर गिरेगा। इतना सब होने पर भी उनका पतन हमारी सहानुभूति को जगाता है; उनके आदर्शवाद में एक महान् आकर्षण है; उनकी उस प्रदीप्त वक्तृत्ता और उत्साह में भी कम आकर्षण नहीं जिससे उन्होंने अपने उच्च आदर्शों के पक्ष का समर्थन किया था। उनके ह्रास ने फ्रांस में आतंक की प्रतिस्थापना को दृढ़ कर दिया। लार्ड ऐक्टन लिखता है; "उनके पतन पर स्वतन्त्रता का सर्वनाश हो गया; परन्तु उनके हाथों में यह एक बलहीन अवशेष तथा एक ऐसी ज्वाला बन कर रह गयी थी जो पूर्णतः बुझ चुकी थी। यद्यपि वे लोग न केवल दुर्बल ही थे प्रत्युत दुष्ट भी थे, परन्तु किसी राष्ट्र ने कभी इतना बड़ा दुर्भाग्य नहीं सहा जितना कि फ्रांस ने उनकी पराजय और

विनाश के कारण सहा। वे लोग आतंक के शासन और निरंकुशता में सबसे अन्तिम बाधा थे, जो बाद में क्रमिक स्तरों से होती हुई रोबेस्पियर में केन्द्रीभूत हो गयी।[1]

फ्रांसीसी लेखकों में से मिनें उनको एक ऐसा दल कहता है जो मध्यवर्ग, जिसकी क्रान्ति का इन्होंने प्रतिरोध किया और सर्वसाधारण जनता, जिसके शासन को इन्होंने अस्वीकार किया, के बीच का दल था। निष्क्रिय होकर तो यह केवल एक चिरस्मरणीय पराजय ही प्राप्त कर सकता था, यद्यपि एक साहसिक संघर्ष और एक सम्मानभरी मृत्यु के साथ-साथ।

श्री औलार उनके ह्रास का कारण उनकी राजनीतिक अयोग्यता मे बताते हैं। और मातिये उनकी विफलता की परिस्थितियों के सारांश की समाप्ति इन शब्दों में करता है, "......क्योंकि एक वाक्य में कहें तो कहा जायेगा कि उन्होंने सार्वजनिक कल्याण की अवहेलना की और अपने आपको केवल एक वर्ग अर्थात् बुर्जुआ वर्ग की राजनीति में सीमित रखा।" और अन्त में वह कहता है, "संसदवाद का प्रासाद अव ढह गया, तानाशाही के दिन अब समीप है।"

जैकोबिन लोगों ने अपना मत इन शब्दों में प्रकट किया——

> राष्ट्रीय सभा का कार्य चलाने के लिए जिरोन्दिस्त प्रतिनिधियों को निकालना आवश्यक था। उनको हटाकर ही सभा देश को मार्ग दिखा सकती थी। उनके हटाने से क्रान्ति अपने उचित मार्ग पर चल सकती थी और अपने लक्ष्य पर पहुँचने में सफल हो सकती थी।

एक आधुनिक लेखक कहता है——

> जिरोन्दिस्त उदार विचारों के अन्तिम परिपोषक थे। वे क्षेत्रीय तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में विश्वास करते थे। वे यह स्वप्न देखते थे कि गणतन्त्र में फ्रांस का समाज दोषरहित हो जायगा। दयावान होने के कारण वे अगस्त तथा सितम्बर की घटनाओं से बहुत चिन्तित हुए थे। वे सुन्दर भाषण तो दे सकते थे परन्तु उनमे साहस का अभाव था और एक होकर कार्य नहीं कर सकते थे। वे रोबेस्पियर पर आक्रमण करते थे परन्तु उसे क़ैद करने की उनमें हिम्मत नहीं थी। पेरिस की भयंकर स्थिति से परिचित थे परन्तु न तो वे क्लबों को बन्द कर सकते थे और न कन्वेंशन को रक्षा के लिए सशस्त्र सैनिक दे सकते थे। एक मनुष्य उन्हें नाश से बचा सकता था। परन्तु उन्हें अपनी प्रतिष्ठा का इतना ख्याल था कि वे दाँतों के रक्त-रंजित हाथ को नहीं पकड़ सकते थे। सामान्य फ्रांसीसी की दृष्टि में ऐसे

१. लेक्चर्स ऑन दि फ्रेंच रिवोल्यूशन, पृ० २६८।

दल का कोई आदर नहीं था जिसने राजा को फाँसी लगाने के पक्ष में मत दिया था और जो वामपक्षीय दल से आविर्भूत हो गया था। ऐसा करने से उन्होंने अपने सर्वनाश की तैयारी कर ली थी। यह सब होने के बाद कोई शान्तिप्रिय फ्रांस का निवासी उनकी रक्षा के लिए उँगली नहीं उठा सकता था।[1]

पेरिस में आतंक की पूरी स्थापना हो गयी परन्तु इससे यह नहीं अनुमान कर लेना चाहिए कि वहाँ का जीवन हर्ष या उल्लास से नितान्त वचित था। राजनीति की धूल और ताप से लोग नाटचशालाओ और कला की ओर उन्मुख होते थे और शाश्वत उत्तेजना से मुक्ति पाकर शान्ति का अनुभव करते थे। पेरिस के बन्दीगृहों मे अभूतपूर्व हर्ष था क्योंकि बन्दी किसी भी समय क्रान्तिकारी न्यायाधिकरण के समक्ष उपस्थित किये जा सकते थे। रेस्तोरॉ और काफे आनन्दान्वेषकों के अड्डे बन गये थे और उनके स्वामी नियमित रूप से लाभप्रद व्यापार करने लगे थे। नाटचशालाएँ उत्पात-भूमि बन गयीं थीं, और सम्मेलन को सार्वजनिक अभिरुचि के सुनियमन के लिए अनेक अध्यादेश जारी करने पड़े। उत्सवों और खर्चीले सहभोजों का खूब प्रचार हो गया। सैलों की संख्या अब कम हो गयी थी और उनकी व्यवस्था करने वाले अधिकांश लोग या तो देश निर्वासित थे या भूगर्भ के कारागृहों में बन्द थे। वे 'बाजारू औरतें' जो अभी तक काफी प्रसिद्धि प्राप्त किये हुए थीं, अब संसद की गैलरियों में से बहिष्कृत कर दी गयी थीं और बाद में उनका किसी भी राजनीतिक सभा में भाग लेना भी निषिद्ध कर दिया गया। जब उन्होंने पेरिस की कम्यून से प्रार्थना की तो शौमेत ने उत्तर दिया था कि गणतन्त्र को 'जोन आव आर्को' की आवश्यकता नही है। राजनीति से निर्वासित होकर वे लोग अब क्रान्ति-स्थल (प्लास दे ला रेवोल्यूस्यो) में रहने लगीं, जहाँ निरन्तर सिर कटते रहते थे। वे लोग यहाँ बुनाई करती हुई पैशाची आनन्द के साथ क्रान्तिकारी न्यायाधिकरण के शिकारों को एक-एक करके विध्वस्त होते हुए देखती थीं।

गिरिशिखरवासियों[2] की प्रभुता—द्वितीय आतंक

गिरिशिखर ने अपनी सर्वोच्च प्रभुता फ्रांस मे प्रतिस्थापित कर ली। यह एक

१. फिशर, यूरोप का इतिहास, पृ० ८१६।

२. इनको फ्रेंच में मोन्तनार कहा जाता है। मोन्तान का अर्थ गिरिशिखर होता है। इन लोगों का यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि संसद की सर्वोच्च पीठों पर अधिकार किये हुए थे। १७९३ में राष्ट्रीय सम्मेलन के प्रजातन्त्रवादियों को यह अभिधान दिया गया था।

केन्द्रीभूत निरंकुश शासन था। सार्वजनिक सुरक्षा समिति में रोबेस्पियर और उसके सहयोगियों का प्रभुत्व था, इनमें प्रमुख थे सेंजुस्त, काउथों, कोल्लौं दे'बुंआ तथा बिल्लौ वारेन्नं। इन लोगों ने राज्य के विभिन्न भागों को परस्पर बाँट लिया था। शासन आतंक पर निर्भर था और समिति के कुछ सदस्य तो आतंक को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए विशेष अभिरुचि रखते थे। गिरिशिखरवासी राज्य की स्वयं प्रभुता में विश्वास करते थे और इसकी परिस्थापना करने में वे अपनी ओर से कुछ भी उठा नहीं रखते थे। सांत जुस्त ने इन शब्दों में इस नयी तानाशाही का अर्थ बतलाया था—

"नयी व्यवस्था के शत्रुओं के प्रति आपको अनिवार्य रूप से किसी भी तरह की दया या करुणा का प्रयोग नहीं करना चाहिए। स्वतन्त्रता की विजय किसी भी मूल्य पर होनी चाहिए। गणतन्त्र की वर्तमान परिस्थितियों में संविधान सुप्रतिष्ठित नहीं बनाया जा सकता; यह स्वतन्त्रता के विनाशकों को मुक्ति दिलाने का विश्वास दिलाता है, क्योंकि उनको रोकने के लिए आवश्यक उग्रताओं का उसमें अभाव होगा।"

शासन का अधिकार फ्रांस में अब दो संस्थाओं में केन्द्रीभूत हो गया था—राष्ट्रीय सम्मेलन तथा पेरिस के कम्यून में। राष्ट्रीय सम्मेलन सार्वजनिक सुरक्षा समिति के द्वारा परिस्थितियों का नियन्त्रण करता था, पर समिति अब इतनी अधिक शक्ति-सम्पन्न हो गयी थी कि सम्मेलन उस पर नियन्त्रण कर सकने में असमर्थ हो गया था। यह अब सम्मेलन के नाम पर सब कुछ कर लेती थी परन्तु इसका यह छद्मवेश अब पर्याप्त जीर्ण हो चुका था। सर्वसाधारण जनता, प्रत्युत् आबादी की तलछट या 'समाज का कूड़ा-कर्कट' ही बहुधा समिति का शक्तिस्रोत बनता था। इस समाज के कूड़े को अपनी सेवाओं का पुरस्कार मिल जाता था। कम्यून पर इस समय तत्कालीन फ्रांस के सबसे अधिक उग्र दल का एकाधिपत्य था। यह सम्मेलन की एक महत्त्वशाली प्रतियोगी बन गयी थी। इसके प्रधान नेता ऐबर और शौमेत थे जिनका उल्लेख पहले भी किया जा चुका है। दोनों ही सर्वसाधारण जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिए ललचाते थे और इसी पर अपने प्रभुत्व के लिए निर्भर भी करते थे। वे लोग अतिक्रान्तिवादी थे जो अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कुछ भी करने को तैयार थे। ऐसे लोगों के लिए इनके हृदय में कोई दया नहीं थी जो उनकी नीति का विरोध करते अथवा उनके कार्यों में बाधा डालते थे।

प्रान्तों में भी आतंक का संघटन किया गया। सर्वत्र क्रान्ति-विरोधियों की जाँच करने के लिए क्रान्तिकारी न्यायाधिकरणों की प्रतिस्थापना की गयी। वैन्दी और ल्यों में राजतन्त्रवादियों और प्रतिक्रियावादियों को निर्दयतापूर्वक मौत के घाट उतारा गया। नान्त में मृतकों की संख्या इतनी बढ़ गयी कि उन्हें नदी में डुबा देना पड़ा। यहाँ तक कि शपथ न लेने वाले पादरी भी इन्हीं भाग्यहीनों में सम्मिलित कर लिये गये थे। धर्म के

प्रति घृणा इतनी बढ गयी थी कि एक स्थान पर एक गधे को पादरी महाशय की पूरी वेश-भूषा पहनायी गयी और उसकी दुम पर एक क्रॉस और एक बाइबिल टाँग दी गयी। नगर के मार्गों पर उस गधे को घुमाया गया, हिसात्मक गणतन्त्रवादी इससे अत्यधिक प्रसन्न होते थे। किसी प्रकार का विरोध क्षम्य नही था। राजतन्त्रवादियों तथा पादरियों को उनके निवासस्थानों से भगा दिया गया और उन्हें क्रान्तिकारी शेर के मुख में स्वतन्त्रता के पुजारियों की तुष्टि के लिए फेंक दिया गया।

राजनीतिक शक्ति के केन्द्रीकरण से अधिक महत्त्वपूर्ण आतंक की आर्थिक निरंकुशता थी। गेहूँ का मूल्य निर्धारित कर दिया गया था, और कोई किसान अपनी और अपने परिवार की आवश्यकताओ से अधिक अनाज अपने पास नही रख सकता था। व्यावसायिक एकाधिकार के लिए मृत्युदण्ड की घोषणा कर दी गयी थी। कोई भी व्यापारी दैनिक आवश्यकता की वस्तुओ को बेचने से इन्कार नहीं कर सकता था, जैसे रोटी, मांस, मदिरा, आटा, शकर, नमक, काग़ज़, साबुन, सोडा, लोहा, कपडा इत्यादि। अन्न का संग्रह सार्वजनिक भाण्डारगृहों में किया जाता था। रोटी बनाने वालो को नियन्त्रण में लाया गया और मास के विक्रय पर नियन्त्रण (कण्ट्रोल) कर दिया गया। इसी प्रकार से शकर पर भी नियन्त्रण लगा, और जो लोग राज्य के अध्यादेशों का पालन नही करते थे उनको कठोर दण्ड दिया जाता था। श्रमिकों की मज़दूरी निश्चित कर दी गयी थी और कृषि सम्बन्धी श्रम का नियमन करना बहुत ही कठिन हो रहा था। इस समय फ्रांस के घोर संकट का वास्तविक कारण मुद्रास्फीति थी। मुद्राओं (एसाइनेट्) का मूल्य घट गया था और इस प्रकार वस्तुओं के मल्य खूब बढ़ गये थे और उपभोक्ता के लिए एक कठिन समस्या बन गयी थी।

फ्रांस में समाजवाद ने अपने आपको प्रकट कर दिया था। परन्तु सम्मेलन समाजवाद नहीं चाहता था और २१ सितम्बर, १७९२ के एक अध्यादेश के अनुसार उसने सम्पत्ति रखने के अधिकार का अस्तित्व मान्य घोषित किया। १९ और २१ जनवरी, १७९३ की पेरिस की कालानुक्रमणिका (क्रानीक दे पारी) में हम पाते है कि सामाजिक परिवर्तनों की आवश्यकता है—सम्पत्ति का समविभाजन और भविष्य में असमानता को रोकने के लिए इस प्रकार के विभाजन की सुरक्षा। अब सम्पत्ति पर प्राय: आक्रमण होने लगे। समाजवादी विचारों के तूफान में बड़े जोर की बाढ़ आ गयी और 'रेवोल्यूस्यों दे पारी' (पेरिस की क्रान्ति) के सम्पादक ने व्यक्तिगत सम्पत्तियों के विषय में एक सीमा-निर्धारण का समर्थन किया। "धन-वैभव कलुष है" सें चुस्त चिल्लाया और फ्रांस में अनेक व्यक्ति ऐसे थे जो विश्वास करते थे कि "हवा की ही तरह मिट्टी से पैदा हुए फूलों पर भी मनुष्यों का अधिकार है।" क्रमशः वृद्धि-प्राप्त करों का समर्थन किया गया और

३ सितम्बर, १७६३ में सम्मेलन ने एक अध्यादेश जारी किया कि नागरिक कम्यून द्वारा नियुक्त एक कमीशन के समक्ष अपनी आय का ब्योरा दें। धनिको पर कर लगाना उचित ठहराया गया, क्योंकि सम्पत्ति रखना 'स्वतन्त्रता का घातक' था। निर्धनों के लिए सहायतार्थ धन्धे चलाये गये और जो भिखमंगे काम करने से इन्कार करते थे उनको निकाल दिया जाता था। वय: प्राप्त और अस्वस्थ व्यक्तियो की सूचियाँ तैयार की गयी और उनके लिए १६० लीव्रे की वार्षिक पेन्शन (सेवावृत्ति) निर्धारित कर दी गयी। एक असहाय श्रमिक को १२० लिव्रे वार्षिक दिया जाता था और बच्चो वाली माताओं तथा विधवाओं को ६० और ८५ के बीच भिन्न-भिन्न सेवावृत्तियाँ दी गयी। ल्यों मे धनिकों की सम्पत्ति का अपहरण कर लिया गया और इस प्रकार से प्राप्त सम्पत्ति 'देशभक्तों' की क्षति-पूर्त्ति के काम आयी। पेरिस के कम्यून ने अपने मत को बहुत सन्दिग्ध शब्दो मे अभिव्यक्त नहीं किया, "समानता की व्यवस्था मे, क्योंकि धन और सम्पत्ति को समान रूप से समाप्त होना ही है, अब से धनिकों के लिए उत्तम आटे की रोटी और निर्धनों के लिए चोकर की रोटी नहीं बना करेगी।" सभी रोटी बनाने वालों को अनिवार्य रूप से अब उत्तम और एक ही प्रकार की रोटियाँ—एक ही तरह की रोटी—बनाने का आदेश दिया गया। इस रोटी को 'समानता की रोटी' की संज्ञा दी गयी जो इस आदेश का पालन न करेंगे उन्हें बन्दी किया जायगा।

आतंक के काल में अन्य भी कुछ सुधार किये गये। एक नया सम्वत् चलाया गया और इसने ग्रेगोरियन वर्षक्रम का स्थान ले लिया। इसका आरम्भ २२ सितम्बर, १७६२ से हुआ। एक वर्ष को तीस-तीस दिन के समान बारह महीनों में बाँटा गया और प्रत्येक महीने में तीन देकाद (दशक) थे और प्रत्येक दिन का एक नया नामकरण हुआ। रविवार अब विश्राम दिवस नहीं माना जाता था। पुरुषो के शिष्टाचारों और नैतिक सिद्धान्तो में एक विशिष्ट परिवर्तन हुआ। जीवन की शिष्टताओं की निन्दा की जाती थी। बात-चीत के शिष्ट रूप अमान्य हो गये और एक दूसरे को बात-बात में उपदेश देने का रिवाज हो गया। श्रीमान् (मेस्यू) और श्रीमती (मदाम) शिष्ट सम्बोधन के पुराने रूप अब छोड़ दिये गये। पुरुष अपने आपको नागरिक और स्त्रियाँ नागरिकाएँ कहने लगीं। यहाँ तक कि लोगों ने नये-नये नाम भी स्वीकार कर लिये। क्रान्तिकारी न्यायाधिकरण मे एक पुरुष ने अपना नाम 'दसवी अगस्त' रख लिया। फाँसी के यन्त्र की पूजा की जाती थी। महिलाएँ इस को आभूषण के रूप में पहनती थीं और बच्चे इनका प्रयोग अपने आमोद-प्रमोद मे खिलौनों के स्थान पर करते थे। मनुष्यों की आकृतियाँ बनायी जाती थीं और उनका सिर बड़े गर्व से काटा जाता था। ताश के पत्तो से बादशाह, बेगम और गुलाम को हटाकर वहाँ स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व को स्थापित किया गया। यहाँ

तक कि पाकशालाओं में रोटियों (केक्स) को बनाने के लिए भी एक विशिष्ट 'देश भक्तिपूर्ण' आकार नियत था। वेशभूषा में भी परिवर्तन हुआ और मूछों की स्वतन्त्र वृद्धि को प्रोत्साहन दिया गया। सोने और चाँदी के स्थान पर स्त्रियों के आभूषण अब लोहे और छिलकों से बनते थे। और इस प्रकार के आभूषणों से अपने-आपको सजाना महिलाएँ अपना परम सौभाग्य समझती थीं।

आतंक काल की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी, ईसाई धर्म का उन्मूलन। औलार ने इसे फ्रांस के ईसाई धर्म उन्मूलन (डी-क्रिस्चनाईजेशन) कहा है। फ्रांस का गिरजा 'नोत्र दाम' (हमारी लेडी) विवेक-मन्दिर के रूप मे परिणत कर दिया गया और नवम्बर, १७९३ मे 'विवेक का सह भोज' एक विशाल जन समूह के सामने धूमधाम से मनाया गया। एक अभिनेत्री लायी गयी और विवेक की अधिष्ठात्री देवी के प्रतिनिधि के रूप में संसद के अध्यक्ष ने उसे प्रतिनिधियों को भेंट स्वरूप दिया। कार्लायल का कथन है कि वह एक आकर्षक देवी थी पर उसके दाँत कुछ टूट गये थे। अन्य स्थानों पर भी उत्सव मनाया गया और धार्मिक वेषभूषा में सज्जित वैश्याओं ने स्वतन्त्रता के उपासकों के साथ नृत्य किया। धार्मिक स्मारक, सलीबे (क्रास), मूर्तियाँ तथा अन्य वस्तुएँ जला डाली गयीं। यहाँ तक कि पादरी लोग भी इन मदिरायुत उत्सवों में भाग लेते थे। १७ नवम्बर को कम्यून के एक आदेश द्वारा सभी गिरजाघर बन्द कर दिये गये। कोई भी पादरी जो धार्मिक कृत्यों के लिए गिरजाघर की माँग करता था मृत्यु-दण्ड का भागी बन जाता था। पादरियों को अपना चोगा पहनने से रोक दिया गया और गिरजाघर में ही कैथोलिक मत का उपहास किया जाने लगा। विवेक और सदाचार गणतन्त्र के देवता थे और इन्ही की पूजा अर्चना करने के लिए लोगों को कहा जाता था। गिरजाघर के बड़े-बड़े घण्टे, जिन्हें 'सार्वकालिक निःसारता' का नाम दिया जाता था, वहाँ से हटा दिये गये और उन से तोपों तथा मुद्राओं का निर्माण हुआ। मृत्यु 'अनन्त निद्रा' थी और स्वर्ग तथा नरक की कल्पनाओं का पूर्ण विनाश कर दिया गया। ये थीं वे रीतियाँ जिनसे 'विवेक मत' का प्रकाशन किया गया। समाज के गम्भीर तत्त्व इस सब तूफान से महान् कष्ट का अनुभव कर रहे थे।

कम्यून द्वारा आयोजित इन उत्सवों से स्पष्ट हो जाता है कि अपने कल्पना-प्रसूत आदर्शों की पूर्त्ति के लिए मनुष्य कितना पागल हो सकता है। इन नास्तिकतापूर्ण स्वाँगों के विषय में अपनी सम्मति प्रकट करने वाले लोग इस तथ्य को बहुत ही कम समझ पाते हैं कि दीर्घकाल के स्वभावों, परम्परानुगत विश्वासों और दीर्घ समय से पूजित आचारों में कितना बड़ा बल होता है। यह विचित्र धर्म छब्बीस दिन से अधिक न चला।

दाँतों ने भी ऐबर के निरंकुश शासन का विरोध किया। वह भी उसका अन्त

चाहता था। रानी और जिरोन्दिस्त सदस्यों के साथ जो अमानुषिक बर्ताव किया गया था उससे वह बहुत दुखी था। उसने अपने लिए बहुत सा धन भी इकट्ठा किया था। इसलिए वह सांस-कलौं[1] लोगों के सामाजिक नियमों से घृणा करता था। उसकी सहानुभूति सम्पत्तिवान लोगों के साथ थी। उसने कन्वेन्शन मे सम्पत्तिवान लोगों से 'सामाजिक न्याय' के विरुद्ध अपील की।

इस स्थूल भौतिकवाद के विरुद्ध सबसे प्रबल प्रतिरोध रोबेस्पियर का था। उसने जैकोबिन क्लब मे इसकी कड़े शब्दों में निन्दा की, उसने बहुत स्पष्ट और कटु भाषा का उपयोग किया और इसके प्रचारकों को देशद्रोही तथा विदेशी दलाल कहा। दाँतों उस से इस विषय में पूर्णतः सहमत था कि सार्वजनिक हित के लिए कम्यून को दबाना अत्यन्त आवश्यक है। ऐवर के अनुयायी २४ मार्च को बन्दी कर लिये गये और ऐवर को फाँसी दे दी गयी। ऐवर के समर्थकों को कुचलकर रोबेस्पियर दाँतो का विरोधी बन गया और उसे बन्दी कर दिया गया। रोबेस्पियर अतृप्त महत्त्वाकांक्षाओ और महान् छल-कपट से भरा व्यक्तित्व था। वह अपने पाँच मित्रों के साथ क्रान्तिकारी न्यायाधिकरण के समक्ष उपस्थित किया गया। कारागार में दाँतो ने कहा था, "मै सब कुछ एक भयंकर दलदल में छोड़े जा रहा हूँ; उनमें से कोई भी शासन का कुछ भी नही समझते।" वह एक सिह की तरह दहाड़ता था और उसकी आवाज सड़क के उस पार सुनायी पड़ती थी। जब उसका ठिकाना और नाम पूछा गया तो उसने उत्तर दिया—

"मेरा ठिकाना शीघ्र ही शून्य में विलीन हो जायगा; जहाँ तक मेरे नाम का प्रश्न है, उसे आप इतिहास के मण्डप में पायेंगे।"

दाँतों के विरुद्ध ये अभियोग लगाये गये, वह राज दरबार से धन लेता रहा है, बेल्जियम में उसने घूस ली है, उसने दूसरी जून के अवैधानिक कार्य का विरोध किया है, और उसने दच्मोरिये के देशद्रोह को प्रोत्साहन दिया था। यह सत्य है कि पैसे के मामले में दाँतों बड़ा बेपरवाह और असावधान था, परन्तु अन्य अभियोग सर्वथा निर्मूल थे।

न्याय-परीक्षा शीघ्रतापूर्वक समाप्त कर डाली गयी और न्याय-परिषद् (ज्यूरी) ने घोषित किया कि उसे पर्याप्त प्रमाण प्राप्त हो चुके है। ५ अप्रैल को उसे फाँसी के लिए भेज दिया गया। युवा पत्नी के स्मरण ने उसे व्याकुल कर दिया परन्तु शीघ्र ही उसने अपने को सँभाल लिया और कहा, "बढ़ो दाँतो, दुर्बलता का काम नहीं।" उसने उद्दीप्त नेत्रों से जल्लाद से कहा, "अब तुम जनता को मेरा (कटा हुआ) सिर दिखा दोगे" यह दाँतों अच्छी तरह से जानता था कि रोबेस्पियर ने ही उसे इस दुःस्थिति में

१. सांस-कलौ लोग बड़े नृशंस गणतंत्रवादी थे। छोटी ब्रीच नहीं पहनते थे।

पहुँचाया है। वह चिल्लाया, "अरे दुष्ट रोवेस्पियर, तुमको भी फाँसी लगेगी। तुम भी मेरे गामी बनोगे।"

इस प्रकार से दाँतों का पतन हुआ। उसे एक महान् क्रान्तिकारी नेता कहा जाता है। हम यहाँ लार्ड मार्ले का खीचा हुआ उसका चित्र अपने सामने ला सकते हैं, "एक ऐसा पुरुष जिसकी भृकुटियाँ लटकती हुई और काली थी, जिसका मुख भयंकर था, बिजली की तरह चमकती हुई आँखें, कड़कती हुई आवाज, इन सबसे दाँतों विद्युत-देवता 'जोव' की साकार प्रतिमा-सा दिखायी पड़ता था।" वह राष्ट्रीय सम्मेलन का मिराबो कहलाता था। उसके शरीर का अंग-अंग महावल का सूचक था और लोग उसे भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते थे—एकनेत्री दैत्य (साइक्लॉप्स), विश्व का आश्रय (एटलस), कड़कने वाला अग्रदूत (स्टैण्टर), महादेव (टाइटन) तथा प्राय: उसको क्रान्ति का हरक्यूलीज (ग्रीक पौराणिक कथाओं का अतुलित वीर) कहा जाता था। वह आमोद-प्रमोद का प्रेमी था और अनेक प्रीति-सम्बन्ध रखता था। वह धन को बहुत चाहता था और मित्रों तथा शत्रुओं मे भेद करने में असमर्थ था। उसके मित्र उससे कपट करते और वह एक 'निन्दा-पूर्ण आश्चर्य' के अतिरिक्त कुछ भी नही करता था। इन दोषों के साथ-साथ उसमें कुछ महान् गुण भी थे। वह एक महा शक्तिशाली वक्ता और देशभक्त था, उसने अपनी सभी शक्तियो के साथ फ्रांस की सुरक्षा सेनाओं को संघटित किया था। वह वास्तव मे व्यवस्था और अच्छे शासन का इच्छुक था क्योंकि वह जानता था कि क्रान्ति मे कहाँ दुर्बलता है। उसने रानी और ज़िरोन्दिस्त लोगों की रक्षा करनी चाही थी, यह एक ऐसा कार्य था जिसने गिरिशिखर को सन्देह में डाल दिया था। वह आतंक का अन्त चाहता था—यह एक ऐसी बात थी जो रोबेस्पियर और उसके साथी पसन्द नहीं करते थे। उन लोगों ने उसके विरुद्ध कार्यवाही आरम्भ कर दी थी और यद्यपि उसे अपने शत्रुओ के षडयन्त्र के सम्बन्ध मे समय पर सब कुछ ज्ञात हो चुका था परन्तु अपनी विशिष्ट मूर्खता-पूर्ण मनोवृत्ति और आवश्यकता से अधिक आत्मविश्वास के साथ उसने उत्तर दिया था, "जाओ और रोबेस्पियर से कह दो कि मैं अभी इसमें समर्थ हूँ कि उसको और उसके अनुयायियों को कुचल डालूँ।" उसके सुविचारित परामर्शों का उसके सहयोगियों ने कोई प्रतिदान नहीं दिया और वह पग-पग पर पराजित हुआ। क्रान्ति पर लिखने वाले एक आधुनिक फ्रांसीसी लेखक श्री मातिये ने दाँतों को इस प्रकार से चित्रित किया है, "एक अथक जुआरी, अत्यधिक कंटकाकीर्ण परिस्थितियों में अपना भाग्य बनाने वाला, एक क्रान्तिवादी जो अपनी ही बुद्धि-चातुरी पर निर्भर था।" उसने दाँतों की निन्दा-भर्त्सना की है और कहा है कि उन्नीसवीं शताब्दी के तीन चतुर्थांशों तक उसके नाम के साथ अति-दुष्टता और लम्पटता का जो सम्बन्ध दिखाया जाता था उसके पर्याप्त आधार हैं।

परन्तु मातिये ने बड़ा कठोर निर्णय दिया है। जब हम उसके सभी दोषो पर विचार कर चुकते है, तो हम यह बात सोचे बिना नहीं रह सकते कि वह एक ऐसा देशभक्त था जो फ्रास के हित को सर्वोपरि समझता था। उसके बहुधा दोहराये जाने वाले और प्रायः उद्धृत किये जाने वाले शब्द, "मेरी प्रतिष्ठा को नष्ट कर दो, परन्तु मेरे देश को स्वतन्त्र रहने दो" उसकी आन्तरिक भावनाओ के पूर्ण परिचायक है।

लुई मादलॉ की आलोचना पर्याप्त सन्तुलित है। वह लिखता है," ………… …. और तब, एक बार महान् त्रुटियो और महान् अपराधो के बीच उसने अपने दुर्दशाग्रस्त देश की रक्षा की · · · · …. … .. ……. … …एक सन्त वह निश्चय ही नही था, परन्तु वह एक मनुष्य था।"

दॉतो के पतन के बाद रोबेस्पियर रगमंच पर आया और फ्रास का सर्वोच्च तानाशाह तथा फ्रासीसी गणतन्त्र का अध्यक्ष बन बैठा। जैकोबिन अत्याचार का अन्त एक महान् आवश्यकता थी। यह एक तानाशाही शासन था जिससे क्रान्तिकारी भी तंग आ गये थे। सॉत जूस्त ने जो योजना न्यायिक प्रबन्ध को सुधारने की बनायी थी, असफल हो गयी। वेण्टोज (१७९४) के अधिनियमो के अनुसार कई सामाजिक नियम जनता का कष्ट कम करने के लिए बनाये गये। दीनों को सहायता दी गयी और जनता को सन्तुष्ट करने के लिए कई नियम बनाये गये। सम्पन्न लोगो की सम्पत्ति अपहरण करने की इच्छा प्रकट हुई और समाज मे आर्थिक सन्तुष्टि स्थापित करने की चेष्टा होने लगी।

वेण्टोज के नियम बहुत कड़े थे। उनको व्यावहारिक रूप देना बहुत कठिन था। आततायी अधिकारी शंकित लोगो के माल-असबाब को छीन लेते थे जिससे बड़ी अशान्ति पैदा हुई। जैकोबिन दल की आर्थिक नीति ने घोर असन्तोष पैदा कर दिया और उनके पतन का मार्ग प्रशस्त कर दिया। एक दूसरा कारण उनके पतन का था न्यायिक शक्ति का दुरुपयोग। न्यायालयों में नृशंसता और अन्याय दिखायी देने लगे। कोई भी नागरिक, योग्य अथवा अयोग्य, न्यायाधीश हो सकता था। दण्ड संहिता का दुरुपयोग होता था। जासूसों के भय से लोग सशंकित रहते थे। चारों ओर भ्रष्टाचार और अविश्वास था। लोग खूँरेजी और कष्ट से पीड़ित, तंग और दुखी हो गये थे और मुक्ति पाने के इच्छुक हो रहे थे।

१७९४ के पेरिस का जीवन इस प्रकार का था—सड़को पर गाडियॉ नही दिखायी देती थीं। पोशाक सादी और गन्दी थी। बातचीत की जगह कानाफूसी अधिक थी। समानता अथवा मृत्यु शब्द दीवारो और भवनों के आगे के भाग पर लिखे हुए थे। जीवन की कठिन समस्या प्रति क्षण सामने आ जाती थी। जहॉ जीवन में विनोद नही है, मृत्यु

के साथ खिलवाड़ होने लगता है। पुलिस को अपना शिकार नही तलाश करना पड़ता।[1]

दाँतों के पतन का परिणाम

दाँतो के पतन ने नये अधिनायको के लिए रूसो के सिद्धान्तो को कार्यान्वित करने का कार्य सख्त कर दिया। रूसो ने कहा था कि राष्ट्र को नागरिकों की आत्मा की रक्षा करनी चाहिए। आतकवाद रोबेस्पियर का सिद्धान्त था। वह नियमबद्ध आतक मे विश्वास रखता था। उसकी धारणा थी कि सदाचार आतक के बिना शक्तिहीन है, और आतंक भयकर है बिना सदाचार के। अपने प्रतिवेदन मे जो उसने ७ मार्च सन् १७६४ को नैतिक विचारो के क्रान्तिकारी सिद्धान्तो के साथ समानता पर तैयार किया उसमे अपने नये धर्म की रूपरेखा का वर्णन किया। जनता को सदाचार के नियम सिखाना चाहिए और नागरिको का चरित्र रूसो के ढाँचे के अनुसार बनाना चाहिए। स्वतन्त्रता, समानता, पितृभक्ति, मानवता, विनम्रता आदि का महत्त्व लोगों को बताना चाहिए। क्रान्ति की मुख्य घटनाओं के उपलक्ष्य मे उत्सव होने चाहिए—जैसे बस्ती के किले का विध्वंस (१७८६), राजतन्त्र का पतन और लुई की फाँसी (अगस्त १७६२) और ज़िरोन्दिस्तों का पतन (मई १७६३)। रोबेस्पियर अब गणतन्त्र का सर्वोपरि अधिनायक था। उसे अब अपने कार्यक्रम को पूरा करने का अवसर मिला।

रोबेस्पियर तथा थर्मिडोरियम प्रतिक्रिया

क्रान्तिकारी इतिहास मे रोबेस्पियर बहुत ही रोचक व्यक्तित्वों मे से एक है। उसके सम्बन्ध मे कुछ तो ऊपर के पृष्ठो में लिखा जा चुका है। उसके राजनीतिक जीवन का आरम्भ सविधान सभा के एक सदस्य के रूप मे हुआ, शीघ्र ही जैकोबिन क्लब मे वह एक शक्तिशाली वक्ता के रूप मे प्रसिद्धि पा गया। उसकी जीविका का साधन वकालत थी और अपने आरम्भिक जीवन मे उसने रूसो के दर्शन से प्रेरणा ग्रहण की थी जिसका वह अन्त तक उत्साहपूर्ण समर्थक रहा। वह क्रान्ति से पूर्णतः सम्बद्ध हो चुका था और अपने आपको स्वतन्त्रता का अग्रदूत मानता था। वह घमण्डी, अहंकारी और चापलूसी-पसन्द व्यक्ति था। वह डूप्ले नाम के एक बढ़ई से किराये पर लिये कमरो मे रहता था और अपनी पुत्रियो एलिजाबेत तथा एल्योनोर के सहवास मे रहता था। उसका समादर एक देवता की तरह होता था और उसके आचार में ऐसा कुछ भी नही है

१. टामसन : फ्रांस की क्रान्ति पृ० ४६६।

जो यह प्रकट करे कि उसने कभी प्रेम या यौन सम्बन्ध के बारे में सोचा भी हो। वह अपने वैयक्तिक जीवन की निष्कलंक पवित्रता के लिए प्रख्यात था। परन्तु डूप्ले की चापलूसी ने उसके घमण्ड को इतना उत्तेजित किया कि उसका अधःपतन कर दिया। उच्च सिहासन पर बैठकर वह साधारण व्यक्तियों को वड़ी नीची नजर से देखता था।

वह सुशिक्षित था, और रासीन तथा कॉर्नेई का उसने विधिवत् अध्ययन किया था। दाँतो और मिराबो की तरह यद्यपि वह आशु वक्ता नही था परन्तु वह सम्मेलन के शक्तिशाली भाषणकर्त्ताओ मे से एक था और अपने भाषण वह बड़ी सावधानी से तैयार करता था। धन उसके भय का कारण था और यद्यपि उसके सहयोगी भारी घूस लेते थे और षड्यन्त्र रचने मे व्यस्त रहते थे, उसने अपनी ईमानदारी को अन्त तक बनाये रखा। वह स्त्रियो के विषय मे भी बड़ा सशक रहता था और उनसे प्यार करने वाले पुरुषों के लिए उसका प्रशसात्मक भाव कभी नही रहा। उसके समकालीनो ने उसको 'स्त्री और हास्य का शपथपूर्ण शत्रु' प्रसिद्ध कर डाला था। वेषभूषा के विषय मे भी वह बड़ा उदासीन-सा रहता था। वह एक नीला कोट, रेशमी चूड़ीदार पायजामा (ब्रीचेज़) और एक कसीदा कढ़ी हुई सदरी (वेस्टकोट) पहनता था। वह अपने केशो को पाउडर से सिक्त रखता था और आँखो पर हल्के रग के चश्मे पहनता था। उसका मुखमण्डल बिलकुल सफाचट रहता था, और जिस परिवेश में वह रहता था उसे प्रयत्नतः साफ-सुथरा रखा जाता था। वह एक ईश्वर-भक्त और आस्तिक व्यक्ति था और फ्रास मे नास्तिकवाद के प्रचार को देखकर उसे हार्दिक कष्ट हुआ था। वह अपने आपको ऐसे जताता था जैसे कि वह मसीहा (मुक्त दाता) हो और जिस धार्मिकता मे उसने अपने आपको रगा था उसने उसे रूढ़िवादी बना डाला था। उसकी तीन प्रधान रूढ़ियाँ थीं—आतंक के द्वारा सद्गुण की स्थापना, सर्वोच्च सत्ता (ईश्वर) की आराधना और सम्पत्ति की सुरक्षा। एक भले नागरिक का सद्गुणी होना आवश्यक है और जो लोग सद्गुण के मार्ग मे रोड़े अटकायें उन्हे निश्चय ही समाप्त कर डाला जाय। नास्तिक अवश्य ही कुचल दिये जाने चाहिए और नास्तिकता या अविश्वास का निश्चय ही सर्वनाश कर दिया जाना चाहिए। "इस पुरुष मे कुछ बातें मुहम्मद की है और कुछ क्रामवेल की"। थिवादो ने उसके सम्बन्ध मे ऐसा ही कहा था। इन विशेषताओं के साथ-साथ उसमे एक निश्चित मात्रा कायरता, छल-कपट, दम्भ और अवसरवादिता की भी थी। इस अन्तिम विशेषता ने ही उसके प्राणों की रक्षा की थी जबकि उसके अधिकांश समकालीन फाँसी के अधिकारी ठहराये जा चुके थे। एक सुविख्यात फ्रांसीसी लेखक ने लिखा है कि एक राजनीतिज्ञ के रूप में वह 'महाचतुर, अति गम्भीर और दुर्बोध चरित्र' था। ऐसे ही व्यक्ति को फ्रांसीसी इतिहास के संकटकालीन संक्रान्ति युग में देश के ध्वंसात्मक कार्य सौंपे गये थे। उस

क्षण तो सभी की आँखे इस राजनीतिक देवदूत की ओर मुड गयी थीं जिसका कुछ विशिष्ट सामाजिक सिद्धान्तो में ऐसा अटूट हठपूर्ण विश्वास था जिसकी तुलना सहस्राब्द की अंग्रेजी क्रान्ति के समर्थको के राजनीतिक जोश से ही की जा सकती है।

रोबेस्पियर, सॅत जुस्त और कूतो ने एक त्रयी का शासन बना दिया था जिसका उद्देश्य आतंक को साधन बनाकर सद्गुण के राज्य की स्थापना करना था। रोबेस्पियर भीरु था और कोई साहसिक कदम आगे बढ़ाने से डरता था, परन्तु सॅत जुस्त, जो अभी केवल २५ वर्ष का युवा पुरुष था, बड़ा साहसी और पूर्णरूप से करुणाविहीन था। वह शीघ्र और तत्काल ही कार्यवाही करने के पक्ष में रहता था। कूतो और भी अधिक हठवादी व्यक्ति था, वह सदा सत्ता हथियाने का इच्छुक रहता था। अपने सहयोगियो का समर्थन करता था और उनके सम्मान मे हिस्सा बॅटाता था।

सबसे पहला कार्य जो रोबेस्पियर ने किया वह था सर्वोच्च सत्ता की प्रतिष्ठापना और उसका प्रचार करना। नैशनल कनवेन्शन मे उसने ये महत्त्वपूर्ण शब्द कहे—"नास्तिकवाद बड़े लोगो की चीज है। ऐसी दैवी शक्ति मे विश्वास जो त्रसित निर्दोषता की रक्षा करती है और विजयी अपराध को दड देती है वास्तव मे जन-साधारण का है। यदि ईश्वर नहीं है तो हमे उसका आविष्कार करना पड़ेगा।" उसने कहा, "सर्वोच्च सत्ता तथा आत्मा के अमरत्व की कल्पना न्याय की एक शाश्वत् आवश्यकता है: अतएव यह सामाजिक एवं गणतन्त्रवादी है।" इस सिद्धान्त को राष्ट्रव्यापी बनाना था और समग्र सार्वजनिक शिक्षा को इसकी प्रगति का माध्यम बनाया गया। यह सोचा गया कि यह जनता को प्रभावित करेगा और देश मे तथा देश के बाहर राष्ट्र को विश्वास की पुन: स्थापना से बल प्रदान करेगा। ऐबर के अनुयायियो के शासन के अतिचारो से पीड़ित एव क्रुद्ध अन्तरात्मा नास्तिकवाद की सार्वजनिक निन्दा से शान्त हो जायेगी। बीसवाँ प्रेरियल (१८ जून, १७९४) इस सिद्धान्त की प्रतिष्ठापना के लिए नियत किया गया। तुइलरीज से शाँदमार तक जाने के लिए एक लम्बा जलूस संघटित किया गया। इस पवित्र उत्सव का उद्घाटन करने के लिए रोबेस्पियर को एक ऐसे रथ मे बिठाकर निश्चित स्थान तक ले जाया गया जिसको दुग्धसम श्वेत घोड़े खीच रहे थे, उसे उचित समय पर वहाँ पहुँचा दिया गया। उसके रथ के सामने गड़रिये और गड़रियो की स्त्रियाँ अपने हाथो में अनाज के गट्ठे लिये हुए थी। रोबेस्पियर नीला कोट और रेशमी चूड़ीदार पायजामा (ब्रीचेज़) पहने हुए था। उसके दोनों हाथो मे अति सुगन्धित फूलों का एक गुच्छा था। जैसे ही वह रथ से उतरा सहस्रों स्वरो ने एक मन्त्र का जाप किया और रोबेस्पियर एक छोटे-से मंच पर चढ़ गया, और जब हर्षध्वनि समाप्त हुई तो उसने निम्न-लिखित शब्द कहे, "परमेश्वर ने राजाओं को इसलिए उत्पन्न नहीं किया है कि वे मानव

जाति के सर्वनाशकर्त्ता बन जायें। उसने पादरियों को इसलिए नही बनाया है कि वे मनुष्यों को राजकीय रथ में जुते हुए मूक पशुओं की तरह परेशान करें। उसने तो अपनी सर्वोच्च महानता का प्रमाण देने के लिए इस विश्व का निर्माण किया है। उसने मनुष्यो को इसलिए बनाया है कि वे एक-दूसरे के सहायक और सुख-दुःख के साथी बनें, और आनन्द की प्रतिष्ठापना सदाचार के मार्ग पर करे। उसने कहा, "हे प्रकृति तेरी शक्ति कैसी महान् है। अत्याचारी हमारे इस उत्सव की खबर पाकर पीले पड जायेंगे।" लोग हर्ष से पागल हो उठे और चिल्लाये, "गणतन्त्र की जय हो।" उत्सव समाप्त हो जाने पर जलूस फिर उसी स्थान पर वापस आ गया जिस स्थान से वह चला था। कुछ इस तरह की फुसफुसाहट भीड़ में से सुनायी पड़ रही थी, 'तारपियन पहाडी के लिए कैपिटल से यह एक पग आगे बढ़ा है। उसके लिए स्वामी होना ही पर्याप्त नही है, वह तो परमेश्वर बनना चाहता है।' यदि रोबेस्पियर अपने आपको इस नये मार्ग का केवल एक उच्च पादरी बनाकर सन्तोष कर लेता तो जनता उसके कार्य पर घृणा ही व्यक्त करती और इसको एक सारहीन बन्दरचाल समझकर भूल जाती। परन्तु उसने नास्तिकता को दाँतों तथा ज़िरोन्दिस्त लोगों का पर्याय बना दिया था और इस प्रकार भविष्य के लिए उसने संकट मोल ले लिया। लोगों ने सोचा वह जन सहार के पक्ष मे है। लार्ड ऐक्टन ने बहुत सुन्दरता से इन परिस्थितियों को निम्नलिखित शब्दों में वर्णित किया है :

"उसने कहा है कि यह दैवी अधिकार के लिए एक आरम्भिक बिन्दु है, और एक नये जन-सहार के लिए क्षमा याचना है। उन लोगों ने अनुभव किया कि वे लोग अपने ही विरुद्ध एक शस्त्र का निर्माण कर रहे है और जैसे आत्मघात करने जा रहे है। एक मास पहले के अध्यादेश ने ऐसे कठोर परिणामो की सूचना नही दी थी; परन्तु इस सुविस्तृत और आक्रमणकारी उत्सव को उन्होंने युद्ध की एक घोषणा के रूप में समझा।" सर्वोच्च सत्ता के इस उत्सव के बाद अन्य अनेक उत्सव हुए। मानव जाति के सम्मान मे, फ्रास राष्ट्र के सम्मान, स्वतन्त्रता के शहीदों के सम्मान में, स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व, भाई-चारे आदि के सम्मान में अनेक उत्सवों की एक शृंखला ही शुरु हो गयी। वास्तव में रोबेस्पियर का उद्देश्य था जनता को नैतिकता और देशभक्ति की शिक्षा देना। सार्वजनिक पुलिस को लॉटरी और जुए के अड्डों को समाप्त कर देने का आदेश हुआ। नाट्यशालाओं पर कड़ी निगाह रखी जाती थी और नाटकों का सेन्सर होता था। कला को प्रोत्साहन दिया जाता था और राष्ट्रीय जीवन मे सौन्दर्य के मूल्यों की प्रशंसा की जाती थी। पत्र-पत्रिकाएँ प्रार्थनाओं और भजनों से भरी हुई होती थी। सड़कों पर सौदा बेचने वाले (खोमचे वाले) चिल्ला-चिल्लाकर "अनन्त के प्रति प्रार्थनाएँ" करते थे।

अपने मित्र कूथों की सहायता से रोबेस्पियर ने बाइसवें प्रेरियल (दस जून, १७९४)

के अधिनियम का प्रारूप तैयार किया जिसको सम्मेलन ने पारित कर दिया। इस अधिनियम के अनुसार 'जनता के शत्रुओं' को शीघ्रातिशीघ्र दण्ड मिलना चाहिए था और एक न्यायसम्मत जॉच में हर तरह के शिष्टाचारों को समाप्त कर दिया गया। हर तरह की गवाही, चाहे वह भौतिक हो या नैतिक, मौखिक हो चाहे लिखित यदि एक बुद्धिमान मस्तिष्क को सन्तुष्ट कर सके तो वह स्वीकार योग्य घोषित कर दी गयी। अपराध की परिभाषा नही की गयी और कानून को इससे अधिक और कुछ भी अपेक्षित नही था कि वह 'जनशत्रु' को पहचान सके तथा ऐसे लोगो का पता लगा सके जिन पर यह वाक्याश ठीक उतरता हो, "इन्होंने बल अथवा षड्यन्त्र से स्वतन्त्रता का विनाश करना चाहा था।" न्यायाधीशों को केवल अपनी 'स्वतः प्रकाशित अन्तरात्मा' का अनुसरण करना था। सम्मेलन के सदस्य भी इस अधिनियम की परिधि में आ जाते थे। बन्दी न बनाये जाने की स्वतन्त्रता का संसदीय विशेषाधिकार इनसे छीन लिया गया और अब वे लोग समिति के एक आदेशमात्र से न्यायपरिषद् के समक्ष उपस्थित किये जा सकते थे। इस प्रकार का था कानून, जिमने अब क्रान्ति की अधिनियम-पुस्तिका (स्टैच्यूट-बुक) को विकृत कर डाला था। यह एक सर्वथा पापपूर्ण विधान बन गया था, एक ऐसा अन्यायपूर्ण न्याय जिसका दूसरा उदाहरण न किसी देश में और न किसी काल में देखा गया था। कन्वेंशन के सदस्य इसके सम्बन्ध मे ठीक ही कहते थे कि यह आतंक में भी एक भीषण आतक था।

रोबेस्पियर ने अब अपने आप को पुलिस विभाग के कार्यो मे व्यस्त कर दिया। एक घूमने-फिरने वाला दल संघटित किया गया जिसका कार्य था कि वह षड्यन्त्रों में भाग लेने वाले लोगों को दण्डित करे। क्रान्तिकारी न्यायसमिति का काम बहुत बढ़ गया और दो महीने से भी कम समय मे अर्थात् १ अप्रैल, १७६३ से १० जून, १७६४ के बीच के समय में न्यायालय ने १२५४ लोगों को मृत्युदण्ड दिया और उसके बाद नौ सप्ताहों में ही १२५८ व्यक्ति और भी मृत्युदण्ड के अधिकारी बनाये गये। प्रेरियल का अधिनियम 'न्याय की सुचारु स्थापना' के लिए उपयोग मे लाया जाता था और यह बात सभी जानते थे कि न्यायालय का अध्यक्ष प्रति दिन रोबेस्पियर के घर जाता था और वहाँ जाकर अपराधियों की सूची तैयार करता था। रोबेस्पियर पर खुले रूप से तानाशाही का आरोप लगाया जाता था और जैकोबिन लोगो में उसके विरुद्ध एक कठोर भावना बढ़ने लगी थी।

न्यायालय के ही लोगों ने उसकी अवनति की योजना बनायी। वे लोग उसे पिसिस्ट्रेट्स कहते थे, और उन्होने एक अर्द्धविक्षिप्त वृद्धा कैथराईन तेओ को तीर का निशाना बनाया। उसके पत्र पकड़ लिये गये और उनमें रोबेस्पियर को एक मसीहा

कहा गया था। यह मामला परीक्षा के लिए सम्मेलन (कन्वेंशन) के समक्ष उपस्थित किया गया और बहुत-सी नयी बाते प्रकाश में आयी। रोबेस्पियर के हस्तक्षेप ने इस मामले को दबा दिया और यही उसके तथा दोनो समितियों में उसके विरोधियों के बीच मतभेद की पराकाष्ठा का बिन्दु बन गया। रोबेस्पियर ने इन समितियों की बैठकों में उपस्थित होना बन्द कर दिया और पूरा पेरिस सन्देह और अविश्वास से परिपूरित हो गया। क्लब में वह अपने शत्रुओं के सम्बन्ध में बहुत कुछ बोला किन्तु उनका नाम लेने का साहस उसमे नहीं था। विरोधीपक्ष की शक्ति बढ गयी और नवम थर्मिडोर (२७ जुलाई, १७६४) को वह दुर्भाग्यपूर्ण संकट उपस्थित हो ही गया। रोबेस्पियर के शत्रुओं ने कुछ भी नही कहा, परन्तु मृत्यु और विनाश उनको घूर-घूर कर देख रहे थे। ताल्लियां ने माँग की कि पर्दा फाड़ डाला जाय। बिलौ ने घोषणा कर दी कि सम्मेलन को विनष्ट करने का एक षड्यन्त्र रचा गया था और वे लोग सभी मारे जाने वाले थे। रोबेस्पियर के मित्रों ने कुछ कहना चाहा पर सब व्यर्थ हुआ। अन्त में वह मंच पर खड़ा हुआ और उसका स्वागत इन चीत्कारो के साथ हुआ, "जनसंहार का अन्त हो! अत्याचारी का विनाश हो!!" उसकी किसी ने भी नही सुनी। उसकी वाणी शिथिल हो गयी थी; एक प्रतिनिधि चिल्ला उठा, "बदमाश! दाँतों का रक्त तेरे कण्ठ को अवरुद्ध कर रहा है।" रोबेस्पियर की मैदान के केन्द्र में पागलों जैसी याचनाएँ बिलकुल विफल हुई। बहुमत ने उसको बन्दी करने का आदेश दिया। उसके छोटे भाई आगस्तिन रोबेस्पियर ने भी बन्दी होने की इच्छा प्रकट की। संसद ने सॉतजूस्त काउथोन और लेबास को भी बन्दी करने का आदेश दे दिया। जब वे लोग संसद-भवन से बाहर ले जाये जा रहे थे, तो कहा जाता है कि रोबेस्पियर ने कहा था, "गणराज्य पराजित हुआ है, गुण्डो की विजय हुई।"

कम्यून, जैकोबिन क्लब और क्रान्तिकारी न्यायालय रोबेस्पियर के पक्ष में थे। राष्ट्रीय सुरक्षा सेना का अधिनायक आँरुआँ भी उसके प्रति सद्भाव रखता था। कम्यून ने उसको और उसके मित्रों को बन्दीगृह से मुक्ति दिला दी और उसको पुलिस के उच्च-कार्यकर्त्ताओं ने मेयर के निवासस्थान में स्थित अपने कार्यालय में पहुँचा दिया। कम्यून ने उसे आने के लिए कहा और यदि वह ऐसा करे तथा जनता को अपने पक्ष मे कर ले तो वह कदाचित् अपने शत्रुओ को सम्मेलन से निकाल बाहर करने मे सफल हो जाय। परन्तु वह एक वकील था और एक राजद्रोह खड़ा कर देने के विषय में बड़ा सावधान था। वह उस स्थान से बिलकुल नही हटा और आत्मसुरक्षा के लिए उसने कोई प्रयास नहीं किया। इसी बीच सम्मेलन का अधिवेशन बैठा और अन्य लोगों के साथ उसे भी न्यायरक्षण से हीन कर दिया गया। ये सभी अपराधी क्रान्तिकारी न्यायाधिकरण

के समक्ष उपस्थित किये गये और वहाँ इनका अपराधी होना मान्य घोपित कर दिया गया।

दशम थर्मिडोर (२८ जुलाई, १७९४) को उसका सिर धड़ से अलग कर दिया गया। जैसे ही उसका सिर गिरा उपस्थित जनता ने बडे जोरों की हर्षध्वनि की जो कुछ मिनटों तक होती रही। थोडे ही समय के अनन्तर उसके दल के ८२ व्यक्तियों को भी मौत के घाट उतार दिया गया। इस प्रकार द्वितीय आतंक की समाप्ति हुई और उस समय यह विश्वास किया जाता था कि उसकी मृत्यु से गणतन्त्र की सुरक्षा हो गयी थी।

रोबेस्पियर का इस प्रकार का अन्त कुछ महत्त्वपूर्ण विचारो को सुझाता है। वह उस समय भी सर्वथा साधारण जीवन ही बिताता रहा जबकि वह मानवीय महानता के उच्चतम शिखर पर पहुँच चुका था। उसने कभी धन पैदा करने के विषय में नही सोचा और एक दिन में १८ फ्रांक पर ही वह सन्तुष्ट था। उसने भौतिकवाद की प्रगति को रोकने का प्रयत्न किया और राजनीतिक मामलों में सदाचार एवं सद्‌गुणों की आवश्यकता पर जोर दिया। परन्तु वह अपने विचारों में बड़ी कठोर विशुद्धता का पोषक था। जैसा कि एक आधुनिक लेखक ने कहा है, "वह समग्र जीवन को श्वेत और श्याम वर्गो में विभक्त एक शतरंज के पट्टे के समान समझता था जिसमें अन्य किसी वर्ण के लिए स्थान न था।[1] एक ओर उसे चापलूसों ने घेर रखा था और दूसरी ओर शत्रुओं ने। वह मनुष्यों को ठीक-ठीक पहचानने में असमर्थ था और अपनी इस असमर्थता की क्षतिपूर्ति का एकमात्र उपाय उसके पास दण्ड देना ही था। वह आतंक पर निर्भर था और जब यह विफल हो गया तो उसने विद्रोह और षड्यन्त्र से काम लेना चाहा। वह एक रचनात्मक राजनीतिज्ञ नहीं था; शासन के सम्बन्ध में एक भी अभिनव महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त उसकी बुद्धि की सृष्टि न बन सका। उसकी रुचि सुन्दर-सुन्दर वाक्यांशों और दिखावे की बातों में अधिक थी और उसका स्वाभिमान संकटकालीन परिस्थितियों में भी झूठी चापलूसी से सन्तुष्ट हो जाता था। निश्चय ही वह बहुत ऊँची महत्त्वाकांक्षाओं को अपने में पालने वाला एक निम्न मानसिक स्तर का व्यक्ति जान पड़ता था। उसके दृढ़ और कठोर स्वभाव ने उसकी कठिनाइयों को और भी बढ़ा दिया था। अब जिस झगड़े में वह फँस गया था उससे पीछा छुड़ाना उसके लिए असम्भव ही था। उसे एक अपराजेय संयुक्त मोर्चे से टक्कर लेनी थी, और उन लोगों से दया की आशा करना नितान्त व्यर्थ था जिन्हें अपने ही प्राणों का भय लगा हुआ था। उन लोगो को अपनी मृत्यु इतनी

---

१. टामसन : लीडर्स आव दि फ्रेंच रिवोल्यूशन, पृष्ठ २४३।

निश्चित दिखलायी पड़ रही थी कि वे अत्यधिक निर्दय और करुणाशून्य हो गये थे। इस प्रकार का था यह भय जिसे तत्कालीन फ्रांस की राजनीति ने पैदा कर दिया था। तथापि अपने सब दोषों के होते हुए भी रोबेस्पियर क्रान्तिकारी इतिहास मे एक महान् व्यक्तित्व है। उसकी मृत्यु के साथ ही साथ क्रान्ति ने नैतिक उदात्तता और राजनीतिक आदर्श-वाद के अन्तिम लक्षणों को भी खो दिया।"

थर्मिडोर के दिन के बाद से ही प्रतिक्रिया आरम्भ हो गयी। इतिहास मे यह घटना थर्मिडोरियन प्रतिक्रिया के नाम से प्रसिद्ध है। सम्मेलन ने कम्यून पर पूर्ण विजय स्थापित कर ली थी। कम्यून की सक्रियता पूर्णतः अवरुद्ध की जा चुकी थी। स्थानीय शासन का पुनःसंघटन किया गया। बाईसवें प्रेरियल का अधिनियम निष्क्रिय कर दिया गया और फाँसी की सक्रियता को भी कम कर दिया गया। गदा से सज्जित युवा पुरुषों का एक दल सडकों पर चलता था और अपने विरोधियो पर आक्रमण करता था। वे जहाँ कहीं भी मारां की प्रतिमा को देखते तोड़ डालते थे और स्वतन्त्रता की लाल टोपी के टुकड़े-टुकड़े कर डालते थे। १२ नवम्बर, १७६४ को जैकोविन क्लब बन्द कर दिया गया और क्रान्तिकारी न्यायाधिकरण में पहले तो कुछ हेरफेर किया गया और बाद में उसका पूर्णतः उन्मूलन कर दिया गया (मई, १७६५)। समितियों से उनके पहले वाले अधिकार और शक्तियाँ छीन ली गयीं और विभिन्न दलो में सन्तुलन क़ायम रखने के लिये उपाय किये गये। कुछ विशेष प्रतिबन्धों के साथ प्रकाशन की स्वतंत्रता दे दी गयी, परन्तु कोई भी राजतन्त्र का पक्ष समर्थन नहीं कर सकता था। अधिकतम का अधिनियम निष्क्रिय कर दिया गया। मुद्रास्फीति के कारण मूल्यों में असाधारण रूप से वृद्धि हो गयी थी। रोटी की दुर्लभता ने पेरिस तथा अन्य प्रदेशों में बहुत से दंगे करा दिये। सम्मेलन ने खूब कडे कदम उठाये और कुछ जैकोबिन बन्दी कर लिये गये। सर्वत्र क्रान्ति के लाल आतंक ने श्वेत आतंक के लिए स्थान रिक्त कर दिया। उदारवादियों और राजतन्त्रवादियों ने अपने विरोधियों से डटकर बदला लिया और उन पर खूब अत्याचार किये। गिरजा के विरोधी अध्यादेशों को निष्क्रिय कर दिया गया, यद्यपि कैथोलिक मत के विषय में यह घोषणा कर दी गयी कि यह 'असहिष्णु, उद्दण्ड और छछोरा' है। पुरुषों को अपने विश्वासो मे विवेक का उपयोग करने के लिए कहा गया। पादरियो को नियमित वेतन देना बन्द कर दिया गया और वैधानिक रूप से धर्म-मन्त्री का कोई स्थान नहीं था। वैधानिक दृष्टि में ईश पूजा का अन्य भी कोई लक्षण नहीं स्वीकार किया गया। क्रमशः कानून की सख्तियाँ कम हुई और गिरजा तथा राज्य के बीच की कलह दिन-प्रति-दिन कम होती गयी। १७६५ में सम्मेलन (Convention) ने गिर्जे को राज्यशासन से पृथक् कर दिया। इसने धार्मिक स्वतन्त्रता

की स्थापना की और गिरजो को धार्मिक कार्यो के लिए ही सीमित कर दिया गया।

सामाजिक क्रियाकलापो में भी प्रतिक्रिया हुई। मनोरंजन के कार्यक्रमो मे जिन नाटकों का अभिनय किया जाता था वे जैकोबिन-विरोधी होते थे। सदाचार का शासन अव समाप्त होता ही दिखायी पड रहा था और पुरुष तथा महिलाएँ स्पार्टन जीवन चर्या से घृणा करने लगी थीं। सव तरह के प्रतिवन्ध घृणा की दृष्टि से देखे जाते थे। बर्रास जैसे नैतिकताहीन और बेईमान लोग अब रंगमंच पर आने लगे। थर्मिडोरियन काल का एक दूसरा प्रतिनिधि ताल्लियॉ था, जिसकी पत्नी तेरेसिया केबारस बहुत प्रसिद्धि प्राप्त कर रही थी। वह एक निर्लज्ज और चरित्रहीन स्त्री थी, सदाचार नाम की कोई भी वस्तु उसमें नहीं थी। उसने अपने पति और उसके मित्रों से जैकोबिन लोगो का नाश करने के लिए कहा। यह एक और भी अधिक पुष्ट कारण था जिससे प्रेरित होकर एक जैकोविन ने लिखा था. "बदमाशों ने अपनी रखैलों को हमारे सिर देने का वचन दिया है।" यह तथ्य कि इस प्रकार के कुख्यात पुरुष तथा स्त्रियॉ,प्रकाश में आ गयी, प्रकट करता है कि क्रान्ति अपने आदर्शो को किस सीमा तक भुला चुकी थी। दुराचार ने सदाचार का स्थान ले लिया और निर्लज्जतापूर्वक लोग उसका पालन करते थे। मार्सेईएज (फ्रांस के राष्ट्रगान) का स्थान थर्मिडोरियन गीत ने ले लिया। इसका नाम था 'जनता जाग उठी'

> "प्रतिहिंसा का विलम्बित दिवस
> अब कसाइयों को लज्जित कर रहा है।"

सम्मेलन एक नया संविधान बनाने में तत्पर हो गया, जिसका वर्णन वाद मे किया जायगा। इसके बाद अधिवेशन को समाप्त हो जाना चाहिए था परन्तु सदस्यगण अभी भी शासन की बागडोर अपने ही हाथ में रखना चाहते थे। उन्होंने दो अध्यादेश पारित किये जिनसे नये संविधान के अनुसार निर्मित दोनो सभाओ के दो-तिहाई सदस्य सम्मेलन के सदस्यों में से चुने जाने चाहिए थे। ये दोनों अध्यादेश सर्वसाधारण जनता के समक्ष सम्मति के लिए रखे गये, जनता ने इनका कड़ा विरोध किया। पेरिस ने विरोध किया और एक विद्रोह संघटित कर लिया। राजतन्त्रवादियो ने भी पेरिस-विद्रोह मे साथ दिया और अक्तूबर, १७९५ मे सम्मेलन के विरुद्ध एक खुला विद्रोह खडा हो गया। राष्ट्रीय सुरक्षा सेनाएँ भी विद्रोहियों के साथ मिल गयी। परन्तु जब वे लोग तुइलरीज की ओर बढ़े तो १३ वान्देमियेर (५ अक्तूबर, १७९५) को सशस्त्र सेना के एक युवा तोपखाने के अधिकारी बोनापार्ट ने उन्हें वहाँ से हटा दिया। बोनापार्ट को इस कठिन परिस्थिति को सँभालने का भार सौंपा गया था। उस युवा सेनानायक ने अपनी तोप चलायी और इस प्रकार सम्मेलन की रक्षा की।

राजतन्त्रवादियों की आशाएँ मिट्टी मे मिल गयी। सोलहवे लुईका पुत्र सत्रहवाँ लुई, जिसे जैकोबिन लोगो ने बन्दी कर रखा था, ८ जून, १७९५ को बन्दीगृह मे ही मर गया। राजा का भाई कौतद प्रोवाँस, जोकि अब नेरोना मे एक शरणार्थी था, अठारहवाँ लुई बन बैठा था। परन्तु वह पुरातन व्यवस्था का पुजारी था। भगोड़े वास्तव में देशद्रोही थे जो पुरानी व्यवस्था को पूर्णतः पुनर्जीवित करना चाहते थे। इस प्रकार स्पष्ट ही राजतन्त्र की पुनः स्थापना असम्भव थी।

२६ अक्तूबर, १७९५ को सम्मेलन भंग कर दिया गया। हम यदि पीछे मुड़कर देखें तो मानना पड़ेगा कि सम्मेलन के कार्य में बहुत-से दोष और ग़लतियाँ थी। इसके आनन्दोत्सव तथा क्रूरताएँ इतिहास के पृष्ठों पर बड़े-बड़े अक्षरों में अंकित है। परन्तु इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि उसने बहुत-से महत्त्वपूर्ण कार्य भी किये थे। इसने अनेक युद्धो मे फ्रास के शत्रुओं को पराजित किया था। अन्तरग प्रगति एवं विकास के लिए इसने बहुत कुछ किया। इसने समस्त देश के लिए एक ही प्रकार के बाट तथा मापो का निर्माण किया। इसने अधिनियमों को सुव्यवस्थापूर्वक शब्दबद्ध करने तथा शिक्षा की व्यवस्था को संघटित करने के भी प्रयास किये। शिक्षा के माध्यम से राजनीतिक विचारो को समझना, यह वास्तव मे जैकोबिन योजना का एक अग मात्र था। कौदोर्से ने जो रिपोर्ट १७९२ में संसद के समक्ष रखी थी, उसने प्रति चार सौ निवासियों के लिए एक आरभिक (प्राइमरी) शिक्षा की पाठशाला का सुझाव दिया था। इसने स्वयं ही निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का पक्ष-समर्थन किया, यद्यपि इसके सिद्धान्त बाद में मान्य नहीं रह गये थे। लीसे (केन्द्रीय पाठशालाएँ) प्रत्येक विभाग मे स्थापित कर दिये गये थे। परन्तु यह पाठशालाएँ कुछ भी विशेष नहीं कर पायी क्योंकि प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव था। एक अन्य उपाय जिससे कि सम्मेलन शिक्षा को प्रोत्साहन देना चाहता था, जनवरी, १७९५ को पेरिस के एकोल नार्माल की स्थापना करना था। फ्रांस का शिक्षा संस्थान शासन द्वारा मान्य कर लिया गया था और इसके कार्यों का विस्तार विशद कर दिया गया था। राजपुस्तकालय अब राष्ट्रीय पुस्तकालय मे बदल दिया गया था, और उसमें मूल्यवान् हस्तलिखित ग्रन्थो तथा अन्य कला कृतियों की संख्या खब बढ़ायी गयी थी।

गीज़ो के अनुसार अखिल विश्व की क्रान्तिकारी सभाओ में सम्मेलन (कन्वेन्शन) कदाचित् सर्वाधिक क्रियाशील ध्वंसक सभा थी।

युद्ध तथा सम्मेलन

वामी के महान् दिवस के पश्चात् फ्रांसीसी सेनानायकों ने सैनोम और नीचे पर

अधिकार कर लिया। उन्हें इन प्रदेशों को हथियाने में सार्डीनिया के राजा का अधिक विरोध नही सहना पड़ा। मैयौन्स ने अक्तूबर, १७६२ मे कुस्तीन के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया, और विजयी सेनानायक ने फ्राकफोर्त-आन-द-मेन के नगर से भारी हर्जाना लिया। ड्यूमोरिये ने भी बड़ी महत्त्वपूर्ण विजयें प्राप्त कीं। उसने लिल्ले पर जो घेरा डाला हुआ था उसे उठा लिया और जेमापीज मे आस्ट्रिया निवासियों को पराजित कर दिया (६ नवम्बर)। इसका लाभ यह हुआ कि वह अब बेल्जियम की राजधानी ब्रुसेल्स में एक विजयी के रूप में प्रवेश कर सकता था। बेल्जियम की पराजय का स्वागत सम्मेलन ने बहुत हर्षपूर्वक किया और समस्त फ्रांस अपने सेनानायकों की सफलता पर फूला न समाया। इतने पर भी बस नही हुई। फ्रांस के राजनीतिज्ञो की एक यह व्यापक अभिलाषा थी कि क्रान्ति के सिद्धान्तों को दूर-दूर तक फैलाया जाय। उन्होंने उन सब लोगो को सहायता देने की तैयारी की जो अपने-अपने शासको से मुक्ति पाना चाहते थे।

इस प्रकार से सम्मेलन ने फ्रास की वैदेशिक नीति को एक अभिनव दिशा की ओर ही मोड़ दिया। इसका उद्देश्य यह था कि फ्रांस की सीमाएँ आल्प्स और राईन तक बढ़ा ली जायँ और विजित देशों में फ्रांसीसी शासन-विधि स्थापित की जाय। नीचे और सेवौइ को फ्रांस के साथ संयुक्त करने के अध्यादेश की घोषणा कर दी गयी परन्तु बेल्जियम को मिलाने का प्रश्न बड़ा टेढ़ा था। इससे यह पूर्णत: निश्चित था कि फ्रास और इंग्लैण्ड की शत्रुता बढ जाती। वस्तुस्थिति यह थी कि जब तक सम्मेलन अपने सिद्धान्तो को छोड़कर बेल्जियम ऑस्ट्रिया को लौटा न देता तब तक शान्ति की स्थापना असम्भव थी। इस अशान्ति और कलह का एक अन्य कारण भी था। सम्मेलन ने शैल्ट की नौयात्रा पर किसी प्रकार के भी कर न लेने की घोषणा कर दी, और शैल्ट एक यूरोपीय सन्धि के अनुसार वाणिज्य के लिए बन्द कर दी गयी थी। इस व्यवस्था मे इंग्लैण्ड का भी बड़ा हाथ था और इसमें व्यर्थ के लिए किसी प्रकार का विक्षेप उत्पन्न कर दिया जाय, यह बात उसे कदापि सह्य नही थी। यदि फ्रासीसी प्रभाव ऐसे ही बढ़ता चला जाता तो इंग्लैण्ड युद्ध की घोषणा करने के लिए भी तैयार था। यही नही, यदि सम्मेलन फ्रांसीसी सेनाओ द्वारा अधिकृत देशों में जनता की सर्वोच्च सत्ता जैसे विचारो, पुरानी व्यवस्था तोड़ने और सामन्ती अधिकारो तथा रीतियों का उन्मूलन करने के अध्यादेश जारी कर देती, तो इग्लैण्ड को युद्ध की घोषणा करने में विलम्ब न लगता।

इंग्लैण्ड का दृष्टिकोण नितान्त स्पष्ट था। क्रान्ति के उदात्त आदर्शो ने बहु-संख्यक अंग्रेज़ों की हृत्तन्त्री को स्पर्श नही किया था। डाक्टर प्राइस तथा कुछ अन्य महानुभावों को छोड़कर इंग्लैण्ड में और कोई उत्साही नही था जो उन सब बातों का

स्वागत करता जिनके लिए क्रान्ति का अस्तित्व था। सन् १७९० मे बर्क ने 'रिफ्लैक्शनस ऑन दि फ्रेंच रिवोल्यूशन' शीर्षक अपनी कृति प्रकाशित की। इसमे उसने फ्रांस को एक 'नरभक्षी किला' कहकर निन्दित किया। रूसो के 'सामाजिक समझौता' का वर्णन उसने इन शब्दो में किया, 'वह पुस्तक कागज के तुच्छ धब्बो वाले चिथड़े' मात्र हैं। क्रान्तिकारी विचारो का प्रचार करने की दुष्टता का उसने बड़े आलंकारिक शब्दो में वर्णन किया। उसने बडे दैवी उत्साह के साथ क्रान्ति के दोषो की व्याख्या की और इन दोषो से उद्भूत संकटो का इंग्लैण्ड के संविधान पर क्या असर होगा, इसकी उसने बड़े विस्तार से विवेचना की। उसकी पुस्तक ने इग्लैण्ड की जनता पर बहुत महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला और क्रान्तिकारी विचारो की जड़ वहाँ जमने नही दी। थोड़े-से ही समय में इसकी तीस सहस्र प्रतियाँ हाथों हाथ बिक गयी, सम्राट् जार्ज तृतीय ने उसे पढ़कर सविस्मय कहा था, "यही है ऐसी पुस्तक जिसे प्रत्येक सभ्य व्यक्ति को पढ़ना चाहिए।" उच्च वर्गो मे यह भावना अधिकाधिक बढ़ने लगी कि फ्रास को इस बात के लिए स्मरण दिलाया जाय कि वह शैल्ट सम्बन्धी सन्धि का परिपालन करे और बेल्जियम से अपनी सेनाएँ हटा ले। विलियम पिट ने दोनों राष्ट्रो के बीच शान्ति सम्बन्ध बनाये रखने के काफी प्रयत्न किये परन्तु उसके सभी प्रयास विफल हुए।

राजा की फाँसी ने सारी परिस्थिति ही बदल डाली। इग्लैण्ड के साथ एक खुली कलह अनिवार्य हो गयी। सम्मेलन ने बेल्जियम को मिला लेने का अध्यादेश पारित किया और इंग्लैण्ड तथा हॉलैण्ड से युद्ध की घोषणा कर दी। फ्रांस के विरुद्ध जो संयुक्त मोर्चा बना उसमे स्पेन, पुर्तगाल, उसके साम्राज्य तथा अधिकांश इटैलियन राज्यो ने भी भाग लिया।

इन संयुक्त मोर्चे वालों ने ड्यूमोरिये पर भीषण आक्रमण कर दिया। ड्यूमोरिये उस समय बेल्जियम मे था। वह नीरविंदन मे पराजित हो गया (२१ मार्च, १७९३)। इसका फल घोर भ्रष्टाचार हुआ और फ्रासीसी लोग बेल्जियम से निकाल बाहर किये गये। ड्यूमोरिये एक अवैधानिक यकायक क्रान्तिकारी कार्य कर डालना चाहता था, परन्तु वह भाग गया और ५ अप्रैल को लगभग एक सहस्र सैनिक लेकर आस्ट्रियावासियों के पास पहुँच गया।

ड्यूमोरिये का भाग निकलना गणतन्त्री सेनाओ के मुँह पर एक गहरी चपत थी। ज़िरोन्दिस्त और जैकोबिन लोगो की पारस्परिक कलह ने युद्ध पर बड़ा प्रतिकूल प्रभाव डाला। न केवल फ्रासीसी सेनाएँ 'प्राकृतिक सीमाओ' से बहुत दूर थी, उन्हें एक गम्भीर सकट का भी सामना करना पड़ा। सयुक्त शक्तियो ने फ्रांस को धमकाया और देश के कलहप्रिय एवं तत्कालीन स्थिति से असन्तुष्ट लोगो ने इन विदेशी शक्तियो को प्रोत्साहन

भी दिया। फ्रासीसी सेनाओ को बहुत हानियाँ उठानी पड़ी और यह तो बिलकुल ही स्पष्ट था कि गणतन्त्र की बलपूर्वक आशुनिर्मित सेनाएँ सयुक्त मित्र राज्य शक्तियों की सुप्रशिक्षित सेनाओ की तुलना कदापि नही कर सकती थी। समूची सैनिक नीति मे आमूल सुधार किया जाना अत्यावश्यक हो गया।

जैकोबिन लोगो ने देश की सुरक्षा सेनाओं को विशिष्ट बल और उत्साह से पुनः सघटित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य अपने ऊपर लिया। सार्वजनिक सुरक्षा समिति की स्थिति इस समय बड़ी शोचनीय थी। उसे एक ओर तो घरेलू युद्ध का भय था और दूसरी ओर विदेशी आक्रमण का भय, उसकी स्थिति बिलकुल साँप के मुँह में छछून्दर की थी। अतः उसने देश को आत्मरक्षार्थ तैयार करने के लिए बड़े कठोर उपायों का सहारा लिया। सम्मेलन के एक अध्यादेश (२३ अगस्त, १७९३) के अनुसार प्रत्येक नागरिक को अपने देश की रक्षा के कार्य मे भाग लेने के लिए कहा गया। इस प्रकार सेना के लिए सार्वजनिक भर्ती का आदेश जारी हो गया और १७९३ के अन्त तक फ्रांसीसी सेनाओ की संख्या ७,५०,००० तक हो गयी। इस बार सेना की संख्या ही केवल नही बढ़ायी गयी। वरन् इस बात का भी विशिष्ट प्रयत्न किया गया कि सैनिक सामग्री मे भी उन्नति हो, जिससे कि सेनाओ को युद्ध मे शक्तिशाली एवं सक्रिय यन्त्र बनाया जा सके। यह जानना बडा रोचक है कि शोरे (साल्टपीटर) की अधिकांश मात्रा भारतवर्ष से आती थी परन्तु ब्रिटिश सामुद्रिक शक्ति ने इसके आयात पर कुछ रोक लगा दी थी। युद्ध की सामग्री को तैयार करने के लिए बड़े-बड़े कारखाने स्थापित किये गये। कार्यरत प्रतिनिधियो को सामान्य जनता मे देशभक्ति का संचार करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रान्तों मे भेजा गया। सेनाध्यक्षों (कमाण्डर) की नियुक्ति में व्यक्तिगत योग्यता एवं प्रतिभा वाले लोगो को सर्वप्रथम स्थान दिया जाता था, और सेनाओं का संचालन-भार होशे जैसे बहुत ही योग्य एव प्रतिभाशाली लोगों के हाथ सौपा गया। जोर्दां तथा बोनापार्ट कार्नो ने शत्रु पर विजय प्राप्त करने की नयी विधियो का सुझाव दिया। हान्दशोत के युद्ध मे होशार ने अंग्रेजो पर विजय प्राप्त कर ली (८ सितम्बर), परन्तु वह अपने विजयमार्ग पर और आगे न बढ़ सका और इसीसिए उसे फाँसी दे दी गयी। वाट्टिग्नीज पर जोर्दा ने आस्ट्रियनो को पराजित कर दिया (१६ अक्तूबर)। कुछ समय के बाद होशे और पिशेग्रू ने ऑस्ट्रियनों को राइन नदी के उस पार भगा दिया। देश की सीमाएँ इस प्रकार सर्वथा सुरक्षित हो गयीं और शत्रु की फ्रांस की ओर प्रगति रोक दी गयी।

ल्यों और तूलौ में विप्लव शान्त कर दिया गया और तूलौ के घेरे मे बोनापार्ट ने खूब प्रसिद्धि प्राप्त कर ली तथा सेनानायक (जेनरल) की पदवी प्राप्त कर ली। वान्देआँ

का राजविप्लव कुचल दिया गया और नान्त मे भी राजविद्रोहियो को निर्दयता से दण्ड दिया गया। स्पेनियार्द लोग भी पराजित हुए और सीमा प्रान्त से दूर भगा दिये गये।

फ्रांसीसी सेनाओ की ये विजय कुछ विशिष्ट कारणों से हुई; (१) सार्वजनिक सुरक्षा समिति के बल और उत्साह के कारण, (२) अपनी पितृभूमि के सुरक्षार्थ गणतन्त्री सेनाओं के उत्कट उत्साह के कारण, (३) उनकी बहुत अधिक सख्या होने के कारण, (४) मित्र राज्यशक्तियों मे पारस्परिक सहयोग का अभाव होने के कारण। आस्ट्रियन, प्रशियन तथा अंग्रेज़, इन सबके भिन्न-भिन्न उद्देश्य थे तथा परस्पर विरोधी हितों के लिए ये लोग युद्ध कर रहे थे।

फ्रास की गृहनीति पर इन विजयो ने बडा गम्भीर तथा महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला। सार्वजनिक सुरक्षा समिति ने सभी विरोधी तत्त्वो को कुचल डाला और समस्त राज्यसत्ता अपने हाथो मे एकत्र कर ली। आतंक का साम्राज्य स्थापित हो गया और फ्रास की जनता ने इसे सहमतिपूर्वक स्वीकार कर लिया। क्योकि विदेशी शत्रुओं और उन देशद्रोही भगोडो से जो राष्ट्र का सर्वनाश करने के लिए षड्यन्त्र रच रहे थे पितृभूमि की रक्षा करने का एक यही उपाय उन्हें ठीक जान पड़ रहा था।

मित्र राज्यशक्तियो की फूट का लाभ उठाकर फ्रांसीसी सेनानायको ने स्वयं आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। पिशेग्रू और ज़ोर्दा की सयुक्त सेनाओ ने तूरकोइंग पर ऑस्ट्रियनों को पराजित कर दिया (१८ मई)। प्रशा ने पोलैण्ड के भावी बँटवारे को ध्यान मे रखते हुए अपनी सेना का एक भाग वार्सा की ओर भेज दिया और ऑस्ट्रिया ने दृढ़तापूर्वक बड़े खुले शब्दों में यह घोषणा कर दी कि वह भी इस मामले में एकाकी होकर अलग नहीं रहना चाहता। मित्र राज्यशक्तियो की जब यह स्थिति थी तो जोर्दा की सेना पर कोबुर्ग की सेनाध्यक्षता में ऑस्ट्रियनो ने आक्रमण कर दिया, परन्तु फ्ल्यूरस पर उसे पूर्ण पराजय मिली (२६ जून)। यह फ्रास की सेनाओं की एक अत्यधिक महत्त्व-शाली विजय थी और इसने कुछ बड़े महत्त्वपूर्ण प्रभावों को जन्म दिया। जोर्दा ने ब्रूसेल्स में प्रवेश किया (जुलाई)। अपने आगे-आगे अंग्रेजों को भगाते हुए पिशेग्रू ने एण्टवर्प पर अधिकार कर लिया और इस प्रकार बेल्जियम पूरी तरह से फ्रासिसियो के हाथ में आ गया। १७९४ के वर्ष ने फ्रांस को अत्यधिक महत्त्वशाली विजयें प्रदान की। गणतन्त्री सेनाओ की सफलता इन शब्दों मे उपसंहृत की गयी है, "आठ स्थायी विजय प्राप्त हुईं, ११६ नगरों तथा २३० गढ़ो पर अधिकार कर लिया गया, ९०,००० बन्दी और ३,८०० तोपे पकड़ी गयी।"

बेल्जियम पर अधिकार कर लेने के बाद फ्रांसीसी सेनाएँ हालैण्ड की ओर बढ़ी और अग्रेज़ों तथा हैनोवेरियनो से उनकी मार्ग मे कोई गहरी मुठभेड़ नही हुई। सात

संयुक्त प्रदेश बटैलियन गणतन्त्र में ही मिला दी गयी और इनकी स्थिति बिलकुल फ्रांस के एक अनुचर की सी बना दी गयी (१२ मई, १७६५)।

फ्रांसीसी राष्ट्र का युद्धज्वर अपनी अन्तिम सीमा को पहुँच गया और सभी राजनीतिक दल देश की सुरक्षा तथा राष्ट्रीय सम्मान के लिए संयुक्त हो गये। एक अल्पसंख्यक दल साम्राज्य के साथ शान्तिपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने के पक्ष में था, इन लोगो का मत था कि राइनलैण्ड्स की पुनः स्थापना की जाय और बेल्जियम को एक गणतन्त्र राज्य वना दिया जाय। परन्तु बॉयसी, दाग्ला, तिबादो, मर्ला आव दुआए, कार्नो, सियेज, कम्बासेरे प्रभृति महानुभाव जिनके पास प्रभूत बल एव प्रभाव था, बेल्जियम को फ्रास में मिलाना चाहते थे और देश की सीमाओ को राईन अथवा म्यूज़ तक बढ़ाना चाहते थे।

ऑस्ट्रिया की वैदेशिक नीति इस समय त्यूग्यूँ द्वारा सचालित हो रही थी। वह एक गर्वीला महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था। वह यद्यपि बेल्जियम को अपने अधिकार मे रखने के सम्बन्ध मे विशेष सतर्क नही था परन्तु वह अन्यत्र कहीं भी देश की सीमाएँ बढ़ाना चाहता था। यह इच्छा तीन प्रकार से पूरी की जा सकती थी, (१) बवेरिया को मिला लेने से, (२) इटली मे कुछ प्रदेशों पर अधिकार प्राप्त कर लेने से, अथवा (३) पूर्व मे टर्की तथा पोलैण्ड का सीमा-विच्छेद करने से। उसने सम्राट् को रूस से सन्धि करने का परामर्श दिया और जब १७६५ में तृतीय विभाजन हुआ तो उसने अपने देश के लिए पोलैण्ड का एक छोटा सा भाग प्राप्त कर लिया। इन सब कार्य-व्यवस्थाओ मे प्रशा से कोई सलाह नही ली गयी परन्तु उसे विभाजन मे से कुछ भाग अवश्य दे दिया गया। ऑस्ट्रिया तथा रूस टर्की के प्रति अपनी नीति के सम्बन्ध में पारस्परिक सहयोग के विषय मे पूर्णतः एकमत थे।

ऑस्ट्रिया और प्रशा के परस्पर विरोधी उद्देश्यो ने मित्र-राज्य-शक्तियों को अपना लक्ष्य पूरा करने मे बहुत बाधा पहुँचायी; और इसीलिए इंग्लैण्ड ने द्वीपव्यापी संघर्ष से अपने आप को हटा लिया और समुद्रों पर अपनी शक्ति का एकान्त संचय करने लगा। सामुद्रिक शक्ति में इंग्लैण्ड ने शीघ्र ही खूब सफलता प्राप्त कर ली। १७६४ के आरम्भ मे ही उसने कार्सिका पर अधिकार स्थापित कर लिया था; और लार्ड हाउ ने फ्रांसीसी नौ-सेना के बेड़े को ब्रेस्ट के पार पराजित किया था। तोबैगो, मार्तीनीक, ग्वादालोप तथा अन्य पश्चिमी भारतीय द्वीप इंग्लैण्ड के अधिकार में अब तक जा चुके थे। सोंतदोमिंगो भी इस समय भयकर सकट से मे फँस चुका था।

यूरोप मे इस समय मित्र राज्य-शक्तियो के लिए युद्ध का वातावरण बहुत उत्साह-वर्द्धक नही था। फ्रासीसी सेनाओं ने स्पेनिश और इटालियन सीमा प्रदेशों पर अच्छी

विजयें प्राप्त की थी। प्रशा क्योंकि युद्ध में आधे-से मन से भाग ले रहा था, इंग्लैण्ड ने ऑस्ट्रिया को सहायता देने का वचन दिया और इस प्रकार इंग्लैण्ड, ऑस्ट्रिया और रूस मे परस्पर एक त्रिशक्ति-समझौता हो गया कि वे लोग संयुक्त होकर क्रान्ति का विरोध करेंगे। जब इधर यह सब कुछ हो रहा था, उधर प्रशा ने, जोकि युद्ध से अधिक पोलैण्ड को हथियाने के फेर मे था, अपने आपको युद्ध से हटा लिया और बेज़िल मे फ्रांसीसी राजदूत से सन्धि-समझौते के लिए तैयारी दिखलाने लगा (१७६५)।

फ्रांस और प्रशा की प्रथम संयुक्त शक्ति तो शीघ्र ही टुकड़े-टुकड़े हो गयी और बेजिल मे अनेक सन्धियाँ हुई। ५ अप्रैल, १७६५ को फ्रांस और प्रशा में पारस्परिक शान्ति, मित्रता और नेकनीयती का समझौता हुआ। प्रशा ने गणतन्त्र को मान्य घोषित किया और राइन के पश्चिम मे स्थित फ्रांसीसी अधिकृत प्रदेशों को उन्हें वापस कर दिया, और इस क्षति की पूर्ति अन्यत्र करने का निश्चय किया। फ्रांस ने एक गुप्त धारा के अनुसार प्रशा को उसकी इच्छा पूरी करने में सहायता देने का वचन दिया। फ्रास ने सन्धि हॉलैण्ड से भी कर ली जिसमे उसने लिखित रूप से संयुक्त प्रान्तो के गण-तन्त्र राज्य को एक स्वतन्त्र तथा आत्मनिर्भर शक्ति के रूप मे मान्यता प्रदान की, परन्तु वास्तव में उसे फ्रास का परतन्त्र राज्य बनकर रहना था। उसे फ्रास को युद्ध की हानिपूर्ति के निमित्त दस करोड़ फ्लोरॉ की रकम देनी पड़ी तथा एक विशाल फ्रांसीसी सेना को अपने यहाँ रखना पड़ा, जिसका पूर्ण व्यय उसी पर था। इसके अतिरिक्त दक्षिणी हालैण्ड मे उसे अपने प्रदेश मे से एक छोटा-सा भाग फ्रांस को देना पड़ा और कला तथा विज्ञान की एकत्र की हुई मूल्यवान वस्तुओं का समर्पण कर देना पड़ा।

२२ जुलाई, १७६५ को स्पेन से भी शान्ति-सन्धि कर ली गयी। इसके अनुसार फ्रांस को उत्तरी स्पेन का वह भाग छोड़ देना पड़ा जो उसने आक्रमण करके जीता था और इसके बदले मे उसे दोमिगो लौटा दिया गया। पहली अक्तूबर, १७६५ को बेल्जियम भी फ्रांस मे मिला लिया गया और इसके वासियों को फ्रांसीसी नागरिकता के सभी अधिकार दिये गये।

भगोड़ों पर विजय

गणतन्त्री सेनाओ ने एक अन्य बड़ी महत्त्वपूर्ण विजय भी प्राप्त की। वे राज-तन्त्रवादी जिन्होंने इंग्लैण्ड में शरण ली थी, अपनी पितृभूमि के प्रति बहुत क्रोध और प्रतिहिसा की भावना रखते थे। उनके उकसाने पर १७६५ में एक अंग्रेज़ी नौ-सैनिक-

बेड़े ने सेण्ट जॉन वारेन की सेनाध्यक्षता मे क्वीवरनॉन की खाडी की ओर प्रस्थान किया। इस बेड़े मे अधिक सख्या भगोड़ों और युद्ध के फ्रासीसी बन्दियो की ही थी, इनका सैनिक बल कम नहीं था। परन्तु यह सैनिक अभियान असफल रहा। सेनानायक होशे ने इनको पराजित कर दिया और इनमे से १२,००० को बन्दी बनाकर ले गया। ताल्लियाँ के आदेश पर इनमे से ४०० को गोली से मार दिया गया। ताल्लियाँ इस प्रकार के क्रूर अत्याचार नान्त में भी कर चुका था।

लुई सोलहवे के भाई आर्त्वा के काउण्ट की अध्यक्षता में एक अन्य ४००० सैनिको का सैनिक अभियान वान्दी तक पहुँचा परन्तु राजतन्त्री आशाएँ निर्दयतापूर्वक कुचल दी गयी और उनके प्रतिक्रियावादी नायक को विवश होकर इंग्लैण्ड लौटना पडा।

अध्याय ७

फ्रांस पर संचालक मण्डल का शासन

(१७९५—९९)

फ्रांस—तृतीय वर्ष में और नया संविधान

गणतन्त्र के तृतीय वर्ष मे फ्रांस एक 'बीमार व्यक्ति' सा लगने लगा था। माल्लें दुपाँ के अनुसार राष्ट्र की स्थिति अब उस थके हुए पागल की सी थी जो पुनः अपने होश मे लौट आया हो। वे उत्तेजित भावनाएँ जो क्रान्ति ने भड़का दी थी अभी तक पूर्णतः शान्त नही हुई थी परन्तु इसने जो रुचियाँ उत्पन्न कर दी थी वे एक संजीवनी शक्ति बन गयी थी। ये हितैषणाएँ अथवा रुचियाँ ही मानवीय महत्त्वाकांक्षा और शक्ति का संचालन करती है। साधारण कारीगर, श्रमिक, राजनीतिज्ञ तथा कृषक—ये सभी अपनी अभी तक की उपलब्धियो को सुरक्षित रखना चाहते थे। सारे देश मे भीषण दरिद्रता का हाहाकार था। एसाइनेट्स के मूल्य घट गये थे; जनवरी, १७९५ मे एक सुवर्ण लुई १३० लिव्रे के एसाइनेट्स के बराबर था परन्तु इसी वर्ष के अक्तूबर मास में उसका मूल्य २,५०० लिव्रे के एसाइनेट्स के बराबर हो गया। अधिकतम का अधिनियम हटा दिया गया था, परन्तु इससे फ्रास की जनता को कोई लाभ नहीं हुआ। रोटी तो अतिदुष्प्राप्य थी और मूल्य असाधारण रूप से बढ़ गये थे। एक रोटी ४५ लिव्रे की बिकती थी और कॉफ़ी का एक प्याला लेने के लिए दस लिव्रे देने पड़ते थे। जनता के कष्टो का अन्त नही था और अब ये कष्ट असह्य भी हो गये थे। कोई काम करने को नही था। कारखाने बन्द कर दिये गये थे और सहस्रों व्यक्ति काम से हटा दिये गये थे। बेकारी काफी बढ गयी थी। सम्पत्ति अब नये हाथो मे चली गयी थी और धनिको के विशेषाधिकार क्रमशः प्रभावशाली होते जा रहे थे। समाज मे विषय-भोग की लालसा सीमा का उल्लघन कर रही थी और बाह्याडम्बर का एकछत्र साम्राज्य था। पुरुष तथा स्त्रियाँ सभी विषयसुखो के पीछे बड़ी निर्लज्जता से पड़े हुए थे। नाट्यशालाएँ 'पूरी तरह से भ्रष्टाचार और दुष्टाचरण की गन्दी नालिया' बनी हुई थी। जीने की एक अविचारित आकांक्षा बलवती हो रही थी—यह कदाचित् आत्महत्या और

मृत्यु के उस अनुराग की बलवती प्रतिक्रिया थी जिसका समुचित अर्जन लोग आतक के दिनो मे कर चुके थे। धनी लोग अपने ऐश्वर्य का प्रदर्शन करते थे और सहस्रो क्रीडा-भवन अस्तित्व मे आने लगे। इस अनैतिक समाज की महारानी थी मदाम तालिलयाँ; बड़ी आकर्षक और विषयानुरागिणी नारी, इसका उल्लेख हम पहले भी कर चुके हैं। उसकी वेशभूषा का ऊपरी भाग अर्थात् जम्पर ही १२,००० लिव्रे का होता था, और वह बाह्य शृगार तथा साज-सज्जा के ससार की एकाकी नेत्री थी।

अपने-अपने क्षेत्रो पर कृषको का पूरा-पूरा अधिकार था, इन क्षेत्रो को उन्होंने क्रान्ति के दिनो मे खरीद लिया था। कृषि की दिन प्रतिदिन उन्नति हो रही थी और सामन्ती करो तथा विशेषाधिकारो का उन्मूलन जनता के लिए एक मंगलमय आशीर्वाद बन गया। अनेक निर्धन लोग एक बार भूमिधर बन गये थे और अपनी-अपनी भूमि के प्रति उन्होंने पर्याप्त मोह भी अर्जित कर लिया था। वे लोग किसी प्रकार के परिवर्तन के पक्ष मे नही थे और सम्पत्ति पर किसी प्रकार का आक्रमण उनके लिए असह्य था। वे लोग अभी तक कैथोलिक मतावलम्बी थे और अपने पादरियों को पुनः उनके पूर्व पदो पर प्रतिष्ठित कराना चाहते थे परन्तु वे अपने अधिकृत क्षेत्रो पर किसी प्रकार की भी आँच नही आने देना चाहते थे। वे लोग वास्तव मे अपने जीवन का रक्षण और अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा चाहते थे। राजतन्त्र अथवा गणतन्त्र से उन्हे कोई खास मतलब नही था, वे तो क्रान्तिकाल मे अर्जित अपनी उपलब्धियो को पूर्णतः सुरक्षित देखना चाहते थे। इसमे कोई सन्देह नही कि वे लोग 'पुरातन व्यवस्था' की पुनःस्थापना से बहुत डरते थे और करो तथा दशमांशो की उस व्यवस्था से कठोर घृणा करते थे जिसे क्रान्ति नष्ट कर चुकी थी। वे जैकोबिन लोग जो खूब धनी हो गये थे और जिन्होंने पर्याप्त सम्पत्ति अर्जित कर ली थी, भविष्य के सम्बन्ध मे बड़े उत्सुक थे। राज-हत्यारों ने अपना ही एक दल बना लिया था और वे लोग हर समय प्रतिशोध के भय से परिचालित रहते थे। उन्हें भय था कि कहीं उन्हे प्रतिहिंसा का शिकार न बनना पड़े। वे लोग अपने आपको शासनसत्ता का एक अंग बनाये रखने के लिए प्राणपण से कटिबद्ध थे और इस बात के लिए अत्यधिक उत्कण्ठित थे कि जनता को गणतन्त्र बडा 'लुभावना' लगे। भाग्य की कैसी निर्दय विडम्बना थी? फ्रांस के गणतन्त्रवाद का यथार्थ रूप मदाम तालियाँ थी जिसकी उत्कट उच्छृंखलता देखकर बड़े-बड़े भ्रष्ट चरित्र भी दाँतों तले उँगली दबा लेते थे। युद्ध की परम आवश्यकता महसूस की जा रही थी। सेनानायकों और सैनिकों को इसलिए रखा गया था जिससे कि 'सैनिक संकट' का अपवारण किया जा सके। सबसे बड़ा भय स्थल सेना से था और जो लोग भविष्य को देख सकते थे, उस भावी महासकट को साफ-साफ देख रहे थे जो सेना की गर्वीली महत्त्वा-

कांक्षाओ से उत्पन्न हो सकता था। वास्तव मे फ्रास अब एक सैनिक तानाशाह के आविर्भाव के योग्य भूमि तैयार कर रहा था। श्रमिक, मध्यवर्ग के लोग और कृषक सभी गणतन्त्र से परम असन्तुष्ट थे और राष्ट्र के पथप्रदर्शन के लिए एक सुदृढ़ सकल्प और सक्रिय शक्ति वाले पुरुष की आवश्यकता का अनुभव करते थे। वे लोग 'एक अश्वारूढ़ रोबेस्पियर' के समक्ष सहर्ष आत्मसमर्पण कर सकते थे। रूस की जारीना कैथेराईन ने, जो कि पुरुष और परिस्थितियो को पहचानने मे बड़ी निपुण थी, फ्रांस के सम्बन्ध मे लिखा था :

"इसको (फ्रांस को) इस समय एक ऐसे पुरुष की परम आवश्यकता है जो परम बुद्धिमान, कुशल, साहसी, अपने सब समकालीनो से ऊपर उठा हुआ और कदाचित् अपनी शताब्दी का एकमात्र पुरुप। क्या ऐसा पुरुप ससार मे आविर्भूत हुआ है ?"

जैकोबिन क्लब के बन्द होने के दो ही दिन बाद, सम्मेलन के प्रजातन्त्रवादी दल ने एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि 'इस' गणतन्त्रवादी सविधान के सजीव अधिनियमों की योजना बनाने के लिए एक विशिष्ट समिति नियुक्त की जानी चाहिए। यह सविधान हमारी हर तरह की स्वतन्त्रता का अचूक रक्षक और 'मनुष्य के अधिकारो' का संरक्षक होगा। इस प्रस्ताव का पर्याप्त विरोध हुआ क्योकि देश अभी तक युद्ध की आग मे जल रहा था। ऐसी संकटमय परिस्थिति में मतभेद का उत्पन्न हो जाना बडा भयंकर सिद्ध हो सकता था। इस समय देश की सबसे बडी आवश्यकता थी ऐक्य को बनाये रखना।

कुछ लोगों ने प्रस्ताव रखा कि १७९३ का सविधान ही पुन: प्रतिष्ठित कर दिया जाय और दुआए के मर्ले ने सुझाव दिया कि इस संविधान को बिना किसी हिचकिचाहट के तुरन्त ही क्रियात्मक रूप दे देना चाहिए, परन्तु उसकी सलाह किसी ने न मानी। बारहवें जर्मिनल को सम्मेलन का भवन प्रार्थियों ने अपने अधिकार में कर लिया, ये लोग रोटी और १७९३ के संविधान की माँग करते थे। इसका कडा प्रतिरोध हुआ और ग्यारह व्यक्तियों की एक समिति नियुक्त की गयी, जिसे सम्पत्ति के अनुसार मतदान देने की व्यवस्था पर आधारित एक नया संविधान बनाने का कार्य सौंपा गया। १७९२ का प्रजातन्त्र दबा दिया गया, सार्वजनिक मतदान के अधिकार का उन्मूलन कर दिया गया और धनिक वर्ग के मत देने के अधिकार को मान्य घोषित किया गया। मतदाता की योग्यता पूरी करने की शर्तें बनायी गयीं और एक प्रतिनिधि के शब्दो में परिमित मतदान के अधिकार के पक्ष में सहसा विराग स्पष्ट ही प्रकट हो रहा था :

"यह नितान्त स्पष्ट है कि भूमि अथवा सम्पत्ति के स्वामी जिनकी सम्मति के

बिना देश में कोई भी जीवन-यापन नही कर सकता, देश के सर्वश्रेष्ठ नागरिक है। ईश्वर, प्रकृति, अपने परिश्रमों, अपनी पदप्रतिष्ठा और अपने पूर्वजो के श्रम तथा प्रतिष्ठा के अनुग्रह से वे ही लोग सर्वोच्च प्रभु है।"

बोयसी दां' ग्लासने, जिसने सम्मेलन के सामने समिति की रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, कहा था :

"हमे अवश्य ही सर्वश्रेष्ठ लोगो से शासित होना चाहिए, सर्वश्रेष्ठ वे ही है जो उच्चतम शिक्षा-प्राप्त है और वे जो वैधानिक अधिनियमो को कायम रखने मे सबसे अधिक रुचि रखते है. . . . । राजकरदायी सम्पत्ति के स्वामियों द्वारा शासित देश ही सामाजिक अवस्था में है, एक ऐसा देश जहाँ सम्पत्तिहीन लोग शासन करते है अभी प्राकृतिक अवस्था में ही है।"

प्रजातन्त्र ने बहुत सुचारु रूप से शासन नहीं किया था और इसीलिए मतदान के अधिकार को परिमित कर देना पडा। प्रजातन्त्रवादी पत्रो, सीमा प्रान्तों के श्रमिकों अथवा लोकप्रिय क्लबो में से किसी ने भी इसका विरोध नही किया। यह निर्णय सरलता मे ही मान्य हो गया। अब परोक्ष-निर्वाचन-पद्धति अपनायी गयी। तीन दिन के कृषि-श्रम के पारिश्रमिक के बराबर धनराशि कर रूप मे देकर कोई भी निष्क्रिय नागरिक सक्रिय नागरिक बन सकता था। कोई भी व्यक्ति तब तक निर्वाचक नही हो सकता था जब तक कि वह कम से कम पच्चीस वर्ष की आयु का न हो और जब तक कि वह किसी ऐसी सम्पत्ति का स्वामी अथवा आजीवन किरायेदार न हो जिसकी वार्षिक आय लगभग दो दिन के पारिश्रमिक के बराबर हो। १५० दिन के पारिश्रमिक के बराबर मूल्य वाले मकान मे रहने वाला किरायेदार तथा २०० दिनों के पारिश्रमिक के बराबर मूल्य वाले कृषि-क्षेत्र का किरायेदार ही मतदान का अधिकारी बनाया गया।

संसद की दो सभाएँ नियत हुई---विधान मण्डल, जिसमें ५०० सदस्य थे और पुरातनों की परिषद् जिसमे २५० सदस्य होते थे। प्रत्येक सभा का एक तृतीयांश प्रतिवर्ष बदलता रहना चाहिए था। ५०० सदस्यों वाली सभा के लिए कम से कम ३० वर्ष की आयु होना आवश्यक था और उच्चसभा की सदस्यता के लिए ४० वर्ष की आयु आवश्यक बनायी गयी। इस उच्च सभा के सदस्य वे लोग ही हो सकते थे जो या तो विवाहित हों और या विधुर हों। कोई भी सदस्य एक साथ ६ वर्षों से अधिक काल के लिए सभा में नहीं रह सकता था। किसी भी अधिनियम को पहले-पहल प्रस्तावित करने का अधिकार केवल ५०० सदस्यों वाली सभा को था, परन्तु उसकी पूर्ण मान्यता के लिए उच्च सभा की स्वीकृति परम आवश्यक मानी जाती थी। प्रत्येक सदस्य के लिए वार्षिक वेतन रूप से अनाज के ३,००० मिरियाग्राम निश्चित किये गये,

जिनका परिमाण लगभग ३० टन अनाज के बराबर होता है। सभा के अधिवेशन सार्वजनिक थे, परन्तु दर्शक की सख्या प्रत्येक सभा की पूरी सख्या के आधे से अधिक किसी भी प्रकार मे नहीं होनी चाहिए थी और सभा की सभी कार्यवाहियो के विवरण को मुद्रित करना आवश्यक बना दिया गया।

कार्यकारिणी शक्ति एक संचालक मण्डल को सोप दी गयी जिसमे पाच सदस्य होते थे। पाँच सौ की परिषद् परोक्ष निर्वाचन पद्धति से ५० व्यक्तियो का चुनाव करती थी जिनमे से वय:प्राप्तो की परिषद् को ५ व्यक्तियो का चुनाव करना होता था। पॉच में से प्रतिवर्ष एक सचालक को अवकाश लेना चाहिए था। कौन अवकाश ले, इसका निर्णय लाटरी के ढंग से होता था। उसका पद एक अन्य व्यक्ति को सॅभालना था। अवकाश-प्राप्त सचालक पुन: चुनाव के लिए पॉच वर्ष बाद ही योग्य बन सकता था। संचालको को लगभग ५०० टन अनाज का वार्षिक वेतन मिलता था और उनकी रक्षा के लिए १२० पैदल सैनिको और १२० अश्वारोही सैनिको की एक सुरक्षा सेना नियुक्त की गयी थी। विधानसभा उन्हे पदच्युत नही कर सकती थी।

संचालक मण्डल को बहुत अधिकार थे। सभी अधिनियमो का पालन इन्ही के सुपुर्द था। ये राज्य के विरुद्ध षड्यन्त्र करने वालो को क़ैद करने के आदेश भी जारी करते थे। न्यायालयों और विशिष्ट अधिकारियों के द्वारा अधिनियमो के समुचित पालन का निरीक्षण-परीक्षण भी इन्ही का कार्य था। यह मण्डल सशस्त्र सेनाओ का नियन्त्रण तथा सेनाध्यक्षो (कमाण्डर) की नियुक्ति भी करता था। इसको फ्रांस के नाम पर सन्धियों पर हस्ताक्षर और युद्ध की घोषणा करने का अधिकार था। यह गुप्त सन्धियाँ भी कर सकता था और विधान-सभा से सलाह किये विना ही उनको क्रियात्मक रूप भी दे सकता था। विधान-निर्माण मे पहल लेने का अधिकार संचालक मण्डल को नहीं था। किसी विशिष्ट समस्या पर विचार करने के लिए यह केवल पाँच सौ की सभा से ही प्रार्थना कर सकता था। अधिनियमो की योजना बनाना इसके अधिकार-क्षेत्र के बाहर था। आर्थिक मामलो मे इसके अधिकार बड़े परिमित थे।

सविधान मे ३७७ धाराएँ थी जो जीवन के लगभग प्रत्येक अग को स्पर्श करती थी। फ्रांसीसी जनता अब अधिक पूर्वाग्रह-ग्रस्त विचारो से परिचालित होकर कार्य नहीं करती थी, क्योकि क्रान्ति के अनुभवो ने उसे इस सम्बन्ध मे विशेष पक्का बना दिया था। मानव के अधिकारों को पुनर्मान्यता मिल गयी थी और कर्त्तव्यो का घोषणापत्र भी अब जारी कर दिया गया था। संविधान मे कतिपय नैतिक उपदेश-वाक्यों का भी समावेश कर लिया गया था जो क्रान्तिकारी विधान-निर्माताओं की सभ्य मनोवृत्ति पर

एक बड़ी ही महत्त्वपूर्ण समीक्षा उपस्थित करता था। नीचे इन उपदेश-वाक्यो मे से एक को उद्धृत किया जाता है–

"दूसरों के साथ ऐसा कुछ भी न करो, जो तुम नही चाहते हो कि तुम्हारे साथ वे करें। सदैव दूसरो के साथ ऐसी भलाई करो जो तुम अपने लिए दूसरो से चाहते हो।"

संविधान तो 'प्रतिक्रिया का एक प्रयत्न' था। इसकी धाराएँ विफलता की स्पष्ट स्वीकृति हैं तथा यह रोबेस्पियर के जनता के अचूक निश्चय और सद्भाव के रूढ़िग्रस्त सिद्धान्त के विरुद्ध एक प्रतिरोध था। सामान्य जनता को राजनीतिक सत्ता से पृथक् कर दिया गया था क्योंकि वह शासन करने के अयोग्य सिद्ध हो चुकी थी। एक बुर्जुआवर्गीय गणतन्त्र की स्थापना हुई क्योंकि फ्रांस को इसकी परम आवश्यकता थी। इस सब का भविष्य क्या होने को था? औलार का उत्तर है–

"बुर्जुआवर्गीय गणतन्त्र, जिसमें सर्वसाधारण जनता, सर्वजनसम्मति से एक वर्ग के पक्ष में अपने सभी अधिकारों को छोड़ देती है, एक ऐसे सर्वजन-सम्मतिमूलक गणतन्त्र का अग्रदूत सिद्ध होगा, जिसमे जनता स्वयं सर्वजनसम्मति से अपने अधिकारों को एक पुरुष के लिए छोड़ देगी?"[1]

संविधान के दोष तो नितान्त स्पष्ट नही है। संचालकों तथा विधानसभा के कार्यकर्ताओं के बीच की पारस्परिक कलहों को शान्त करने के लिए कोई वैधानिक यन्त्र नहीं बनाया गया था। एक अभेद्य विधानसभा का सामना एक अपराजेय कार्य-कारिणी से हो गया था, दोनों में से कोई भी दूसरे को अपदस्थ करने में समर्थ नही था। यदि एक गणतन्त्र के प्राणतत्त्व के विनाश पर तुल जाय तो दूसरा उसके विरुद्ध किसी प्रकार की भी कार्यवाही करने में असमर्थ था। संचालकों को अपने साथ सहमत करने के लिए विधानमण्डल को कम से कम तीन वर्ष प्रतीक्षा करना अनिवार्य था। विधानसभा के कार्यों में किसी प्रकार का सक्रिय हस्तक्षेप करने का कोई विशेषाधिकार संचालक मण्डल को नहीं था, और विधानसभा के पास "संचालकों को आत्मसात्" करने की कोई शक्ति नहीं थी। अपने पूर्वगामियों की ही तरह संविधान भी वैधानिक शासन स्थापित करने में नितान्त विफल रहा और इसने चार आकस्मिक अवैधानिक कार्यो की अनिवार्यता के लिए स्थान बना दिया। इन अवैधानिक कार्यो की कोई भी पूर्व सूचना किसी को नहीं थी।

लुई मादलें ने ठीक ही कहा है; ". . . . . यह अपरूप संघटन उस आतंक का परिणाम

१. औलार, तृतीय, पृ० ३१४।

था जो तृतीय वर्ष के सम्मेलन का पीछा कर रहा था। १७८६ ने उनको एक सबल कार्यकारिणी के भय से परिपूरित कर दिया था; १७६४ ने उनको एक ऐसी सजीवनी सूझ से उत्प्रेरित कर दिया था, जिससे वे यह अच्छी तरह समझ सकें कि एक सर्वशक्तिमान सभा किस प्रकार से अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर सकती है। अतः इस बार उन्होंने दोनों शक्तियों को आमने-सामने कर दिया था, दोनों ही शस्त्रहीन थीं, जैसे कि उनमे कोई मतभेद उत्पन्न होने की कोई आशंका ही न हो।"[1]

सिये ने एक बहुत बडे तथ्य को अभिव्यक्ति दी थी जब उसने यह कहा था, "अभी तक भी यह बात ठीक नहीं है।"

दो सौ पचास की परिषद् ने जिन संचालकों का चुनाव किया था, वे ये थे—ला रवलियेर-लेपो, र्यूबाल, सिये, ल तुर्न्यूर और बर्रास। सिये ने अस्वीकार कर दिया था और उसका स्थान कार्नो ने ले लिया।

संचालक मण्डल का शासन इतना भ्रष्टाचारमलक और योग्यताहीन था कि फ्रांस के इतिहास में पहले कभी ऐसा शासन नहीं हुआ था। ला रवलियेर-लेपो सुसभ्य एवं सरल अभिरुचियों वाला व्यक्ति था। ललित कलाओं में उसका विशेष अनुराग था। उसके अपने ही राजनीतिक एवं धार्मिक पूर्वग्रह थे। वह गिरजे का कटु विरोधी था। वह कैथोलिक धर्म के स्थान पर एक अभिनव मतवाद की स्थापना करना चाहता था, जिसे वह दैवानुप्रेरित मानव-प्रेम (थियोफिलैन्थ्रोपी) का अभिधान देता था, और वह पादरियों पर अपेक्षाकृत अधिक सुदृढ़ नियन्त्रण रखने का प्रचार करता था। वह कुबड़ा था और उपहास में लोग उसे 'दो कार्कों के ऊपर स्थित की हुई एक पिन' कहा करते थे।

ल तुर्न्यूर एक घोर परिश्रमी और सुव्यवस्थित पुरुष था परन्तु अपनी महानता मे अत्यधिक विश्वास रखता था, जैसे वह एक बड़ा अनिवार्य व्यक्ति हो। वह बड़ा दुर्बल-बुद्धि व्यक्ति था और उसके सद्गुणों को भी उसके मिथ्याभिमान ने विकृत और भ्रष्ट कर डाला था।

कार्नो, र्यूबाल और बर्रास बड़े प्रभावशाली व्यक्ति थे। कार्नो ही एक ऐसा व्यक्ति था जिसके विषय मे कहा जा सकता था कि वह ईमानदार और सच्चा आदमी है। उसके पास प्रभूत सैनिक प्रतिभा भी थी और १७६३, १७६४ तथा १७६५ के सैनिक अभियानों में उसने भाग लिया था। उसके समकालीन उसे विजयों का संघटन-कर्ता मानते थे और उसमे महान संघटनात्मक योग्यता मानते थे।

१. लुई मादलेः फ्रेन्च रिवोल्यूशन, पृ० ४७०—७१।

र्‌यूबाल एक आल्मशियन वकील थी, उमने न्यायकार्य मे पर्याप्त सफलता प्राप्त की थी। जर्मन-विधान (जर्मन-ला) का वह विशिष्ट विद्वान था। वह गणतन्त्र तथा जर्मनराज्यो के पारस्परिक सम्बन्धो मे एक दूत का कार्य कर चुका था। वह बड़ा दम्भी और पाखण्डी था। अपनी अन्तर्भावनाओ को चतुरता से छिपा लेने मे बडा निपुण था और राजनीति के क्षेत्र मे वह एक धोखेबाज, कपटी और सिद्धान्तहीन व्यक्ति समझा जाता था।

सबमे से अधम था बर्रास। आत्मसम्मान, सच्चरित्रता और सद्‌गुणो से सर्वथा रहित। वह प्यार करता था, अपने कुत्तो को अपनी प्रेयसियो को, और अपने धन को; और किसी भी नीच स्वार्थ की सिद्धि के लिए अपने आपको बेचने के लिए तत्पर रहता था। उसके सम्बन्ध मे यह कहा जाता था कि वह गणतन्त्र को खिडकी मे से उठा के बाहर फेंक दे यदि यह उसके अभीष्ट की सिद्धि न कर सका।

ऐसी थी मडली जिसे फ्रास का शासन उसके इतिहास के एक शोचनीय क्रान्ति युग मे सौपा गया था।

संचालक मण्डल की आन्तरिक नीति

मचालको ने सर्वप्रथम केन्द्रीय शक्ति की स्थापना की और बाद मे विभागो मे शासन-व्यवस्था की पुनःस्थापना की गयी। वे स्वतन्त्रता के अनुराग को पुनर्जीवित करने की आशा रखते थे, जिसे क्रान्ति के अतिचारो ने क्रियाविहीन निर्जीव कर दिया था। प्रत्येक घर पर पुन. तिरगा झण्डा लहराने लगा और सचालको ने गणतन्त्रवाद की पुनःस्थापना के लिए पर्याप्त प्रयत्न किये। पिछले दिनो इसको बड़ा गंभीर धक्का लग चुका था। शिक्षा की उन्नति, कृषि मे सुधार, अविश्वास का विनाश, और नास्तिकतापूर्ण भावनाओ के परित्याग के लिए उन्होने बहुत प्रयास किये। एक संचालक ला रवलियेर लेपो ने तो एक नये धर्म का भी सक्रिय प्रचार करना आरम्भ कर दिया, जिसे दैवानुप्रेरित मानव-प्रेम कहा जाता था; जैसे कि सार्वजनिक सुरक्षा समिति ने 'सर्वोच्च सत्ता के महोत्सव' के द्वारा सर्वोच्च सत्ता की आराधना का अनिवार्य विधान किया था। देवालयो और मन्दिरों का निर्माण हुआ तथा वे इस नये धर्म को अर्पित कर दिये गये; परन्तु जनता मे इसका विशेष स्वागत नही हुआ और इसने बहुत ही कम उन्नति की। जैसा कि मिग्ने का कथन है, "ईश्वरवादी रह गये थे, परन्तु दैवानुप्रेरित मानव-प्रेमी (थियोफिलैन्थ्रोपिस्ट) अब कोई नही रह गया था।"

फ्रास एक अति खेदजनक परिस्थिति मे था। राजकोष में अब कुछ भी धनराशि न बची थी और संचालक मण्डल को विवश होकर विचित्र-विचित्र उपायो का सहारा

लेना पड़ रहा था। वस्त्रशाला का सारा सामान रेहन रख दिया गया, और अर्थसकट का निवारण करने के लिए बेच दिया गया। अनिवार्य ऋण देने का नियम चलाया गया, परन्तु इसके उत्तर मे संचालक मण्डल को बहुत ही कम धन प्राप्त हुआ। तब संचालकों ने घोर अर्थसकटो से विवश होकर पत्र-मुद्रा चालू कर दी, जिसे मान्दां तैरितोरियो (अथवा 'प्रादेशिक आदेशों') के नाम से अभिहित किया जाता था। इन पत्र-मुद्राओं ने एसाईनेट्स का स्थान लिया था, और इनका संख्या-विस्तार २४० करोड़ था। इन मुद्राओं का विनिमय उस भूमि से किया गया था जो बाजार मे बेची गयी थी।

फ्रांस मे इस समय पद-लोलुपों की सख्या अत्यधिक हो गयी थी और यह सार्वजनिक सेवा (सिविल सर्विस) के हित मे बहुत ही घातक सिद्ध हुई। एक संचालक के अनुसार "खून और डकैती करने वाले लोगों" को महत्त्वपूर्ण सरकारी पदो पर नियुक्त किया जा रहा था क्योंकि प्रतिभा और स्वाभिमान रखने वाला कोई व्यक्ति शासन की सेवा करने के लिए तैयार नही था; शासन भ्रष्टाचार के लिए बहुत बदनाम हो चुका था। जैकोबिन अधिकारी उच्छृखलतापूर्वक मनमानी करते थे और उनके अतिचारों ने जनता को बहुत क्रुद्ध कर दिया था। सचालक लोग विधानसभा को बहुत बुरा-भला कहते रहते थे, जिसका बहुत कडा विरोध होता था। पारस्परिक कलह के कारण बढ़ते ही गये, संचालकों को हम इन परिस्थितियो के लिए बिलकुल दोषी नही ठहरा सकते। १७९७ के चुनाव के बाद कार्नो ने लिखा था—

"विधानसभा के साथ समझौता करने के काम से अधिक और किसी काम से सचालक मण्डल नही डरता; सभा असन्तोष और आतक के कारणो को बढ़ाने मे प्राण-पण से लगी हुई है।"

ये ही शब्द इतनी ही सच्चाई के साथ संचालक मण्डल के आरम्भिक शासन के प्रति भी लागू होते है। संचालक मण्डल और विधान सभा मे भीषण सघर्ष होता था और उनके संघर्षो ने आरम्भ से ही अच्छे राज्यशासन और संविधान के सुचारु पालन के सभी अवसरों को नष्ट कर डाला था।

संचालक मण्डल ने न केवल अर्थसंकट को दूर कर देने का प्रयास किया, इसने अव्यवस्था और न्यायविहीनता के विनाश के भी बड़े उपाय किये। ब्रिटेन्नी और ला वान्दे में एक राजद्रोह कुचल दिया गया और सेनानायक होशे के सचालकत्व मे वहाँ सैनिक कार्यवाहियाँ शुरू हो गयी। राजनीतिक उपद्रव शान्त हो गये और देश मे पुनः शान्ति-साम्राज्य छा गया।

परन्तु दो दलों ने—प्रजातन्त्रवादियों तथा राजतन्त्रवादियो ने—एक गम्भीर संकटमय परिस्थिति उत्पन्न कर दी। प्रजातन्त्रवादी लोग नवम थर्मिडोर की क्रान्ति

में विफल हो चुके थे परन्तु अभी तक उनका उत्साह शान्त नही हुआ था। वे अब भी उस स्वतन्त्रता और समानता की पुनःस्थापना करना चाहते थे जिसे प्रतिक्रियावादियों ने विनष्ट कर दिया था। शासन मे यद्यपि वे लोग सर्वथा दूर रखे गये थे परन्तु मूल्यों मे वृद्धि और अर्थसंकट के कारण उनकी सख्या बहुत बढ़ गयी थी। देश मे असन्तोष वहुत अधिक वढ गया था और सर्वसाधारण के मन में यह विचार दृढता पकड़ने लगा कि मूल्यों के मुनियमन और जनता को सस्ते दामों में रोटी दिलाने के लिए राज्य सरकार कुछ भी नहीं कर रही है। इन असन्तुष्ट प्रजातन्त्रवादियों ने पान्थेओ में एक मण्डली को संघटित किया। इस मण्डली का अध्यक्ष 'ग्राक्शस' वाब्यूफ था जिसने लोकहित के लिए बीडा उठाया। वह एक बडा साहसी किन्तु अन्धविश्वासी-सा था। उसने 'जनता का मंच' (ट्रिब्यून ऑव दि प्यूपल) नामक अपने पत्र द्वारा समाजवाद का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। उसने घोषणा की कि भूमि किसी भी व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं है; इस पर सबका अधिकार है, जितना भी अतिरिक्त धन एक पुरुष अपने पास रखता है वह चोरी और डकैती का माल समझा जाना चाहिए। अतः यह बिलकुल न्याय और उचित है कि यह अतिरिक्त सामग्री उनसे छीन ली जाय जिनके पास यह है। व्यक्तिगत सम्पत्ति का उन्मूलन कर देना चाहिए। अपेक्षाकृत निर्धन वर्ग उसकी शिक्षाओं से बहुत उत्तेजित हुए। ऐसे भी अनेक लोग थे जो वाब्यूफ के सक्रिय उत्साह से अत्यधिक प्रभावित हुए थे और उसके साथ यह स्वीकार करने लगे थे कि उसके सिद्धान्तों को क्रियात्मक रूप दिया जा सकता है।

उसके अनुयायियों की संख्या बढ़ती जाती थी और अन्ततः संचालक मण्डल को उनके साथ कठोरता का व्यवहार करने के लिए विवश होना पडा। फरवरी, १७९६ को पान्थेओ की सभा बन्द कर दी गयी और दस मई को बहुत से सदस्यों को कैद कर लिया गया। उनकी जाँच उच्च न्यायालय मे हुई और कुछ महीनो तक यह जाँच चलती रही। बाब्यूफ और उसका मित्र दार्ते २७ मई, १७९७ को फाँसी पर लटका दिये गये। इससे पहले इन लोगों ने आत्महत्या का विफल प्रयास किया था।

यह था ढग इस नये शासन का षड्यन्त्रकारियों और राज-द्रोहियो से व्यवहार करने का और देश मे व्यवस्था स्थापित करने का। अव प्रजातन्त्रवादी दल एक ऐक्य-युक्त तथा सुसंघटित संस्था न रह गया। राजतन्त्रवादियों ने भी प्रतिशोध की षड्यन्त्र-कारी योजना बनायी परन्तु वे लोग एक प्रतिक्रान्ति संघटित करने में पूर्णतः विफल हो गये। राजतन्त्रवादी पुनर्जागरण का समय अभी नहीं आया था और माल्ले दुपां ने बिलकुल ठीक ही लिखा था कि "निस्सन्देह एक दिन राजतन्त्र लौट आयेगा, परन्तु कदाचित् न तुम और न हीं मैं इसे देखने के लिए जीवित रह सकेंगे। मैं तो सभी आशाएँ

छोड़ बैठा हूँ।"

फ्रांसीसी सेनानायक देश के बाहर तो खूब विजय-दुन्दुभियाँ बजा रहे थे परन्तु देश के भीतर बड़ी गम्भीर परिस्थितियाँ पैदा होती जा रही थीं। गणतन्त्र के सामने दो बहुत बडे खतरे थे—रोमन कैथोलिक गिरजाघर का पुनर्जीवित उत्साह और बल, तथा राजतन्त्रवादी पुनर्जागरण की सम्भावना। रोमन कैथोलिक गिरजाघर के वे सब पादरी जिन्हे क्रान्तिकाल मे घृणा और निन्दा से देखा जाता था अब अपनी खोयी हुई मान-प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने लगे। जनता की भावनाओ को अपने पक्ष में करने के लिए वे लोग बडे मूर्खतापूर्ण ढंग से क्रियाशील हुए। वे लोग एक नये पुनर्जागरण को लाना चाहते थे और अनेक पादरी इस कार्य मे प्रयत्नशील हो गये। इस समय धर्म ने अत्यधिक अवधान लिया और एक नया मतवाद जिसे दैवानुप्रेरित मानव-प्रेमवाद कहा जाता था प्रचारित किया जाने लगा। यह सोचा जाता था कि यह नया मत गणतन्त्र का रक्षक होगा और एक सचालक महाशय तो इसे बहुत ही प्रोत्साहित करते थे। यह एक सम्प्रदाय अथवा एक रूढि के रूप मे नही था; इसके सिद्धान्त सभी धर्मो के सामान्य सिद्धान्त थे और ईश्वर तथा आत्मा की अनन्तता पर इस मत का विश्वास फ्रासीसी जनता के लिए कोई नयी चीज़ नही थी। ये धार्मिक आन्दोलन संचालको को बहुत अच्छे नहीं लगते थे, वे लोग इन आन्दोलनों मे अपनी सत्ता के ह्रास को स्पष्ट ही देख रहे थे। इसके अतिरिक्त, उदार विचारो वाले गणतन्त्रवादियो की बहुत संख्या हो गयी थी, वे लोग ८९ के सिद्धान्तों के अनुकूल फ्रास को शासित होते हुए देखना चाहते थे और वे लोग इन नये सेनानायको को बहुत अविश्वासपूर्ण दृष्टि से देखते थे, जिनपर संचालक मण्डल का विशिष्ट अनुराग था। वे लोग अपने राजनीतिक हितों के विषय में बहुत भयभीत हो चुके थे और गणतन्त्र के लिए एक महान् संकट की आशंका से व्याकुल थे।

शीघ्र ही एक संकट आ गया। १७९७ के चुनाव ने परिस्थिति ही बदल डाली। एक नया राजनीतिक दल शासन-सत्ता मे आया, इसे क्लिशियन दल कहते थे ('क्लब दे क्लिशी' से इसका नामकरण हुआ था)। इसके पदाधिकारियों में फ्रांस के कुछ योग्यतम व्यक्ति थे। इन मे से अधिकांश प्रभूत संसदीय कुशलता और अनुभव के स्वामी थे। ये लोग आतंक से घृणा करते थे और एक प्रकार का वैधानिक अथवा परिसीमित राजतन्त्र परिस्थापित करना चाहते थे जैसा कि इग्लैण्ड में था। ऐसे भी अनेक थे जो ऑर्लिआं के ड्यूक, फिलिप एगालिते के पुत्र जैसे महानुभावो के अधिकारों का पोषण करने को तत्पर थे, और कुछ ऐसे भी थे जो अठारहवे लुई के घोर पक्षपाती थे। उनके पदाधिकारियो में ही इस प्रकार के मतभेदों ने उनकी शक्ति को पर्याप्त

क्षीण कर दिया और उनके उद्देश्यो के प्रति घोर संशय की सृष्टि कर दी। होशे और बोनापार्ट उनकी योजनाओ को बडी अविश्वासपूर्ण दृष्टि से देखते थे।

इस प्रकार क्लिशियन लोगों और संचालको मे एक संघर्ष नितान्त अनिवार्य हो गया। विधानसभा ने सचालकों के कार्य-क्षेत्र मे हस्तक्षेप कर दिया, और सचालको ने सभा के आदेशों का पालन करने से साफ इन्कार कर दिया। एक अपरित्याज्य कार्यकारिणी और अभंगनीय विधानसभा की स्थापना करके तृतीय वर्ष के संविधान ने जो सबसे बड़ी गलती की थी वह अब नितान्त स्पष्ट हो रही थी। परिषदो के सदस्यो ने मन्त्रियों पर बड़ा हिंसात्मक आक्रमण किया और कुछ विभागो मे भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। दोनो दलो मे परस्पर विरोधी मतो का घोर संघर्ष छिड गया और शासन के ही भीतर एकमत लाने मे सचालक लोग किसी निश्चित योजना तक न पहुँच सके। कार्नो बल-प्रयोग का विरोधी था, परन्तु बर्रास, र्यूबाल तथा ला र्वालियेर—इन तीनो ने निश्चय किया कि इस अराजकतापूर्ण कलह के सर्वनाश के लिए सैनिक बल का प्रयोग किया जाय। बोनापार्ट ने अपने एक सेनानायक ऑग्रेउ को सचालको की सहायता करने के लिए भेज दिया। पत्र के आदेशो का अक्षरशः पालन करते हुए उसने संघर्ष-परिचालको की इस विधानसभा का 'रेचन' (शुद्धीकरण) कर डाला। अठारहवे फ्रक्तिडोर (४ सितम्बर, १७९७) को क्लिशियन दल के ५५ नेता बन्दी कर लिये गये; इनमें दल का सब से बड़ा नेता बर्बे मार्बुआ तथा पिशेमू भी थे, इनको बन्दी करके तत्काल ही देश-निष्कासित कर दिया गया। अन्य भी अनेक सदस्य बन्दी कर लिये गये और दोनो विरोधी सचालको को—कार्नो और बार्तेलेमी को—फ्रास त्यागने की अनुमति दे दी गयी। यह थी अठारहवें फ्रक्तिडोर की क्रान्ति, जिसने रक्त का एक भी बिन्दु बिना गिराये देश के शासन मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर डाले और इस प्रकार के आकस्मिक तथा सविधान-विरुद्ध क्रियाकलापो से जनता को परिचित करा दिया।

कुछ नये क़ानून बने। पिछले मई मास के चुनावो को रद्द कर दिया गया, क्योंकि ये चुनाव संचालक मण्डल के अनुकूल नहीं थे और दोनो सभाओ के लगभग १४० प्रतिनिधियो को उनके पद से अलग कर दिया गया। अनेक लोगों को फ्रास से निर्वासित कर दिया गया। पादरियो और भगोड़ो के विरुद्ध बने हुए अधिनियमो पर कठोरतापूर्वक आचरण किया जाने लगा, और इन अधिनियमो मे और अधिक दृढता एवं कठोरता का समावेश किया गया। संविधान की सुरक्षा तथा आत्मरक्षा के उपाय करने के लिए संचालकों को मनमाने अधिकार दे दिये गये। एक नया प्रेस-अधिनियम घोषित हुआ जिसके अनुसार समाचार-पत्रों पर अपेक्षाकृत अधिक कठोर नियन्त्रण हो गया और ६५ पत्रकारो को देशनिर्वासित कर दिया गया।

फ्क्तिडोर की इस आकस्मिक घटना ने राजतन्त्रवादी दल को नष्ट कर डाला, परन्तु जैसा कि मिर्ने ने कहा है इसने वैधानिक राज्यशासन के स्थान पर निरंकुश-शासन सत्ता की स्थापना करके एक अन्य क्रान्ति को अनिवार्य बना डाला। अभी आगे इस क्रान्ति का वर्णन आयेगा। देशनिर्वासित सचालको के स्थान पर दो अन्य संचालकों को चुना गया—ये थे फ्रांशुआ (दे न्युफशातो) तथा दुआए का मर्ले।

सचालक मण्डल प्रतिशोध लेने मे बहुत आगे बढ़ गया। प्रमुख षड्यन्त्रकारियो के साथ कठोरता का बर्ताव करके ही यह अपने उद्देश्य की पूर्ति समझ सकता था, परन्तु एक सत्तारूढ दल की क्षमा अथवा अनुग्रह की सामर्थ्य में बहुत ही कम विश्वास करता है। राजतन्त्रवादियो पर पर्याप्त कठोर आक्रमण हुए। एक के बाद एक उन्हे जो पराजय सहनी पड़ी उन्होंने उनके स्वाभिमान को बिलकुल कुचल डाला और उन्हे राज्यशासन की निरंकुशता के सामने आत्मसमर्पण कर देने के लिए विवश कर दिया।

अब बोनापार्ट का महत्त्वाकांक्षी जीवन निर्बाध हो गया। बल-प्रयोग एक बार जब आरम्भ हुआ तो भविष्य मे उसके बढ़ते जाने का निश्चय हो ही गया। इस बल-प्रयोग के बढ़ने मे सविधान का विनाश भी निश्चित ही था।

१७९९ के आन्दोलन ने अनेक महत्त्वपूर्ण समस्याओ को जन्म दिया और गणतन्त्र अपने सीमाप्रान्तों के विषय मे अधिक सचेत हो गया। वे सचालक जो फ्क्तिडोर के आकस्मिक कार्य से तानाशाह बन बैठे थे जनता मे बहुत बदनाम हो गये, और उन्होने बाइसवे फ्लोरियल (११ मई, १७९८) को एक नया आकस्मिक वैधानिक कार्य करना चाहा जिससे वे परिषदो मे अपना ही बहुमत प्रतिष्ठापित कर सके। तीसवे प्रेरियल (१८ जून, १७९९) को एक दूसरा अवैधानिक कार्य किया जिस से तीन नये सचालक-गोइयेर, रोजेर ड्यूको तथा सेनानायक मूलाँ नियुक्त कर लिये गये। ये तीनो सिये के मित्र थे जोकि पहले ही (मई, १७९९) र्‍यूबाल के स्थान पर सचालक निर्वाचित किया जा चुका था। ये तीनों सचालक अपने पूर्वगामी सचालको से अयोग्य और अकुशल थे। आरम्भिक सचालकों मे से केवल बर्रास शेष रह गया था।

सिये एक वैधानिक सिद्धान्तवादी तथा दार्शनिक के रूप मे बहुत लोकप्रिय हो चुका था और अनेक लोग उसे "संकटग्रस्त राष्ट्र का भावी मुक्तिदाता" समझते थे।[1]

१. यहाँ यह बात स्मरण कर लेनी चाहिए कि 'तृतीय इस्टेट क्या है?' (ह्वाट इज दि थर्ड इस्टेट) नामक पुस्तिका का लेखक सिये ही था, जो क्रान्ति के एक दिन पूर्व समस्त फ्रांस में प्रचारित की गयी थी। उसका नाम बाद में पहुँचा और वह 'अधिकारों की घोषणा' का प्रारूप तैयार करने के लिए नियुक्त कर

अपनी विजयो के मद से मत्त होकर परिपदों ने अब उन अधिकारो और शक्तियो को हथियाने का प्रयत्न किया जिनका उपयोग पहले सचालक लोग निर्बाध रूप से किया करते थे। उन्होने राजकीय बन्दियो का एक अधिनियम जारी कर दिया, जिसका उद्देश्य उन उच्च पदाधिकारियो तथा सेना के अधिकारियों के प्राणो की और सम्पत्ति की रक्षा करना था जिन्हे क्रान्तिवादियों ने अपराधी बना रखा था। इस अधिनियम के अनुसार प्रत्येक उस विभाग में जहाँ किसी प्रकार के सकट की सम्भावना होती थी भगोड़ो के सम्बन्धियो को राजकीय बन्दी वना लिया जाता था, और यदि किसी भी स्थिति में वे लोग आत्मसमर्पण न करे तो दस दिन के भीतर उनको मृत्युदण्ड का अधिकारी घोषित कर दिया जाता था। एक दूसरा अधिनियम भी इसी समय (अगस्त, १७९९) स्वीकार किया गया जिसका उद्देश्य अपेक्षाकृत अधिक धनी वर्गों पर क्रमानुवर्द्धक आय-कर लगाना था। इस अधिनियम ने व्यापार पर बड़ा प्रतिकूल प्रभाव डाला, लोग अपनी अर्थसम्पत्ति को गुप्त रखने के सभी सम्भव उपाय करने लगे। राज्यशासन को छलपूर्वक ठगने के सभी उपायों का प्रयोग किया गया और देश को बहुत भारी नुक़सान सहना पड़ा। पूँजीवादी लोग शासन के घोर विरोधी बन गये और इसके विनाश की कामना करने लगे। शासन से असन्तुष्ट जनो की संख्या अत्यधिक बढ़ गयी और अनेक ऐसे लोग जो पहले संविधान मे सुधार करने के पक्षपाती थे अब उसके सर्वनाश की षड्यन्त्रकारी योजनाएँ बनाने लगे।

ब्रूम्येर का आकस्मिक विप्लव

यह थी फ्रांस की दशा १७९९ में। राज्यशासन का न कोई सम्मान था न प्रभाव,

दिया गया। बाद में वह राष्ट्रीय सम्मेलन में निर्वाचित होकर गया, परन्तु आंतककाल में बिलकुल मौन रहा; और जब एक महाशय ने पूछा कि वह क्या है तो उसने उत्तर दिया था, "मैं जीवित हूँ।" संचालक मण्डल के एक सदस्य के रूप में उसने बोनापार्ट के साथ एक षड्यन्त्र में भाग लिया और उसे एक सीजिरियन (तानाशाही) राज्य शासन स्थापित करने में सहायता दी। वह अन्तिम ऐसा क्रान्तिकारी नेता था जिसने एक तानाशाह के लिए जनमत की भूमिका तैयार की। साम्राज्य के दिनों में वह मौन रहा और राजतन्त्र की पुनःस्थापना के दिनों में पन्द्रह वर्ष तक देश निर्वासित रहा। १८३० में वह पेरिस लौटा। और छः वर्ष पश्चात् उसकी मृत्यु हो गयी। फ्रांस उसका तीन बातों में ऋणी है—राष्ट्रीय संसद, राष्ट्रीय सुरक्षा-सेना और विभागीय व्यवस्था।

और न ही इसमे अब ऐसे व्यक्ति रह गये थे जो संघर्षी तत्त्वो को शान्त कर सकते, व्यवस्था कायम कर सकते, इसके शत्रु दिन प्रतिदिन संख्या मे बढ़ते ही जा रहे थे और अपने फन्दे विस्तीर्ण करते जा रहे थे। सिये, यद्यपि राज्यशासन का एक अंग था, संचालक मण्डल को विनष्ट कर डालना चाहता था। इस समय तीन दलो का विशेष प्रभाव था—सिये का दल, इसमे उच्च बुर्जुआवर्ग के सदस्यों की बहुसख्या थी, ये लोग क्रान्ति की उपलब्धियों को परिपुष्ट करना चाहते थे, जैकोबिन दल, इसमे कुछ ऐसे सेनानायक भी थे जो अपने देश के लिए प्रजातन्त्रवादी शासन चाहते थे; और राजतन्त्रवादियों का दल, ये लोग संचालकमण्डल के भ्रष्ट शासन से बहुत असन्तुष्ट थे और बोर्बा राजतन्त्र की पुनः स्थापना करना चाहते थे। ये सभी दल समान रूप से स्वार्थी और सिद्धान्तहीन थे। इनमे से कोई भी सार्वजनिक हित की बात नही सोचता था, और न्याय तथा शिष्ट आचार को तो वे ऐसा समझते थे मानो वे बाते सार्वजनिक कर्त्तव्य मे बाधक हों। प्रत्येक दल का उद्देश्य था कि वह एक सैनिक अध्यक्ष को रखे जिससे कि वह अपने लक्ष्य की पूर्ति मे उससे पूरी-पूरी सहायता ले सके। सिये ने पहले तो ज्यूबर को नियत किया, परन्तु वह इटली के एक युद्ध मे मार दिया गया। तब वह बोनापार्ट की ओर अभिमुख हुआ जिसने मिस्र मे अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह बड़ी सुचारुता से किया था और कुछ नयी विजयें प्राप्त की थी। उसने अबुकिर मे तुर्को को पराजित किया था। इस विजय-समाचार का स्वागत फ्रास मे अत्यधिक हर्ष के साथ हुआ था। यह आशा की जाती थी कि फ्रास के विरुद्ध दूसरा संयुक्त मोर्चा भी उसी प्रकार टुकडे-टुकड़े हो जायेगा जिस प्रकार पहला हुआ था। अकस्मात् ही बोनापार्ट ने ६ अक्तूबर को फ्रेजू मे डेरा डाल दिया और फ्रांसीसी जनता ने उसका अत्यधिक उत्साह से स्वागत किया। विशाल जनसमूह उसके स्वागतार्थ एकत्र हुआ और सर्वत्र यह ध्वनि सुनायी पड़ रही थी, 'बोनापार्ट ज़िन्दाबाद'। किसानों ने उसका जो स्वागत किया वह विशिष्ट रूप से अनुराग एव उत्साह से परिपूरित था। उन्होंने उसके मार्ग को दोनो ओर से घेर लिया और जैसे-जैसे वह एक मंच से दूसरे मंच की ओर बढ़ता जाता था वे लोग हर्ष से चिल्ला उठते थे। प्रत्येक खेत में, प्रत्येक अंगूरी बगीचे मे बोनापार्ट ही बोनापार्ट का शब्द सुनायी पड़ता था, प्रत्येक चर्चा का विषय बोनापार्ट था, संचालक मण्डल को कोई नही पूछता था।

शीघ्र ही वह पेरिस पहुंचा और वहाँ प्रमुख राजनीति-विशेषज्ञों तथा दलीय नेताओ से सम्पर्क स्थापित किया। उसने सारी परिस्थिति का अध्ययन बड़ी बुद्धिमानी और चतुरता से किया और लक्ष्य किया कि फ्रास अब आत्मविनाशक सघर्ष से क्लान्त हो चुका है और एक ऐसे प्रभुताशाली व्यक्ति का हार्दिक स्वागत करेगा जो सारी राज-नीतिक और सामाजिक व्यवस्था को पुनर्निर्मित कर सके। जनमत की धाराएँ और

प्रतिधाराएँ उसे विश्वास दिलाती जाती थी कि अपने प्राणो और अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए जनता क्रान्ति को भी तिलाजलि देने के लिए तत्पर है और यह कि अब वह मनोवैज्ञानिक क्षण आ गया था जब उसे अपनी प्रभुता प्रतिष्ठापित करने के लिए साहस और बल का प्रयोग करना चाहिए था। वह हिसात्मक उपायों से अपने उद्देश्य की पूर्ति नही करना चाहता था और किसी भी ऐसी अवैधानिक कार्यवाही के लिए तैयार नही था जो जनता के मस्तिष्क मे किसी अनुचित भावना की सृष्टि करे। वह प्रभुता चाहता था; वह शासन को उलट देना चाहता था; उसका लक्ष्य था निरंकुश-शासन की स्थापना करना, परन्तु उसकी निरंकुशता सारे फ्रास की सम्मिलित निरंकुशता थी जिसमे किसी दल अथवा मतविशेष का ध्यान नही रखा गया था। यह था उसका परम लक्ष्य।

उसने सिये के परामर्श से यह षड्यन्त्रकारी योजना बनायी जो पहले से ही उसकी सहायता स्वीकार करने को तत्पर था। सिये चाहता था कि विधान-सभा एक ऐसे स्थान पर ले जायी जाय जहाँ वह जैकोबिन प्रभाव से सर्वथा परे हो और यह कार्य करने के लिए वह चाहता था कि संविधान मे एक नियम बढ़ा देने से ही यह सम्भव हो सकता है। इस नियम के अनुसार पुरातनो की परिषद् जब भी यह समझे कि राज्य को भारी सकट की आशंका है अपना सभा-स्थान बदल सकती थी। यदि सभा-स्थान बदल दिया जाता तो दोनो सभाओ को इस बात पर सहमत किया जा सकता था कि वे सविधान को इस प्रकार से परिवर्तित कर दें कि सिये के दल के लिए विशिष्ट प्रभुता प्राप्त की जा सके। बोनापार्ट का भाई लूसियाँ पाँच सौ की सभा का अध्यक्ष था और उसपर इस बात का विश्वास किया जा सकता था कि वह इस सभा के सदस्यों को सिये के मतानुकूल बना ले। इसी बीच बोनापार्ट ने षड्यन्त्र की योजना बनायी और विप्लव कर दिया; उसने हर तरह के लोग देखे—जैकोबिन और राजतन्त्रवादी, सभी जनमत की शक्ति का नाप कर रहे थे और सिद्धान्तहीन अवसरवादियो तथा स्वपक्षत्यागियों मे समता के प्रति दृढ़ता का सचार करने का प्रयत्न कर रहे थे। पेरिस का श्रमिक वर्ग और छोटे-छोटे व्यापारी लोग उसी के पक्षपाती मालूम पड़ते थे और जैकोबिन शासन के अति-चारों के प्रति उनकी घृणा तथा उन अतिचारों से प्रसूत अव्यवस्थाओं ने उन्हें शान्ति की ओर अभिमुख कर दिया था। दोनों षड्यन्त्रकारियों—सिये और बोनापार्ट ने अठारहवाँ ब्रूमेयर (९ नवम्बर, १७९९) अपनी योजनाओं की पूर्ति की तिथि नियत की।

त्विलरीज के प्रासाद में सभाओं का अधिवेशन हुआ और उन्होने यह अध्यादेश जारी किया कि अब सभास्थान अपने पूर्व स्थान से हटाकर सेण्ट क्लाँद में रखा जाता है जो कि पेरिस से थोड़ी ही दूर पर अवस्थित है और बोनापार्ट को यह कर्त्तव्य सौपा गया कि

वह यह देखे कि सभा के अध्यादेश लागू किये जाते है या नही। बोनापार्ट चाहता भी था कि यह काम उसे सौंपा जाय।

अधिवेशन उन्नीसवे ब्रूमेयर (१० नवम्बर) तक चलता रहा, और किसी को भी उन भयंकर षड्यन्त्रकारी योजनाओं का ज्ञान नही था जो निकट भविष्य में घटित होने वाली थी। वाद-विवाद सर्वथा निरुद्देश्य रूप से चल रहे थे और बोनापार्ट का मौन सन्तोष अब छटपटाने लगा था। अन्ततः वह पुरातनो की सभा में प्रविष्ट हुआ और उनसे बोला कि वह युद्ध के देवता और विजय के देवता को साथ लेकर आया है। उसने यह भी कहा:–

"जनता के प्रतिनिधियो, आप लोग किसी साधारण परिस्थिति मे नहीं है; आप लोग एक ज्वालामुखी पर्वत पर खड़े है। कल जब आप लोगों ने मुझे बुलाया था यह सूचित करने के लिए कि मै आप लोगो को यहाँ से हटा दूं और मुझे ही इस आदेश को पालन कराने का कार्य आप लोगो ने सौप दिया था तो मै शान्त था। मै ने तुरन्त ही अपने साथियो को एकत्र किया; हम आपकी सहायता के लिए दौड़ पड़े.....। अब कोई राज्य-शासन नही रह गया है; चार संचालकों ने तो अपना त्यागपत्र दे दिया है; पाँचवाँ भी चौकसी मे रखा गया है, यह उसी की सुरक्षा के लिए किया गया है; पाँच सौ की सभा बँटी हुई है; अव पुरातनों की परिषद् के सिवा कुछ भी नहीं बचा है। अब इसी को अधिनियम जारी करने दो; अब केवल इसी को बोलने दो; मैं सब अधि-नियमों का पालन कराने के लिए तत्पर हूँ। आइए, हम स्वतन्त्रता की रक्षा करें; आइए, हम समानता की रक्षा करें।"

इसके अनन्तर वह पाँच सौ के सभाभवन की ओर वढ़ा जहाँ उसका स्वागत 'अत्याचारी का विनाश हो; उसे बहिष्कृत करो और शीघ्र करो' से हुआ। सदस्यो ने उसे चारों तरफ से घेर लिया, सब उसे धक्का देने और ढकेलने लगे और इस स्थिति में वह पूर्णतः मूर्च्छित हो गया, उसे सभा भवन से बाहर लाया गया। उसके तोपचियो ने उसे सँभाल लिया और वे लोग अपने नायक की सुरक्षा के सम्बन्ध मे बहुत चिन्तित हो गये। संसदीय विप्लवों से अपरिचित बोनापार्ट इस प्रकार की अव्यवस्थाओं को सहन करने में असमर्थ था और वह भयंकर रूप से दुबला हो गया था, उसके शरीर के अंग-प्रत्यंग ऐंठ गये थे, सिर कन्धे पर लुढक पड़ा था और प्रायः अर्द्धमृत हो गया था। उसका भाई लूसियाँ जब सदस्यों को नियन्त्रित करने मे असमर्थ हो गया तो उसने अपने पदभार का अधिकार चिह्न वही छोड़ा और अपने भाई के साथ चल दिया। उसने बहुसख्यको को उन गुण्डो से बचाने के लिए सैनिको को बुलाया जिन्होंने सेनानायक को बहिष्कृत कर दिया था और उसको सौंपे गये कार्यभार को पूरा करने से उसे रोक दिया था।

इसके पश्चात् उसने बोनापार्ट की ओर अपनी तलवार करके बड़े उच्च स्वर मे कहा कि वह अपने भाई को अपने हाथ से मार डालेगा यदि वह फ्रांसीसी राष्ट्र की स्वतन्त्रताओं के विरुद्ध जाता है। यह सब कपोल-कल्पना मात्र थी।

सैनिक सभा भवन मे प्रविष्ट हुए और उन्होंने अपनी तोपे चला दी। प्रतिनिधि लोग हड़बडा कर भयभीत होकर भाग खड़े हुए, कुछ तो खिड़कियो से बाहर कूद पड़े। पाँच सौ की सभा के कुछ सदस्य एकत्र हुए और उन्होंने संचालक मण्डल के उन्मूलन का अध्यादेश जारी कर दिया। उन्होंने यह भी उद्घोषित किया कि एक काम-चलाऊ शासन स्थापित किया जाता है जिसमे तीन व्यक्ति—सियें, रोजेर दयूको और बोनापार्ट रहेंगे और इन लोगो को देश मे व्यवस्था और शान्ति की पुनः स्थापना का गुरुतर कार्यभार सौंपा गया। ये निर्णय पुरातनों की परिषद ने भी स्वीकृत कर लिये।

बोनापार्ट अब सारी परिस्थिति का स्वामी बन गया था। ग्विज़ो की आलोचना विशेष महत्त्वपूर्ण है—

"फ्रास अनेक कष्टकर आघातो से थक चुका था; सचालक मण्डल की मूर्खता जो कि बाद मे क्रान्तिकारी विस्फोटो का कारण बनी थी, इस समय देश का परिचालन कर रही थी, संचालक मण्डल खिन्नमना और उदासीन होकर उस नये मालिक के हाथो में देश को सौपने जा रहा था जिसे इसने वह अधिकार नही दिया था जो वह इसकी अनुमति से बलात् अपहृत कर लेता। उसने अनेक अवसरो पर इसे विजयोल्लासो का विश्वास दिलाया था जिससे कि इसने उसके द्वारा एक शान्तिमय वातावरण की प्राप्ति की आशा बाध रखी थी।[1]

एक आधुनिक लेखक ने कहा है कि ब्रूमेयर के इस महान् दिवस के पश्चात् जो सैनिक राजधानी की ओर आगे बढे वे यही सोचते थे कि उन्होने क्रान्ति को बचा लिया है। परन्तु यह एक भ्रान्तिपूर्ण धारणा थी। उन्होने वास्तव मे एक प्रकार से क्रान्ति को तो बचाया था परन्तु गणतन्त्र की मृत्यु कर डाली थी।[2] जैसा कि समय ने ही स्वय बतला दिया उन्होंने एक ऐसे अत्यधिक निरकुश शासन के लिए मार्ग पूर्णतः प्रशस्त कर दिया था जैसा कि फ्रांस ने कभी देखा न था।

एक महीने के उपरान्त फ्रास के अभिनव स्वामियों ने एक मन्तव्य प्रकाशित किया जिसमें उन्होने यह घोषणा कर दी कि क्रान्ति का अब अन्त हो चुका है।

क्रान्ति समाप्त हो चुकी थी। इसके सिद्धान्तों को उन लोगो ने विकृत कर डाला

१. हिस्ट्री ऑव फ्रांस, छठा खण्ड पृ० ४७७।

२. हेज़न : फ्रेंच रिवोल्यूशन, द्वितीय; प० १०१६।

था जिन्होंने अपने लिए अधिकार प्राप्त कर लिये थे। वे लोग अपने प्रतियोगियो का सर्वनाश कर देना चाहते थे और सार्वजनिक सुरक्षा तथा जनहितो की आड़ मे अत्याचार और घोर हिसात्मक उपायो का प्रयोग करते थे। शान्ति-स्थापना उन्होने अपनी नीति का अन्तिम उद्देश्य बना रखा था, परन्तु शीघ्र ही वे एक भीषण युद्ध के फेर मे पड गये और अपने आपको शासन मे बनाये रखने के लिए उन्होने उस युद्ध को जारी रखा। वे लोग जो स्वतन्त्रता और राज्य शासन के स्थायित्व की बाते करते थे, बर्नवे से दाँतो तक सभी गिलोटिन पर चढ़ाये जा चुके थे और सर्वत्र ऐसे नये अत्याचारियो को सिहासनारूढ किया जा रहा था जो रक्त और प्रतिहिंसा के भयंकर पिपासु थे। पेशेवर राजनीतिज्ञों की संख्या बढ़ती जा रही थी और क्लबो तथा सभा-समितियों मे ऐसे लोगो की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी जिनके न तो कोई निश्चित सिद्धान्त थे और न ही जिनका कोई स्वाभिमान था। शासन का कार्यभार सभासदो के एक दल के हाथो मे पड़ गया, इसने राजतन्त्र का विनाश कर डाला और बडे-बडे घृणित अतिचार किये। एक अभिनव प्रति-क्रान्ति का भय उनकी नीति का संचालन कर रहा था और यह केवल थर्मिडोरियन प्रतिक्रिया मे ही सम्भव हुआ था कि राष्ट्र को अपनी सुनाने का अवसर मिला था, इसी समय देश ने क्रान्तिकारी नेताओं के भयंकर आचारों के प्रति अपनी घृणा की अभिव्यक्ति की थी। १७९५ के अन्त तक गणतन्त्र केवल एक कथा-कहानी का आधार मात्र रह गया था और देश अब नैतिक पतन, योग्यताहीनता तथा भ्रष्टाचार से पीछा छुड़ाने के लिए अत्यन्त समुत्सुक था। पुराने सिद्धान्तों को भुलाया जा चुका था और देश अनुभव करने लगा था कि उसके कर्णधार उसे ऐसे झूठे वचनों और आकर्पक लोभों से छल रहे है जिनका यथार्थ मूल्य शून्य ही था। वे अनुभव करते थे कि उनके पास सुन्दर-सुन्दर वाक्यांशो का पर्याप्त भाण्डार है और वे इन आलंकारिक चमत्कारियों से अपनी जान बचाना चाहते थे जो संसदीय शासन-प्रणाली का क-ख भी नही जानते थे और जिनके पास स्वतन्त्रता को कार्यरूप मे परिणत करने की सामर्थ्य का लेश भी नही था। एक ऐसे सीजर (निरंकुश शासक) के लिए उन्होंने भूमि सर्वथा तैयार कर दी थी जो इन मिट्टी के भगवानो के शासन का अन्त कर डालता और व्यवस्था, अनुशासन और श्रेष्ठ शासन के पथ पर राष्ट्र का पैर सुदृढ़तापूर्वक जमा देता।

इतना सब होने पर भी क्रान्ति फ्रांस के लिए एक वरदान थी। इसने मध्यकालीन अन्धविश्वासों की भीषण वन्य भूमि को साफ कर डाला, मानव-समानता का सक्रिय प्रचार किया जिसका प्रकट-प्रभाव तीन सिद्धान्तों मे स्पष्ट ही देखा जा सकता है, जनता की सर्वोच्च सत्ता (सॉव्रेन्टी), व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का सिद्धान्त और राष्ट्रीयता का सिद्धान्त। अन्धविश्वासों के विनाश का यह एक शक्तिशाली अस्त्र बन गयी और चर्च

के वाह्याचारों और क्रियाकलापों को इसने बहुत ही कम कर दिया। इसने सहिष्णुता का प्रचार किया, यहूदियो के कष्टों का निवारण किया, विदेशियो को भी नागरिकता के अधिकार दे दिये और नारी के स्वातन्त्र्य का सबल समर्थन किया। इसने संयुक्त नागरिकता के सिद्धान्त को जन्म दिया और देशभक्ति की महती भावना को एक उदात्त स्तर तक पहुँचा दिया। इसने जिस समानता के सिद्धान्त का प्रणयन किया उसने समाजवाद के सिद्धान्त को सवल प्रोत्साहन दिया और जिसका परिणाम हुआ आर्थिक दुर्व्यवस्था का विनाश। विधान और न्याय के क्षेत्र में भी, कुछ विशिष्ट त्रुटियो और भूलों को छोडकर क्रान्ति ने अनेक महान् सिद्धान्तों की सृष्टि कर दी; इसने ज्यूरी द्वारा न्याय-सम्मत जाँच का नियम चलाया, सार्वजनिका (सिविल) समानता की नीव डाली, ज्येष्ठा पत्याधिकार-नियम का उन्मूलन किया और चर्च के वैधानिक विशेषाधिकारों को परिसीमित किया। फ्रांसीसी उपनिवेशो के दासो को भी नागरिकता के अधिकार दिये गये और फ्रांसीसी श्रमिकों की दशा मे पर्याप्त सुधार हुआ। फ्रांस के बाहर क्रान्ति ने महान् परिवर्तन कर डाले। यूरोप के देशों मे इसने राष्ट्रीयता और प्रजातन्त्रवाद की शक्तियो को अभिनव उत्साह प्रदान किया और अंग्रेजी साहित्य मे स्वच्छन्दतावादी (रोमैण्टिक) आन्दोलन का नेतृत्व किया। कॉलरिज, लैण्डर और वर्डस्वर्थ की कृतियो मे पुरातनवादी सम्प्रदाय (क्लास्किल स्कूल) की प्रतिक्रिया को अभिव्यंजना मिली है और रिचार्डसन के 'पामेला' तथा 'क्लारिसा' में एक अभिनव उद्भावना को प्रकाश मिला। राष्ट्रीयतावाद के लिए अनुराग सर्वत्र खूब बढ़ने लगा और लोग अपनी राजनीतिक एवं सामाजिक संस्थाओं का फ्रासीसी क्रान्ति के सिद्धान्तों के प्रकाश में सरलीकरण एवं सुधार करने की योजनाएँ बनाने में लगने लगे।

इटैलियन आक्रमण

जब लग्जम्बर्ग में संचालक मण्डल की प्रतिष्ठापना हुई तब तक फ्रास युद्ध में व्यस्त था और संचालक लोग अपने पूर्वगामियों की नीति का ही अनुसरण किये जा रहे थे। मानवता की दुहाई पर शान्ति की कामना की जाती थी और फ्रांस के जानी दुश्मन ऑस्ट्रिया के साथ सन्धि वार्ताएँ चलनी आरम्भ हो गयी थी। परन्तु इंग्लैण्ड तथा ऑस्ट्रिया ने यह सोचकर कि संचालक मण्डल का शासन किसी भी समय उलट दिया जा सकता है, फ्रांस के साथ किसी प्रकार की अभिसन्धि कर लेना उचित न समझा।

राईन की सीमाओं पर १७९५ में आक्रमण जारी रहा। बवेरिया का निर्वाचक, जो कि पैलस्टाईन का भी निर्वाचक था, फ्रांसीसियों के प्रति बड़ी सद्भावनाएँ रखता था और उसी के प्रभाव का फल था कि मानहीम और दुस्सेल्दोर्फ के गढ़ पिशेग्रू और जुर्दा को

क्रमशः समर्पित कर दिये गये थे। परन्तु जर्मनी में पिशेग्रू के देशद्रोह ने आक्रमण को सर्वथा विफल कर दिया। इसके थोड़े ही समय पश्चात् फ्रास और ऑस्ट्रिया में २१ दिसम्बर, १७९५ को एक विराम-सन्धि हो गयी।

१७९६ में कार्नो ने, जो कि सैनिक क्रिया-कलापो का परिचालक बनाया गया था, ऑस्ट्रिया पर एक विविध आक्रमण की योजना बनायी। जुर्दा और मोरो को राईन के मार्ग से जर्मनी पर आक्रमण करना था और बोनापार्ट को उत्तरी इटली में आक्रमण का परिचालन करना था।

नेपोलियन बोनापार्ट कॉर्सिका के अन्तर्गत अजक्सियो मे १५ अगस्त, १७६९ मे पैदा हुआ था। इसके जन्म के कुछ ही काल बाद फ्रांम ने यह द्वीप जेनोआ को सौंप दिया था। उसका पिता कार्लो बोनापार्ट एक सुशिक्षित सज्जन था, वह उत्तम गुणो का स्वामी था। उसके सद्गुण उसके बाह्याडम्बर तथा प्रदर्शन के कारण कुछ दब से जाते थे। उसकी जीविका का साधन वकालत थी, वह बड़ा उत्साही देशभक्त था। पाओली के नेतृत्व में उसने कार्सिकन हितों के लिए अपने आपको लगा दिया था। जब उसने देखा कि कार्सिकन लोगों के सामने फ्रांस बहुत ही अधिक शक्तिशाली है तो उसने अपनी देशभक्ति का आश्रय फ्रांस को बना लिया और अजेक्सियो में राजकीय कर निर्धारक के पद को स्वीकार कर लिया। १७८५ में उसकी मृत्यु के बाद उसके आठ बच्चों के पालन-पोषण और शिक्षण का प्रबन्ध करने का पूरा भार उसकी पत्नी लातिजिया रोमोलिनो को स्वीकार करना पडा। वह एक अत्याकर्षक शरीर, दृढ संकल्प और सबल चरित्र वाली महिला थी। वह अपने बच्चों से बहुत प्यार करती थी और उनकी शिक्षा के विपय में विशेष सतर्क रहती थी। लातिजिया बोनापार्ट के सभी बच्चों में से उसका दूसरा पुत्र सर्वाधिक महत्त्वशाली सिद्ध हुआ। उसने ब्रियॉन तथा पेरिस के सैनिक विद्यालयों मे शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की थी, जहाँ वह फ्रांस के अभिजातवर्ग के अहंमन्य और अभिमानी बालकों के सम्पर्क में आया। विद्यालय मे उसके अनुभव किसी भी प्रकार से हर्षजनक नहीं थे, क्योंकि उच्च वर्गो के बालक उसे उसकी निर्धनता के कारण नीचा समझते थे। उसकी फ्रेंच भाषा न बोल सकने की सामर्थ्य के कारण भी उसे अपमानित होना पड़ता था। तथापि वह अपने अध्ययन में ही विशेष संयम एवं परिश्रम के साथ लगा रहता था और उसने गणित, इतिहास तथा भूगोल में विशिष्ट योग्यता अर्जित कर ली थी। विद्यालय छोड़ने के बाद वह सशस्त्र सेना (आर्टिलरी) में एक लैफ्टिनैण्ट हो गया परन्तु कार्सिकन स्वतन्त्रता मे उसकी सक्रिय अभिरुचि ने उसके पद को उससे छीन लिया। १७९२ मे वह किसी प्रकार से पुनः अपने पद पर प्रतिष्ठित हो गया और १७९३ मे उसने गणतन्त्र के लिए तूलों को अधिकृत कर लिया और दो वर्ष पश्चात् उसने १३ वान्देमिआयरे

(५ अक्तूबर) को सम्मेलन की रक्षा उसके शत्रुओं से की, और उस भाग्यशाली दिवस पर उसने जो पराक्रम और वीरता दिखायी उसने उसे फ्रांस का सर्वाधिक महत्त्वशाली सेनानायक बना दिया। इस सेवा के बदले में उसे वर्रा का सहायक बनाकर पुरस्कृत किया गया, वर्रा उस समय पेरिस की तथा आन्तरिक स्थल सेनाओ का महासेनानायक (कमाण्डर-इन-चीफ) था। जब वर्रा संचालक निर्वाचित हुआ तो उसका पद रिक्त हो गया, उस समय बोनापार्ट की नियुक्ति उसी पद पर कर दी गयी। वह वर्रा का प्रेमभाजन बन गया, जिसने इसे पुरातन व्यवस्था की एक आकर्षक महिला जोजेफ ब्युर्नुआए से परिचित कराया। यह महिला कर्नल ब्युर्नुआए की विधवा पत्नी थी और बोनापार्ट से ६ वर्ष बड़ी थी। वह इसके बड़े भावनापूर्ण प्रेम मे फँस गया और ९ मार्च, १७९६ को इस महिला से उसने विवाह कर लिया। अवस्था भेद को कम करने के लिए जोजेफाईन ने अपनी वास्तविक आयु से अपनी आयु चार वर्ष कम बतलायी और नेपोलियन ने अपनी आयु अठारह मास बढ़ा दी। जोजेफाईन का चुनाव समुचित नही समझा गया था क्योंकि वह युवा अधिकारी "अपनी सैनिक वर्दी और तलवार के सिवा उस समय संसार की किसी भी वस्तु का स्वामी न था"। सहसा इस नवविवाहित वरबधू के उल्लास मे बाधा आ गयी, क्योंकि सेनानायक को इटली की स्थल सेना का सेनापति होकर नाईस के लिए प्रस्थान करना था। बोनापार्ट का इटैलियन युद्धाभियान उसके जीवन के एक विशिष्ट महत्त्वपूर्ण स्तर का द्योतक है और क्रान्ति का भी यह एक महत्त्वपूर्ण स्तर था। फ्रांसीसी सेनाओ का प्रतिरोध करने की सामर्थ्य इटली में नही थी। वह चिरकाल से हाप्सबर्ग और बोर्बां लोगों की रणभूमि बना हुआ था और उनके संघर्षों से इसे पर्याप्त हानि हो चुकी थी। उत्तर में हाप्सबर्ग लोगो का प्रभुत्व था; मिलान्, फ्लोरान्स, तुस्कनी, मोदेना और लुक्का पर ऑस्ट्रियन राजकुमारो का अधिकार था। लोम्बार्डी और सार्डीनिया में नवजीवन की आकांक्षाओं और भावनाओ का प्राणसंचार होने लगा था परन्तु उनका उत्साह दबा दिया गया। दक्षिण में दोनों सिसिलियो में स्पेनिश बोर्बां लोगों के वंशजों का प्रभुत्व था। उन्होने देश को मध्ययुगीन मूर्च्छा की अवस्था में रखा हुआ था। उन्होने पर्मा की रियासत को भी अपने ही संरक्षण में रखा हुआ था। वेनिस और जेनोआ ने अभी तक अपने गणतन्त्री संविधानों को सुरक्षित रखा हुआ था परन्तु अब उनकी दशा बड़ी अवनतिशील होती जा रही थी। इटली के मध्य में पोप-शासित राज्य थे, जो अभी तक भी निष्क्रिय जड़ता में डूबे हुए थे और पुराने अनुपयोगी तथा सुधार विरोधी शासनोपायों के परिपोषक बने हुए थे। देशभक्ति की आग ने केवल उत्तरवासियों के हृदयों को ही प्रज्वलित किया जो लोग बोलोग्ना और फररा के जिलों में रहते थे। इन जिलो को 'दूतावास' (लिगेशन्स) भी कहा जाता था। यहाँ

सर्वसाधारण वटिकन के प्रभुत्व का सक्रिय विरोध करते थे और स्वतन्त्र होने की महती कामना रखते थे। बोनापार्ट ने इटली की दुर्बलता को देख लिया, परन्तु इसके साथ ही साथ उसने अपने कर्त्तव्य की गुरुतर कठिनाइयों को भी लक्ष्य कर लिया था। वह प्रजातन्त्री प्रचार का मूल्य समझता था और इसके उपयोग का तिरस्कार नहीं करता था। उसने अपने सैनिकों की उन्नति के अवसरो को अपेक्षाकृत अधिक अच्छा बनाकर उनकी शुभेच्छा प्राप्त कर ही ली थी और एक भावुकतापूर्ण अपील से उनके उत्साह में द्विगुणित तीव्रता ला दी थी।

"भूख से अधमरे और नंगे सैनिको ! शासन आप का अत्यधिक ऋणी है, पर वह आप लोगों के लिए कुछ नहीं कर सकता। आपका आत्मसन्तोष और साहस आपके लिए बहुत समादरणीय है, परन्तु वे आपके लिए न सम्मान, न ही कोई अन्य लाभ अर्जित करते है। मै आप लोगों को विश्व की उर्वरतम घाटियो मे ले जा रहा हूँ; वहाँ आप लोग उन्नतिशील नगर और परिपूर्ण प्रान्त पायेंगे; वहाँ आप लोग आदर, सम्मान और समृद्धि प्राप्त करेंगे। इटली की सेना के सैनिको, क्या तुम साहसहीनता दिखाओगे ?"

इस अर्द्धनाटकीय वक्तृता से सैनिक दल अत्यधिक प्रभावित हुए। उसके अधिकार में एक विशाल सेना थी जिस मे ४६,३०० पुरुष थे, औग यद्यपि मित्र राज्यों के पास ५२,००० पुरुष थे, परन्तु वे सब कुछ जिलों मे छितरे हुए थे। इसके अतिरिक्त ऑस्ट्रियन सेनापति (कमाण्डर) बोलियो एक वृद्ध पुरुष था और जिस देश में उसे सैनिक कार्यो का संचालन करना था उसका उसे कुछ भी परिचय नही था।

सबसे पहली बात जो बोनापार्ट इटली में करना चाहता था वह थी ऑस्ट्रियनों को पियेदमोन्तेस मित्र राज्यों से पृथक् कर देना। आक्रमण फ्रांसीसी लोगो के लिए उज्ज्वल भविष्य का सन्देश लेकर आरम्भ हुआ। बोनापार्ट ने नाईस मे बहुत बड़ी-बड़ी तैयारियाँ की हुई थी और इसके बाद वह अल्बेंगा के मार्ग से आगे बढ़ा और सैवोना में बिलकुल ठीक समय पर पहुँच गया। ऑस्ट्रियन लोग अनेक युद्धों में पराजित हुए और उन्हें भारी हानियाँ उठानी पड़ी। पियेदमोन्ते और उनके मित्र राज्यों मे एक भारी खाई बना कर वह पियेदमोन्ते की ओर अभिमुख हुआ। केवा के दुर्गस्थ डेरे कोल्ले पर आक्रमण करना शत्रु के लिए बहुत कठोर आघात सिद्ध हुआ और फ्रांसीसी सेनाएँ उनकी राजधानी को घेरने के लिए आगे बढीं। ऐसा करने से पहले ही चेवस्को को अपने अधिकार में कर लिया गया और विरामसन्धि की प्रार्थना को पुनः नवीन बना दिया गया। सन्धि की शर्तो पर २८ अप्रैल को हस्ताक्षर हुए; जब पियेदमोन्ते प्रतिनिधियों ने बोनापार्ट द्वारा सुझायी गयी शर्तो को बहुत कठोर बताकर मानने से कुछ अनाकानी की तो उसने अपनी घड़ी उठायी और उनसे साफ कह दिया कि आक्रमण कल दो

बजे के लिए निश्चित हो चुका है। अब उनके पास आत्मसमर्पण करने के सिवा कोई भी चारा नही था। १५ मई को एक सन्धि हुई जिसके अनुसार सेवाएँ और तन्दा तथा विरील के जिलों के साथ नाईस फ्रांस में मिला लिये गये। बोनापार्ट अपने आक्रमण की सफलताओं पर अत्यधिक प्रसन्न हुआ। उसने अपने सैनिकों की कल्पनाओ को उनके साफल्य का स्मरण दिलाकर प्रज्ज्वलित कर दिया। उसने कहा, "चौदह दिनो मे आप लोगों ने छः युद्ध जीते; आप लोगों ने पचपन गनों (तोपो) और कुछ दुर्गों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। आप लोगो ने पियेदमों के सर्वाधिक समृद्धिपूर्ण प्रदेशों पर विजय प्राप्त की है। इस बात का श्रेय भी आप लोगों को ही है कि आपने पन्द्रह सहस्र बन्दी बनाये और दस सहस्र से भी अधिक लोगों को मौत के घाट उतार दिया या जख्मी कर दिया।"

इटली वासियो के हाथो अपना अच्छा स्वागत हो, इस उद्देश्य से उसने कहा, "इटली के निवासियो! फ्रांसीसी सेना आप लोगो के बन्धन तोड़ डालने के लिए आयी है। फ्रांस की जनता विश्व भर के लोगों की मित्र है, उससे विश्वासपूर्वक मिलिए। हम आपकी सम्पत्ति, आपके धर्म और आपकी परम्पराओ का सम्मान करेगे। हम लोग उदारमना शत्रुओं के रूप में ही युद्ध करते है; और हम केवल उन अत्याचारियों का ही विरोध करते है जो हमे अपना दास बनाना चाहते है।"

सार्दीनिया के साथ शान्ति-सन्धि ने लोम्बार्ड के उपजाऊ मैदानों को आक्रमण के लिए खाली छोड़ दिया, और बोनापार्ट ने अब अपनी सैनिक शक्तियो को ऑस्ट्रियनों के विरुद्ध लड़ने के लिए एकाग्र किया। ऑस्ट्रियन राज्य अपनी ही प्रजा के कटु विरोध के कारण पर्याप्त निर्बल हो चुका था। ऑस्ट्रिया के सेनापति को, जिसे पो के मार्ग की रक्षा का भार सौपा गया था, बोनापार्ट की तीव्र प्रगति के कारण पीछे हटना पड़ा। पर्मा के ड्यूक के साथ नवम्बर, १७९६ मे शान्ति सन्धि हो गयी। ऑस्ट्रियनों के विरुद्ध युद्ध की सभी कार्यवाहियाँ पुनःचालित की गयीं और फ्रांसीसियों ने लोदी के पुल पर अधिकार कर लिया और १० मई को ये लोग नगर मे प्रविष्ट हो गये; नगर-प्रवेश के पहले इन्होने साम्राज्यवादी सेनानायक सेबॉतान्दॉर्फ के अधीनस्थ १०,००० की सेना को पराजित किया। लोदी की विजय ने बोनापार्ट का सम्मान बहुत बढ़ा दिया। फ्रासीसी सैनिक अपने सेनानायक के विकट और सुदृढ साहस से अत्यधिक प्रभावित हुए, और वे लोग इस 'लघु नायक' (ल पत्ती कापोरल) के शौर्य पर समुचित अभिमान कर सकते थे। बोनापार्ट ने इस युद्ध के महत्त्व को भली प्रकार समझा था; वस्तुतः उसने मान्थोलौं के सामने सेण्ट हेलिना में स्वीकार भी किया था कि लोदी की विजय ने उसकी महत्त्वाकांक्षा को एक चिरस्थायी अग्निशिखा में 'प्रज्ज्वलित कर दिया'

था। १६ मई को उसने मिलाँ में प्रवेश किया, यह लोम्बार्डी की राजधानी थी। मिलाँ वासियों ने उसका स्वागत किया, उनमें देशभक्ति और आत्मसम्मान दोनों का ही पर्याप्त अभाव था। उन्होंने फ्रासीसियों पर पुष्पों की वर्षा की और उनके युवा तथा अपराजित नेता की वीरता को वहुत सराहा। वोनापार्ट ने वहाँ के वासियो पर बहुत भारी सैनिक कर लगा दिया और अनेक हस्तलिखित पोथियों तथा कलाकृतियों पर अधिकार जमा लिया। केवल मिलाँ और पर्मा के मध्य में अवस्थित किसानों ने एक सक्रिय विरोध किया, परन्तु वे लोग फ्रांसीसी सैनिक दलों के द्वारा मौत के घाट उतार दिये गये। सारा लोम्बार्डी बोनापार्ट के हाथों में था; केवल मन्तुआ का दुर्ग बच गया था, उस पर उसका चित्त लगा हुआ था। पर्मा और मोदेना ड्यूकों से भी जुर्माना वसूल किया गया, और पोप ने सौदा पटाने के सभी उपायो का प्रयोग कर लेने के बाद दो करोड़ दस लाख का जुर्माना और १०० कलाकृतियो तथा ५०० हस्तलिखित पोथियो को भेट करना स्वीकार कर लिया। तुस्कनी के ड्यूक ने भी बोनापार्ट से शान्ति-सन्धि कर ली और बोनापार्ट को फ्लोराँ मे ड्यूक के साथ भोजन करने का अतिदुर्लभ अवसर प्राप्त हुआ।

पोप और इटली के अन्य शासकों के साथ अपना हिसाब पक्का करके बोनापार्ट ने मन्तुआ के घेरे के लिए बहुत जल्दी की, जहाँ ऑस्ट्रियनो ने अपनी सैनिक शक्तियाँ एकत्र की हुई थीं। उन लोगों ने फ्रांसीसियों को खदेड़ देने के कुछ प्रयास किये परन्तु प्रत्येक अवसर पर वे लोग विफल ही हुए। दोनो ही दलो के लिए एक क्रूर संघर्ष की पूर्वयोजना तैयार हो चुकी थी। अर्कोली में दो दिन तक भीषण संग्राम चला और अन्त में विजयलक्ष्मी ने फ्रांसीसियों का ही वरण किया। इसी बीच वियेना से सैनिक शक्तियों के और भी जत्थे आये और १४ जनवरी, १७६७ को रिवोली में एक दूसरा संग्राम हुआ जिसमें ऑस्ट्रियन लोग पराजित हुए। मन्तुआ के पतन के बाद बोनापार्ट पोप की ओर अभिमुख हुआ और उसने पोप-शासित राज्यों पर आक्रमण करने की धमकी दी। पोप की सेनाएँ ६ फरवरी को औकोना में बुरी तरह से पराजित हुई और पोप को बाध्य होकर एक शान्ति-सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े। १६ फरवरी, १७६७ को तोलान्तेनों की सन्धि हुई जिसमें पोप ने इंग्लैण्डवासियों के लिए अपने बन्दरगाह बन्द कर देना स्वीकार कर लिया; और उसने बोलोग्ना के सिस्पदेन गणराज्य, फेरेरा और उसके निकटवर्ती ज़िलों और अविग्नौं के फ्रांसीसी अधिकृत प्रदेशों को मान्यता प्रदान करना भी स्वीकार कर लिया; इसके अतिरिक्त उसने तीन करोड़ फ्रांक की विशाल राशि पुरस्कार रूप में देने और ५०० हस्तलिखित पोथियों तथा १०० कलाकृतियों को अर्पित करने की भी स्वीकृति दे दी। इस प्रकार से बोनापार्ट ने फ्रांस के रिक्त कोषों

को पुनः पूरित किया और अपने पथभ्रष्ट स्वामियों को सन्तुष्टि प्रदान की।

वोनापार्ट ने अपनी अग्रगति अक्षुण्ण ही रखी और वह वियेना की ओर बढ़ा परन्तु सन्धि-वार्ताएँ आरम्भ हो गयी थी और शान्ति-सन्धि की प्रारम्भिक शर्तो पर लियोबान मे १८ अप्रैल को हस्ताक्षर किये जा चुके थे। १७ अक्तूबर, १७९७ को छः मास के बाद कैम्पो फॉर्मियों की सन्धि के द्वारा ये शर्ते अन्तिम रूप से निश्चित कर दी गयी।

इस बीच वोनापार्ट नितान्त क्रिया-शून्य या निष्क्रिय ही नहीं बना रहा। वह वेनिस की ओर बढा और १६ मई को उसे सन्धि करने पर विवश कर दिया। उसने तीस लाख की राशि तो उपकार रूप मे तथा तीस लाख सामुद्रिक बेड़े की सामग्री के रूप मे देना स्वीकार किया और तीन उत्तम जंगी जहाज तथा दो युद्धनौकाएँ देने का भी वचन दिया। इसके अतिरिक्त इस पुराकालीन गणराज्य से २० चित्र एवं ५०० हस्तलिखित प्रतियाँ भी ले ली गयीं।

जून में उत्तरी और केन्द्रीय इटली का मिसल्पाईन गणराज्य के रूप में पुनःसंघटन किया गया, जिसमें सिसपदेन गणराज्य, लोम्बार्डी रोमग्ना तथा कुछ अन्य भूमिभागों को लेकर दूतावास भी समाविष्ट कर लिये गये थे।

अब जेनोआ की बारी थी। १७९६ में बोनापार्ट ने जेनोआ वासियों से बलात् यह सन्धि कर ली कि वे लोग अपने समुद्री अड्डों को अग्रेजों के लिए बन्द कर दे। परन्तु फ्रांसीसियों के लिए इतना मनवा लेना ही तो पर्याप्त नही था। वे तो इस छोटे-से राज्य को नष्ट कर डालना चाहते थे। कुछ थोड़े से फ्रांसीसियों के वध का लाभ उठाते हुए उसने इसे फ्रांसीसी संरक्षण मे एक लिगुरियन गणराज्य बना डाला और उसे फ्रासीसी आदर्शानुसार ही एक सविधान भी दे दिया।

इस समय फ्रास मे कुछ गम्भीर घटनाएँ हो गयी। बोनापार्ट अठारहवें फ्रक्तिडोर की क्रान्ति ला ही चुका था। वह संचालकों से दिन प्रतिदिन अधिकाधिक स्वतन्त्र होता जा रहा था। वस्तुतः मई, १७९७ में उसने लिखा था; "क्या आप लोग यह समझते है कि मैं इटली मे संचालक मण्डल के वकीलों—किसी कार्नो या किसी बर्रा, के सम्मान के लिए लड़ रहा हूँ?" ऑस्ट्रिया के साथ उसकी सन्धि-वार्ताओं मे यह स्वर नितान्त स्फुट है।

कैम्पो फॉर्मियों की शान्ति-सन्धि के अनुसार ऑस्ट्रियन नीदरलैण्ड्स निश्चय ही फ्रांस को अर्पित कर दिये गये थे और ऑस्ट्रिया ने बेल्जिक प्रान्तो की क्षतिपूर्ति स्वीकार कर ली थी, वेनिस ध्वस्त हो गया था और उसके अधिकार वाले प्रदेश उससे छीन लिये गये थे; अदिज्र के पूर्ववर्ती प्रदेश, इस्त्रिया, दाल्मातिया और अद्रियातिक मे से कुछ द्वीप ऑस्ट्रिया को दे दिये गये, और अदिज के पश्चिमवर्ती प्रदेश सिसल्पाईन गणराज्य को

दे दिये गये; आयोनियन द्वीप फ्रास में मिला लिये गये। ऑस्ट्रिया ने सिसल्पाईन गणराज्य की स्वाधीनता मान्य घोषित की। राईन के पूर्व मे स्थित ब्रीस्गान के समर्पण से मादैना के ड्यूक की क्षतिपूर्ति होनी थी।

ये थी अभिसन्धि की लक्षणीय धाराएँ। कुछ गुप्त धाराएँ भी थी जिनके द्वारा सम्राट् ने फ्रास के लिए राईन का वामतट प्रदेश देना स्वीकार किया था। फ्रांस को साल्ज़बर्ग और बवेरिया के कुछ भूमिभागो मे प्रधान धर्माध्यक्षता (आर्क विशपरी) प्राप्त करने मे ऑस्ट्रिया की सहायता करनी थी। दोनो देशो में एक व्यापारिक समझौता होना था और रास्तात में एक सम्मेलन होना था जिसमे उनके सम्बन्धो का स्पष्ट शब्दो मे निर्णय होना था।

इटली मे बोनापार्ट की विजय अभूतपूर्व थी। उसने फ्रांस के लिए 'वैज्ञानिक सीमा प्रान्त' (राईन, आल्प्स और पिरैन्ने) प्राप्त कर लिया था, जो कि गत अनेक वर्षो से फ्रांसीसी कूटनीति का परम उद्देश्य बना हुआ था। सैवाए और नाईस अधिकार मे कर लिये गये थे और आयोनियन द्वीपो मे भी फ्रासीसी झण्डा गाड़ दिया गया था। ऑस्ट्रिया भी सन्तुष्ट ही जान पड़ता था क्योकि उसने ऐसा कुछ नही खोया था जो सग्रहणीय हो। वेनिस और जर्मन साम्राज्य की कीमत पर समझौते की शर्तें पूरी की जा रही थी। ऑस्ट्रिया के मन्त्री थ्यूगू को छोड़कर कोई भी भविष्य को देखने मे समर्थ नही था, उसने कहा था, "एक भी व्यक्ति को राज्य के सम्मान की या इस बात की कि अब से दस साल बाद सम्राट् का क्या होगा, कोई परवाह नही है।"

बोनापार्ट की जनप्रियता फ्रास मे अपने उच्चतम शिखर पर जा पहुँची थी। राष्ट्र 'उल्लास की मदिरा से उन्मत्त' था और सर्वत्र बोनापार्ट की प्रशसा सुनायी पड़ती थी। यह युद्धाभियान क्रान्ति के सिद्धान्तो की निर्मम हत्या थी परन्तु नेपोलियन के जीवन मे यह एक असाधारण रूप से अग्रशील पग था।

कैम्पो फॉर्मियो की शान्ति-सन्धि के पश्चात् तत्काल ही बोनापार्ट ने रोम मे प्रवेश कर दिया और उस पर अधिकार जमा लिया। पोप को निर्वासित कर दिया गया और गणराज्य की स्थापना की गयी। स्विस लोग अभी तक तो युद्ध की विभीषिका के बाहर थे परन्तु बोनापार्ट की महत्त्वाकाक्षा ने उनके देश को भी १७९८ मे जीतने के लिए उसे अग्रसर कर दिया। यह बड़ी सरलता से विजित कर लिया गया और फ्रांस के एक अनुचर के रूप मे हेल्वेटिक गणराज्य की प्रतिष्ठापना कर दी गयी।

मिस्र का अभियान

इग्लैण्ड फ्रास का सर्वाधिक जुगुप्सित शत्रु था। १७९४ और ९५ मे बिस्के

की खाड़ी और जेनोआ की खाई मे फ्रांसीसी नौ-सैनिक बेड़े को अंग्रेज़ी नौ-सेना के हाथों बुरी तरह हारना पड़ा था। इसके बाद से फ्रांस के मित्र राज्यो को ही आक्रमण के अनुप्रहार सहने पडे थे। स्पेन ने युद्ध की घोषणा कर दी और शीघ्र ही (१४ फरवरी, १७९७) सेण्ट विन्सेण्ट अन्तरीप के बाहर ही पराजित कर दिया गया और इसी वर्ष अक्तूबर मास मे डच लोगों को भी कैम्परडाउन में पराजित कर दिया गया। कुछ समय तक तो फ्रासीसी लोग इस बात पर विश्वास करते हुए कि वे लोग समुद्र मे इंग्लैण्ड को पराजित नही कर सकेंगे, सोचते ही रहे कि इग्लैण्ड मे स्थलमार्ग से ही लड़ा जाय। दिसम्बर, १७९६ मे होशे ने प्रयास किया और एक चढ़ाई की भी गयी परन्तु उसे भयंकर पराजय सहनी पड़ी। इसके बाद आइरलैण्ड मे उतरने का भी प्रयास किया गया, जो इस समय विद्रोह और असन्तोष के ताप मे उबला जा रहा था, परन्तु यह प्रयास भी विफल रहा। इन विफलताओ से परेशान होकर फ्रास के प्रमुख राजनीतिज्ञ इंग्लैण्ड की शक्ति का विनाश करने के लिए बहुत उत्कण्ठित हो रहे थे। बोनापार्ट ने संचालक मण्डल को लिखे अपने एक पत्र में यह मत अभिव्यक्त किया था–

"हमारे राज्यशासन के लिए यह परम आवश्यक है कि इंग्लैण्ड के एक तन्त्र का विनाश किया जाय, अन्यथा इस द्वीपीय राष्ट्र के भ्रष्टाचार और षड्यन्त्रों से इसे अपने ही सर्वनाश की आशा करनी पड़ेगी। वर्तमान समय हमारे लिए विशिष्ट रूप से अनुकूल है। आइए, हम अपनी सारी शक्ति समुद्री बेड़े में केन्द्रित कर दें और इग्लैण्ड का विनाश कर दें। जैसे ही हम यह कर लेंगे, यूरोप हमारे पैरों में गिर पड़ेगा।"

संचालक मण्डल बोनापार्ट से सहमत हो गया, उसने इंग्लैण्ड की सशस्त्र सेना की सृष्टि करने का आदेश दे दिया और बोनापार्ट को उनका सेनापति (कमाण्डर) नियुक्त कर दिया। कुछ ही दिनों मे उसने आक्रमण की योजनाएँ तैयार कर ली, परन्तु पर्याप्त धन का अभाव और समुद्रतटीय परिस्थितियो के अध्ययन ने शीघ्र ही उसे इस आयोजित साहसपूर्ण कार्य की निरर्थकता का विश्वास दिला दिया। संचालकमण्डल के समक्ष उसने जो स्मरणपत्र प्रस्तुत किया था उसमें उसने स्पष्ट कहा था कि इंग्लैण्ड पर सीधा आक्रमण कर सकना बड़ा शंकायुक्त और प्रायः असम्भव कार्य है। उसने हैनोवर और हैम्बर्ग पर अधिकार कर लेने का सुझाव दिया और उसने यह भी सुझाया कि भारतवर्ष के साथ इंग्लैण्ड के व्यापार को हानि पहुँचाने के लिए लेवाँ पर चढ़ाई कर दी जाय। यह नितान्त स्पष्ट है कि उसने इंग्लैण्ड पर एक सीधा आक्रमण करने की दुःसाध्यता देख ली थी। यह कहना अनुचित होगा कि उसकी समुद्रतटीय यात्रा केवल यूरोप की आँखों मे धूल झोंकने का एक बहाना मात्र था। अप्रैल, १७९८ में उसने

संचालक मण्डल के समक्ष मिस्र की विजय से सम्बन्धित अपना प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिसे वह इंग्लैण्ड की शक्ति क्षीण कर देने का एक सबल उपाय समझता था। मिस्र के अपने हाथों में हो जाने पर, उसने सोचा, कि वह ग्रेट ब्रिटेन के साम्राज्य पर प्राणान्तक आघात कर सकेगा। पौर्वात्य विजय उसकी प्रकृति के आदर्शवादी और व्यावहारिक दोनो ही पक्षों का भावनात्मक स्पर्श करती थी परन्तु वह संचालक मण्डल से समर्थन प्राप्त होने की अधिक आशा नहीं कर रहा था जिस का ध्यान अभी तक इटली विषयक मामलों की स्थायी व्यवस्था करने मे लगा हुआ था। बोनापार्ट एक सचालक को अपने साथ सहमत कर लेने में सफल हो गया, यह था दैवानुप्रेरित मानव-प्रेम के पथ का संस्थापक लेपो। बोनापार्ट ने उसे सुझाया कि पूर्वी देश उसके नये मत के प्रचार के लिए बहुत उर्वरा भूमि सिद्ध होगे। इस प्रकार इस युद्धाभियान के पक्ष में बहुमत हो गया और विरोधी पक्ष अब अधिक क्रियाशील न रह सका।

जब सब तैयारियाँ पूरी हो गयीं तो बोनापार्ट १६ मई, १७६८ को तूलों से चला। माल्टा ने, जो कि सेण्ट जॉन के योद्धाओं (नाईट्स) के अधिकार में था, बिना किसी गम्भीर प्रतिरोध के आत्मसमर्पण कर दिया। और फ्रांसीसियों ने उत्तर में यह वचन दिया कि धार्मिक व्यवस्था के सर्वोच्च अध्यक्ष के निमित्त वे लोग जर्मनी मे एक राज्य विजित करेंगे। इस बीच उसे ३,००,००० फ्रांक प्रति वर्ष की अवकाशवृत्ति देना स्वीकार किया गया और बोनापार्ट की व्यावहारिक बुद्धि ने द्वीप को एक अभिनव-व्यवस्था के आधार पर पुनःसंघटित करने मे अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर दी। धार्मिक निवासो का उन्मूलन कर दिया गया; एक सैनिक राज्यपाल की नियुक्ति की गयी, सार्वजनिक उपयोगिता के कार्य हाथ में लिये गये और शिक्षा को उन्नत करने के उपाय किये गये। माल्टा को पराजित करने के बाद उसने मिस्र की ओर सामुद्रिक प्रस्थान किया और अलैक्जेण्ड्रिया मे पहुँचने के पहले ही उसने अपने सैनिक दलो को पुनःसघटित किया और एक घोषणापत्र जारी किया जिसमें निम्नलिखित विषय थे—

"जिन लोगो के बीच में हम अपने आपको पायेंगे वे लोग महोम्मतन हैं। उनके धर्म की पहली धारा यह है कि ईश्वर ईश्वर, और महोम्मत उसका पैग़म्बर है।"

"उनके प्रतिज्ञा वाक्यो का विरोध मत करो। उनके साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा आप लोगो ने यहूदियों और इटलीवासियों से किया था। मुफ्तियों और इमामो के प्रति सम्मान-भाव दिखाओ जैसे आपने बिशपों और रब्बियों के प्रति दिखाया था। ······लूट-खसोट सैनिको की एक लघु-संख्या मात्र को ही समृद्ध बनाती है; यह हमारे सम्मान को घटाती है, यह हमारी सहायता करने वाले तत्त्वो का विनाश करती है और हमें जनता का शत्रु बनाती है जिनके साथ अपने ही हितों के पक्ष मे हमे मित्र बन कर

रहना है।"

अलैक्जेण्ड्रिया सर्वथा सुरक्षाहीन राज्य था। नगर को विजित करने में फ्रांसीसियो को कोई कठिनाई नही हुई। वहाँ के राज्यपाल सैय्यद मुहम्मद अल-करीम सिकन्दरी के साथ बोनापार्ट ने बहुत अच्छा बर्ताव किया और उसे अपने पद पर पूर्ववत् रहने की अनुमति दे दी। अलैक्जेण्ड्रिया से फ्रासीसी सैनिक दल काहिरा (या कायरो) की ओर बढ़े और पिरामिड्स के युद्ध मे माम्लुक लोग पराजित कर दिये गये (२१ जुलाई) उन्होने बहुत वीरता से युद्ध किया परन्तु उनके सभी आक्रमण उनके प्रतिरोधियों द्वारा शान्त कर दिये गये और दूसरे दिन बिना किसी प्रकार के प्रतिरोध का सामना किये हुए वे लोग काहिरा मे प्रविष्ट हो गये। बोनापार्ट ने विजितो के साथ बड़ी उदारता का बर्ताव किया और अपने सैनिको को उसने यह कह दिया कि वहाँ के निवासियों को किसी भी प्रकार से लूटा या तग न किया जाय। उसने नगर के शासन की पूर्ण-व्यवस्था कर ली, एक दीवान की नियुक्ति की जिसमे नौ सदस्य थे, परन्तु सम्पूर्ण वास्तविक सत्ता उसने अपने ही हाथो मे रखी। सदा की ही तरह उसकी व्यवस्थानुगामी बुद्धि ने सार्वजनिक उपयोगिता के कार्यो को उन्नत करने मे अपने आपको लगा लिया और वह देश के साधनो का अनुसन्धान करने लगा। उसने विज्ञान और शोध-कार्य को प्रोत्साहन दिया, वह पण्डितो तथा विद्वानो का स्वागत करता था, इन्ही की सहायता से उसने मिस्र के शोध-मण्डल (इन्स्टीच्यूट) की स्थापना की। मुस्लिम भावनाओं को उत्तेजित करने के लिए उसने कुछ भी नही किया, और काहिरा तथा हालैण्ड मे, रोज़ के अनुसार निश्चय ही उसने अपने आप को एक मुस्लिम जतलाना चाहा था। परन्तु सहसा नगर की ऊँची मीनारों से शस्त्रों की ललकार उठी और एक युद्ध छिड़ गया, जिसमे फ्रासीसियो ने अपने विरोधियो को बुरी तरह से पराजित किया और सभी महत्त्वपूर्ण सैनिक केन्द्रो पर अधिकार कर लिया। अब मिस्र पूर्णतः विजेता की दया पर था। परन्तु अंग्रेज़ी एड्मिरल नेल्सन ने फ्रांसीसी नौ-सैनिक बेड़े का पीछा किया, उसने अलैक्ज़ेण्ड्रिया के पूर्व अबुकेर खाड़ी मे पड़ाव डाल दिया और फ्रासीसी बेड़े को नील (नदी) के युद्ध मे पराजित कर दिया। यह बोनापार्ट के जीवन की एक महत्त्वपूर्ण निर्णायक घटना है।

जब तुर्की शासन को फ्रासीसी बेड़े के विनाश का पता चला तो उसने ६ सितम्बर, १७६८ को गणराज्य के साथ युद्ध की घोषणा कर दी। बोनापार्ट ने ससैन्य सीरिया में प्रवेश किया (जनवरी, १७६६), और जफ्फा को अपने अधिकार में कर लिया। क्रोधाग्नि से प्रज्ज्वलित फ्रांसीसी सैनिक पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों का निर्दयतापूर्वक संहार करते हुए नगर की गालियों मे घुस पड़े। लगभग २,००० सैनिकों को मौत

के घाट उतारा गया और ३,००० को बन्दी बना लिया गया। बोनापार्ट के सैनिक आदेश के द्वारा इनको बाद मे भगा दिया गया।

जफ्फा से फ्रासीसी लोगो ने काहिरा की ओर सैनिक अभियान किया। जिस पर उन्होने घेरा डाल दिया (मार्च, १७६६)। प्रतिरोधी सेना का सेनापति अहमद पाशा था, वह अपनी वर्बरता के लिए बडा कुख्यात था, परन्तु तुर्की प्रतिरोध की आत्मा एक फ्रासीसी भगोड़ा (एमिग्रे) था, वह बोनापार्ट का स्कूल का साथी था, घेरे के काल मे ही उसका जीवनान्त हो गया था। टाबोर पर्वत पर एक घमासान युद्ध हुआ (१६ अप्रैल) जिसमे फ्रासीसी गणना के अनुसार ४०० व्यक्तियो का मुकाबला ३५,००० तुर्कों ने किया था। तुर्क लोग बुरी तरह से हारे परन्तु सर सिडनी स्मिथ ने वडी वीरता-पूर्वक अक्रे की सुरक्षा की और बोनापार्ट को मिस्र लौटना पड़ा। तुर्कों ने उसे निकाल बाहर करने की दृढ प्रतिज्ञा की और अवुकेर प्रायद्वीप मे एक दूसरी सेना को लाया गया। २५ जुलाई, १७६६ को फ्रांसीसियो ने एक आक्रमण किया और तुर्कों को पराजित कर दिया। यह विजय अवुकेर के युद्ध के नाम मे प्रसिद्ध है और मिस्र में बोनापार्ट का अन्तिम वीरकर्म है। इस युद्ध मे उसने अपने आपको एक जन्मजात सेनापति तथा मनुष्यो का नेता सिद्ध कर दिया, और मृत्यु के विषय मे उसका पूर्णत: नि:शंक होना उन सब के हृदयो पर एक प्रभावपूर्ण चिह्न अकित करता था जिन्होंने उसको युद्ध की कार्यवाहियो का सचालन करते हुए देखा था।

इस विजय के अनन्तर वह अलैक्जेण्ड्रिया लौट आया और यहाँ से क्लेबर के हाथो मिस्र के अभियान का नेतृत्व सौप कर वह काहिरा की ओर चल दिया। इसी बीच फ्रांस से एक अशान्तिजनक समाचार प्राप्त हुआ और उसने वहाँ जाने का निश्चय कर लिया। वह फ्रेजुस पर ६ अक्तूबर को उतरा और दूसरे दिन पेरिस जा पहुँचा।

फ्रास से उसकी अनुपस्थिति मे षड्यन्त्रकारियो ने अपनी योजनाएँ परिपक्व कर ली थी। अठारहवे ब्रुमेयर (१६ नवम्बर) को उसने प्रसिद्ध अवैधानिक आकस्मिक परिवर्तन कर डाला जिसमें संविधान को नष्ट कर दिया गया और बोनापार्ट फ्रांस का स्वामी बन बैठा।

क्लेबर मिस्र मे ही रह गया था। उसने तुर्कों के साथ शान्ति-सन्धि कर लेने का निश्चय कर लिया और कलात-एल-अरिश की सन्धि पर हस्ताक्षर हो गये (२३ दिसम्बर, १७६६) जिस के अनुसार मिस्र उसके पुराने शासकों को लौटा दिया गया और फ्रासीसियो को सुरक्षापूर्वक अपने देश मे लौट जाने की अनुमति दे दी गयी। इंग्लैण्ड ने सन्धि को मानने से इन्कार कर दिया और इस प्रकार क्लेबर एक बहुत ही अजीब

चक्कर में पड़ गया। उसने एलियोपोलिस के युद्ध मे तुर्कों का मुकाबला किया और उनको पराजित कर दिया (२० मार्च, १८००)। परन्तु विजयी सेनापति १४ जून, १८०० को मार दिया गया और उसका स्थान मेनौ ने लिया, जिसके अधीन मिस्र मे फ्रांसीसी सेनाओ को हार खानी पड़ी थी। कुछ महीनो के बाद अंग्रेजों के साथ शान्ति-सन्धि हो गयी और फ्रासीसी सेनाएँ फ्रास को लौट गयी।

मिस्र का अभियान एक भयंकर विफलता ही सिद्ध हुआ परन्तु इसका दोष केवल बोनापार्ट पर ही नही रखा जा सकता है। सीरिया की ओर उसका सैनिक अभिनिष्क्रमण एक भयंकर भूल थी और मिस्र से उसकी वापसी ने उसकी विजय को मिट्टी मे मिला दिया।

अध्याय ८

शासक मण्डल तथा साम्राज्य

शासक मण्डल तथा द्वितीय संयुक्त मोर्चे का युद्ध

बोनापार्ट अब फ्रांस का स्वामी बन गया था। इस समय उसकी आयु तीस वर्ष थी और परिस्थितियों के विचित्र घात-प्रतिघात से वह फ्रांसीसी राजनीति के उच्चतम पद पर पहुँच गया था। इस समय तक उसके विशिष्ट गुण थे—उसका भावुकतापूर्ण स्वभाव, किसी-किसी समय में एक 'कुपित सिह' जैसी उग्र प्रगति, एक अति सबल इच्छा-शक्ति और इतना अधिक व्यवस्थानुराग कि वह प्रत्येक व्यक्ति को उसी काम पर लगा हुआ देखना चाहता था जिसके लिए वह सर्वाधिक उपयुक्त हो। उसकी इच्छा-शक्ति में इतना बल था कि वह कुछ भी असम्भव नहीं समझता था, और एक बार उसने मोले से कहा था कि 'दीन पुरुष का भूत और कायर की शरण, ये शब्द तो केवल नपुंसकता की स्वीकृति-मात्र हैं।' वह बडी सुलझी हुई समझ का व्यक्ति था और उसका मस्तिष्क सदा सक्रिय रहता था। उसने कहा था, 'जब मै सोचता रहता हूँ तो मैं एक अत्यन्त कष्टकारक अशान्ति की दशा मे रहता हूँ. . . . . . . .तो ऐसे लगता है जैसे मै प्रसव पीडित एक नारी हूँ।' वह अपूर्ण ज्ञान से कभी सन्तुष्ट नही होता था और भाग्य में उसकी कोई आस्था नहीं थी। वह एक स्वप्नदर्शी था और एक व्यावहारिक व्यक्ति भी; और आदर्शवादी तथा व्यावहारिक दृष्टिकोण के अन्तर को खूब समझता था। वह क्रान्तिकारी उन्माद का समुचित मूल्यांकन करना खूब जानता था यद्यपि उसने कहा था, ''मै क्रान्ति का एक बालक हूँ।''

वह मूर्खो से बहुत अप्रसन्न रहता था, कहता था, 'अनैतिकता का सबसे निकृष्ट रूप है ऐसा व्यवसाय करना जिस पर उसका कोई अधिकार नही है।'' वह स्वयं बड़ा ही परिश्रमी था और दूसरो को भी घोर परिश्रमी देखना चाहता था। राज्य-परिषद् के उन्निद्र सदस्यो को घोर परिश्रम के अवसरों पर इन शब्दों मे सोत्साह जाग्रत कर देता था, ''और अब नागरिकों, हमे अवश्य ही वह धन कमाना है जो फ्रास से हमे मिल रहा है।'' वह क्रान्ति की अनेक बातों का प्रशसक था और उनको सुरक्षित रखना

चाहता था परन्तु 'पुरातन व्यवस्था' को सर्वथा दोषयुक्त नही समझता था। वह स्वार्थी मनुष्यो द्वारा सचालित राज्यो को घृणा की दृष्टि से देखता था, वह चाहे अभिजात जनों या धनिको के हो और चाहे पादरियो या पुरोहितो के। वह फ्रास और उसके निवासियो से प्रेम करता था और उनको यश एव कीर्त्ति से मण्डित कर देना चाहता था। वह राइन-सीमा को एक मूल सिद्धान्त के रूप मे देखता था और यद्यपि पहले आक्रमण कर देने के लिए सदा तैयार रहता था, उसने कहा था, "मै युद्ध के लिए कोई लालसा नही रखता, परन्तु मै इसके लिए बहुत विलम्ब करने के स्थान पर बहुत शीघ्रता करना श्रेयस्कर समझता हूं।" राष्ट्रो के मनोविज्ञान मे उसकी बड़ी गहरी सूझ थी जो कि इस कथन से बहुत स्पष्ट हो जाती है, "सभी राज्यो की नीति उनके भूगोल मे छिपी रहती है।"

ऐसा था वह व्यक्ति जिसने एक नये आधार पर फ्रास को पुनर्व्यवस्थित किया और क्रान्ति के आदर्शो को भुलाकर अपने लिए एक साम्राज्य की स्थापना कर डाली। फ्रास की राजनीतिक सस्थाओ मे उसने जो परिवर्तन किये उनका विवरण देने से पहले यह अधिक अच्छा होगा कि हम द्वितीय सयुक्त मोर्चे (कोलीशन) के युद्ध का वर्णन कर दे।

पिट के प्रयत्नो से १७६८-६६ के हेमन्त मे फ्रास के विरुद्ध एक नया सयुक्त मोर्चा बन गया, जिसमे ग्रेट ब्रिटेन, रूस और ऑस्ट्रिया सम्मिलित थे। टर्की, नेप्लस और पुर्तगाल जैसे छोटे राज्यो ने भी सहयोग देने का वचन दिया। इटली मे रोमन गणराज्य विध्वस्त हो चुका था और पोप नेप्लस के फर्डिनैण्ड के पास लौट आने के लिए निमन्त्रित किया जा चुका था। परन्तु सचालक मण्डल ने बड़ा प्रबल कार्य कर डाला; सार्डीनिया के राजा को तूरिन से निकाल बाहर किया गया और नेप्लस के फर्डिनैण्ड को पालरमो तक पीछे हटने के लिए बाध्य होना पड़ा। रोमन गणराज्य की पुन:स्थापना की गयी और दक्षिणी प्रदेशो को पार्थीनोपियन गणराज्य के रूप मे सघटित कर दिया गया (जनवरी १७६६)।

इस वर्ष फ्रास के लिए युद्ध विशेष अच्छा न सिद्ध हुआ। जर्मनी मे फ्रासीसी लोग ओस्ट्राच और स्टॉकाच के आर्चडयूक चार्ल्स द्वारा पराजित कर दिये गये; इटली में ऑस्ट्रियनो और रूसियो ने मिलकर फ्रांसीसियो को पराजित कर दिया। मोरर सुवोरोव द्वारा पराजित हुआ, और इस प्रकार सुवोरोव मिलान और तूरिन मे वीरतापूर्वक प्रवेश पा सका जहाँ जनता ने उसका खूब स्वागत किया। मसैना आर्चडयूक चार्ल्स द्वारा पराजित हुआ, फिर आर्चडयूक ने ज्यूरिख पर अधिकार कर लिया और मानहिम को भी अपने अधीन कर लिया (१८ सितम्बर)। उत्तरी इटली मे ऑस्ट्रिया और रूस की विजय भी ऐसी ही प्रभावशालिनी थी। ऐडिज की विजय (५ अप्रैल) के पश्चात् सुवोरोव के वीरतापूर्ण प्रतिरोध और त्रेबिया के युद्ध (१७ से १६ जून) ने इटली मे

फ्रांस की स्थिति को बहुत दुर्बल बना दिया। गणराज्यों को अपदस्थ कर डाला गया और केवल जेनोआ ही फ्रास के हाथों मे रह गया। रूसी लोग मसैना और ज्यूरिच द्वारा पराजित हुए (२६ सितम्बर) और युद्ध से अलग हो गये। हालैण्ड के विरुद्ध एक आग्ल-रूसी युद्धाभियान कुछ न कर सका और सेनानायक ब्रयून ने फ्रांस के लिए बटावियन (डच) गणराज्य की रक्षा कर ली जैसे मसैना ने हेल्वेटिक गणराज्य (स्विजरलैण्ड) को बचाया था। अल्कमा सम्मेलन (१८ अक्तूबर, १७९९) की शर्तों के अनुसार मित्र राज्यों ने हॉलैण्ड से अपने आपको हटा लिया।

१७९९ के अभियानों का फल यह हुआ कि फ्रांस और स्विजरलैण्ड मे मित्र राज्यों की सेनाएँ पराजित हो गयी परन्तु इटली फ्रांसीसियो के हाथों मे आ गया। मित्र राज्यो के पास क्योकि अपेक्षाकृत अधिक साधन थे फ्रांस की भावी प्रगति का पथ बहुत उज्ज्वल नही था। संचालक मण्डल की निन्दा की जा रही थी और राजकोष सर्वथा रिक्त था। यही वह समय था जब बोनापार्ट ने अपने आपको आकस्मिक विधान विरुद्ध कार्य या ब्रूमेयर (९ नवम्बर १७९९) के द्वारा फ्रांस का स्वामी बना लिया। किसी ने बहुत ठीक कहा था, "फ्रांस अपने क्रामवेल को पाकर समाप्त हो जायगा।" वह युद्ध नही चाहता था; १७९७ में फ्रांस ने जो कुछ अर्जित किया था—हालैण्ड, बेल्जियम और राइन का वाम तट, उस सबको वह संरक्षित करना चाहता था। २५ दिसम्बर १७९९ को जार्ज तृतीय के पास उसने जो पत्र भेजा था उससे स्पष्ट ही यह पता चलता है कि वह इंग्लैण्ड के साथ सन्धि करने को बिलकुल तैयार था। यूरोप यह सब कैसे सहन कर सकता था। युद्ध अनिवार्य था।

१८०० का युद्धाभियान फ्रांस के लिए बडा अनुकूल रहा। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है इटली में फ्रांसीसी हितों को बहुत धक्का लग चुका था। केवल रिवैरा द लेवान्ते तथा कुछ अन्य आल्प्स के दर्रे ही फ्रांस के हाथो मे रह गये थे। बोनापार्ट ने मसैना को सैनिकों का नैतिक स्तर पूर्ववत उत्साहपूर्ण बनाने के लिए इटली भेज दिया। परन्तु वह जेनोआ में ऑस्ट्रियन सेनानायक मिलास के द्वारा घेर लिया गया, जो उस समय ९०,००० बलशाली सैनिकों की विशाल वाहिनी का अधिनायक था। बोनापार्ट जितनी जल्दी कर सका उतनी जल्दी इटली के लिए चल पडा। फ्रांसीसी सेना को इटली में प्रविष्ट होने के लिए तीन मार्गो से होकर जाना था—मुख्य सेना को महान् सेण्ट बर्नाक के दर्रे मे से होकर जाना था; तुर्रो को डोरा रिपारिया के साथ-साथ तूरिन की ओर आगे बढ़ना था। मौन्सी के सेनानायकत्व में राइन की सेना के १४,००० सैनिकों की एक तीसरी सेना को सेण्ट गोथार्ड और सिम्प्लन के दर्रो में से होकर पार करने का आदेश दिया गया था।

सेना को अपने प्रगतिपथ पर काफी कठिनाइयो का सामना करना पड़ा था और जब नेपोलियन को यह समाचार मिला तो वह वायु के वेग की तरह शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ता हुआ बार्डो के दुर्ग पर जा पहुँचा। उसके द्वारा सचालित एक आक्रमण विफल हो गया और जून के आरम्भ मे वह बहुत कठिनाइयों के बाद मिलान मे प्रवेश कर सका। तत्काल ही उसे यह समाचार मिला कि मसैना ने जेनोआ मे आत्मसमर्पण कर दिया है और उसकी सेना महान् सकट में फँस गयी है। बोनापार्ट ने ऑस्ट्रियनों पर पीछे से आक्रमण करने का निश्चय किया। यही वह अवसर था जब उसने अपने जीवन का एक अति महत्त्वशाली वीरकर्म किया था और अतिमानुपिक बल का परिचय दिया था; उसने आल्प्स के ऊपर महान् सेण्ट बर्नार्ड के दर्रे को ४०,००० व्यक्तयों का अधिनायकत्व करते हुए १५ मई को पार किया था। उसने लिखा था, "हम लोग बरफ, पाले, तूफानो और बड़ी-बडी हिम-चट्टानो से टक्कर ले रहे है। अकस्मात् इतने अधिक लोगों को अपने ऊपर से पार होते हुए देखकर आश्चर्यचकित हुए सन्त बर्नार्ड हमारे मार्ग में कुछ बाधाएँ उपस्थित कर रहा है।" उसने अपनी सेनाओ का विभाजन करने में एक महान् भूल की थी। मैरेंगो पर १४ जून १८०० को प्रात: सन्ध्या के समय युद्ध आरम्भ हुआ और पहले-पहल तो ऐसा लगा जैसे कि फ्रासीसी सेनाएँ अब हारना ही चाहती है परन्तु नियति ने पराजय को एक समुज्ज्वल विजय मे परिणत कर डाला। डेज़ेय के अवसर पर पहुँच जाने और उसके आशापूर्ण परामर्श ने बोनापार्ट को ऐसे संकट के समय पर बहुत लाभ पहुँचाया। शान्ति के लिए सन्धि वार्ताएँ आरम्भ हो गयी और जून १८०१ को युद्ध-विराम सन्धि पर हस्ताक्षर हुए; इसके अनुसार ऑस्ट्रियनो ने आंग्लियन तक सम्पूर्ण उत्तरी इटली फ्रांसीसियो के लिए छोड दिया।

दक्षिणी जर्मनी मे मोरों ने आक्रमण कर दिया था। ३ मई, १८०१ को युजेन का युद्ध सेनानायक क्रे ने जीता, परन्तु यह युद्ध कोई निर्णय न कर सका और उसी दिन लकोर्बे ने स्टोकाच में एक फ्रांसीसी विजय का तोरण फहरा दिया। ऑस्ट्रिया के सेनापति ने युद्ध-विराम सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये परन्तु उसका स्थान सम्राट् फ्रांसिस ने ले लिया और सैनिक अध्यक्षता का भार उसके भाई आर्चडच्यूक जॉन को सौप दिया गया, जो उस समय १८ वर्ष का एक युवक मात्र था। ३ दिसम्बर को होहेन्लिण्डन में दोनो सेनाओं ने एक दूसरे को युद्ध में उलझाये रखा और इसमें आस्ट्रियन लोग पूर्णत· पराजित हुए।

आगामी वर्ष की ९ फरवरी को लुनेविल की शान्ति सन्धि पर हस्ताक्षर हुए जिसके द्वारा कैम्पो फॉर्मियो की शान्ति-सन्धि की शर्ते फिर से पक्की हो गयी और ऑस्ट्रिया ने एडिज से लेकर नेप्ल्स तक पूरा इटली खाली कर दिया। सम्राट् को बाध्य किया गया कि वह तुस्सनी प्रदेश पर्मा के बोर्बो ड्यूक को समर्पित कर दे और भविष्य में

इसे एटरूरिया के राज्य के नाम से पुकारे जाने का निश्चय हुआ। इसके अतिरिक्त मिसल्पाईन, लिग्यूरियन, हेल्वेटिक और बटैवियन गणराज्यों को सम्राट् ने मान्यता प्रदान की और उसे बेल्जियम और उत्तरी समुद्र से बेल तक राइन के वाम तट पर फ्रांस का अधिकार मानना पडा।

ऑस्ट्रिया को वेनिस तथा इस्ट्रिया और दाल्मेशिया के साथ-साथ अन्य वेनीशियन प्रदेशों को अपने अधीन रखने की अनुमति दे दी गयी। स्पेन के साथ भी एक सन्धि की गयी जिसके द्वारा लूसियाना फ्रांस को समर्पित कर दिया गया। फ्रांस से यह बाद में संयुक्त अमरीकन राज्य ने खरीद लिया था (१८०३)।

यह सन्धि फ्रांस के लिए बहुत अनुकूल थी। उसकी उपलब्धियाँ अधिक वास्तविक और सारपूर्ण थी। उसे प्रदेश भी मिले और प्रभाव भी पर्याप्त मिला। सर्वसाधारण का स्वर था 'बोनापार्ट जिन्दाबाद' और उसे सबने 'देश के रक्षक एवं पिता' के रूप मे जाना। ऑस्ट्रिया को भी इस शान्ति-सन्धि से कोई हानि नही हुई थी। उसे एक ऐसे संग्राम से मुक्ति मिल गयी थी जो अनेक पुरुषों के प्राणों और सम्पत्ति का विनाशक बन रहा था।

इंग्लैण्ड को अब अकेले ही फ्रांस के साथ युद्ध करना था। वह एक बहुत बड़े आर्थिक संकट में से गुजर रहा था और देश में राज्य-शासन की नीति के प्रति महान् असन्तोष फैला हुआ था। बोनापार्ट ने जार पॉल को अपने पक्ष में मिला लिया था और दोनों ने इंग्लैण्ड के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा बना लिया। जार ने अब सशस्त्र तटस्थता को पुनः लागू कर दिया था, जिसमें रूस, प्रशा, डेन्मार्क और स्वीडन सम्मिलित थे और इसलिए सबसे पहले इन प्रतिरोधी राज्यों के गुट को तोड़ना परम आवश्यक था। इंग्लैण्ड ने मिस्र में एक सशस्त्र सेना भेज दी और नेल्सन की सैनिक अध्यक्षता में उत्तरी समुद्र की ओर एक समुद्री बेड़ा भेज दिया जिसने डेन्मार्क के समुद्री बेडे को विध्वस्त कर डाला और कॉपेनहेगन पर बमों की वर्षा कर दी (२ अप्रैल, १८०१)। पॉल ऐसे व्यक्तियों में से नहीं था जो इस प्रकार के तिरस्कार को चुपचाप सह जाता परन्तु ठीक उस समय जबकि नेल्सन बाल्टिक की ओर बढ़ रहा था, वह अपने प्रासाद में २८ मार्च, १८०१ को मार डाला गया। उसका पद उसके पुत्र अलैक्जैण्डर प्रथम ने सँभाला जो एक भिन्न प्रकार का व्यक्ति था और अपने पिता की नीति पर चलने वाला नही था।

मिस्र में सर राल्फ ऐबर कॉम्बी ने बोनापार्ट की शक्ति अलैक्जैण्ड्रिया मे विनष्ट कर डाली (मार्च, १८०१) और कुछ ही महीनों के बाद फ्रांसीसियो ने मिस्र खाली कर देने का निर्णय कर लिया। जब यह सब कुछ चल ही रहा था बोनापार्ट ने ग्रेट ब्रिटेन के साथ सन्धि-वार्ताएँ आरम्भ कर दीं और २५ मार्च १८०२ को एमीएंस (Amiens) में एक

सन्धि पर हस्ताक्षर हुए जिसमें वह स्वयं एक तरफ था और फ्रास , स्पेन तथा बटावियन गणतन्त्र दूसरी तरफ।

इस सन्धि के अनुसार लंका (सीलोन) और ट्रिनिडाड ग्रेट ब्रिटेन के पास ही रहे और फ्रांस तथा उसके मित्र राज्यों से छीने हुए अन्य उपनिवेश उसने लौटा दिये। नेप्ल्स तथा पोप शासित राज्यों को फ्रांस को छोड देना पड़ा और आइमोनियन द्वीपों को मिलाकर एक गणराज्य बना दिया गया। माल्टा जेरुशलम के सेण्ट जॉन के सैनिक योद्धाओं (नाइट्स) को लौटा दिया गया और उसे महान् शक्तियों के संरक्षण के अधीन तटस्थ एवं स्वतन्त्र रहना था। ब्रिटेन के सैनिक दलों को यह द्वीप तथा इसके आश्रित प्रदेशों को तीन मास की अवधि में खाली कर देना था। टर्की की पूर्णता असन्दिग्ध कर दी गयी। फ्रांस द्वारा निर्मित एक नया संविधान हॉलैण्ड तथा सिसल्पाईन गणराज्य पर बल-पूर्वक लाद दिया गया। ऑस्ट्रिया ने फ्रेंच गणराज्य को मान्यता प्रदान करदी और बेल्जियम तथा राइन के वामतट पर फ्रास की विजय का उसने कोई प्रतिरोध नहीं किया।

ऑमियाँ की शान्ति-सन्धि एक निष्फल और निःसार सन्धि थी। यद्यपि जिसने पिट का प्रधान मन्त्री के रूप मे पद भार सँभाला था उसने कहा था कि विश्व के दो सर्व-प्रथम राष्ट्रों के बीच यह एक वास्तविक समझौता है; परन्तु किसी ने उसकी बात पर विश्वास नही किया था। शान्ति सन्धि इंग्लैण्ड की अपेक्षा फ्रांस के हित मे अधिक लाभकर सिद्ध हुई। व्यापारिक वर्ग इसे एक मूर्ख का सौदा समझते थे और भूमिधर वर्ग भी उतने ही असन्तुष्ट थे। लार्ड ग्रेन्विल ने इसे 'अरक्षित और अपमानजनक' कहा था और सर्वसाधारण का यह विचार था कि बोनापार्ट की महत्त्वाकाक्षाओ को सीमाओं मे रखने के कोई उपाय नहीं किये गये थे। उसमे कुछ गम्भीर भूले भी थी। पुरानी सन्धियाँ पुनः स्थापित नही की गयी थीं और फ्रांस तथा स्पेन पारिवारिक समझौते को पुनः स्थापित करने में स्वतन्त्र थे। इंग्लैण्ड और फ्रांस के बीच के व्यापारिक सम्बन्धों का समुचित निश्चय नहीं हुआ था। फ्रांस के बाजारों और फ्रांस द्वारा नियन्त्रित बाजारों मे ब्रिटेन का माल बिलकुल निषिद्ध था। बोर्बा लोगों तथा ऑरेंज सभा को सन्तुष्ट करने के लिए कुछ भी नहीं किया गया, ये लोग देश से निकाले जा चुके थे। उनके लिए क्षति-पूर्त्ति की कोई व्यवस्था नहीं की गयी। इस शान्ति-सन्धि ने कुछ अत्यधिक महत्त्वशाली प्रश्नो को अनिर्णीत अवस्था में ही छोड़ दिया और बोनापार्ट की महत्त्वाकांक्षा के पहले ही कोड़े मे यह सब कुछ विध्वस्त हो जाने वाला था।

फ्रांस का पुनः संघटन

फ्रांस में पर्याप्त शक्ति अर्जित कर लेने के तत्काल पश्चात् बोनापार्ट ने एक नया

संविधान बनाने का कार्यभार सिये को सौंप दिया, जो उस समय एक मन्त्री था। उसने एक दार्शनिक एवं विचारक के रूप में पर्याप्त सम्मान तथा आदर प्राप्त किया था और सभी वैधानिक प्रश्नों के विषय मे उससे एक दैवी उपदेशक के रूप में परामर्श लिया जाता था। उसने कहा था, "अपरिपक्व प्रजातन्त्र एक वाहियात चीज है. और इसलिए इसे अनिवार्य रूप से संघटित किया जाना चाहिए।" इस मत के आधार पर उसने निम्नलिखित सिद्धान्तों का निर्माण किया; (१) शासित के विश्वास को प्राप्त किये बिना किसी को भी कोई पद-भार नही सँभालना चाहिए, (२) और किसी की भी नियुक्ति किसी पद पर उन लोगों द्वारा नहीं होनी चाहिए जिन्हें उसे शासित करना है। ये सूत्र वाक्य उसकी सुप्रसिद्ध उक्ति मे सम्मिलित कर दिये गये थे 'विश्वास नीचे से आना चाहिए और शासन ऊपर से'। सिये के मूल प्रारूप की प्रमुख रूप-रेखाएँ ६५ धाराओ में प्रतिबद्ध कर दी गयी थीं। उनका विभाजन तीन मुख्य शीर्षको के नीचे किया जा सकता है, वे हैं—निर्वाचन-पद्धति, विधानसभाएं और कार्यकारिणी। सर्वसाधारण को निर्वाचिन के सभी अधिकारों से वंचित रखा गया और यद्यपि सार्वजनिक मताधिकार से मिथ्या सिद्धान्त का उल्लेख किया गया था, केवल 'राष्ट्र' को ऐसे विशिष्ट व्यक्तियो की एक सूची तैयार करने का अधिकार था जिनमे से विधान मण्डलो के सदस्यों और राज्य के पदाधिकारियों को निर्वाचित किया जाता। प्रत्येक व्यापारिक जिले में मतदाता लोग अर्थात् इक्कीस वर्ष की आयु से अधिक के सभी व्यक्ति अपनी संख्या के दशमांश को निर्वाचित करते थे और यह दशमाश ही कम्युनल लिस्ट (या जातीय सूची) कहलाता था; ये लोग प्रत्येक विभाग में अपनी संख्या का दशमांश निर्वाचित करते थे जिन्हें डिपार्टमैण्टल लिस्ट (या विभागीय सूची) कहा जाता था और वे लोग आगे अपना दशमांश निर्वाचित करते थे जिसे नैशनल लिस्ट (या राष्ट्रीय सूची) की संज्ञा दी जाती थी। चार सभाओ का नियम था—सचिव-परिषद (सिनेट), राज्य-परिषद् (काउन्सिल आव् स्टेट), विधान-सभा (लैजिस्लेटिव बॉडी), तथा विमर्शाधिकरण (ट्रिब्यूनेट)। सचिव-परिषद् साठ सदस्यों की बनी हुई एक पुराणपन्थी सस्था थी; योग्यता और अनुभव सम्पन्न पचास व्यक्तियों से निर्मित राज्यपरिषद का कार्य विधेयको का प्रारूप तैयार करना था यद्यपि विधि निर्माण में प्राथमिकता करने का अधिकार राज्य शासन (या गवर्नमेण्ट) को ही था; तीन सौ सदस्यों से निर्मित विधानसभा राज्य परिषद् द्वारा प्रेषित प्रस्तावों को या तो स्वीकार कर सकती थी या अस्वीकृत कर देती थी; विमर्शाधिकरण में एक सौ सदस्य थे और यह केवल अपने पास आये हुए प्रस्तावों पर वाद-विवाद कर सकता था और इन प्रस्तावों पर अपना मत देने का अधिकार इस अधिकरण को नही था। यदि कभी कोई प्रस्ताव जिसे सरकार घातक समझती थी, इनसे पारित हो जाता था तो उसे सचिव-

परिषद् अपने विशेषाधिकार द्वारा अस्वीकृत कर सकती थी। कार्यकारिणी सत्ता कॉन्सलो (विशिष्ट अधिकारियों) को सौंपी गयी थी, एक शान्ति के लिए था और दूसरा युद्ध के लिए। इन कर्मचारियों और अधिकारियों की अनुक्रमिक व्यवस्था का अध्यक्ष एक महान् निर्वाचक (ग्राण्ड इलैक्टर) था, वही कार्यकारिणी के दोनों प्रधानों को नियुक्त करता था और उसे सार्वजनिक कोष में से ५०,००,००० फ्राक का वार्षिक वेतन मिलता था। बोनापार्ट इस योजना से सन्तुष्ट न था। उसने कहा था, "सियें सर्वत्र छायाएँ स्थापित कर देता है; कहीं तो असली वस्तु होनी चाहिए।" उसने सियें से कहा था, 'क्या तुम ऐसे किसी व्यक्ति के विषय में सोच सकते हो जो इतना अधम हो कि जो सूअर की तरह लाखों रुपया कमाकर मोटा हो जाय। क्या तुम कल्पना कर सकते हो एक ऐसा व्यक्ति, जिसे अपने आत्मसम्मान की लेशमात्र चेतना है।'

वह महान् निर्वाचक के अधिकारों पर लगाये गये प्रतिबन्धों को अस्वीकार करता था और उस पदाभिधान को ही वह पसन्द नहीं करता था। उसने यह अभिधान बदलकर इसे प्रथम अधिकारी की संज्ञा (फर्स्ट कौन्सल) दे दी थी।

इस प्रथम अधिकारी को बहुत विस्तृत अधिकार दिये गये। वह राज्य के उच्चतम पदाधिकारियों की नियुक्ति करता था और स्थल सेना, नौसेना, कूटनीतिक कर्मचारियों तथा सामान्य रूप से पूरी कार्यकारिणी पर पूरा-पूरा नियन्त्रण रखता था। वह युद्ध की घोषणा करता था और सन्धियों पर हस्ताक्षर करता था यद्यपि इन पर विधानसभा का अनुमोदन प्राप्त होना भी आवश्यक था। तीन विशिष्ट अधिकारी दस वर्ष के लिए निर्वाचित होते थे और वे लोग पुनः नियुक्ति प्राप्त करने के अधिकारी थे। संविधान पर मत विभाजन हुआ और भारी बहुमत से उसे स्वीकृति मिल गयी। अर्थात् ३०११, १००७ पक्ष में और केवल १५६२ विपक्ष में थे। यह क्रान्ति के सिद्धान्तों के प्रति एक दिखावे का समादर था; वास्तव में तो यह नया शासन एक ऐसी निरकुशता से बढ़कर कुछ भी नहीं था जो सार्वजनिक मत के आधार पर निर्मित हुई थी। बोनापार्ट एक सार्वजनिक मत-ग्रहण-प्रक्रिया (प्लेबेसाईट) का महत्त्व खूब समझता था और उसने यह बुद्धिमानी की चाल अपने निजी लाभ के लिए सफलतापूर्वक चलायी।

संविधान में कुछ अतिगम्भीर दोष थे। यह बड़ी शीघ्रता में बनाया गया था और प्रथम अधिकारी के हाथों में इसने अत्यधिक सत्ता केन्द्रित कर दी थी। विधानसभा इसमें बहुत निर्बल थी, इसे किसी विषय में प्राथमिकता करने का अधिकार नहीं था और विमर्शाधिकरण तथा राज्यपरिषद का इस पर पर्याप्त नियन्त्रण था। विमर्शाधिकरण केवल वाद-विवाद कर सकता था और संशोधनों को सुझाने का इसे कोई अधिकार नहीं था और राज्य-शासन इसके निर्णयों को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं था। विधान-

सभा के रिक्त पदो को पूरित करने के लिए कोई विशिष्ट अधिनियम नहीं वनाया गया था। क्रान्ति के महा-महत्त्वशाली वरदान—प्रकाशन की स्वतन्त्रता, सभा अथवा समिति करने की स्वतन्त्रता, तथा धर्म की स्वतन्त्रता, इन सबका नामोल्लेख तक नही किया गया था। तीनों विशिष्टाधिकारी पूर्णतः उत्तरदायित्वविहीन थे; उनके अधिकारों पर लगाये गये प्रतिबन्ध एक भ्रम मात्र थे। मन्त्रिपरिषद के महान् उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के सम्बन्ध मे एक भी शब्द नहीं कहा गया था। न्यायपालिका के संघटन का सुस्पष्ट निरूपण नही किया गया था और न्याय के कुशल तथा सुनियन्त्रित कार्य-सचालन के लिए किसी विशिष्ट उपाय का प्रयोग नही किया गया था। कुछ व्यक्तियो ने सविधान का विरोध किया था जिनमे नेकर की पुत्री मदाम स्तेल भी थी। उसकी बैठक मे ऐसे पुरुष एकत्र होते थे जो अभी तक विचार-स्वातन्त्र्य के उत्साही समर्थक थे और जो सविधान को एक ऐसी निरंकुशता मानते थे जिस पर झीना-सा आवरण था। बोनापार्ट अपने मत पर दृढ़ था; उसने घोषणा की थी, ये लोग हमे क्रान्ति के उन दुःखद युगो मे लौटा ले जाना चाहते है और उसने यह भी कह दिया था कि राष्ट्र के हाथ उसी के पक्ष मे है।

इस अष्टम वर्ष के संविधान पर मिनें की समालोचना बड़ी महत्त्वपूर्ण है। उसने कहा है—'जीवन राष्ट्र में से अब सरकार मे जा चुका था। संविधान के कुछ विषयों पर मौन भाव ने तथा इससे भी अधिक इसके विधेयात्मक अध्यादेशों ने फ्रांस में एक केन्द्रीभूत निरंकुशता की सुप्रतिष्ठापना कर दी थी।'

फ्रांस में पुनर्निर्माण का कार्य पर्याप्त कठिन एवं दुरूह था। दस वर्षों की अराजकता ने वाणिज्य और उद्योग को अपदस्थ कर दिया था और सारे शासन-प्रबन्ध को तहस-नहस कर डाला था। कृषि सूख गयी थी और कृषक भविष्य के सम्बन्ध मे नितान्त अनिश्चित थे। डाकुओं के दल देश में घूमते फिरते थे और राजमार्गों पर डेरा डाले पड़े रहते थे, इन लोगों ने लोगों के जीवन और सम्पत्ति को सर्वथा अरक्षित बना दिया था। साख (अर्थात् लेन-देन) बहुत निम्न स्तर पर जा चुका था; काग़जी मुद्राएँ मूल्यविहीन हो चुकी थीं और वाणिज्य अब रुक गया था। संचालक मण्डल ने लूट-खसोट से धन एकत्र करने का प्रबन्ध किया था और बोनापार्ट को अपने रिक्त कोष परिपूरित करने के लिए इटली के नगरों पर भारी कर लगाने पडे। राज्य के पदाधिकारियो की बुद्धि और सद्गुणों का दिवाला निकल चुका था। प्रतिभाशाली लोग क्रान्तिकारी नेताओं के अतिचारों से परेशान होकर सार्वजनिक जीवन से सर्वथा अलग हो चुके थे; इन नेताओं की उग्रताओं ने नागरिक जीवन को भारी धक्का पहुँचाया था। अनेक स्थानों पर नगर-शासन (म्युनिसिपल गवर्नमेंट) असमंजस में पड़ा हुआ था और कुछ नगराध्यक्ष (मेयर) तो अपने हस्ताक्षर नहीं बना सकते थे। स्थानीय पदाधिकारी अपनी आय

मे वृद्धि करने के लिए लूट-खसोट और घूस पर उतर आये थे। सशस्त्र सेना और नौ-सेना नितान्त अव्यवस्थित दशा में थी, सैनिक दल अपने वेतनों की कमी पूरी करने के लिए लूट-मार मे व्यस्त हो गये थे; नौसेना तो उपेक्षा के कारण सर्वथा विनष्ट हो गयी थी। राज सेवा (पब्लिक सर्विस) का कोई भी अग कर्मकुशल नही था और अन्याय तथा अत्याचार के अवसर अत्यधिक मात्रा मे बढ गये थे। राजकर एकत्र करना बहुत कठिन हो रहा था क्योंकि कर-संग्राहको को सदा डाकुओं और लुटेरो से अपने प्राणों का भय रहता था। विधान के लिए आदर-सम्मान अब समाप्त हो चुका था। शिक्षा, आरोग्य-व्यवस्था और स्वच्छता की सर्वथा उपेक्षा की जाती थी और चर्च (गिर्जा)[1] इतना अधिक निर्बल हो गया था कि वह अब अपनी शक्ति और अधिकारो का समुचित उपयोग करने में भी समर्थ नही था और न ही यह समाज के जीवन पर कोई महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालने मे ही समर्थ था। पादरियों का एक बहुसंख्यक भाग अभी तक राजद्रोह का पोषक था और राज्यशासन के आदेशों का पालन करने से इन्कार करता था। अधिकांश प्रान्त और जिले विप्लव के लिए उठ खडे हुए थे और पुलिस तथा सशस्त्र सेना शासन प्रतिष्ठापित करने मे पूर्णत. असमर्थ थी। घरेलू युद्ध अत्यधिक व्यापक हो गया था और लूट-मार बिना किसी रोक-टोक के विकास प्राप्त कर रही थी। सार्वजनिक अरक्षा की भावना ने उन लोगो के विचारों को उग्र रूप से आच्छादित कर रखा था जिन्होने चर्च और भगोड़ो की सम्पत्ति को क्रान्ति के दिनो में खरीद लिया था। राजधानी में जैको-बिनो के बीच आर्थिक प्रश्नों पर खूब जोश और उत्साह से वाद-विवाद होता था और समाजवाद का लाल झण्डा शैनै: शैनै: अपना सिर उठा रहा था। व्यापारी मनुष्य इस अभिनव शिक्षा के उपदेश को बहुत निराशापूर्वक सुनता था और शासन की अस्थिरता ने उसके भय एव शका को और भी बढ़ा दिया था।

इस प्रकार के समाज का पुन: संघटन कोई सरल कार्य न था परन्तु बोनापार्ट इसके लिए बहुत योग्य व्यक्ति था। उसने बिलकुल आरम्भ में ही यह बात घोषित कर दी थी कि वह एक आदर्शवादी या सैद्धान्तिक व्यक्ति नही है और उसका सबसे मुख्य उद्देश्य है कि वह क्रान्ति की त्रुटियो और अतिचारो को ठीक कर दे और उसकी विजयो को सुरक्षित रखे। फ्रास की आवश्यकताओ को वह बहुत अच्छी तरह से जानता था और वास्तविकताओं के परिज्ञान ने उसे विश्वास दिला दिया था कि प्राचीन और अर्वाचीन फ्रास को मिला देना परम आवश्यक है। उसने राज्य-शासन के प्रत्येक अग का ज्ञान अर्जित किया था और अपने कार्य-सम्पादन मे उसने बड़ी दुर्लभ एकाग्रता और 'अनिरर्थक

१. गिर्जा ईसाई धर्म में एक बड़ी प्रभावशाली संस्था समझी जाती है।

परिश्रम' की योग्यता का समुचित समावेश किया था। कोई बात उसके ध्यान से छूटती नही थी और न कोई वितण्डावाद उसे उस मार्ग से हटा सकता था जो उसने अपने लिए पर्याप्त विचार-विमर्श के बाद स्वीकार किया था। वह सूक्ष्म या तात्त्विक ढग से मनुष्य के बारे मे नही सोचता था वरन् उसे वह पेरिस के वास्तविक मास और मज्जा से निर्मित समझता था, वह उन अनेक लाखो मानवो के सम्बन्ध मे ही सोचता था जो देश के अन्तःस्थ मे झोपडियाँ बनाकर रहते थे जहाँ हरित क्षेत्र और उद्यान फ्रास के शासक को अभिनव समस्याएँ सुझाते थे। वहाँ किसान थे, निम्न मध्यवर्गीय (वोर्जुआजी) लोग थे, क्रान्तिकाल के सैनिक थे, ऐसे चिन्तक थे जो खूब धन अर्जित कर चुके थे, आदर्शवादी थे जिनके हृदयो मे अभी तक क्रान्तिकारी असन्तोप की अग्निज्वाला निर्धूम भीतर ही भीतर जल रही थी, और राजतन्त्रवादी थे और देशनिष्कासित पादरी थे जो बहुत पहले ही दु:ख मे अपना सब कुछ समाप्त कर बैठे थे और जो अपने देश को लौटने के लिए अत्युत्कण्ठित थे। बोनापार्ट को इन सब के परस्पर विरोधी हितो मे समन्वय उपस्थित करना था और एक कर्मकुशल तथा परमशक्तिशाली राज्य की प्रतिष्ठापना करनी थी। उसने न्यूनतम प्रतिरोध के मार्ग को अपनाने का निश्चय किया। पक्षपातहीनता उसका सबसे प्रधान सिद्धान्त बन गया और शासन प्रबन्ध मे कार्यकुशलता उसकी नीति का परम लक्ष्य बना।

देशनिर्वासित भगोड़ो और पादरियो को देश लौटने की अनुमति दे दी गयी। उनके तथा उनके सम्बन्धियो के नागरिक अधिकारो की पुनः प्राप्ति के लिए एक नया अध्यादेश जारी किया गया, और एक अन्य अध्यादेश के द्वारा वे लोग जो फ्रक्टीडर के दिन बहिष्कृत कर दिये गये थे पुनः उच्च पदो पर नियुक्त कर दिये गये। '८९ के आदमी और अन्य उदारमना लोग जो स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व मे विश्वास करते थे उन्हे लौट आने की अनुमति दे दी गयी। समाचारपत्रो की सख्या ७३ से घटाकर १३ कर दी गयी और यह कार्य अति उग्र दलवादियो को छोड़कर सबने शुभ समझा। राज्यशासन एक ऐसी सुदृढ़ एव सुसंघटित अधिकारी व्यवस्था पर आधारित तानाशाही थी, जिसका प्रत्येक सदस्य केन्द्रीय सत्ता द्वारा मनोनीत होता था। स्थानीय स्वायत्त शासन का अस्तित्व नही रह गया था; स्थानीय प्रशासन केन्द्रीय राज्यशासन द्वारा ही परिचालित होता था। गणराज्य के छः या सात सहस्र कैण्टनो को ३९८ शासन विभागो मे बाँट दिया गया था। प्रत्येक विभाग के ऊपर एक प्रधान (प्रिफैक्ट) रहता था और प्रत्येक शासन-विभाग के ऊपर एक उप प्रधान। कम्यून मे नगराध्यक्ष (मेयर) और उसकी परिपद् की नियुक्ति भी केन्द्रीय राज्यशासन द्वारा ही होती थी। प्रधान और उपप्रधान सभी केन्द्रीय शासन सत्ता के अनुचर मात्र थे और उसके आदेशो का पालन

करते थे। प्रधान की सहायता के लिए एक परिषद् होती थी जिसका मुख्य कर्त्तव्य यह देखना था कि जो कर लगाये जाते है वे समुचित है या नही। अधिकारियों की सुरक्षा के लिए भी उपाय किये गये, एक नियम बनाया गया कि ये लोग साधारण न्यायालयों मे अभियुक्त नहीं ठहराये जा सकते। इस प्रकार एक सुदृढ़ नौकरशाही अस्तित्व में आयी; संयुक्त आशाओं और शंकाओ ने उसे एक कर दिया था और प्रथम अधिकारी (फर्स्ट कौसल) पर यह पूर्णतः आश्रित थी। न्याय का शासन-प्रबन्ध मान्य हुआ; राजनीतिक अपराधियों की जॉच के लिए विशिष्ट न्यायाधिकरणो की स्थापना हुई। शान्ति के न्यायाधीशों की कर्मकुशलता सन्दिग्ध थी। उनके निर्णयों पर बहुधा बोनापार्ट का व्यक्तिगत प्रभाव रहता था। पुलिस का कार्य अत्यधिक बढ़ गया था और जब प्रथम अधिकारी के जीवन पर वार हुआ तो खुफिया विभाग पर्याप्त चौकन्ना हो गया। फूशे ने, जो उस समय पुलिस मन्त्री था, ऐसे सभी व्यक्तियों के घरों की तलाशी और नजरबन्दी का आदेश जारी कर दिया जिन पर शासन-विद्रोह का सन्देह किया जाता था। पुलिस की सर्वदर्शी दृष्टि से कोई भी नही बच सकता था और राजधानी में होने वाला प्रत्येक क्रियाकलाप बोनापार्ट को सूचित कर दिया जाता था। सन्देह और अति-सावधानी की व्यवस्था ने सार्वजनिक जीवन का सम्मान बहुत घटा दिया था और वैयक्तिक चरित्र का नैतिक स्तर बहुत गिरा दिया था। यहाँ तक कि न्याय एव वैधानिक विरोध भी लगभग असम्भव हो गया था और स्वतन्त्र विचारों वाले लोग राज्यशासन की नीति से अपना असन्तोष प्रकट करने के लिए षड्यन्त्रों को अपना साधन बनाने लग गये थे। कुछ राजतन्त्रवादी षड्यन्त्रों की भी रचना हुई जिन्हें पुलिस ने बुरी तरह से कुचल दिया।

बोनापार्ट जानता था कि सभी प्रतिभाशाली लोगों की तरह फ्रांसीसियों में भी यशलिप्सा कम नहीं है और इस अभिलाषा की पूर्ति के लिए उसने आदर-सैन्य (लीजन ऑव आनर) की स्थापना (मई, १८०२) की जो नेपोलियन के युग की अतिलोकप्रिय संस्थाओं में से एक बन गयी थी और जिसका अस्तित्व आज तक अवशिष्ट है। इस सायुध सैन्य मे १६ कोहर्ट[1] होते थे और राज्य द्वारा इसे पर्याप्त व्यय मिलता था। सायुध सैन्य के सदस्यों को जो अवकाशवृत्ति दी जाती थी वह २५० से लेकर ५००० फ्रांक प्रतिवर्ष तक थी। लीजन ऑव आनर (आदर-सैन्य) का सर्वोच्च अधिनायक बोनापार्ट स्वयं था। पहले-पहल इस सैन्य सस्था का कुछ प्रतिरोध हुआ पर उसने कोई परवाह नही की। इसके

१. सशस्त्र सैनिकों का एक संघटित दल तैयार कर दिया। इसमें ३०० से लेकर ६०० तक सैनिक होते थे।

पश्चात् १८०५ मे उसने महान् गरुड़ (ग्राण्ड ईगल) की उपाधि की व्यवस्था की। इन व्यवस्थाओं से बोनापार्ट का उद्देश्य बहुत सुन्दर ढग से पूरा हुआ। आदर-सैन्य ने ऐसे व्यक्तियों का एक दल बना दिया जो उसके परम भक्त हो गये और जैसा कि हॉलैण्ड रोज ने कहा है—एक अभिनव गौलिश शूरवीरता के ये राजयोद्धा अपने प्रधान के प्रति अधिक से अधिक अनुराग दिखलाने के लिए एक दूसरे मे ईर्ष्या करते थे। वित्त के मामले में बोनापार्ट मितव्ययिता का समर्थक था न कि कर-व्यवस्था का; और 'पितृ-सत्ताक व्यवस्था' का पोषक था और वित्त-विशेषज्ञो से उसे डर लगता था। उसने 'बैंक ऑव फ्रास' की संस्थापना की जिसे कागजी मुद्रा जारी करने का अधिकार दिया गया। थोड़े ही समय में बैंक की स्थिति इतनी सुदृढ हो गयी कि सुवर्ण से अधिक कागज की मान्यता हो गयी। किसी ने कहा था, "जबकि नकदी इतनी समृद्ध है, कागज मुद्रा से अवश्य ही श्रेष्ठतर है।"

फ्रांस का पुनः संघटन

बोनापार्ट इस तथ्य से खूब अच्छी तरह परिचित था कि फ्रास की घरेलू समस्याओं मे एक अति महत्त्वशाली समस्या धर्म की है। यह निश्चत रूप से बतला सकना अति-कठिन है कि उसका अपना धार्मिक विश्वास क्या था। अपने आरम्भिक वर्षो में वह ईसाई मत का समर्थक नही था परन्तु बाद मे उसने अपने विचारो मे परिवर्तन किया था। वह ईश्वर के अस्तित्व और आत्मा के अमरत्व मे कदाचित् विश्वास रखता था। उसे एक सत्य धर्म का निर्णय करने मे यथार्थ कठिनाई का अनुभव करना पड़ा था क्योकि सभी धर्म सत्य और शुद्ध होने का दावा करते थे। वह व्याख्याओ की बहुरूपता से बहुत परेशान था और एक अवसर पर उसने राज्यपरिषद् मे कहा था, "स्वर्ग को अनेक मार्ग जाते है, और सुकरात से लेकर क्वेकर लोगों तक सभी भलेमानुष सदा इसमे अपने लिए अलग ही मार्ग बनाते रहे है।" एक राजनीतिज्ञ के रूप मे वह धर्म के मूल्य को खूब पहचानता था। 'धर्म जीवन के लिए टीका (वैक्सिन) है।' "यह मानो मनुष्य की पितृभूमि है और सामाजिक दुराचारो के विरुद्ध अचूक औषधि है।" उसने कहा था, "धर्म का सौन्दर्य उसकी स्मृतियों मे निहित है।" मि बादो के साथ अपने एक वार्तालाप मे चर्च के घंटो की ध्वनि का मनुष्य के मन पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका विश्लेषण करते हुए उसने कहा था—

"सरल, धर्मपरायण लोगों पर यह (ध्वनि) क्या प्रभाव उत्पन्न करती है! क्या उनके दार्शनिक, उनके आदर्श चिन्तक इस का कोई उत्तर दे सकते है? जनता एक धर्म चाहती है। और इसका धर्म अवश्य ही सरकार के हाथों मे होना चाहिए।

आज फासीसी पादरियों का नेतृत्व पचास भगोड़ो और कुछ गिने हुए अंग्रेजी पादरियो के हाथ मे है। उनका प्रभाव अवश्य ही विनष्ट किया जाना चाहिए और इस उद्देश्य के लिए पोप की सत्ता परम आवश्यक है।"

वह इस बात मे सर्वथा सहमत था कि जनता का एक धर्म अवश्य होना चाहिए। एक अवसर पर उसने कहा था, "कोई समाज बिना शुद्ध नैतिकता के जी नही सकता और बिना धर्म के विशुद्ध नैतिकता का अस्तित्व ही सम्भव नही। अतएव धर्म और केवल धर्म ही राज्य के लिए सुदृढ और चिरस्थायी आधार बन सकता है। बिना धर्म का समाज ऐसा ही है जैसा एक कम्पास के बिना कोई जहाज। इस प्रकार का वाहन न तो ठीक मार्ग पर चल ही सकता है और न गन्तव्य स्थान तक पहुँचने की ही आशा कर सकता है।"

वह अपने लिए कौन-सा मत स्वीकार करता ? प्रोटेस्टैण्ट मत को स्वीकार करने का अर्थ था राज्य मे भारी फूट पैदा कर देना और देश को दो युयुत्सु महादलों में बाँट देना। बहुसख्यक जनता कैथोलिक मत की पोषक थी। अत: उसने इसे फ्रांस के राजधर्म के रूप में नही वरन् बहुसख्यक फ्रांसीसी नागरिकों के और विशिष्ट रूप में कौंसलों के धर्म के रूप मे मान्य घोषित कर दिया। पोप के साथ सन्धिवार्ताएँ चलायी गयीं और पोप ने आर्चबिशप स्पीना को बोनापार्ट के साथ मुख्य विषयों पर समझौता करने के लिए भेजा। यह कार्य अति कठन था और सन्धिवार्ताएं समाप्त होना ही चाहती थी कि पोप ने कार्डिनल कन्सालवी को भेज दिया जिसके साथ १ जुलाई, १८०१ को कन्कोर्दा पर हस्ताक्षर हुए।

कैथोलिक मत की पुन: स्थापना की गयी और सार्वजनिक पूजा की अनुमति दे दी गयी। शास्त्रानुसार और वैधानिक दोनो प्रकार के ही बिशपों को अपना-अपना अधिकार क्षेत्र त्याग देना पड़ा और उन सबकी पुर्ननियुक्ति की गयी। बिशपों और आर्चबिशपो का एक नया विभाजन किया गया और प्रथम अधिकारी (कौसल) को उनका नाम-निर्देश करने और मनोनीत करने का अधिकार दिया गया। पादरियो के वेतन राज्य द्वारा दिये जाने की व्यवस्था की गयी। जिन्होंने क्रान्तिकाल में चर्च भूमि खरीदी थी उनको उनकी सम्पत्ति की सुरक्षा का विश्वास दिलाया गया और इस प्रकार कृषक-समाज सन्तुष्ट हो गया। कन्कोर्दा को 'मार्मिक धाराओं' (आर्गेनिक आर्टिकल्स) से और भी अधिक परिवर्धित कर दिया गया। इससे चर्च की अपेक्षा राज्य की श्रेष्ठता प्रतिष्ठापित हो गयी। यह नियम बना दिया गया कि पोप की कोई आज्ञा, संक्षिप्त आदेश अथवा प्रदूतावास रोम से फ्रांस मे बिना राज्यशासन की अनुमति के प्रवेश नहीं कर सकता था। समग्र फ्रांस का एक ही उपासना मार्ग था और एक ही शंकासमाधानात्मक शिक्षा-विधि

थी और कैल्विनिज्म तथा लूथरवाद जैसे अन्य धर्मों के क्रियाकलापों का सुनियमन भी अन्ततः इन्ही 'मार्मिक धाराओं' द्वारा होना था। इन सब कार्यवाहियों से पोप सहमत न हो सका और अन्त मे पोप तथा प्रथम शासक मे एक प्रकार की कलह नितान्त अनिवार्य हो गयी। राज्यपरिषद् ने कन्कोर्दा का स्वागत नहीं किया परन्तु विमर्शाधिकरण तथा विधानसभा ने इसका सोत्साह स्वागत किया। इसका अन्तिम निश्चयीकरण अप्रैल, १८०२ मे हुआ इसके बाद नोत्रदाम के चर्च मे एक सर्विस हुई जिसमे गिरजा के कार्डिनल कप्ररा ने उपासना-कार्य का नेतृत्व किया। प्रथम शासक उस शुभ अवसर पर उपस्थित था और सम्पूर्ण कार्यक्रम पादरी की उसके प्रति श्रद्धाजलि के साथ समाप्त हुआ। जब उसने सेनानायक डेल्मा को पूछा कि वह इस सब क्रियाकलाप के सम्बन्ध मे क्या सोचता है तो सेनानायक ने उत्तर दिया था, "यह मठजीवन का एक मनोरम दृश्य है, इसमे जो अभाव था वह था उन लाखो पुरुषों की अनुपस्थिति का जो उन के बहिष्कार करने के लिए मर गये जिनकी तुम अब पुनःप्रतिष्ठा कर रहे हो।"

बोनापार्ट के लिए कन्कोर्दा अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ उसे चर्च का समर्थन मिल गया और उसने धर्म की शक्तियो को अपने उद्देश्यों की पूर्ति मे सहायक बनाया। क्रान्तिकाल के महोत्सवों से उत्तेजित कैथोलिक अन्तरात्मा प्रकृतिस्थ हो गयी थी। जनता उल्लसित थी और "अपने ईश्वर तथा गिरजाघरो को पुनः पाकर उन हाथों को आशीर्वाद दे रही थी जिन्होंने फ्रांस में शान्ति की प्रतिष्ठापना कर दी थी और जिन्होंने सर्वशक्तिमान ईश्वर का फ्रांस के साथ समझौता करा देने में समुचित सफलता प्राप्त की थी।" कुछ लेखको का कहना है कि बोनापार्ट केवल स्वार्थपरता की नीति से ही परिचालित होता था। यह सत्य नहीं है। उसने मानव-समुदाय के जीवन में धर्म के महत्त्व को समझा था और धर्म में विश्वास की पुनः प्रतिष्ठा करके उसने व्यक्तिगत और सार्वजनिक सदाचार की नीव को सुदृढ कर दिया।

तथापि कन्कोर्दा ने भविष्य मे कुछ दुर्भाग्यपूर्ण परिणामो को जन्म दिया। चर्च और राज्य की एकता ने उन्नीसवी शताब्दी के राजनीतिज्ञ के लिए एक गम्भीर समस्या उपस्थित कर दी। बोनापार्ट और चर्च-अधिकारियों मे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने मे भी इसे सफलता न मिल सकी। उनमें कुछ कलह हो गयी और वह गम्भीर समस्याओं में परिवर्तित हो गयी।

चर्च के साथ अपने सम्बन्धो को अच्छे बना लेने के बाद बोनापार्ट शिक्षा के संघटन की ओर अभिमुख हुआ। लिसी मे उसने उच्चतर माध्यमिक शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया और वहाँ से युवक समुदाय फ्रास के विश्वविद्यालय मे चले आते थे। बोनापार्ट का विचार था कि अध्यापको द्वारा शिक्षा अवश्य ही कुछ सुप्रतिष्ठित सिद्धान्तों के

अनुकूल होनी चाहिए। उसने कुछ सुप्रतिष्ठित सिद्धान्तो की परीक्षा की। उसने पाठ्यक्रम की स्वय समीक्षा की और अध्ययनार्थ विषयो का निर्वाचन किया। राजनीतिक और नैतिक विज्ञानो को भयकर समझा गया और इतिहास पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया क्योकि यह व्यक्तियो को साम्राज्यो का उत्थान एव पतन सिखाती है। गणित को मन और बुद्धि के स्वस्थ अनुशासन के लिए आवश्यक बतलाया गया, और भौतिक विज्ञानो को परिश्रमपूर्वक हृदयगम करने का सुझाव दिया गया। बाद मे (१८०८) फ्रास के विश्वविद्यालय की भी स्थापना हुई। कोई भी विश्वविद्यालय का स्नातक हुए बिना विद्यालय (स्कूल) नही खोल सकता था, न ही अध्यापक बन सकता था। परन्तु बोनापार्ट के शिक्षा-सम्बन्धी कार्य कलापो का क्षेत्र केवल उच्चतर वर्गो मे ही सीमित था। प्राथमिक शिक्षा की उपेक्षा की गयी और दीर्घ समय तक इसकी यही दशा रही।

शासकमण्डल की सबसे बडी सफलता बोनापार्ट की अधिनियम-सहिता (कोड) है; यह एक ही कार्य उसे इतिहास के श्रेष्ठतम व्यक्तियो की पक्ति मे बिठा देता है। फ्रांस के अधिनियम अभी तक एक भ्रान्त एव व्यस्त दशा मे पड़े थे। क्रान्ति ने विशुद्ध विधि-निर्माण के सिद्धान्तो की पूर्ण उपेक्षा की थी और जो अधिनियम पारित हुए थे वे सामयिक प्रवृत्तियो और अल्पकालीन कल्पनाओ की अभिव्यक्ति मात्र थे। इन अधिनियमो को परस्पर समन्वित करके एक पूर्ण अवयवी मे बाँध देना परम आवश्यक था और उनको सरल, सुस्पष्ट तथा सर्वजनसुबोध बना देना भी आवश्यक था। बोनापार्ट ने त्राशे की अध्यक्षता मे एक आयोग (कमीशन) नियुक्त किया जिसे फ्रास के अधिनियमो का सम्पादन करना था। इसकी अनेक बैठके हुई और बोनापार्ट ने उनमे से अधिकाश मे उपस्थित होकर सक्रिय भाग लिया। यद्यपि वह स्वय एक विधिवेत्ता नही था, उसने वाद-विवाद मे पर्याप्त सहयोग दिया और साधारण सिद्धान्तों की रचना की जो अधिनियमो की रचना मे सहायक बनने वाले थे। इन अधिनियमो का प्रधान उद्देश्य, उसी के अनुसार, फ्रास की जनता की सुख-समृद्धि और प्रगति थी। सार्वजनिक अधिनियम-सूची का निर्माण हुआ और इसका स्वरूप क्रान्ति के जनतान्त्रिक विचारो तथा राजतन्त्र के विधान-शास्त्र का एक समन्वय था। स्त्री को एक छोटी श्रेणी का जीव माना गया था। उसे एक साक्षी अथवा अभिभावक के रूप मे कार्य करने का अधिकार नही था और न वह किसी परिवार-परिषद् की सदस्य बन सकती थी। सम्पत्ति के स्वामित्व से सम्बन्धित उसके कई अधिकाराभाव थे और अपनी सम्पत्ति को गिरवी रखने अथवा बेचने का उसे सर्वथा अधिकार नहा था। परिवार मे अनुशासन रखने के लिए पिता के अधिकारो का पुनः उदय हुआ; राजमुद्रित आदेशो

का पुनः प्रचलन हो गया और कोई भी पिता अपने पुत्रो को बन्दी करा देने के लिए मजिस्ट्रेट से माँग कर सकता था। पुत्र और पुत्रियाँ क्रमशः २१ और १६ वर्षो की आयु से कम होने पर अपने माता-पिता की सहमति के बिना विवाह नही कर सकते थे। गोद लेने के अधिनियम मे परिवर्तन कर दिया गया था। इसको अनेक प्रकार के प्रतिबन्धो से घेर दिया गया था। गोद लेने वाला व्यक्ति अवश्य ही निःसन्तान होना चाहिए और उसकी आयु पचास वर्ष से अधिक होनी चाहिए और गोद लिये गये व्यक्ति को अपने राष्ट्रीय परिवार से सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद करना आवश्यक था। एक नाबालिग गोद नहीं लिया जा सकता था। ज्येष्ठापत्याधिकार की पुन.प्रतिष्ठापना हो गयी थी और नैसर्गिक तथा वैध बालको के भेद को मान्यता दी गयी थी। नेपोलियन कहता था कि नाजायज बालको को मान्यता देने मे समाज को क्या लाभ है। क्रान्तिकाल में जो तलाक अधिनियम पास किया गया था और जिसने कैथोलिक पादरियो को भय-भीत कर दिया था उसमे भी पर्याप्त सुधार कर दिये गये। बोनापार्ट ने तलाक की आवश्यकता को समझा था परन्तु वह इसे इतना सहज नही बना देना चाहता था। उसने कहा था, "तलाक को विमुक्त कर देना तो भ्रान्तिमूलक एकरसता को प्रोत्साहित करना है और ग्रामीण पादरी (क्योरे) को विधान से ऊँचा स्थान देना है।" वह न्यायिक विच्छेद के पक्ष मे नही था और न क्रान्ति की तरह प्रकृति-वैपम्य के कारण वह तलाक को स्वीकृति देना चाहता था। तलाक के कारण केवल चार रह गये थे—व्यभिचार, क्रूरता, अपमानजनक दण्ड तथा पारस्परिक सहमति। यदि दस वर्ष तक विवाहित जीवन सुचारु रूप मे चलता रहा है तो उसे भंग नही किया जा सकता था। कोई व्यक्ति दो बार तलाक नही दे सकता था और तलाक दिया हुआ व्यक्ति पाँच वर्ष के अन्दर पुनः विवाह नही कर सकता था। तलाक से सम्बन्धित सभी मामले एक परिवार-परिषद् के समक्ष उपस्थित करने पड़ते थे जिसका सभापतित्व एक न्यायाधीश (मैजिस्ट्रेट) करता था, इसमे दोनो पक्षो के सम्बन्धीजन उपस्थित होते थे। अन्तिम वसीयतनामा भी संशोधित किया गया और सन्तान की सख्या के अनुसार विचारणीय भाग का निश्चय हुआ। सार्वजनिक विधि सहिता (सिविल कोड) ने फ्रांस का अत्यन्त कल्याण किया। वैधानिक नियम सबके लिए सुस्पष्ट और सुबोध हो गये और देश की एकता बनाये रखने मे बड़े सहायक सिद्ध हुए। क्रान्ति की अतिमहत्त्वपूर्ण उप-लब्धियाँ—सार्वजनिक समानता, धार्मिक सहिष्णुता, भूसम्पत्ति की स्वाधीनता, सार्व-जनिक न्याय जाँच और ज्यूरी (समिति) द्वारा न्यायकार्य, ये सब सुरक्षित रखी गयी। दण्ड-विधान (क्रिमिनल कोड) अधिक कठोर बना दिया गया। इस पर बोनापार्ट की निरकुशलता की गहरी छाप लगी थी। सर्वस्वापहरण, तपे लोहे से दागना और

फाँसी, इन भयानक दण्डों की पुनः प्रतिष्ठापना की गयी और चोरी, डाके तथा झूठी गवाही जैसे अपराधों के लिए मृत्युदण्ड की योजना की गयी। राजनीतिक अपराधियों को आजीवन देशनिर्वासन का आदेश दे दिया जाता था। विदेश में इन अधिनियम-सूचियों ने बड़ा महत्त्वशाली प्रभाव डाला। आॅस्ट्रिया, प्रशा, जर्मनी और इटली की जनता के लिए इन्होंने आशा का सन्देश और चिरकालीन कुरीतियों से मुक्ति दिला दी। वास्तव में ये यूरोप के समग्र सार्वजनिक विधान का आधार बन गये।

इन अधिनियम-सूचियों का सबसे बड़ा गुण इन का क्रान्ति के देदीप्यमान सिद्धान्तों को पुरातन व्यवस्था के प्रयोगों और अभ्यासों के साथ सुचारुतया समन्वित करने का प्रयास था। बोनापार्ट की सत्ता अब फ्रांस में पूर्णतः प्रतिष्ठापित हो गयी थी। अगस्त, १८०२ में उसे आजीवन शासक बना दिया गया और भारी बहुमत से एक नया सविधान स्वीकार कर लिया गया। राजतन्त्रवादियों ने उसकी सत्ता का विनाश करने के लिए षड्यन्त्रों की रचना की, उनका नेता सोलहवें लुई का भाई आर्तुआ का क्राउण्ट था। षड्यन्त्रकारियों में प्रमुख जार्ज कैडाउडल और पिशेग्रू थे, दोनों ही बन्दी हो गये थे। कैडाउडल और उसके सहायकों को गोली मार दी गयी और पिशेग्रू को कारागृह में ही मार डाला गया। षड्यन्त्रकारियों के सहवास में होने के सन्देह में अगियाँ का ड्यूक और कौन्दे का राजकुमार जो कि बूर्बो वश की एक शाखा का सदस्य था २० मार्च, १८०४ को एक विशिष्ट सैनिक न्यायाधिकरण के द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया। भाग्यहीन ड्यूक ने अपना अज्ञान जताया पर सब व्यर्थ हुआ। राजकुमार के अपराध के विषय में विविध लेखकों ने परस्पर विरोधी विचार प्रकट किये हैं। यह मानने के लिए कुछ प्रमाण अवश्य है कि उसने इंग्लैण्ड से धन लिया था और उसके साथ फ्रासीसी राष्ट्र का उन्मूलन करने के लिए षड्यन्त्र रच रहा था। इस हत्या ने यूरोप में भयाकुलता की भावना का सचार कर दिया था, परन्तु जहाँ तक बोनापार्ट का सम्बन्ध है इस वध का प्रभाव उसके पक्ष में अच्छा ही हुआ। इसके बाद उसके जीवन पर किसी ने वार करने का प्रयत्न नही किया।

बोनापार्ट पहले ही आजीवन शासक बनाया जा चुका था। अब अगला कदम सम्राट् की उपाधि प्राप्त करना ही था। दिसम्बर, १८०४ को उसका फ्रांस के सम्राट के रूप में अभिषेक कर दिया गया। पोप सातवाँ पायस इस महोत्सव को सम्पन्न करने के लिए फ्रांस आया, परन्तु ठीक अवसर पर बोनापार्ट ने यह योजना बनायी कि स्वीडन के चार्ल्स बारहवें की तरह राजमुकुट वह अपने सिर पर रखे। पोप को उसने धीरे से हटा दिया और राजमुकुट अपने हाथ से अपने सिर पर लख लिया। पोप के इस अपमान से उसकी निन्दा हुई। यूरोप क्षुब्ध हुआ परन्तु उसने कुछ परवाह न की।

उसके हृदयगत भावों का वर्णन करने की अपेक्षा कल्पना ही की जा सकती है। कहा जाता है कि उसने अपने भाई के कानों मे धीरे से कहा था, "जोजेफ, यदि कहीं हमारे पिता जी हमें देख पाते!" जोजेफीन, जिसका धर्मसम्मत विवाह उसके साथ कुछ ही समय पहले सम्पन्न हुआ था, साम्राज्ञी के रूप मे अभिषिक्त हुई और अब से उसे इसी अभिधान मे स्मरण किया जाता रहा है। सेनानायक बोनापार्ट अब नेपोलियन प्रथम बन गया था।

नेपोलियन फ्रांसीसियों का सम्राट् हो गया और अब उसे राजसी ठाट-बाट की इच्छा हुई। वह स्वयं तो सादगी से रहता था परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इसे वह फ्रांस की जनता के लिए उपयोगी समझता था। उसके चारों तरफ एक दरबार बन गया। पुराने राजवंशों के दरबारी नये लोगों को जो नेपोलियन के साथ आये और जो बढिया फर्शों पर चलना भी नही जानते थे तौर, तरीका सिखाने के लिए नियुक्त किये गये। नेपोलियन फ्रांसीसियों के चरित्र को खूब समझता था। उसने शान-शौकत की परवाह नही की परन्तु अपने पराक्रमों से उसने फ्रांसीसियों के अहंकार को सन्तुष्ट कर दिया था। उसने अच्छा शासन स्थापित किया। उनकी धार्मिक प्रवृत्तियों को सम्मान की दृष्टि से देखता और उसने समानता की रक्षा की जो क्रान्ति से उन्हें मिली थी। राजतन्त्र के युग के फ्रांस निवासी उन सामान्य स्थिति मे स्त्री-पुरुषों का मजाक उड़ाते थे जो नेपोलियन के साथ राज दरबार मे आये।

यह प्रश्न हो सकता है कि यह सब कैसे हुआ। फ्रांसीसी जिन्होने एक महान् क्रान्ति देखी थी कैसे नेपोलियन के अधीन हो गये। इसका उत्तर सरल है। वे अशान्ति से तंग आ गये थे। नयी योजनाएँ बहुत सी चलायी गयी थीं जिनसे जनता को बहुत कष्ट हुआ। शासकों की योग्यता में उनका विश्वास नही रहा। उन्हे ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब केवल नेपोलियन ही ऐसा है जो स्थायी शासन और देश में शान्ति स्थापित कर सकता है। चुनाव, आन्दोलन, दलों के झगड़े—इनसे लोग तंग आ गये थे। उन्होंने यह अनुमान कर लिया था कि सामन्तवाद सदा के लिए विदा हो गया, अमीरों के विशेषाधिकार भी चले गये। अब उनकी आशाएँ नेपोलियन में केन्द्रित थीं। उसके व्यक्तित्व का भी अच्छा प्रभाव पडता था। आज तक किसी सेनाध्यक्ष ने फ्रास के लिए इतना यश नही अर्जित किया था।

नेपोलियन के व्यक्तित्व के बारे मे टालेंड रोज लिखता है :—

उसके अन्दर एक अद्भुत शक्ति का प्रकाश था। उसका वर्णन नही किया जा सकता। उसके सेनानी और सैनिक दोनों पर उसका जादू था। शासकीय अधिकारी जो इस युवा योद्धा को अपने नियन्त्रण मे लेना चाहते थे स्वयं उसके वश में हो जाते थे

और इस प्रकार अधीन होने का कारण वे नहीं बता सकते थे।[1]

अब, जबकि वह सम्राट् बन गया था उसने इटली के संविधान में संशोधन करना आवश्यक समझा। २६ मई, १८०५ को इटली के राजा के रूप में उसका अभिषेक कर दिया गया।

युद्ध की पुनरावृत्ति—तृतीय संयुक्त मोर्चा (१८०५-६)

आमियाँ की शान्तिसन्धि के तत्काल पश्चात् ग्रेट ब्रिटेन और फ्रास के पारस्परिक सम्बन्धों में एक खिचाव-सा आ गया। इंग्लैण्ड की जनता शान्ति सन्धि से सन्तुष्ट नही थी क्योंकि फ्रास के साथ व्यापारिक सन्धि की कोई आशा नही थी और वे लोग युद्ध को शान्ति से श्रेष्ठतर समझते थे क्योंकि शान्ति से उन्हे किसी प्रकार का लाभ नही था। फ्रांस गणराज्य की औपनिवेशिक नीति ने इंग्लैण्ड को चिन्ता मे डाल दिया था। फ्रास को लूसियाना की पुनः प्राप्ति, उसका सैन डोमिगो का अभियान और हॉलैण्ड पर उसके अधिकार ने इंग्लैण्ड की शकाओ को खूब बढ़ा दिया था। माल्टा अभी तक ब्रिटिश हाथो मे था और यद्यपि आमियाँ मे इसके परित्याग का निर्णय लिया जा चुका था। यूरोप मे वोनापार्ट के आक्रमणो के विरुद्ध इंग्लैण्ड ने आवाज उठायी। पीडमट पहले ही फ्रास मे मिलाया जा चुका था और वह १८०२ मे इटली के गणराज्य का अध्यक्ष (राष्ट्रपति) बनाया जा चुका था और १९ फरवरी, १८०३ को पारित मध्यस्थता-अधिनियम (ऐक्ट ऑव मिडिएशन) के द्वारा उसने स्विजरलैण्ड की स्थिति तो एक उपराष्ट्र की बना दी थी। बटावियन गणराज्य का सविधान उसकी सुविधा को ध्यान मे रखते हुए संशोधित कर दिया गया था और लाइग्यूरियन गणराज्य तो एक प्रकार से फ्रांस मे ही मिला लिया गया था। उसने स्पेन के साथ एक मित्रता की सन्धि कर ली थी जिससे पुर्तगाल को आक्रमण का भय हो गया। जर्मनी मे उसने १८०३ मे साम्राजी अवकाश (इम्पीरियल रीसेस) मनाया और बेडन, बवेरिया, वर्टम्बर्ग और सैक्सनी जैसे छोटे राज्यो को उसने साम्राज्य की परवाह न करते हुए प्रोत्साहन दिया। निर्वाचकों की संख्या बढाकर दस कर दी गयी जिनमे से छः प्रोटैस्टैण्ट होते थे और यह निश्चय ही इस बात का कारण बनने वाला था कि ऑस्ट्रिया के कैथोलिक घराने से साम्राज्य छीन लिया जाय। इंग्लैण्ड के विरुद्ध नेपोलियन की अपनी ही शिकायते थी। अंग्रेजी समाचार पत्रों ने उस पर दोपारोपण और आक्षेप लगाये और राजतन्त्रवादियों ने अपनी पितृभूमि के विरुद्ध षड्यन्त्रो को उत्तेजित करने मे सहयोग दिया। काबेट ने 'कोरियेर

१. टालेंड रोज : नेपोलियन का जीवन चरित्र (अंग्रेजी)

फ्रॉ' के दे लॉन्द्रे' में फ्रांस के विरुद्ध लोकमत संग्रह करने के लिए अनेक लेख प्रकाशित किये थे। फ्रासीसी राज्य शासन के मुख पत्र 'मॉनित्योर' ने प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से अंग्रेजी शासन पर बडे कटु आक्षेप लगाये और उस पर सब प्रकार के नीचतापूर्ण कार्यों को करने का आरोप लगाया। बोनापार्ट ने ब्रिगेडियर सेबास्तियानी को टर्की और मिस्र में यह पता लगाने के लिए भेज दिया कि सन्धि की शर्तों के अनुसार इग्लैण्ड ने मिस्र को खाली कर दिया है या नही और उसे यह भी पता लगाने के लिए कहा गया कि उन देशों की पुनर्विजय इन परिस्थितियो मे सम्भव है या नही। ब्रिगेडियर ने पता लगाकर जो विवरण प्रस्तुत किया वह बडा अनुकूल था और बोनापार्ट ने बिना कुछ सोचे-समझे उसे 'मॉनीत्योर' मे प्रकाशित कर दिया। इसने इंग्लैण्ड को समुत्तेजित कर दिया और प्रधान मन्त्री ने फ्रासीसी राजदूत को सूचित किया कि तत्कालीन परिस्थितियो मे माल्टा को खाली करना असम्भव है। इग्लैण्ड के राजदूत लॉर्ड ह्विटवर्थ के साथ बोनापार्ट की बडी उत्तेजनापूर्ण भेंट हुई। अंग्रेजी राजदूत ने शिकायत की थी कि बोनापार्ट यूरोप के एक महान् राज्य के अध्यक्ष की अपेक्षा उत्कट घुडसवारो के नायक की तरह बातचीत करता था। इस सबका जो कुछ परिणाम हुआ वह बडा भीषण था। ताले राँ ने लन्दन दूतावास मे स्थित फ्रासीसी पूर्णसत्तायुक्त राजदूत से कहा कि वह इग्लैण्ड मे माँग करे कि वे माल्टा को छोड दें, जार्ज कैडाउडल और उसके जगली सहयोगियो को बाहर निकाल दिया जाय, लन्दन के विरोधी फ्रांसीसी समाचारपत्रो का विनाश किया जाय और फ्रास तथा प्रथम शासक के सम्बन्ध में ऐसे रोषपूर्ण आक्रमणकारी लेखों का प्रकाशन रोका जाय जो सार्वजनिक शिष्टाचार, सभ्य राष्ट्रो के अधिकारो और शान्तिपूर्ण परिस्थितियों के लिए बहुत अहितकर है। हॉक्सबरी ने उत्तर दिया था कि यूरोप मे फ्रास के विनाशकारी आक्रमणों को ध्यान में रखते हुए इन उपर्युक्त मॉगो को किसी भी दशा में पूरा नही किया जा सकता। इग्लैण्ड पहले से ही युद्ध की तैयारियॉ कर रहा था। राजा ने एक नयी सशस्त्र सेना बनाने के लिए आवश्यक सामग्री एकत्र करने के पक्ष में स्वीकृति देने के लिए विधान सभा (पार्लियामेण्ट) से कहा। जब ह्विटवर्थ किसी विशिष्ट वार्ता के सिलसिले मे बोनापार्ट से मिला तो बोनापार्ट ने कहा था, "तो आपने युद्ध करने का निश्चय कर लिया है। पन्द्रह वर्ष तक हम लोग एक-दूसरे के साथ युद्ध करते रहे है, आप लोग युद्ध को अन्य पन्द्रह वर्षो के लिए बढा देना चाहते है और मुझे भी वैसा ही करने के लिए बाध्य कर रहे है।" राजदूत ने उसे शान्त करने का प्रयास किया परन्तु उसने उत्तर दिया, 'माल्टा या युद्ध' और कहा, 'अंग्रेज लोग युद्ध चाहते हैं, परन्तु यदि वे तलवार को म्यान से निकालने वाले पहले व्यक्ति है, तो मैं उसे म्यान में डालने वाला अन्तिम व्यक्ति होऊँगा। वे राज-सन्धियों का आदर नही करते।

भविष्य में ये सन्धियाँ निश्चय ही क्रेप[1] से बाँधी जायँगी।' वह यह कहता हुआ कक्ष से बाहर निकला, 'माल्टा या युद्ध'। ह्विटवर्थ ने ५ अप्रैल को ताले राँ के पास अपनी अन्तिम सूचना (अल्टीमेटम) भेजी जिसमे निम्नांकित माँगे पेश की गयी थी—

१. ब्रिटिश साम्राज्य अभी दस वर्ष तक माल्टा को अपने अधिकार में रखे।

२. माल्टा के समीपस्थित लाम्पेदूसा का द्वीप भी उसी की अखण्डता को ध्यान मे रखते हुए उन्हें दे दिया जाय।

३. फ्रांसीसी सैनिक दल हॉलैण्ड और स्विजरलैण्ड खाली कर दें।

फ्रास ने इन शर्तों को मानने से इन्कार कर दिया और इस प्रकार युद्ध सर्वथा अनिवार्य हो गया। बोनापार्ट ने इस कलह को रोकने का एक अन्तिम प्रयास भी किया किन्तु ह्विटवर्थ पर कोई प्रभाव नही हुआ। अनेक लोगों ने सोचा कि उसे युद्ध बाध्य होकर करना पडा था और कुछ राजतन्त्रवादियो ने तो यहाँ तक लिखा कि उसने बहुत बडी अनिच्छा से शान्ति भंग की थी। एक आधुनिक जर्मन लेखक इस शान्ति-भग के विषय में इस प्रकार से टीका करता है :

"परन्तु ये सब माल्टा और हालैण्ड, स्विजरलैण्ड और सार्दीनिया, कलह के इन कारणो को चाहे आप किसी भी नाम से क्यो न स्मरण करे, किसी भी प्रकार मे फ्रास और इंग्लैण्ड के पारस्परिक युद्ध के कारण नही थे। ये सभी विचार यूरोप मे एकमत विजय के सामने घुटने टेक देते थे।"[2]

इंग्लैण्ड मे इस शान्ति-भंग का खूब स्वागत हुआ क्योकि यह विश्वास किया जाता था कि युद्ध बोनापार्ट की सुप्रतिष्ठा और सत्ता का विनाश कर देगा, यद्यपि पिट फ्रांसीसी आक्रमणो को पसन्द नही करता था। फॉक्स इन आक्रमणों-प्रत्याक्रमणों का प्रधान कारण ईर्ष्या को समझता था। तथापि वस्तुस्थिति यह थी कि वेस्ट मिनिस्टर मे पर्याप्त मान्य मत यह था कि ग्रेट ब्रिटेन के लिए शान्ति एक अधिकतम व्यय-साध्य युद्ध से भी 'अधिक भयकर' है। सच बात तो यह थी कि बोनापार्ट इंग्लैण्ड के सन्धि की शर्तों को पूरा करने के इन्कार से बहुत क्रुद्ध हो गया था और इंग्लैण्ड फ्रास के अभ्युदय से पर्याप्त शंकित हो गया था।

१८ मई १८०३ को इंग्लैण्ड ने युद्ध की घोषणा कर दी।

इंग्लैण्ड ने सबसे पहले उपनिवेशों पर आक्रमण किया; उसने १८०३ मे ही तोबागो, सेण्ट लूसिया और गिआना पर अधिकार कर लिया। बोनापार्ट ने मई १८०३

१. मातम में प्रयोग लाये जाने वाले काले फीते को 'क्रेप' कहते है।
२. कर्शीज़न : नेपोलियन, पृ० २८३

में हैनोवर में एक फ्रांसीसी सशस्त्र सेना भेजी जिसने जाकर उस प्रान्त पर अधिकार जमा लिया। नेप्लस भी जीत लिया गया। ये सब वेजल की सन्धि की शर्तों का स्पष्ट उल्लंघन था। इस सन्धि के अनुसार उत्तरी जर्मन राज्यो की तटस्थता मान्य की जा चुकी थी। यदि उस समय फ्रेड्रिक विलियम द्वितीय जीवित होता तो कदाचित् परिस्थितियाँ बिलकुल भिन्न हो जाती। परन्तु उसका उत्तराधिकारी विलियम तृतीय प्रशा की तटस्थता मे पूर्ण विश्वास करता था और उसने इस बात का कोई विरोध नही किया। उसका मन्त्री हागविज भी उसी के विचारो का समर्थक था। इग्लैण्ड के जहाजो के लिए ऐल्ब और वेसर मे प्रवेश करना निषिद्ध था परन्तु उत्तरी जर्मनी के लिए यह भी कोई महत्त्व का विषय नहीं था। ऑस्ट्रिया और रूस भी फ्रास की इन नयी चालो से सावधान हो गये थे। ये चालें थी सम्राट् की उपाधि की स्वीकृति (दिसम्बर, १८०४), और इटली के राजमुकुट की प्राप्ति (मई, १८०५) और आगियाँ के ड्यूक का वध। एडिगटन मन्त्रिमण्डल इस शान्ति-भग को देखने के लिए न रहा और मई, १८०४ मे पिट ने शासन-कार्य सँभाला। उसने जार के साथ एक सन्धि की वार्ता चलायी और ग्यारह अप्रैल को सेण्ट पीटर्सबर्ग के समझौते पर हस्ताक्षर हुए। इस प्रकार १८०५ में तृतीय सयुक्त मोर्चे का निर्माण हुआ। इसके सदस्य थे इग्लैण्ड, रूस, ऑस्ट्रिया तथा स्वीडन। प्रशा अलग ही रहा परन्तु ववेरिया, वेडन और वर्टम्वर्ग ने फ्रास का साथ दिया। संयुक्त मोर्चे का उद्देश्य था (१) यूरोप मे शान्ति, स्वतन्त्रता और समृद्धि की पुन: प्रतिष्ठापना करना जो फ्रासीसी राज्यशासन की सीमाहीन महत्त्वाकांक्षाओ ने उससे छीन ली थी; (२) फ्रांसीसियो को इटली, हैनोवर, और हॉलैण्ड और स्विजरलैण्ड मे निकाल बाहर करना; (३) सार्डीनिया के राजा को उसका खोया हुआ राज्य पुन: दिलाना और इटली को मतदान का अधिकारी बनाना; (४) हॉलैण्ड और बेल्जियम को फ्रांस के विरुद्ध एक मध्यस्थित लघुराज्य (बफर) के रूप में 'हाऊस ऑव आरेंज' के अधीन संयुक्त कर देना।

यह बिलकुल ठीक ही कहा गया है कि यह सयुक्त मोर्चा राजतन्त्रात्मक राज्यों की क्रान्तिविरोधी सन्धियो और पश्चवर्ती राष्ट्रीय अभ्युदयो के बीच का एक सक्रान्ति-युगीन स्तर है।

नेपोलियन इग्लैण्ड पर एक सीधा आक्रमण करना चाहता था और इसके लिए उसने बोलोन पर एक महान् जहाजी बेडा इकट्ठा कर लिया था जो वहाँ पर एकत्र भारी सशस्त्र सेना को इग्लिश चनेल (चैनल) के पार ले जाय। यह समस्त आयोजन ऐसा अयथार्थ और काल्पनिक-सा था कि किसी ने बोनापार्ट का अभिधान 'दौं किक्विक्शौत दे ला मांश' (माश का डॉन क्विक्जोट) रख दिया था और शीघ्र ही यह अभिधान फ्रांस मे

लोकप्रसिद्ध हो गया। सबसे पहली बात थी इंग्लिश चैनल को पार करना। इसके लिए ब्रेस्ट, रॉशफोट और तूलौं के बन्दरगाहों मे अनेक छोटे-छोटे जहाजी वेडे एकत्र किये गये। १८०४ के अन्त तक ६०० छोटे जहाजों का एक बेडा तैयार कराया गया और बोलोन मे ५३३ छोटे-छोटे जहाज थे। विल्लनौव जो एक योग्य अनुभवी नौ-वाहक (सेलर) था, इस जहाजी बेडे का अध्यक्ष नियुक्त किया गया और सारी योजना को पूरा करने के लिए उस पर कार्यभार सौंपा गया। परन्तु काल्दर और नेल्सन ने उसकी महती आशाओ पर पानी फेर दिया। काल्दर ने उसे केप फिनिस्त्र के बाहर एक छोटे-से युद्ध मे उलझाये रखा और उसे ब्रेस्ट की ओर बढने से रोक लिया। विल्लनुवे विगो में कुछ समय के लिए रुका और फिर कुर्न्ना के लिए चल पडा और वहाँ से कैडिज की ओर बढा। बोनापार्ट ने उसे लिखा था कि उसकी समस्त आशाएँ-आकाक्षाएँ उसकी कार्यकुशलता और शूरता पर केन्द्रित हैं परन्तु नौसेनानायक (एड्मिरल) को अपने बेडे पर बहुत ही कम विश्वास था। उसने अपने स्वामी को बहुत क्रुद्ध कर दिया था और वह उसे एक 'नीच कायर' की सज्ञा दे चुका था। १९ अक्तूबर को नौसेनानायक शत्रु से युद्ध करने के लिए कैडिज के बाहर निकला परन्तु नेल्सन उस युद्ध के लिए तैयार था। उसने यह आदेश दे दिया कि इंग्लैण्ड प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्त्तव्य पर आरूढ देखना चाहता है; उसके ये शब्द इतिहास मे अमर हो गये है। काल्लिगवुड सैनिक अधिकारो मे द्वितीय था और युद्ध आरभ करने मे वह सर्वप्रथम हुआ। २१ अक्तूबर को नेल्सन ने ट्राफ़लगर के सघर्ष में फ्रांसीसी और स्पेनिश जहाजी वेड़े को पराजित कर दिया यद्यपि उसे एक वीर की गोली लगी जिसने उसका प्राणान्त कर दिया। अंग्रेज़ मृतकों और घायलों की संख्या २,००० थी और शत्रु की ७,०००।

ट्राफ़लगर के युद्ध ने इंग्लैण्ड और फ्रास के बीच का नौ-सैनिक युद्ध समाप्त कर डाला। समुद्र पर विशिष्टाधिकार प्राप्त करने की बोनापार्ट की महत्त्वाकाक्षा को एक कठोर आघात पहुँचा और अब से उसमें तथा उसके महान् शत्रु 'कपटी आलबिअन' में मृत्यु-द्वन्द्व का निपटारा भूमि पर ही होना था। फ्रांस की पराजय का कारण अंग्रेजी नौसैनिकों की श्रेष्ठतर कर्मकुशलता और उनकी शूरतापूर्ण योजनाओ मे ढूँढा जा सकता है। क्रान्तिकाल में नौसेना की नितान्त उपेक्षा की गयी थी और इतने अल्प समय मे, जो कि बोनापार्ट को तैयारियाँ करने के लिए मिला, कर्मकुशलता की उच्चतम स्थिति मे पहुँच जाना असम्भव ही था। इसके अतिरिक्त नौसेना के विशिष्ट अधिकारियो का चुनाव भी बडा दोषपूर्ण था। उसने कभी ऐसे योग्य व्यक्तियों के हाथो मे पूर्ण अधिकार नही सौपे जो संकटकालीन क्षणो मे निर्णयात्मक और त्वरित कार्य कर सकते। वह उनसे अपने आदेशों का पालन कराने की आशा मे ही रहता था। यह एक

बहुत बड़ी भूल थी। समुद्रो पर प्रभुत्व प्राप्त करने मे बोनापार्ट की विफलता का कारण उसमे समुचित शक्ति अथवा योग्यता का अभाव नही था वरन् जिन दोषपूर्ण साधनों का प्रयोग उसने किया वे ही उसकी उक्त विफलता के कारण थे। इंग्लैण्ड की सामुद्रिक शक्ति का विनाश करने मे विफल होने पर उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए द्वीपीय व्यवस्था अर्थात् कौण्टीनेण्टल को अपना लिया परन्तु यह एक महान् इन्द्रजाल ही सिद्ध हुआ। वास्तव मे यह एक आर्थिक अधिनियमों के पजे मे फँसने वाला विलक्षण कार्य सिद्ध हुआ।

फ्रासीसी सैनिक दल अब ऑस्ट्रिया के विरुद्ध डट गये। ऑस्ट्रिया के सेनानायक मैक ने एक बडी सशस्त्र सेना को लेकर बवेरिया पर आक्रमण कर दिया और उल्म पर अधिकार कर लिया, उसने सोचा कि ऐसा करने से उसने डैन्यूब की घाटी पर अधिकार कर लिया है। ने ने उसे पराजित कर दिया और उसे ३३,००० सैनिको के साथ आत्म-समर्पण कर देना पडा। वियेना के लिए मार्ग सर्वथा खुला था और नेपोलियन ने शीघ्रतापूर्वक अपनी सफलता का अनुगमन किया। यह प्रथम अवसर था जबकि हैप्सबर्ग की राजधानी एक विदेशी शत्रु के हाथो मे आयी थी। ऑस्टरलिट्ज मे जो मोरेविया मे एक छोटा-सा गाँव था, उसने दो सम्राटो की सशस्त्र सेनाओ को २ दिसम्बर, १८०५ को लडने के लिए बाध्य कर दिया और उनको बुरी तरह से पराजित किया। तृतीय सयुक्त मोर्चा टूटकर टुकडे-टुकडे हो गया और प्रशा को, जो अपने आपको फ्रास के एक मित्र के रूप मे प्रदर्शित करना चाहता था, बाध्य होकर शौनब्रन की सन्धि (१५ दिसम्बर) को स्वीकार करना पडा। इस सन्धि के अनुसार क्लीव्ज तो उसने साम्राज्य के एक राजकुमार को समर्पित कर दिया, न्यूशातेल फ्रांस को और ऐन्सबैक बवेरिया को। हैनोवर को उसने एक पुरस्कार के रूप में स्वीकार कर लिया और इग्लैण्ड के सीमान्तस्थित बन्दरगाहो का परित्याग करने की स्वीकृति दे दी। बर्लिन मे इस सन्धि पर बडा असन्तोष प्रकट किया गया और वहाँ यह भी कहा गया कि निश्चय ही इस सन्धि का परिणाम इग्लैण्ड और प्रशा के बीच युद्ध होगा क्योंकि हैनोवर अंग्रेजी राजाओ की पैतृक सम्पत्ति थी। हीनरिच फ़ान वूलो ने इसको अस्वीकार किया और कहा कि किसी दूसरे व्यक्ति के उकसाने पर चोरी करना सबसे नीच प्रकार की लूट है। फॉक्स ने प्रशा के आचरण की निन्दा इन शब्दो मे की, 'यह उन सब नीचताओं का, जो भृत्यभाव मे सोची जा सकती है. और लोलुपता की गर्हणीय सीमा का सम्मिश्रण है।'

प्रेसबर्ग की सन्धि इससे भी अधिक दासतापूर्ण थी जिसे नेपोलियन ने ऑस्ट्रिया से जबर्दस्ती स्वीकार कराया (२६ दिसम्बर, १८०५) इसके अनुसार सम्राट् ने वेनिस,

इस्त्रिया और डालमेपिया इटली को समर्पित कर दिया जो कि फ्रासीसी शासन के अधीन था; कुछ विशप-शासित प्रदेशो के साथ टिरोल बवेरिया को दे दिया गया और ड्यूक को राजा का अभिधान दिया गया, वर्टम्बर्ग के ड्यूक को भी राजा की उपाधि से विभूषित किया गया. ऑस्ट्रिया ने पश्चिमी जर्मनी के अपने बहिर्भूत प्रदेशों को बेडन को समर्पित कर दिया, ऑस्ट्रिया को यह भी कहा गया कि वह पीडमण्ट, जेनोआ, पार्मा, लूक्का और पियाम्बिनो में होने वाले सभी नये सुधारो पर अपनी स्वीकृति दे दे। सन्धि का परिणाम यह हुआ कि फ्रासीसी प्रभाव का क्षेत्र सुदूर दक्षिण में बाल्कन्स तक बढ गया; और ऑस्ट्रिया, इटली तथा जर्मनी से सर्वथा बहिष्कृत हो गया, इसके अतिरिक्त उसे ११०० वर्ग मील का प्रदेश, २५ लाख से अधिक प्रजाजनों और लगभग १,४०,००,००० फ्लोरों राजकीय आय की हानि सहन करनी पडी। ताल्लीरॉ ने यह सोचकर कि ऑस्ट्रिया रूसी आक्रमण के विरुद्ध यूरोप का रक्षणप्राकार है, सन्धि की शर्तो मे कुछ कम कडाई करने के लिए कहा परन्तु नेपोलियन ने उसके परामर्श पर कोई ध्यान नही दिया; उसका मन पहले से ही पौर्वात्य की विजय पर टिका हुआ था। ऑस्ट्रियन प्रोफेसर फूनियर के अनुसार 'ऑस्ट्रिया द्वारा स्वीकार की गयी सन्धियों मे प्रेसबर्ग सबसे अधिक निर्दय सन्धि थी।'

इसके पश्चात् नेपोलियन जर्मनी की ओर अभिमुख हुआ। उसने १९ जुलाई, १८०६ को अपने सरक्षकत्व मे राइन-सघ की स्थापना की। यह बवेरिया और वर्टम्बर्ग जैसे राज्यों की सयुक्त सस्था थी और इसमे, बेडन हेस्स-दर्मस्टाट, और बर्ग के ग्राण्ड ड्यूको, मैन्ज़ के आर्कबिशपरिक (धर्मशासक) तथा अन्य अनेक राजकुमारो ने भी भाग लिया था। उन्होंने साम्राज्य से अपने आपको पृथक् कर लिया और नेपोलियन को अपना सर्वोच्च प्रभु स्वीकार किया। इस नीति मे तथा भारतवर्ष के तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड वेलेज़ली की भारतीय राजकुमारो से सम्बन्धित नीति मे पर्याप्त सादृश्य है। सभी राज्यो के सामान्य कार्यो का सम्पादन एक डायट (ससद) में होता था जिसकी बैठक फ्रैंकफोर्ट मे होती थी। इसके दो विभाग थे जिन्हे 'कालिज' का अभिधान दिया जाता था—राजाओं का कालिज और राजकुमारो का कालिज। सभी आपसी मतभेद डायट के निरंकुश निर्णय पर छोड दिये जाते थे। इसके अधिवेशनों का सभापतित्व सर्वोच्च पादरी-राजकुमार करता था, परन्तु फ्रासीसियों का सम्राट् इस राज्यसंघ का सरक्षक था। बहुत-से छोटे-छोटे राज्यो का दमन कर दिया गया था और उनके प्रदेशो को संघ के सदस्य राज्यो में मिला दिया गया था। उनके शासकों को 'मिडिएटाइज' कर दिया गया था अर्थात् उनका व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार तथा उनके सभी सामन्ती अधिकारो को अक्षुण्ण रखा गया परन्तु सर्वोच्च प्रादेशिक प्रभुओ

(सावरन) के रूप में उनके अधिकार छीन लिये गये। साम्राज्य के वीर योद्धाओ (नाइट्स) से भी उनके क्षेत्र ले लिये गये, सघ के प्रत्येक सदस्य राज्य को अपने क्षेत्र में आने वाले सभी योद्धाओं की भूमियो को ले लेने का अधिकार दिया गया था।

६ अगस्त १८०६ को नेपोलियन ने पवित्र रोमन साम्राज्य को भग कर देने का आदेश जारी किया, जिसके विषय मे वॉल्तेर ने व्यग्यपूर्ण शब्दो मे कहा था कि वह बहुत पहले ही न पवित्र रह गया था, न रोमन और न साम्राज्य ही। प्राग्युगीन विश्व की इस आदरणीय मूर्खता का अन्त करने के लिए उसकी ही प्रतिभा वाले एक महापुरुष की परम आवश्यकता थी जोकि जर्मनी की राष्ट्रीय एकता के मार्ग मे बहुत बड़ी बाधा बन चुकी थी। फ्रांसिस द्वितीय ने जर्मन साम्राज्य (एम्पायर जर्मानीक) के सम्राट् की उपाधि का परित्याग कर दिया और अब से वह ऑस्ट्रिया का सम्राट् मात्र रह गया। उपर्युक्त नीति की यह बहुत बड़ी सफलता थी, इसके द्वारा उस परम लक्ष्य की सम्प्राप्ति हुई थी जिसके लिए रिशल्यू, माज़ारें और चौदहवे लुई ने युद्ध और अन्य उद्योग किये थे।

राज्य सघ के निर्माण के पश्चात् अधिकाश जर्मन राजकुमारो ने नेपोलियन का सरक्षण स्वीकार कर लिया। परन्तु विरोधो का सर्वथा अभाव नही हो गया था। ऐसे कुछ राष्ट्रवादी भी थे जो विदेशी हस्तक्षेप बिल्कुल नापसन्द करते थे और ऑस्ट्रिया ने उनकी विरोधी मनोवृत्ति को और भी उत्तेजित कर दिया था। 'जर्मनी—अपनी दीनदशा मे' शीर्षक एक पुस्तिका प्रकाशित हुई जिसमें फ्रासीसी सैनिक दलो के विरुद्ध गम्भीर अभियोगो का सकलन किया गया था। नेपोलियन इस पर बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने नूरेम्बर्ग के एक पुस्तक विक्रेता पाम को बन्दी करने का आदेश दिया जो इस पुस्तिका को वितरित कर रहा था। फ्रांसीसी सैनिक न्यायाधिकरण (कोर्ट मार्शल) में उसकी पेशी हुई और २५ अगस्त, १८०६ को उसे गोली से मार दिया गया। ब्रौनौ में उसी सैनिक न्यायाधिकरण मे वियेना के दो अन्य पुस्तक विक्रताओं को भी बिना पेशी के ही मृत्युदण्ड दे दिया गया। पाम की मृत्यु ने जर्मन राष्ट्रीयता को जाग्रत कर दिया; उसकी मृत्यु पर बड़े व्यापक रूप से शोक मनाया गया और उसकी विधवा स्त्री के जीवन यापन के लिए चन्दा इकट्ठा किया गया।

नेपोलियन यथार्थ मे, जैसा कि भावी इतिहास दिखायेगा, बिस्मार्क का अग्रज था। उसने उस एकता के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया था जो उन्नीसवी शताब्दी में एक सुसम्पन्न तथ्य बन गया था। जर्मनी का राजनीतिक मानचित्र सरल और सुगम बना दिया गया था; फ्रासीसी प्रभाव की परिपक्वता ने उसके सार्वजनिक जीवन के सामान्य

स्तर तथा उसकी शासन विधियों में सुधार कर दिया था, उन क्षुद्र न्यायालयों का, जिन्होंने न्याय के सुचारु परिपालन में गन्दगी पैदा कर दी थी, उन्मूलन कर दिया गया; वह सब कुछ, जो देश और काल की दृष्टि से निरर्थक हो चुका था, नष्ट कर दिया गया, तथा बोनापार्ट की रचनाओं ने समग्र जर्मनिक व्यवस्था में एक अभिनव उत्साह एवं आशा का सचार कर दिया। राजनीतिक कामों में सचमुच वह एक कलाकार था और यद्यपि उसका उद्देश्य जर्मनी को अपने हितों का सम्पादन करने के योग्य बनाना था, तथापि उसी की बनायी नीवों पर भविष्य में एक फिनिक्स जैसा (अपूर्व) ट्युटोनिक राज्य निर्मित हुआ जो सभ्य जगत् के लिए एक महान् आतक बन गया।

तृतीय सयुक्त मोर्चे के अवशेषों ने नेपोलियन के चारों तरफ कृतज्ञ (सहायता प्राप्त) राज्यों का दल तैयार कर दिया। नेप्लस के फर्डिनैण्ड से उसका राजसिहासन छीन लिया गया और उसे जोजेफ बोनापार्ट को प्रदान किया गया। ब्रटेवियन गणतन्त्र हॉलैण्ड के राज्यों में बदल दिया गया और उसके भाई लुई को दिया गया (१८०६) और एक ही वर्ष के उपरान्त (१८०७) एक अन्य भाई जेरोम के लिए वेस्टफेलिया के राज्य का निर्माण किया गया। इस महती महत्त्वाकाक्षा की पूर्ति करने में नेपोलियन के भ्रातृस्नेह को स्पष्ट ही लक्ष्य किया जा सकता है।

ऑस्टरलिट्ज ने ट्राफलगर की दीनता को विस्मृत कर दिया। सयुक्त मोर्चे की पराजय ने पिट की मृत्यु को शीघ्र ही निमन्त्रण दे दिया, यह मृत्यु २३ जनवरी, १८०६ को हुई। जैसा कि पार्लमेण्ट के एक वक्ता ने कहा था कि उसकी मृत्यु से राजकीय मेरुदण्ड टूट गया था और पथप्रदर्शक आकाशदीप धूम में ही विलीन हो गया था। उसने अपने देश की महती सेवा की थी और आधुनिक शोधकार्य ने उसकी नीति के उस भ्रान्तिपूर्ण मूल्याकन को सुधार दिया है जो उन्नीसवी शताब्दी के इतिहासकारों में पर्याप्त मान्य हो गया था। नेपोलियन तो आनन्द से फूला न समाता था और एक नाटकीय वक्तृता में, जिसका कि वह अद्वितीय विशेषज्ञ था, उसने अपने सैनिकों से कहा था; "मेरी प्रजा हर्ष से तुम्हारा स्वागत करेगी और तुम्हें सिर्फ यही कहना पडेगा 'ऑस्टरलिट्ज के युद्ध में मैं इसीलिए था कि लोग बोल उठे 'अरे! देखो!! उस योद्धा को!!!" १८०६ में फ्रास की दशा का वर्णन फूमियर के इन सक्षिप्त शब्दों में दिया जा सकता है—

"फ्रास में क्रान्ति मर चुकी थी। अब ऐसा कोई भी नही बचा था जो इसके विजयोत्साह से सहानुभूति रखता। परन्तु यूरोप में यह उत्साह अभी भी प्रगति पर था, यह मूर्तिमान होकर एक व्यक्ति में अवतरित हुआ था जो अपने आपको एक महाद्वीप पर प्रभुत्व स्थापित कर लेने के लिए पर्याप्त समझता था।"

प्रशा और रूस से युद्ध

बेजल की शान्ति-सन्धि के बाद मे प्रशा ने अपनी तटस्थता को अक्षुण्ण रखा और फ्रास के विरुद्ध किसी सयुक्त मोर्चे मे भाग नही लिया। इसका एक आशिक कारण यह भी था कि फ्रेड्रिक विलियम एक दुर्बलचित्त और अस्थिर मनोवृत्ति वाला पुरुष था, और इसका एक आशिक कारण प्रशा का यह भय था कि कही वह उसी हीन दशा को न प्राप्त हो जाय जो स्पेन और बटेवियन तथा सिसल्पाइन गणराज्यो की हुई थी। ठीक ही कहा गया है कि किसी कूटनीतिक परम्परा को भूलने मे राष्ट्रो को बडा समय लग जाता है, और प्रशा निरन्तर ऑस्ट्रिया को अपना महान् शत्रु समझता रहा और उसके शत्रुओ की कार्यवाहियो को वह बडी आत्मतोषपूर्ण दृष्टि मे देखता रहा। १५ दिसम्बर, १८०५ को शौनब्रन्न की सन्धि फ्रास और प्रशा के बीच हुई। यह दो देशो के बीच आक्रमणमूलक और आत्मरक्षात्मक मैत्री के रूप मे थी। नेपोलियन चिरकाल से प्रशा की दृष्टि को हैनोवर के लोभ मे फॅसाना जा रहा था और अव वह अपने लोभ का सवरण नही कर सका और उसने इस भाग्य निर्णायक दान को अँसबैक क्लीव्ज न्यूशातल के बदले मे स्वीकार कर ही लिया। १८०६ मे नैपोलियन ने राइन का राज्य-सघ सस्थापित किया और प्रशन प्रदेश पर फ्रासीसी सैनिक दलो के अधिकार ने राष्ट्रवादी दल को गम्भीर आघात पहुँचाया। प्रशा के साथ युद्ध करने की उसकी किञ्चिन्मात्र इच्छा नही थी, परन्तु बर्लिन के राजदरबार मे एक शक्तिशाली युद्ध समर्थक-दल था। इसके नेता बैरन स्टाइन, राजकुमार लुई फर्डिनैण्ड था, जो एक योग्य व्यक्ति था परन्तु उसमें चातुर्य का नितान्त अभाव था. और राजा तथा रानी भी इन व्यक्तियो की योजनाओ का समर्थन कर ही देते थे। फ्रेड्रिक विलियम की पत्नी रानी लुइसा एक अति-सुन्दर महिला थी और उसका चरित्र भी बड़ा विशुद्ध था, परन्तु वह नेपोलियन से अत्यधिक घृणा करती थी और उसे 'राक्षस, बदमाश, नरक से बहिष्कृत' और बहुत से ऐसे ही अभिधानो से स्मरण करती थी. और इसीलिए नेपोलियन उस से बहुत क्रुद्ध था। इसके अतिरिक्त बर्लिन का राजदरबार इस बात से अति क्रुद्ध हुआ जब उसे ज्ञात हुआ कि नेपोलियन इग्लैण्ड को हैनोवर भेट स्वरूप दे चुका था; और इस पर प्रशन मन्त्रि-मण्डल अत्यधिक उत्तेजित हो गया। नेपोलियन ने प्रशा के लोगो को विश्वास दिलाने का बहुत प्रयत्न किया कि यह बात बिलकुल झूठी और निरर्थक है परन्तु उन्होने उसके सबल खण्डनो की ओर कोई ध्यान नही दिया। नूरेम्बर्ग के पाम महाशय की फाँसी ने जर्मनी मे जनमत के क्रोधाग्नि को बहुत प्रज्ज्वलित कर दिया और फूनियर ने ठीक ही कहा है कि 'ऑगियाँ की मृत्यु का जो महत्त्व यूरोप के अभिजातवर्ग के लिए था, वही महत्त्व पाम की मृत्यु का जनता के लिए है।' दूसरा कष्ट उन्हें जर्मनी के दक्षिण पश्चिम

राज्यों मे फ्रांसीसी प्रभुत्व का था और इस भ्रान्त प्रचार ने पर्याप्त अव्यवस्था पैदा कर दी थी कि नेपोलियन सैक्सनी के निर्वाचक को केन्द्रीय जर्मनी का राजा बनाना चाहता है। यह सच था किन्तु उसकी यह कदापि इच्छा नहीं थी कि वह सैक्सनी को द्वितीय प्रशा बना दे। प्रशा बहुत असन्तुष्ट हो चुका था और सितम्बर के अन्त तक फ्रेड्रिक विलियम ने एक पत्र पेरिस भेजा जिसमे उसने तीन माँगे रखी थी—

(१) फ्रासीसी सैनिक दल राइन के वामतट को लौट जाये,

(२) राइन के राज्यसघ मे न सम्मिलित किये गये राज्यो को उत्तरी-जर्मन राज्यसंघ मे मिलाने के लिए उसके सघटन मे नेपोलियन किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करे;

(३) वेजेल को फ्रासीसी साम्राज्य से पृथक् किया जाना चाहिए।

दो अक्तूबर तक यह पत्र पेरिस मे नही पहुँचा। इसी बीच प्रशा की सशस्त्र सेना को सघठित करने के लिए बड़े उत्साहपूर्ण प्रयत्न किये गये। जनता का उत्साह तो जलती भट्ठी की तरह चमक उठा। रानी ने स्वय सैनिक वेश मे सैनिक दलो की परीक्षा की और सैनिको की भावनाओ को खूब उत्तेजित कर दिया। राजकुमार लुई फर्डिनैण्ड, मार्शल फान होहेन्लो हे, रूशल और ब्लूशर जैसे सेना-अधिकारियो ने विजय प्राप्ति का वचन दिया और इनमे से एक ने तो यहाँ तक कह डाला, "तलवारों की तो आवश्यकता ही नही; फ्रांसीसी जनों के उन कुत्तो के लिए छडियाँ और डण्डे ही पर्याप्त है।" नेपोलियन के उत्तर में प्रशन राजदरबार के विरुद्ध बडे कटु शब्दो का प्रयोग किया गया था और उसमें फ्रेड्रिक विलियम के पत्र की असंगत और असम्बद्ध शैली का पर्याप्त दोषान्वेषण था। उसने मार्शल बर्तियर से कहा था, "हमने आठवीं तारीख को आदरणीयों की एक बैठक बुलायी है; इसमे कोई फ्रांसवासी कभी विफल नही हुआ; परन्तु जैसा कहा जाता है वहाँ एक ऐसी सुन्दर रानी है जो इस युद्ध की साक्षी बनना चाहती है, तो हमें शिष्टाचारयुक्त हो जाना चाहिए, सैक्सनी के लिए विना विश्राम किये चल पड़ना चाहिए।"

प्रशनों ने सैक्सनी की ओर अभियान कर दिया। वियेना ने युद्ध का स्वागत किया और यूरोप के अन्य राज्यों में भी सन्तोष की भावना दिखायी पड़ती थी। स्पेन का प्रशा के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार था और वह उसे सहायता भी देता था; इटली में भी एक भाग ऐसा था जो फ्रांस का विरोधी था। परन्तु नेपोलियन इस हर्षप्रदर्शन मे भयभीत नही हुआ और १,२८,००० गढो, २८,००० अश्वों, १०,००० इन्जिनियरों (शिल्पकारों) शिक्षित सैनिको और गैन्दार्म और २५६ तोपों को लेकर वह प्रशियनों के साथ युद्ध करने को चला। सबसे पहला युद्ध ६ अक्तूबर को सालफैल्ड में हुआ जिसमें

राजकुमार लुई फर्डिनैण्ड को अपने प्राणो से हाथ धोने पडे। १४ अक्तूवर को ऑ-रस्ताद का युद्ध हुआ जिसमें प्रशा की सशस्त्र सेना पराजित हो गयी। दावौं बड़ी वीरता से लड़ी और उसका श्रेष्ठ सेनानायकत्व ही था जो उसकी विजय का कारण बना। उसी दिन जगीना का ऐतिहासिक युद्ध भी लड़ा गया, जिसमें प्रशन लोग पूर्णतया पराजित हुए। व्हौहेनलोहे ने लौट चलने का आदेश दिया परन्तु यह आदेश भगदड़ मे बदल गया और सोल्ट तथा लार्ने के सैनिको तथा म्यूरा के अश्वारोहियो ने इनको काट डाला। नेपोलियन ने बर्लिन मे प्रवेश किया और राजा तथा रानी ने पूर्वी प्रशा के कोनिग्सबर्ग में शरण ली। २० नवम्बर, १८०६ को जब वह बर्लिन मे ही था उसने इग्लैण्ड के परिषदीय आदेशो के उत्तर मे सुप्रसिद्ध बर्लिन अध्यादेश जारी किया; इसके अनुसार उसने ब्रिटिश द्वीपो को सैनिक घेरे की दशा मे पडे हुए घोषित किया और परनिर्भर राज्यों को इग्लैण्ड से किसी प्रकार का व्यापारिक सम्बन्ध रखने को मनाही कर दी। यह कोई नई नीति नही थी। यह नीति उसे राष्ट्रीय सम्मेलन के ऐंग्लो-फोबो (इंग्लैण्ड से आतंकित) कन्वेन्शन से परम्परानुगत रूप मे प्राप्त हुई थी। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों ने १६ मई, १८०६ को ब्रेस्ट से ऐल्ब तक समुद्रतट को घेर लिया था। इग्लैण्ड का विनाश करने के लिए जो यह नीति उसने अपनायी थी उसे महाद्वीपीय व्यवस्था (Continental System) कहते है और इसका समुचित वर्णन अगले अध्याय मे किया जायगा।

प्रशा के पतन ने नेपोलियन के लिए यह बहुत सरल बना दिया कि वह अन्य जर्मन राज्यों से अपनी शर्ते साधिकार मनवा सके। सैक्सनी के इलेक्टर को बलात् एक सन्धि करने के लिए विवश होना पड़ा जिसके अनुसार उसने फ्रांस की सर्वश्रेष्ठता स्वीकार की और सैनिक चन्दा देने की स्वीकृति दे दी। विलियम अष्टम हेस्स-कासेल के लेण्डग्रेव ने भी नेपोलियन से एक सन्धि कर ली, परन्तु वह कभी 'भले दिनों की मित्रता' से अधिक और कुछ नही चाहता था। जीना युद्ध के पश्चात् नेपोलियन उसपर बहुत कुपित हो गया और उसे पदच्युत कर दिया। फ्रांसीसी सैनिक दलो ने हेस्स-कासेल में प्रवेश किया और इलेक्टर अपने देश से निकल भागा। ब्रुंजविक का ड्यूक भी पदच्युत कर दिया गया और पहले के ड्यूक की चर्चा करते हुए नेपोलियन ने कहा था, "यदि उसने केवल इन शब्दो का उच्चारण मात्र किया होता तो कोई भी कठिनाई न हुई होती—'अविचारित यौवन, चुप रह, स्त्रियों, अपने चर्खो के पास लौट जाओ; और अपने घरों के अन्तरंग में लौट चलो।" ऑरेंज के विलियम फ्रेड्रिक की भी यही दशा हुई, वह पदच्युत कर दिया गया।

१६ दिसम्बर को नेपोलियन ने वार्सा में प्रवेश किया और वहाॅ के निवासियों ने

उसका स्वागत किया। उसने पोलिश लोगो की देशभक्ति के मर्म को स्पर्श करते हुए कहा, "शायद तुम्हारे दुर्भाग्य का अन्त माङ्गलिक हो। यह बात एक मृतक का पुनः जी उठना ही होगा।" यही पर उसका सम्पर्क काउटैस वालेस्का से हुआ, वह एक अठारह वर्ष की युवती थी जिसका विवाह एक ७० वर्ष के व्यक्ति के साथ हुआ था। वह उसके साथ पर्याप्त घनिष्ठ हो गया और अपने पति से पृथक् होने के पश्चात् वह पेरिस मे रहने के लिए चली गयी जहाँ ४ मई, १८१० को उसने एक पुत्र को जन्म दिया जो कालान्तर मे नेपोलियन तृतीय के समय मे वैदेशिक मन्त्री नियुक्त हुआ था।

नेपोलियन के लिए पोलैण्ड का अभियान बड़ी सुचारुता से सम्पन्न हो गया। कोनिग्सबर्ग से लगभग २३ मील दूर ईलौ में उसने रूसियो और प्रशन लोगों से युद्ध किया (७ फरवरी, १८०७)। फ्रांस को इतनी भारी हानि हुई कि सम्राट् को बहुत खेद हुआ और उसने ताल्लेरा को रूस से सन्धि करने के लिए कह दिया। वह फिन्कें-स्टाइन के दुर्ग मे रुका, वहाँ मारी वालेस्का उसके मनोरजन का साधन थी। यहाँ से उसने फारस की ओर एक साभिप्राय दृष्टि डाली जिसके साथ वह इंग्लैण्ड के विरुद्ध सन्धि करना चाहता था। शाह के राजदूत उससे मिले और ७ मई (१८०७) को एक सन्धि पर हस्ताक्षर हुए तथा नेपोलियन एवं शाह एक दूसरे के मित्र एव सहायक बन गये। नेपोलियन ने फारस के अधीनस्थ प्रदेशों की सुरक्षा का वचन दिया और बदले मे शाह ने अपने बन्दरगाहो को ब्रिटिश व्यापार के विरुद्ध बन्द कर देने का वचन दिया। एक अन्य धारा के अनुसार उसने अफग़ानो को इग्लैण्ड के विरुद्ध भड़काने का ज़िम्मा लिया और उसके भारतीय प्रदेशो में भी अव्यवस्था तथा असन्तोष उत्पन्न करने का कार्यभार स्वीकार किया। उसने एक फ्रांसीसी सशस्त्र सेना को भारतवर्ष जाने के लिए अपने देश में होकर जाने की अनुमति भी दे दी।

अन्तिम युद्ध फ्रीडलैण्ड मे १४ जून (१८०७) को हुआ जिसमें रूसी लोग पराजित हुए। ने बहुत अच्छी तरह से लड़ा और उसके शूरतापूर्ण आक्रमण को देखकर सम्राट् ने सहर्ष कहा था, "वह तो एक सिह है।" फ्रीडलैण्ड फ्रासीसियों के लिए एक निर्णय-कारी विजय थी। २५,००० रूसी मारे गये जहाँ कि फ्रांस के केवल ७,००० ही मारे गये। सम्राट् अतिप्रसन्न हुआ और रूस तथा प्रशा के साथ शान्तिसन्धि तो अब अनिवार्य हो गयी।

नेपोलियन और अलैक्ज़ैण्डर, दो सम्राटो का मिलन तिल्सट पर हुआ, यह निएमन के वामतट पर स्थित एक नगर था। नेपोलियन की आयु ३८ वर्ष की थी और अलैक्ज़ैण्डर अभी केवल ३० वर्ष का था, दोनो अपने आपको विश्व के भाग्यनिर्माता समझते थे। इस भेंट का सबसे पहला परिणाम यह हुआ कि प्रशा के साथ एक युद्ध

विराम सन्धि पर हस्ताक्षर हो गये। २६ जून को अलैक्जैण्डर ने फ्रेड्रिक विलियम को नेपोलियन से मिलाया। नेपोलियन ने इस अभिनव परिचय मे बहुत उत्साह नही दिखाया और उसे हार्डेनबर्ग छोड़ देने के लिए कहा। दोनों सम्राटों ने नयी ड्यूकानुशासित रियासतो की स्थापना के विषय मे नये राज्यों की समस्या पर तथा तुर्की साम्राज्य के विभाजन के सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया। इसी समय रानी लुईसा भी तिल्सट में आ गयी और जब उसने नेपोलियन से शान्ति की वार्ता चलायी तो उसने उसके शृंगार की प्रशंसा कर दी। वह ३१ वर्ष की नारी थी, बड़ी मनोरम आकृति थी, प्रशा के हितों पर उसका बड़ा ममत्व था। दूसरी बार वह सम्राट् से एक सान्ध्य-भोज पर मिली, वह उसके वार्तालाप के ढग पर इतना मुग्ध हुआ कि उसने ताल्लीरां से शीघ्रतापूर्वक सन्धि समाप्त कर डालने के लिए कह दिया और यह भी कहा कि सभी कार्य बहुत ही जल्दी सम्पन्न हो जाने चाहिए। अगले ही दिन उसने पुनः सम्राट् के साथ बैठकर भोजन किया। नेपोलियन ने उसे एक गुलाब का फूल भेंट मे दिया, परन्तु उसने कहा कि यह गुलाब का फूल अपरिमित मूल्य का होता यदि इसके साथ माग्देबर्ग संयुक्त होता। नेपोलियन ने उत्तर दिया कि वह पहले ही जार अलैक्जैण्डर को सन्धि पत्र के विषय के सम्बन्ध मे सूचित कर चुका है। रानी के आत्माभिमान को इस अपमान भरी भेंट ने बहुत ही गम्भीर आघात पहुँचाया और वह अधिक समय तक यह अपमान सह न सकी और दो वर्ष के पश्चात् उसकी मृत्यु हो गयी। सन्धि की जिन शर्तो को ताल्लीरां ने सन्धि पत्र में से हटा दिया था उनका अभिप्राय प्रशा को पूर्णतः अलग कर देना था।

तिलसट मे प्रथम सन्धि रूस के साथ हुई और उस पर ७ जुलाई को हस्ताक्षर हुए। इंग्लैण्ड के साथ सन्धि करने में ज़ार की मध्यस्थता स्वीकार कर ली गयी। सन्धि की गुप्त धाराओं के अनुसार (१) आयोनियन द्वीप फ्रांस को पूर्ण प्रभुसत्ता के साथ-साथ समर्पित किये गये, (२) जोजेफ को नेप्लस का राजा स्वीकार किया गया, (३) यदि इंग्लैण्ड के साथ शान्ति सन्धि होने पर हैनोवर को वेस्टफालिया के राज्य में मिला दिया जाय तो वेस्टफालिया से उतना ही बड़ा प्रदेश पृथक् करके प्रशा को देना स्वीकार हुआ, और (४) इंग्लैण्ड के विरुद्ध द्वीपीय व्यवस्था को कठोर किया जाने का निश्चय हुआ।

एक गुप्त सन्धि भी हुई जिसके अनुसार फ्रांस और इंग्लैण्ड ने परस्पर एक दूसरे की प्रत्येक युद्ध में स्थल तथा समुद्र दोनों स्थानों पर सहायता करना स्वीकार किया, और दोनों में से कोई भी एक दूसरे की सम्मति के बिना किसी सन्धि में भाग नही ले सकता था। डेन्मार्क, स्वीडन और पुर्तगाल को द्वीपीय व्यवस्था में सम्मिलित होने के लिए कहा गया और उन्हें सम्मिलित न होने पर युद्ध की धमकी भी दी गयी। ऑस्ट्रिया को भी अंग्रेजी जलयानों के विरुद्ध अपने बन्दरगाहों को बन्द कर देने के लिए उकसाया

गया। अन्त में यह भी निश्चय हुआ कि यदि टर्की फ्रास की मध्यस्थता स्वीकार न करे तो फ्रांस और रूस पोर्त के विरुद्ध सयुक्त कार्रवाई करे, तथा "यह निर्णय कर ले कि कास्तान्तिनोपल (कुस्तुन्तुनिया) नगर और रूमेलिया के प्रान्त को छोडकर यूरोप मे औटोमन साम्राज्य के प्रान्तो को तुर्को की प्रभुता और कठोरताओ से मुक्ति दिला दे।"

६ जुलाई को तिल्सट मे प्रशा के साथ एक सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। फ्रेड्रिक विलियम से इस विषय मे कोई परामर्श नही लिया गया। प्रशा से एल्ब के पश्चिम मे स्थित सभी प्रदेश छीन लिये गये, और डाञ्जिग को एक स्वतन्त्र नगर घोषित कर दिया गया। उसकी पर्याप्त हानि हुई। लगभग तृतीयाश भूमि की और लगभग आधी प्रजा की जिसकी सख्या ४५ लाख देशवासियो की थी, उसे हानि सहन करनी पड़ी। इसके अतिरिक्त उससे यह भी कहा गया कि यदि इग्लैण्ड फ्रांस से शान्ति-सन्धि करने को तैयार न हो तो उसे इग्लैण्ड के लिए अपने बन्दरगाह बन्द करने पड़ेगे। फ्रासीसी सैनिक दल तभी प्रशन प्रदेशो को छोड़ेगे जब इन प्रदेशो पर लगा कर चुकता कर दिया जाय। इस प्रकार एक भारी धनराशि माँगकर अनिश्चित काल के लिए देश छोडने का कार्य स्थगित किया जा सकता था।

तिल्सट से जो आशाएँ थी वे पूरी नही हुई। यह सत्य था कि रूस सयुक्त मोर्चे से अलग था परन्तु सामुद्रिक मार्ग पर अभी भी इग्लैण्ड का शासन था और उसके साथ फ्रांस को यूरोप की सर्वोच्चता के लिए डटकर प्रतिहिसात्मक मोर्चा लेना था। नेपोलियन इस शान्ति-सन्धि से बड़ा प्रसन्न था; वह पूर्व दिशा मे अपने उज्ज्वल भविष्य की बाते सोच रहा था परन्तु जिससे वह अधिक प्रसन्न था वह थी भविष्य मे अपने शत्रुओ के शक्तिहीन हो जाने की महती आशा। उसे उन कठिनाइयो और विषमताओ का ज्ञान नहीं था जो उसकी महती तिल्सट योजनाएँ भविष्य मे पैदा करने वाली थी। रूस मे इस सन्धि को बड़ी कुख्याति मिली और सबने इसे नापसन्द किया। एक फ्रांस निवासी ने उस समय बहुत ठीक कहा था कि १८०७ मे रूसियो का फ्रांसीसियो को मित्र समझना ऐसा ही था जैसे 'धर्म परिवर्तन' करना हो। वह व्यवस्था जिसे जार तिल्सट मे अवलम्ब दे चुका था, रूस के लिए असम्भव थी और उसी के देश में इसको लेकर अनेक कलह-संघर्ष हो गये। रूस के लिए नेपोलियन ने जो छूटे दी थी वे यथार्थ में कुछ भी नही थी। वे केवल 'सार्वभौमिक प्रभुत्व के मार्ग मे एक विराम-स्थल मात्र' थी। इसके बाद से उसे अपनी सभी शक्तियो का बल द्वीपीय व्यवस्था को क्रियात्मक रूप देने मे नियोजित करना था और अपने मित्र राज्यो के सहयोग को प्राप्त करना था जो वे कदाचित् न दे पाते। यूरोप के स्वामित्व को अपने और जार के बीच मे विभाजित करने की उसकी योजना बडी अव्यावहारिक थी। ऑस्ट्रियन कूटनीतिवादी काब्लेन्ज ने नेपोलियन की इस समय की दशा को निम्न-

लिखित शब्दों में बहुत ही समुचित रूप से अभिव्यक्ति दी है—

"बोनापार्ट के पहले विश्व का एकाधिपत्य प्राप्त करने की शंका के औचित्य को कभी इससे पूर्व किसी ने इतना सबल युक्तियुक्त नहीं बनाया था; आरम्भ में दो में से एक का लक्ष्य बनाकर उसने इसका श्रीगणेश बहुत ही समुचित ढंग से किया. इसमे अन्त में एक (अद्वितीय) बन जाना उसके लिए स्वाभाविक ही था।"

तृतीय संयुक्त मोर्चे के ध्वंसावशेषों ने नेपोलियन को अपनी नयी व्यवस्था प्रतिष्ठापित करने में बडी सहायता दी, इस व्यवस्था का उद्देश्य ब्रिटिश व्यापार को यूरोप से बहिष्कृत करने और जर्मनी में ऐसे राज्यों के समूह की सुप्रतिष्ठा करके, जो कि फ्रांस के उपजीवी राज्य थे, रूस को पश्चिमी यूरोप से पृथक् रखने का था। पोप को अंग्रेजों के विरुद्ध अपने बन्दरगाह बन्द करने का आदेश दे दिया गया; जोजेफ बोनापार्ट नेप्ल्स का राजा बन गया और उसने ब्रिटिश व्यापार को दक्षिणी इटली से बहिष्कृत कर दिया। डेन्मार्क के पास विशाल जहाजी बेड़ा था और इंग्लैण्ड को भय था कि यदि कही उसने (डेन्मार्क ने) फ्रांस से मिल जाने का निश्चय कर लिया तो अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति अति गम्भीर बन जायेगी। सिंहासनासीन राजकुमार फ्रेड्रिक के साथ सन्धि की वार्ताएँ चलायी गयीं, जो उस समय कील में था, परन्तु इन वार्ताओं का कोई अनुकूल परिणाम नहीं हुआ। तब यह निश्चय हुआ कि कोपेनहैगेन के विरुद्ध एक समुद्री बेडा भेजा जाय और २ सितम्बर, १८०७ को नगर में बम वर्षा हुई और इस प्रकार ७ सितम्बर को स्वीकृत एक सन्धि के अनुसार सम्पूर्ण डैनिश जहाजी बेड़ा ब्रिटेन के हाथो में सौंप दिया गया। यह एक आक्रमणकारी ढग था परन्तु इंग्लैण्ड ने इस आधार पर इसके औचित्य का समर्थन किया कि यह कार्य आत्मसुरक्षा के विधान को दृष्टि मे रखकर किया गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि डेन्मार्क नेपोलियन के शस्त्रों के प्रभाव में आ गया जिसके साथ उसने ३० अक्तूबर १८०७ को फॉन्तेनब्लो में एक सन्धि पर भी हस्ताक्षर कर दिये। इस सन्धि के अनुसार उसने इंग्लैण्ड के विरुद्ध अपने व्यापारिक बन्दरगाह बन्द करना स्वीकार कर लिया।

ऑस्ट्रिया ने भी एक सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये जिसके अनुसार उसने अंग्रेजी व्यापार के विरुद्ध फ्यूम और त्रीस्त के अपने बन्दरगाह बन्द कर देना स्वीकार किया और प्रशा ने भी, यद्यपि पहले वह तैयार नहीं था पर धमकियों के बल पर द्वीपीय व्यवस्था में प्रविष्ट होना स्वीकार कर लिया। पुर्तगाल और स्वीडन इसके बाहर ही रहे। रूस को स्वीडन से समझना था और नेपोलियन ने इंग्लैण्ड के विरुद्ध अपने व्यापारिक बन्दरगाह बन्द करने के लिए पुर्तगाल को विवश करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। राजसंरक्षक (रीजेण्ट) राजकुमार जॉन ने अपने को दोधारी तलवार पर पाया।

यदि वह नेपोलियन की योजना को स्वीकार करता तो निश्चय ही डेन्मार्क का दुर्भाग्य निकट था; और यदि वह इंग्लैण्ड से मिलता तो उसके लिए फ्रांस और स्पेन की संयुक्त शक्तियों के सामने डटे रह सकना असम्भव ही था। उसने फ्रासीसी योजना को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। मार्शल ज्यूनो ने सेनाएँ बढायी और अक्तूबर १८०७ में उसने सीमा पार कर ली। यह समाचार सुनकर अंग्रेजी राजदूत ने राज परिवार को समुद्री मार्ग से ब्राजील भाग चलने के लिए तैयार कर लिया। ज्यूना ने लिस्बन में प्रवेश किया और एक घोषणापत्र जारी कर दिया जिसमे लिखा था कि ब्रैगैन्जा परिवार का शासन अब समाप्त हो चुका है। राज संरक्षकत्व (रीजैन्सी) का अन्त कर दिया गया और एक नया संविधान लागू कर दिया गया। अभी तक नेपोलियन ने यूरोप के शासकों के विरुद्ध ही युद्ध किया था; अब उसने राष्ट्रीयता की शक्तियो को भी अपना विरोध करते हुए पाया जिनका कारण उसके अपने अतिचार थे।

अध्याय ६

अवनति पथ

फ्रांसीसी साम्राज्य

सम्राट् की उपाधि लेने के बाद नेपोलियन ने अपनी शक्ति को पूर्ण प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया। फ्रास 'अद्वितीय श्रेष्ठ राष्ट्र' (ला ग्रान्द नासियो) था, चकाचौंध कर देने वाली अपूर्व विजयों, सघटनकारिणी शक्तियों और प्रतिभाशाली घोषणापत्रों के द्वारा ही वह फ्रांस से समुचित आदर एवं सम्मान प्राप्त कर सकता था। जनता हृदय से अभी भी राजतन्त्रवादी थी, रिशल्यू और चौदहवें लुई के आदर्शों के पक्ष मे उसके विचारों को मोड देना इस समय कठिन नहीं था। जिस युग की स्थापना उसने की उसके स्थिरी-करण के लिए सैनेट ने उससे कहा, और ट्रिब्यूनेट में एक ही ऐसा व्यक्ति था जिसने इस प्रस्ताव का विरोध किया था। विधानसभा ने इसे क्रियात्मक रूप में लागू करने की स्वीकृति दे दी और एक नया संविधान, जो बारहवें वर्ष के संविधान के नाम से प्रसिद्ध है, बनाया गया। सम्राट् की शक्तियाँ असीमित हो गयी। यदि उसके कोई पुत्र न हो अथवा वह किसी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त न करे तो राज्य जोज़ेफ, लुई तथा उनके उत्तराधिकारियों को सौंपने का निर्णय हुआ। राजकीय आय अथवा सिविल लिस्ट २,५०,००,००० फ्रांक प्रतिवर्ष निश्चित हुई। छः उच्च पदाधिकारी सम्राट् की सेवा के लिए नियुक्त हुए और उनको वे ही सम्मान एवं अधिकार दिये गये जो बोनापार्ट परिवार के राजकुमारों को थे।

सैनेट के अधिकारों एवं शक्तियों में कटौती हुई और इसका निर्णयकारी मत (वीटो) सम्राट् के द्वारा संशोधित किया जा सकता था।

फूशे पुलिस मन्त्री (अथवा गृहमन्त्री) के पद पर वैसे ही प्रतिष्ठित रहा। राजकीय पदाधिकारियों के मण्डल मे उसे बड़ा सम्मान प्राप्त था। फ्रांसीसी सम्राट् की महत्त्वशालिता के अनुकूल ही एक राजदरबार का भी सघटन किया गया और नये राजवंश की छत्रछाया में ऐसे पुरुष और स्त्रियाँ आयी जो सामान्य परिवार के व्यक्ति थे और बड़े सरल स्वभाव एवं सीधे लोग थे। इन लोगों को राजकीय शिष्टाचार का सर्वथा ज्ञान

नहीं था। नया अभिजात वर्ग पूर्ण रूप से सम्राट् पर निर्भर था और सम्राट् उसका उपयोग प्राचीन अभिजात्य की शक्ति को सन्तुलित रखने मे करता था। उसने उनको भूमिखण्ड और जागीरें दे दी थीं जिन्होंने उन्हें राजसी जीवन-यापन करने के योग्य बना दिया था। उसके परिवार के जनो को सार्वजनिक और सैनिक विभागों मे उच्च पद प्राप्त हो गये थे और यहाँ तक कि उन लोगों के लिए राज्यों की सृष्टि कर दी गयी थी। परन्तु सम्पूर्ण शक्ति उसी के हाथों मे केन्द्रित थी और उसके मन्त्री उसके लेखक (क्लर्क) मात्र थे। वह इतना सतर्क था कि शासन सम्बन्धी छोटी से छोटी बात उसके अवधान-बिन्दु से दूर नही होती थी। उसने फैशनेबल बैठको (सालों) की परम्परा को दबा डाला था, जहाँ गपशप मे समय नष्ट करके राजतन्त्रवादी लोग सार्वजनिक विश्वास को ठेस पहुँचाते थे। विधानसभाएँ, सैनेट, वैधानिक संस्था और ट्राइब्यूनेट ने अपना महत्त्व और अधिकार खो दिया था और मन्त्री संसदीय नियन्त्रण से पूर्णतः स्वतन्त्र थे। राज्य शासन का सम्मान होता था क्योंकि इसके पदाधिकारियों ने कठोर परिश्रम किया था। 'हमें अवश्य वह धन कमाना चाहिए जो फ्रांस (वेतन रूप में) हमें देता है,' प्रथम कौसल ने यह कहा था और जब वह सम्राट् बना तो उसने यही दृष्टिकोण रखा। सभा करने की स्वतन्त्रता, प्रकाशन की स्वतन्त्रता, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सस्थाओं की स्वतन्त्रता, पूर्ण रूप से विनष्ट कर दी गयी थी। मुद्रण (प्रेस) तथा प्रकाशन पर अति कठोर नियन्त्रण लगा दिया गया और राज्य शासन द्वारा गुप्त भेदियों को नियुक्त करने की व्यवस्था ने सार्वजनिक जीवन को निश्चेष्ट कर दिया था और लोगों ने अपने विचारों को प्रकट करना बन्द कर दिया था। प्रत्येक मुद्रित पत्र की परीक्षा पुलिस करती थी और यहाँ तक कि नाटयशालाओं पर कठोर नियमन और नियन्त्रण था। राज्यशासन की आलोचना करने में दो महान् व्यक्ति इस युग के थे। एक तो शातोब्रियाँ और दूसरी नेकर की प्रतिभाशाली पुत्री मदाम दे स्तेल, जिसका अभिधान "आदर्शवादी" (आइडियोलौग) रख दिया गया था और उसे फ्रांस से निष्कासित कर दिया गया था। वह नेपोलियन की बड़ी पुरानी शत्रु थी और उसके विरुद्ध लिखने में सदा वह अपनी लेखनी की धार को तेज कर देती थी। वाल्ने और गैराट जैसे लोगों के लिए नेपोलियन के हृदय में कोई स्थान नहीं था, जिनका धार्मिक और राजनीतिक मामलों में उदार दृष्टिकोण उसे बहुत ही अरुचिकर लगता था। वह उनके लिए कहता था, 'महामूर्खो का एक हाथ है जो अपनी आत्माओं के निम्नतम तल से मुद्रण और भाषण की स्वतन्त्रता के लिए निःश्वास लेते हैं, और जनमत की सर्वशक्तिशालिता मे विश्वास करते हैं।' बाद के वर्षो मे वह सार्वजनिक सुरक्षा समिति के सदस्यों की ही तरह बड़ा निरंकुश हो गया था और उसने मूल्यो का नियन्त्रण करने के लिए कठोरतम विधियाँ अपनायीं। लोगो को बलपूर्वक सेना में भर्ती

किया गया पर बदले में कुछ लेकर उनको छोड़ा जा सकता था। आर्थिक दण्ड स्वीकार करने पर इस बलात् भर्ती से मुक्ति मिल सकती थी। बुलावे से तुरन्त पहले विवाहित युवकों को भी मुक्ति मिल जाती थी, फल यह हुआ कि विवाहों की संख्या खूब बढ़ गयी, और सैनिक सेवा के आमन्त्रणों को अस्वीकार करने का यह एक अच्छा ढग लोगों को सूझ गया। राज्य के वित्तकोष में पर्याप्त वृद्धि हुई और पहले से ही स्वीकृत वैक ऑव फ्रांस को एक राजकीय संस्था बना दिया गया। राज्यशासन के विविध विभागों के हिसाब उसके समक्ष उपस्थित किये जाते थे और वह सभी अनावश्यक (नये, नॉन-रिकरिंग) व्ययों को अस्वीकृत कर देता था। सार्वजनिक कार्यों में उदारतापूर्वक व्यय करने वाला नेपोलियन स्वयं अपने खर्चों में बहुत ही मितव्ययी था और उसने अपने व्यक्तिगत खर्चे इतने कम कर लिये थे कि वह "उस दुर्दिन के लिए ऐसी निधि सुरक्षित कर सके जबकि उसका निजी सुरक्षित धन ही राष्ट्र का अन्तिम साधन हो जाय।" प्रत्यक्ष कर पूर्ववत् ही रहे परन्तु अप्रत्यक्ष कर और भी अधिक बढ़ा दिये गये। मद्य-मदिरा आदि पर राजकीय कर बढ़ा दिया गया, नमक पर कर लगाया गया; तम्बाकू पर राजकीय एकाधिकार हो गया। इन सब उपायों का परिणाम यह हुआ कि राज्य की आर्थिक दशा में एक विचारणीय उन्नति हो गयी।

सार्वजनिक विधि विधान (सिविल कोड) में परिशिष्ट रूप से सार्वजनिक कार्य विधि-सूची (कोड ऑव सिविल प्रोसीजर), अपराध-कार्यविधि-सूची (कोड ऑव क्रिमिनल प्रोसीजर) और व्यापारिक संहिता (कामर्शियल कोड) को भी जोड़ दिया गया। शिक्षा की ओर भी उसने पूरा-पूरा ध्यान दिया। उसने कहा था, "मेरा उद्देश्य राजनीतिक और नैतिक विचारों का पथप्रदर्शन करने के साधन एकत्र करना है", और इसीलिए यह आवश्यक था कि शिक्षा का सुनियन्त्रित संघटन किया जाय। उसने अपने सामने एक आदर्श रूपरेखा निर्धारित कर ली थी जिसमें कि फ्रांस के भावी नागरिकों को उन सिद्धान्तों की अनुकूलता में ढालना था जिन पर कि फ्रांस के राज्यशासन का निर्माण हुआ था। १८०६ में फ्रांस विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठापना हुई जिसके मूर्धन्य स्थान पर एक प्रधान अध्यापक (ग्राण्ड मास्टर) और सर्वोच्च परिषद् (सुप्रीम कौंसिल) की स्थापना की गयी थी। प्रत्येक बड़े नगर में एक महाविद्यालय था और प्रत्येक नगर में एक विद्यालय था जिसका नियन्त्रण एक मुख्यअध्यापक (हेड मास्टर) के हाथ में था। प्रशिक्षण विद्यालय (ऍकोल नौर्माल) का पुनः संघटन हुआ और कोई भी व्यक्ति इस विद्यालय में शिक्षा प्राप्त किये बिना एक महाविद्यालय में अध्यापक अथवा विश्वविद्यालय में प्राध्यापक नहीं हो सकता था। विश्वविद्यालय के पाँच विभाग थे, धर्मदर्शन (थिओलॉजी), कानून (लॉ), चिकित्साशास्त्र, विज्ञान और साहित्य। संस्थाओं में दी जाने

वाली शिक्षा को कैथोलिक सिद्धान्तों के अनुकूल होना आवश्यक था, इनके दो अनिवार्य अंग थे——सम्राट् के प्रति राजभक्ति और शिक्षण-संस्था के प्रति पूर्ण आज्ञाकारिता। नेपोलियन जानता था कि विश्वविद्यालय राज्य का ही एक लघु सस्करण है, और इसलिए उसने अध्यापक और अध्याप्य में बड़े कठोर अनुशासन की प्रतिष्ठा की थी। विश्वविद्यालय के अपने नियम और विधान थे परन्तु वह राजकीय नियन्त्रण से मुक्त नहीं था।

नेपोलियन की आर्थिक नीति का अन्तिम उद्देश्य साम्राज्य की समृद्धि था। वह आर्थिक प्रश्नों में बडी गम्भीरता से अभिरुचि लेता था और उसे इस बात का अफसोस था कि युद्ध की संकटकालीन आवश्यकताओं के कारण वह वित्त सम्बन्धी प्रत्येक समस्या की ओर पूर्ण अवधान नही दे सका। वह स्वदेश निर्मित सामग्री का उपयोग करने के पक्ष मे था और फ्रांस से विदेशी माल को उसने बिलकुल बहिष्कृत कर दिया था। वह अग्रेजी माल से घृणा करता था और इस विषय मे इतना कट्टर था कि जोज़ेफ़ीन और हॉर्नेन्स की तैय्यार वेषभूषा को नष्ट कर देता था, यदि उसमे अंग्रेजी मलमल का उपयोग हुआ होता था। वह उद्योग में सुरक्षा-नियम का दृढपक्षपाती था और राष्ट्रीय उद्योगों को पर्याप्त राजकीय सहायता उसने दी। ल्यों के रेशम और मखमल के उद्योगों को उसने खूब प्रोत्साहन दिया और अन्य स्थानों पर उसी के दान से कुछ कारखानों का निर्माण हुआ। १८०६ में एक प्रदर्शनी हुई जिसमें मानत्यूर के विवरण के अनुसार प्रदर्शनीय वस्तुओ की सख्या दशम वर्ष की प्रदर्शनी में प्रदर्शित वस्तुओं से दसगुणा अधिक थी। कृषि को वह उपयोगी कलाओ मे से प्रथम मानता था और उसे कच्चे माल की सबसे बड़ी दात्री स्वीकार करता था जिसके बिना इग्लैण्ड के साथ युद्ध करना असम्भव था। देश भर में सडको की मरम्मत की गयी और अनेक सार्वजनिक योजनाओ का निर्माण किया गया। नहरों की भी उपेक्षा इस समय नही हुई, उनकी सख्या मे वृद्धि की गयी और राज्याधिकारियों ने सम्राट् की इच्छाओं को पूर्ण करने में महान् अध्यवसाय एवं परिश्रम से काम लिया। उसने कुछ नगरो का निर्माण किया, कृषि क्षेत्रों में सिचाई का अच्छा प्रबन्ध किया और बन्दरगाहों की दशा में विचारणीय सुधार किया। उसने नये प्रासादों का निर्माण किया और पेरिस के केन्द्र मे पुराकालीन (क्लासिकल) मूर्ति-कला की शैली मे एक महाविशाल देवालय के सदृश बूर्स (बड़े-बडे व्यापारियों के परस्पर आदान-प्रदान का अधिष्ठान) बनवाया। वह निरन्तर भवनो के सम्बन्ध में पूछ-ताछ करता रहता था और जब वह राजधानी मे होता था तो वह निर्मित भवनों की परीक्षा करने स्वय जाता था। १८०६ के यूरोप की दशा का विवरण प्रस्तुत करते हुए कार्यकारिणी (राज्याधिकारियों के संघटन) के क्षेत्र मे उसकी सफलताओं पर विशेष बल दिया गया था। इस विवरण-पत्र मे सम्राट् के उद्देश्य को इस प्रकार से

स्पष्ट किया गया था—

"सम्राट् का विशेष ध्यान अब देशविजयों पर नही है, उसने सैनिक प्रतिष्ठा की सम्पूर्णता को प्राप्त कर लिया है. . . राज्याधिकारियो के संघटन की सम्पूर्णता और इसे सार्वकालिक समृद्धि का, तथा जनता की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि का उपाय, एवं इसके कार्यो से इसे विशुद्ध तथा उदात्त नैतिकता का दृष्टान्त बनाना. . . . .यही है वह प्रतिष्ठा जिसकी सक्रिय कामना सम्राट् करता है।"

उसके चारों तरफ एक राजसभा का निर्माण अब हो चुका था। इस सभा के सदस्यों के लिए वह मर्त्यलोक में ईश्वर की साक्षात् प्रतिमा था और वे उसे श्रेष्ठतम राजाओं के समान ही उसको पूजा और सम्मान देते थे। परन्तु वह सन्तुष्ट नही था। वह सिकन्दर महान् की अतुल कीर्त्ति प्राप्त करने की इच्छा रखता था और उसने यह कहा था कि जगद् मे अब कुछ भी महत्तर करने को शेष नही रह गया है। उसने महान् आतंक और भय का कारण बनना स्वीकार किया था। उसके सहोदर कभी उसकी उपस्थिति में उसके सामने बैठते नहीं थे, यहाँ तक कि जोज़ेफ़ीन भी उससे बातचीत करने में 'तू' (तुम) शब्द का व्यवहार छोड़ चुकी थी और अन्तःपुर के एकान्त में भी महाराजाधिराज (योर मैजेस्टी) शब्द से ही सम्बोधन करती थी। बूर्बा वंश के पुनरागमन को सर्वथा रोकने के लिए उसे एक उत्तराधिकारी की आवश्यकता थी और इस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त जोज़ेफीन का तलाक अनिवार्य था। इस समय राजदरबार के अवधान का मुख्य विषय यही प्रश्न बना हुआ था परन्तु नेपोलियन सदा साम्राज्ञी का पक्ष लेता था। अत्यधिक शक्ति ने उसे एक निरंकुश शासक बना दिया था। वह पुरुषों का उपयोग केवल अपनी इच्छाशक्ति की पूर्ति के साधनों के रूप में ही करता था और आशा करता था कि वे लोग भक्तिपूर्वक उसकी आज्ञाओं का पालन करेंगे। जिन्होंने उसके विश्वास को प्राप्त किया था उन्हें उसने उच्चतम पदो पर प्रतिष्ठित कर दिया था और अपने राज्यशासन के सिद्धान्त के रूप मे 'राज्यपद प्रतिभाशाली के लिए खुले हैं' इस उदार मन्त्र को स्वीकार करता था। अनुशासन के मामलों में वह बहुत कठोर था और चाहता था कि सभी लोग कीर्ति और यश के उदात्तपथ का अनुसरण करें। एक बार उसने अपने भ्राता जेरोम से कहा था—

"तुम अल्पवयस्क मर जाओ परन्तु जीवन में यश-कीर्त्ति अर्जित किये बिना नही, पितृभूमि के लिए बेकार और अपने अस्तित्त्व का कोई अनुस्मारक छोड़े बिना नही; क्योंकि इस प्रकार से जीवित रहना जीवित रहना नहीं है।"

जब उसने १८०४ में अमरीकन महिला कुमारी पैटरसन से विवाह किया तो नेपोलियन इससे नौसैनिक अनुशासन का उल्लंघन होने के कारण अत्यधिक आक्रुष्ट

हुआ। उसने इसे एक अनमेल विवाह माना और अस्वीकार कर दिया तथा दुलहिन को अमरीका लौट जाने के लिए विवश किया। सशस्त्र सेना की नैतिक भूमि (मोराल) को वह एक अत्यधिक महत्त्व का विषय मानता था। मानव-प्रकृति के विषय मे उसके विचार बडे संकुचित थे और उसके स्वभाव में हास्य का नितान्त अभाव था। वह आलोचना की उपेक्षा करना और अपने फदे की कठोरता को शिथिल करना नही जानता था। उसने विरोधी राष्ट्रीयता वाले अनेक पुरुषो को साम्राज्य के विशाल जाल में समाविष्ट कर लिया था, जिन्हें वह ऐसे बन्धनों से एकतासूत्र में ग्रथित करना चाहता था जिनका उन लोगों पर कोई प्रभाव नही होता था। वह चाहता था कि उसके आदेशों एवं आज्ञाओं का पालन उसके सुदूरविस्तीर्ण साम्राज्य में उसी प्रकार से हो जिस प्रकार से एक महासेनापति की आज्ञाओं का पालन उसकी सेना करती है। एक समय ऐसा आया जब, जैसा कि हालैण्ड रोज ने लिखा है, 'विश्व इस कठोर सैनिक-क्रम-व्यवस्था से तंग आ गया था।'

साम्राज्य उदार नही था। जिन संस्थाओ का निर्माण किया गया था वे पुरातन व्यवस्था के सिद्धान्तों के अनुकूल ही निर्मित हुई थीं। गुप्तचर, पुलिस कर्मचारी और गुप्त सूचना देने वाले अन्य कार्यकर्ता जहाँ-जहाँ वह जाता था उसका अनुसरण करते थे और विरोधी तथा आलोचक सदा अपने प्राण-सकट मे समझते थे। कभी भी उन्हें सैनिक विधान के अनुसार मृत्युदण्ड दिया जा सकता था। उसने एक ऐसी पारिवारिक नीति का अनुसरण किया था जिसके लिए फ्रांसीसी इतिहास में पर्याप्त पूर्वदृष्टान्त तथा प्रमाण थे। उसके युद्ध, विजय के युद्ध थे परन्तु उन्होंने ऐसे परिणामों को जन्म दिया था जिनकी वह कभी आशा भी नहीं करता था। इन युद्धों ने राष्ट्रीयता की भावना को इटली और जर्मनी की तरह अत्यधिक प्रोत्साहन दिया था और जनता के हृदयों मे स्वतन्त्रता की बलवती आकांक्षा का संचार कर दिया था। साम्राज्य का जीवन उस की ग्राह्य-शक्ति एवं परिस्थितियों की अनुकूलता की मात्रा पर निर्भर करता था। इसके जीवन का स्थिरीकरण इसकी फ्रांस के यथार्थ हितों की सेवा की योग्यता एवं सामर्थ्य पर निर्भर था। तिल्सट के बाद नेपोलियन बहुत बदल गया था। क्रान्ति के सिद्धान्तों से उसने बिलकुल मुँह मोड लिया था और अब ऐसी नीति का अनुसरण किया था जिसने उसके लिए यूरोप के सभी भागों मे नये-नये शत्रुओं की सृष्टि कर दी थी। अधीन राज्य अब साम्राज्य के असह्य बोझ को अपने कन्धो से फेंकने के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित थे, साम्राज्य उनके लिए अब अत्याचार और लूट का एक साधन मात्र रह गया था। इसकी परोपकारिता में वे अब विश्वास खो चुके थे और सब कुछ को इसकी सैनिक आवश्यकताओं के अधीन करना वे नापसन्द करते थे। राज्य के अधिकारी जनता के सम्मान और उसकी

स्वतन्त्रता की भावना के साथ खिलवाड करते थे और यहाँ तक कि ग्राहक राज्य भी सार्वजनिक अधिवक्ता के आतक से क्रुद्ध हो उठे थे। व्यापारिक निरोध की व्यवस्था, जिसकी योजना उसने ब्रिटिश व्यापार एव उद्योग को ध्वस करने के लिए बनायी थी, सर्वत्र विरोध एव क्रोध की भावना से देखी गयी और यहाँ तक कि उसके मित्रराज्यों ने उसकी आज्ञाओं के अनुकूल चलने से इन्कार कर दिया। १८०८ के बाद उसकी क्रूर अहंमन्यता पर कोई भी रोक-टोक न रह गयी थी। साम्राज्य के शासन का सघटन 'गुप्त राजतन्त्रवादियों' तथा परितुष्ट धनिको की कार्यवाहियो से अवरुद्ध हो चुका था। अब उसने ह्रास एव असन्तोष के लक्षण प्रकट करने आरम्भ कर दिये थे। उसकी महत्त्वा-काक्षाओ ने उसे युद्ध के भँवरजाल में डाल दिया। वही अन्त मे उसके सर्वनाश का कारण सिद्ध हुआ।

राष्ट्रीयतावादी प्रतिक्रिया—स्पेन तथा ऑस्ट्रिया

एक आधुनिक फ्रासीसी इतिहास लेखक ने लिखा है कि 'स्पेन के झगडो मे पड़ना पैण्डोरा के बक्स के ढक्कन को हटाना था। इससे बहुत सी खराबियाँ पैदा हुई। इसलिए यह आवश्यक है कि इस महादुर्घटना के कारणरूप परिस्थितियो की परीक्षा की जाय। १७९५ मे स्पेन ने फ्रांस के साथ एक मित्रता के सन्धिसूत्र मे अपने आप को बाँध लिया था परन्तु उसने इससे कोई लाभ नही उठाया था। इस समय वह पतन की ओर चल रहा था। उसका राजा चार्ल्स चतुर्थ साठ वर्ष का हो चुका था और शक्तिहीन हो गया था। अपनी पत्नी पार्मा की मारिया लुइसा का वह क्रीतदास था। मन्त्री मैनुअल गौडोय से मिलकर उसने जो षड्यन्त्र रचा था वह यूरोप के सार्वजनिक कलङ्को में से एक बन गया था। राजा उसे इतना चाहता था कि उसने रानी के साथ उसका किसी प्रकार का सम्बन्ध होने की गप मे कभी विश्वास ही नहीं किया। उसे शान्ति के राज-कुमार की पदवी से विभूषित किया गया था और उसी के हाथो मे स्वदेश तथा विदेश नीति की बागडोर थी। राजा के तीन पुत्र थे, सभी मे प्रतिभा का नितान्त अभाव था, और ज्येष्ठ पुत्र फर्डिनैण्ड मे बुद्धि और शारीरिक बल दोनो का ही अभाव था। मन्त्री की पुत्री से विवाह न करके उसने उसके रोष को बहुत बढा दिया था। यह कहा जाता था कि रानी को अपने पुत्र से इतनी अधिक घृणा थी कि वह उसे सिहासन के उत्तराधिकार से पूर्णत: वचित करना चाहती थी। राजकीय अयोग्यता के अतिरिक्त पतन के अन्य कारण भी थे। गिर्जा (चर्च) का प्रभुत्व सर्वोच्च था और जनता के हृदयों पर पुरोहितो का शासन था। परन्तु स्पेनिश चरित्र मे कुछ ऐसी भीषणता भी थी जो तभी जोर से प्रकट होती थी जब राष्ट्रीय गर्व पर चोट लगती थी या उसपर

किसी प्रकार का धक्का लगता था। नेपोलियन ने स्पेनिश राजदरबार की दुर्बलताओ को अपने लाभ के अनुकूल ढालना चाहा, उनसे अपना स्वार्थ सिद्ध करने का विचार किया। उसने म्युरा को स्पेन भेजा और सेनानायक के मैड्रिड तक पहुँचने के पूर्व ही कुछ महत्त्व-शाली घटनाएँ हो गयी। जनसमुदाय के एक गम्भीर षड्यन्त्र ने चार्ल्स को सिहासन-त्याग के लिए बाध्य कर दिया और उसका पुत्र फर्डिनैण्ड उस पर आसीन हुआ (१९ मार्च, १८०८)। उसने गोदोएँ की सम्पत्ति का अपहरण कर लिया और नये मन्त्रियो की नियुक्ति की। नेपोलियन स्पेन की ओर बढ़ा और १४ अप्रैल को उसने बायोन में प्रवेश किया जहाँ फर्डिनैण्ड भी फ्रासीसी राजदूतों के कहने से अपनी वस्तुस्थिति का विवरण प्रस्तुत करने के लिए आया हुआ था। राजा और रानी ने सम्राट् से भेंट की और जिस उत्साह एव समादर के साथ उन लोगो का स्वागत किया गया उसने उनको विचलित कर दिया। सहभोज के बाद फर्डिनैण्ड को उसके पिता ने राज्यसिहासन समर्पण करने के लिए कहा, फर्डिनैण्ड ने इस शर्त पर यह समर्पण स्वीकार किया कि वह स्वयं अपने हाथ में शासन की बागडोर ले। पिता-पुत्र के आपसी मनमुटाव के कारणों को दूर करने के प्रयत्न किये गये परन्तु मैड्रिड के समाचार ने एक नयी ही परिस्थिति खड़ी कर दी थी। एक आन्दोलन उठा जिसे म्युरौ ने क्रूरतापूर्वक कुचल दिया।

जब षड्यन्त्र का समाचार नेपोलियन तक पहुँचा, तो वह क्रोध से आगबबूला हो गया और उसने पिता-पुत्र दोनो को ही पूर्ण रूप से सिहासन-त्याग का आदेश दिया। फर्डिनैण्ड, जोकि स्वभाव से ही दुर्बल हृदय था धमकियो मे आ गया और उसने नेपो-लियन की आज्ञा का पालन किया। उसके पिता ने भी उसी का अनुकरण किया। एक सन्धि पर हस्ताक्षर हुए जिसके अनुसार वृद्ध राजा ने राजसिहासन नेपोलियन को समर्पित कर दिया और उसे इस बात के पूर्ण अधिकार दे दिये कि वह इस राज्य के विषय में जो कुछ उचित समझे कर सकता है। जब यह सब कुछ हो चुका तो नेपोलियन ने अपने भाई जोजेफ़ को ६ मई, १८०८ को फ्रांस का राजा बना दिया। स्पेनिश अभि-जातजनों ने मैड्रिड में उसे अपना राजा स्वीकार किया (जुलाई, १८०८)। म्युरा को नेप्ल्स मे अपना पदभार सँभालने के लिए भेज दिया गया।

यह एक बहुत बडी भूल थी। स्पेन की सर्वोच्च जण्टा (शासक मण्डली) ने फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और इसी प्रकार का निर्णय अन्य जण्टाओं ने भी किया। थोड़े ही समय मे पूरा स्पेन फ्रांस के विरुद्ध उठ खडा हुआ और देश भर में देशभक्तिमूलक रोष का भीषण विस्फोट हो चुका था—यह एक ऐसी असंभावित घटना थी जिसका नेपोलियन ने कभी अनुमान नहीं किया था। यह छूत का रोग यूरोप भर में फैल गया और पराजित राज्यों में भी यह भावना अधिकाधिक जोर पकड़ने लगी कि ऐसे व्यक्ति

के विरुद्ध राष्ट्रो को अवश्य उठना चाहिए जिसने उनकी सीमाओं को आकुल कर दिया है, उनके आत्माभिमान को चोट पहुँचायी है और देशकाल, इतिहास तथा परम्परा का सर्वथा ध्यान न रखते हुए जिसने मनमाने ढंग से नये राज्यो का निर्माण किया है। यह जनसाधारण का भीषण रोष था जो उसके विरुद्ध जागरित हुआ था।

जोजेफ स्पेन की ओर बढा। जब उसने सैन से हास्टियन मे प्रवेश किया तो जनसमुदाय में से एक स्त्री की चिल्लाहट सुनायी पडी––"सुन्दर पुरुष! फॉसी के फन्दे पर यह सुन्दर जँचेगा।" यह स्वर बडा अशुभ शकुन था। पूरा देश उत्तेजना से पागल हो रहा था और एक भीषण राजद्रोह उठ खड़ा हुआ जिसे नेपोलियन अपनी पूरी शक्ति लगाकर भी दबा न सका।

स्पेनवासियो ने अपनी पूर्ण सामर्थ्य के साथ अपने आत्माभिमान को अभिव्यक्ति दी थी। पादरियो और भिक्षुओं ने अपने देशवासियों को यह कहकर कि एक महाभीषण दुर्घटना उनके सम्मुख उपस्थित है उनकी प्रज्ज्वलित कोपाग्नि मे व्यजन का काम किया था। धार्मिक नेताओ ने बूर्बा वंश के हितो को इसामसीह के हितों से संग्रथित कर दिया था और नेपोलियन को 'ईसा-विरोधी' कहकर गर्हित किया जाता था। जनसाधारण का रोष इतना भङ्कर था कि फ्रासीसी सेनानायक द्युपो को बेलें में आत्मसमर्पण कर देना पड़ा (२३ जुलाई, १८०८)। उसके सैनिको को युद्धबन्दी बना लिया गया और उनको एक ऐसे द्वीप मे भेजा गया जहॉ उनमे से अधिकांश रोग, क्षुधा और दुर्व्यवहार से ही मर गये।

द्युपो के आत्मसमर्पण ने स्पेन मे फ्रांसीसियो की स्थिति पर बड़ा भयङ्कर प्रभाव डाला। जोजेफ़ मैड्रिड से भाग निकला और रोष से उत्तेजित उन स्पेनवासियो के पीछे-पीछे एड़ी उठा के भागा जो फ्रांसीसियो को अपने आगे-आगे बुरी तरह से खदेड़ रहे थे। उन्होने इग्लैण्ड से सहायता की याचना की जो तत्काल कैनिग के द्वारा उनको प्राप्त हुई। सर आर्थर वेलजली (बाद मे वैलिंगटन के ड्यूक) ने १२,३०० व्यक्तियों की सशस्त्र सेना के साथ मॉन्देगो नदी के मुख पर पड़ाव डाला ओर वहॉ से उसने लिस्बन के लिए प्रस्थान किया। विमिएरो पर उसने फ्रांसीसियो को पराजित किया (२१ अगस्त), परन्तु उसका स्थान सर ह्यू डलकिम्पल ने ले लिया जो सिण्ट्रा के सम्मेलन मे (३० अगस्त) हस्ताक्षर करके पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुका था। समझौते की शर्तो के अनुसार पुर्तगाल से फ्रांसीसियो को उनकी पुजीभूत निधियों और अन्य सामग्री के साथ फ्रास तक ब्रिटिश नौयानो मे ही ले जाये जाने का निश्चय हुआ था। यह एक दीनता का विषय था और इससे केवल एक ही लाभ की बात सामने आ रही थी कि पुर्तगाल फ्रासीसियों से खाली हो गया था और इस प्रकार आक्रमण करने के लिए एक

नितान्त निश्चित आधारभूमि की प्राप्ति हो गयी थी।

नेपोलियन ने जब यह सब कुछ सुना तो वह अपने आपे मे न रह सका, आक्रोश से लाल हो गया और उसने ड्यूपो और उसके सहायको (लेफ्टिनैण्ट) को कारागार मे डाल दिया। इस समय वह अत्यन्त कठिन परिस्थिति मे था। अभी तक उसने क्रान्ति की जनतन्त्री शक्तियों का आश्रय लिया था परन्तु अब वे उसी के विरुद्ध चक्रव्यूह की रचना कर रही थी। स्पेनिश जागरण उस शक्ति का प्रथम विस्फोट था जो अन्ततः उसके विनाश का कारण बनने वाली थी। उसने सत्य को ही अभिव्यक्ति दी थी जब सेण्ट हेलीना मे उसने कहा था, "यह स्पेनिश नासूर ही था जिसने मेरा सर्वनाश किया।"

स्पेन के विद्रोह ने अन्य देशो मे राष्ट्रीय भावना को अभिनव उत्साह प्रदान किया। मैटरनिश ने कहा था कि ऑस्ट्रिया को निकटभविष्य मे किसी आक्रमण की शंका नही है परन्तु एक क्रान्तिकारी व्यवस्था के साथ शान्तिपूर्वक रह सकना असम्भव सा ही था। स्टाडिऔन तात्कालिक युद्ध के पक्ष मे था। प्रशा मे स्टाइन के सुधारो ने एक नयी स्फूर्ति का संचार कर दिया था और समग्र राष्ट्र विदेशियो को खदेड़ कर बाहर निकालने के लिए बिलकुल प्रस्तुत था। नेपोलियन जानता था कि द्वीपीय व्यवस्था से अति-पीड़ित इग्लैण्ड अपनी पूर्ण सामर्थ्य के साथ युद्ध करेगा। रूस में अब नेपोलियन के व्यापारिक अवरोध के उपायो के प्रति कोई उत्साह नही रह गया था और ज़ार भी तिल्सट के परिणामों से सन्तुष्ट नही था। अतः उसने यह अनुमान लगाया कि ज़ार के उत्साह को पुनर्ज्वलित करने के लिए उससे एक भेट कर लेना आवश्यक है। इससे ऑस्ट्रिया और प्रशा की उसके विरुद्ध सयुक्त कार्यवाही भी रोकी जा सकेगी। कदाचित् यही इस भेंट का तात्कालिक कारण था। परन्तु अन्य भी कुछ योजनाएँ थी जो सम्राट् ने अपने मन ही मन सोची हुई थीं। ये थीं, इग्लैण्ड का विनाश करने के लिए भारतवर्ष पर आक्रमण, टर्की का विभाजन, और ऑस्ट्रियन, प्रशन तथा स्पेनिश समस्याओ का निश्चित समाधान। जर्मनी के बिलकुल बीचोबीच एक प्राचीन कस्बा एरफर्ट में एक सम्मेलन बैठा। २२ सितम्बर, १८०८ को नेपोलियन ने सेण्ट क्लाउड को छोड़ दिया, उसके साथ भृत्यों और अनुचरों की एक सुविशाल वाहिनी थी, जिसमें राजसभासद, सेनानायक, सैनिक, उपराज्यों के शासक और फ्रांस की नाट्यशाला के बत्तीस अभिनेता और अभिनेत्रियाँ भी थी, जिनमें से सुप्रख्यात तल्मा भी थी। दोनो शासक वीमार-एरफुर्ट राजपथ पर २७ सितम्बर, १८०८ को मिले और दोनों ने एक-दूसरे को बड़े प्रेम से आलिङ्गित किया। ज़ार के उद्देश्य स्पष्ट ही थे; वह मोल्डेविया और वैलेशिया को अपने राज्य में मिलाना चाहता था और ऐसा जान पडता है कि नेपोलियन ने उसे ऐसा करने की अनुमति देने का निश्चय

कर लिया था। परन्तु इस कार्य को वह तब तक अवश्य रोक रखना चाहता था जब तक कि स्पेनिश काण्ड की समाप्ति न हो जाय। अलैक्जैण्डर ने स्पेनिश आक्रमण के अन्तर्निहित तत्त्व और नीति को समझ लिया था और ऑस्ट्रिया तथा इंग्लैण्ड के प्रति एक कठोर कार्यवाही करने के लिए उसने अपनी स्वीकृति दे दी थी। सम्मेलन की बैठक प्रतिदिन होती थी और एकत्र महानुभावो के आदर-सत्कार में बहुत सा व्यय किया जाता था। एक दिन (३ अक्तूबर) सन्ध्या समय जब वोल्टैर का नाटक 'अदिपे' रंग-शाला मे अभिनीत किया जा रहा था, तो फिलोक्तेत के द्वारा उसके मित्र दिनास् के प्रति कहे गये शब्द—'एक बडे आदमी की मैत्री दैवी देन है'—उच्चरित हुए, अलैक्जैण्डर ने नेपोलियन की ओर अपने हाथ बढ़ा दिये, समग्र सम्मिलित जन भाव-विभोर हो उठे, उत्सव वास्तव मे दर्शनीय बन गया था। जब सम्राट् आते थे तो ढोल तीन बार पीटा जाता था परन्तु एक राजा के आने पर केवल एक बार। एक अवसर पर वर्टम्बर्ग के राजा के आगमन पर ढोल तीन बार बजा दिया गया। 'रोको' सेनाध्यक्ष चिल्ला उठा, 'यह तो सिर्फ एक राजा है।' नेपोलियन की चापलूसी करने में जर्मन राजकुमारो ने अपने आपको अति दीन-हीन बना डाला , जब उसने सेक्स गोथिया के ड्यूक से पूछा कि उसने इतना कम क्यो खाया है, और वह कही वायु पर ही तो जीवन-यापन नही करता है, तो उसका उत्तर था ; "नही, महाराजाधिराज,केवल उन रश्मियों पर जो सूर्य से प्रस्फुटित होती है।" यह था उस दासत्ववृत्ति का रूप जो नये शार्लेमेन के प्रति प्रदर्शित की गयी थी।

वीमार मे सम्राट् ने गोएँटे और वाइलेड से भेट करने की स्वीकृति दे दी। गोएँटे का अतिसम्मानपूर्वक स्वागत हुआ और बाद मे उसने अपने एक मित्र से भी कहा था कि अब तक कभी किसी उच्चपदाधिकारी पुरुष ने ऐसे समादर से उसका स्वागत नही किया था। वाइलेंड सम्राट् के व्यक्तित्व से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने उसे "समस्त युगो का अत्यन्त असाधारण व्यक्ति" कहा था। उसने जर्मन राजकुमारो को भेट करने के योग्य नही समझा और राजमुकुट तथा अधिकार से अधिक उसने प्रतिभा को महत्त्व दिया। जैसा कि फूर्नियर ने कहा है वह ऐसे व्यक्तियो से अधिक सामीप्य-सम्बन्ध समझता था जिनकी महानता उनकी प्रतिभा के कारण थी न कि जन्म अथवा जाति के कारण।

दोनों सम्राटो मे जब विचारो का आदान-प्रदान हो रहा था तो ताल्लीराँ अपनी सुरक्षा के लिए अधिक उत्सुक हो उठा और उसने जार को गुप्त रूप से इस बात की सूचना दे दी कि फ्रांस नेपोलियन के साथ नही है। "श्रीमन्," उसने कहा, "आप यहाँ क्या कर रहे है ? आप ही है जो इस समय यूरोप की रक्षा कर सकते है, और यह आप तभी कर सकते हैं जब आप-अपने आपको नेपोलियन से पृथक् करके कुछ करेंगे।" अलैक्जैण्डर, जो ताल्लीराँ को सदा सम्राट् का अति स्वामिभक्त सेवक समझता था, इस षड्यन्त्रकारी

मन्त्रणा पर बहुत आश्चर्यचकित हुआ और उसे उसके अपने गुप्त उद्देश्यो की सत्यता मे विश्वास हो गया। इसके अतिरिक्त फ्रांसीसी कूटनीतिज्ञ ने ज़ार से ऑस्ट्रिया के मन्त्री को यह वचन देने के लिए कहा कि आक्रमण होने पर रूस ऑस्ट्रिया की सहायता करेगा।

अन्ततोगत्वा १२ अक्तूबर, १८०८ को एरफुर्ट मे दोनो सम्राटो के बीच एक सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। सन्धि की शर्ते दस वर्ष तक गुप्त रखने का निश्चय हुआ था। तिल्सट की सन्धि को पुन: स्वीकृति दी गयी और शत्रु के विरुद्ध दोनो सम्राटो को मिलकर बचाव करना था। इग्लैण्ड के साथ कोई सन्धि नही हो सकती थी जब तक कि वह स्पेन मे नेपोलियन के शासन को मान्यता नही प्रदान कर देता। मोल्दविया, वालशिया और फिनलैण्ड को ज़ार की राज्यसीमा में स्वीकार कर लिया गया, परन्तु कान्स्टैन्टीनोपल और सकटग्रस्त मार्गों के प्रश्न को स्थगित कर दिया गया। दोनो सम्राटो ने औटोमन साम्राज्य की दृढ़ता को बनाये रखने का प्रण किया। यदि फ्रास पर ऑस्ट्रिया का आक्रमण हो तो रूस को फ्रास की सहायता करनी थी। ज़ार की सहायता से प्रशा का राजकर घटाकर १२,००,००,००० फ्राक प्रतिवर्ष कर दिया गया और कर चुकाने का समय भी बढ़ा दिया गया। ज़ार ने जब कुछ हिचकिचाहट की तो नेपोलियन ने बवण्डर खडा कर दिया। उसने अपना हैट (टोपी) भूमि पर फेंक दिया और पैरो से रौद डाला परन्तु ज़ार विचलित नहीं हुआ और उसने कहा, "तुम्हारा क्रोधी स्वभाव है, परन्तु मेरी हठी प्रकृति है। क्रोध मे आकर मुझसे कोई कुछ भी नही ले सकता। आओ, हम दोनो शान्तिपूर्वक और समझ से बातचीत करे, अन्यथा मै चला जाता हूँ।"

१४ अक्तूबर को दोनो सम्राटों ने एरफुर्ट छोड़ दिया, एक-दूसरे से अलग होते समय दोनो के हृदय भावनापूरित हो रहे थे। सम्मेलन ने दोनो मे से किसी को भी कोई लाभ नही पहुँचाया। नेपोलियन ज़ार से इस बात का दृढ़ वचन लेने में सफल न हो सका कि ऑस्ट्रिया में कोई विद्रोहात्मक आन्दोलन उठ खड़ा होने पर वह बलपूर्वक उसको दबाने के लिए हस्तक्षेप करेगा। ज़ार भी जो कुछ पहले से उसके हाथो में था उससे अधिक कुछ भी प्राप्त करने में सफल न हुआ और टर्की के विरुद्ध अपनी कामनाओं की पूर्ति का कोई मार्ग न निकाल सका। निरवच्छिन्न फ्रांसीसी मैत्री के हानिकारक परिणामो को उसने भी अब समझना आरम्भ कर दिया था, जिसे रूस के राष्ट्रीयतावादी विश्वासघात समझते थे।

जो कुछ ताल्लीराँ ने ऑस्ट्रिया से कहा उसे सुनकर ऑस्ट्रिया को बड़ा परितोष हुआ। मैटरनिश को यह सूचित किया गया कि ऑस्ट्रिया के विरुद्ध जार की सहायता प्राप्त करना सम्भव नही है। एरफुर्ट की सन्धि, बिस्मार्क के शब्दों में "दरारों पर लगायी कागज की चिप्पी मात्र थी।" फूर्नियर के अनुसार यह नेपोलियन के लिए एक राजनीतिक पराजय

थी। इसमे आश्चर्य ही क्या है यदि एक पक्ष के अनन्तर ऑस्ट्रिया के चान्सलर स्तादियो ने लिखा हो—

"यदि नेपोलियन की योजनाओं मे युद्ध का कोई स्थान नहीं है, तो भी हमारी योजनाओ मे इसे निश्चित ही स्थान मिलना चाहिए।"

एरफुर्ट के बाद नेपोलियन शीघ्रतापूर्वक स्पेन पहुँचा, विटोरिया मे ५ नवम्बर को जोजेफ से मिला और देश मे फ्रांसीसी सशस्त्र सेनाओं की अध्यक्षता उसने स्वयं स्वीकार कर ली। आर्थर वेलेजली इंग्लैण्ड लौट चुका था और उसका स्थान सर जॉन मूर ने ग्रहण कर लिया था, वह एक सुलझा हुआ सैनिक था जिसे कविता ने अमर कर दिया है। नेपोलियन ने बूर्गॉस के निकट स्पेन की सेना को पराजित कर दिया (१० नवम्बर) और वह मैड्रिड की ओर बढा। स्पेनवासियो ने उसका दृढ़ प्रतिरोध किया और उसने इस समय अनुभव किया कि स्पेनिश स्वभाव कितना हठी और बलशाली है। उन इटालियन और जर्मन लोगो से वे नितान्त भिन्न थे जिन्होने उसका स्वागत एक वीरनायक के रूप मे किया था। उसने उन लोगो से जोजेफ को राजा स्वीकार करने के लिए कहा, अन्यथा वह स्वयं राजसिंहासन पर बैठेगा और विरोधियो को कठोर दण्ड देगा। जोजेफ ने २२ जनवरी १८०६ को मैड्रिड मे प्रवेश किया और वह पुनः अपने पद पर प्रतिष्ठित कर दिया गया।

मूर कोरुन्ना की ओर लौटा परन्तु सैनिक अभियान मे बहुत कठिनाइयाँ थी और सोल तथा ने ४५००० सैनिको के साथ उसका पीछा कर रहे थे, वे अग्रेजो को पकड़ने का भरसक प्रयास कर रहे थे। १६ जनवरी १८०६ को इस वीर सेनानायक का नगर के प्राकार मे गोली लगने से शरीरान्त हो गया। सारागोसा पर घेरा डाल दिया गया और २० फरवरी १८०६ को अन्तिम रूप से उस पर अधिकार प्राप्त कर लिया गया। वेलेज़ली की सेनानायक के पद पर पुर्नानियुक्ति हुई और वह जुलाई १८०६ को मैड्रिड पहुँचा। उसने तालवेरा मे फ्रांसीसियो को पराजित किया और फिर पुर्तगाल की ओर लौट आया। यह उस विजय-शृखला की प्रथम कड़ी थी जो उसने स्पेन मे प्राप्त की, और जिसके कारण एक सेनानायक और योद्धा के रूप में उसने अमरत्व प्राप्त किया।

राष्ट्रीयतावादी प्रतिक्रिया—स्पेन तथा ऑस्ट्रिया

ऑस्ट्रिया की परिस्थितियाँ बड़ा भयकर रूप धारण करती जा रही थी। उसने अपने राष्ट्रीय साधनो का सघटन कर लिया था, सेनाओ मे सुधार किये तथा एक निग्रहीत सेना का निर्माण किया जिसमें १६ से ४५ वर्ष की आयु के सभी पुरुषों को भर्ती किया गया था। आर्चदयूक चार्ल्स ने, जो कि स्वयं एक परमवीर सैनिक था, सशस्त्र सेना के नैतिक स्तर (मोराल) को ऊँचा करने के लिए कठोर उपायों का आश्रय लिया। अभी तक के

प्रचलित दण्ड विधानो का उन्मूलन कर दिया गया और सुचारु कर्मकुशलता की सुविधा के लिए सेनाओं को सशस्त्र सैनिक दलो मे बाँट दिया गया। १२ अप्रैल को ऑस्ट्रिया ने इग्लैण्ड के साथ एक सन्धि पर हस्ताक्षर किये और दो दिन के पश्चात् आर्चडचूक चार्ल्स ने १,७०,००० सैनिको को लेकर बवेरिया पर आक्रमण कर दिया। सभी स्थानो पर मैदान मे पहला स्थान ऑस्ट्रिया का ही था। तिरोलीज़ लोगो ने, जो बवेरियन शासन से अत्यधिक असन्तुष्ट थे जिसने सार्वजनिक हित के प्रति उपेक्षा और घृणा प्रदर्शित करने के अतिरिक्त और कुछ नही किया था, अपने नेता आर्चडचूक जॉन की अध्यक्षता मे खुले राजविद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। आर्चडचूक फर्डिनैण्ड के नेतृत्व मे एक अन्य सशस्त्र सेना ने पोलैण्ड अधिकृत प्रदेश मे अभियान किया। नेपोलियन स्वय ऑस्ट्रियनो से युद्ध करने के लिए आया। उसने एग्मीह्ल मे २२ अप्रैल को उन्हे पराजित कर दिया। आर्चडचूक रीजन्सबर्ग की ओर भागा और विएना का मार्ग उसे निकट दिखायी पड़ा। इस युद्ध मे ७२,००० ऑस्ट्रियन थे और फ्रांसीसियो तथा उनके मित्रो की संख्या ९६,००० थी। इसमें क्षति अधिक आस्ट्रिया की ही हुई। काउन्ट स्टाडिऔन तो होश-हवास ही खो बैठा परन्तु सम्राट् व्याकुल नही हुआ और निराशा की एक रेखा भी उसके चेहरे पर दिखायी नही दी। नेपोलियन विएना की ओर बढ़ा, वहाँ तो जैसे तूफान आ गया; १३ मई को विएना ने आत्म-समर्पण पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। आर्चडचूक चार्ल्स की योजनाओं मे सबसे बड़ी बाधा तो राजसभा के उसके शत्रुओं के षड्यन्त्र बने तथा उसके अग्रज सम्राट् की शकाओं ने भी उसके मार्ग मे रोड़े अटकाये, सम्राट् उससे बहुत ईर्ष्या करता था। नेपोलियन ने डैन्यूब को पार किया और ऑस्ट्रियनो को उसने एस्पर्न तथा लेस्सिग के गाँवो मे २१ और २२ मई, १८०९ को युद्ध मे उलझाये रखा। ऑस्ट्रियनों ने बड़ी वीरता से युद्ध किया और पाँच बार एस्पर्न का गाँव हारा और जीता गया। सम्राट् ने लौटने का आदेश दिया परन्तु आर्चडचूक बड़ी तीव्रता से आगे बढ़ा और उसने फ्रांसीसी सेना पर अग्निवर्षा कर दी जिसका परिणाम यह हुआ कि उनका सेनानायक लामनीज एक गोली से मर गया। यह नेपोलियन के लिए एक अति महत्त्वपूर्ण क्षति थी। यह कहा जाता है कि वह स्वय दो बार घायल सेनानायक को देखने गया परन्तु वह उसके प्राण न बचा सका। नेपोलियन की पराजय का समाचार विस्फोटक घोषणाओ के साथ सर्वत्र प्रसारित कर दिया गया। समाचार का रूप अत्यधिक अतिशयोक्तिपूर्ण था। यूरोप उल्लास से नाच उठा, विशेष रूप से वे देश अति हर्षित हुए जो चिरकाल से नेपोलियन की अधीनता से मुक्ति पाने के लिए आतुर थे। नेपोलियन की अपराजेयता का भूत भागने लगा। जर्मनी भी जाग उठा परन्तु दोचित्ते फ्रेड्रिक विलियम ने ऑस्ट्रिया के मिलकर लड़ने के निमन्त्रण का बड़ा शिष्ट उत्तर दिया, "ऑस्ट्रिया एक और विजय प्राप्त कर ले

और मैं आपके साथ हूँ।" ज़ार खुले रूप मे ऑस्ट्रिया की सहायता तो नही कर रहा था परन्तु फ्रांसीसियों के प्रति उसका व्यवहार मैत्रीपूर्ण नही था। जर्मनी में कुछ उपद्रव उठ खडे हुए और फ्रांस की स्थिति बुरी तरह से विपत्तिग्रस्त हो गयी। परन्तु नेपोलियन उन व्यक्तियो में से नही था जो पराजय स्वीकार कर ले या उत्साह खो बैठे। ५ या ६ जुलाई को उसने वाग्राम के युद्ध मे भाग लिया, जिसमें दो दिन के कठोर संघर्ष के बाद ऑस्ट्रियन पराजित हो गये। ऑस्ट्रियनों की इस युद्ध में ३१,३३५ मनुष्यो की हानि हुई जिनमें से ७,५०० तो युद्धबन्दी ही बनाये गये थे। फ्रांस के पक्ष मे २७,००० पुरुषो की क्षति हुई जिनमे मृतक और घायल दोनो थे। युद्ध के कुछ दिनों बाद काउन्ट स्टाडिऔन ने अपने पद से अवकाश ले लिया और उसके स्थान पर मैटरनिश की नियुक्ति की गयी।

ज्नैम पर पुनः ऑस्ट्रियन और फ्रांसीसियो ने एक-दूसरे को युद्ध में उलझा रखा था। इसमे फ्रांसीसियों को घोर पराजय का सामना करना पड़ता यदि नेपोलियन दावू और मसेना को मारमौ की सहायता के लिए न भेज देता। युद्ध परिषद् अभी युद्ध जारी रखने के पक्ष में थी परन्तु फ्रांसिस ने, जो इस समय ज्नैम में ही था, सन्धि की बातचीत आरम्भ कर दी और १२ जुलाई १८०६ को एक युद्ध-विराम-सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये गये। इसके अनन्तर विएना की सन्धि (१४ अक्तूबर १८०६) हुई, इसमे नेपोलियन ने ऑस्ट्रिया को बड़ी कठोर शर्तें स्वीकार करने के लिए विवश किया।

सन्धि पर हस्ताक्षर करने के पूर्व वेस्टफालिया में कुछ उपद्रव हो गया। परन्तु वह दबा दिया गया। एन्टवर्प के ब्रिटिश अभियान का अन्त भयंकर क्षति में हुआ। २६ जुलाई १८०६ को अंग्रेजी नौयानों ने वाल्शेरेन के द्वीप मे ४०,०००सैनिको की सशस्त्र सेना को उतारा। एन्टवर्प की सुरक्षा के लिए योजनाएँ बनाने में नेपोलियन उत्कण्ठापूर्वक लगा हुआ था। अंग्रेज सैनिक दलो में रोग फूट पड़ा और सैनिकों की एक भारी संख्या मृत्यु के मुख मे चली गयी। अब इस परिस्थिति में अधिक टिके रहना सम्भव नही था और अंग्रेजों ने द्वीप को नितान्त खाली कर दिया। मार खायी हुई और परेशान अंग्रेजी सेना पुनः इंग्लैण्ड को ही लौट गयी। नेपोलियन की आशाएँ-आकांक्षाएँ बहुत ऊँची हो गयी और वह ऑस्ट्रिया के प्रति अपने व्यवहार मे बहुत कठोर हो गया।

विएना की सन्धि के अनुसार (१) ऑस्ट्रिया ने त्रीस्त, कार्नीओल, इस्त्रिया और कारियेन्थिया का बृहत् भाग नेपोलियन को भेंट कर दिया, (२) पश्चिमी गैलीसिया वार्सा की महान् डची में और पूर्वी गैलीसिया रूस में मिला दिया गया; (३) तिरोल और साल्सबर्ग ऊपरी ऑस्ट्रिया के कुछ भाग के साथ बवेरिया को लौटा दिया गया; (४) ऑस्ट्रियन सशस्त्र सेना को घटाकर १०,५०,००० सैनिकों की बना दिया गया; (५) सम्राट् ने स्पेन तथा इटली मे नेपोलियन की व्यवस्थाओ को मान्यता प्रदान की

और उसने द्वीपीय व्यवस्था का अनुसरण करने की भी स्वीकृति दे दी। इसके अतिरिक्त ऑस्ट्रिया ने ६४२ बहुमूल्य पुस्तकें और हस्तलिखित प्रतियाँ नेपोलियन को भेंट करना स्वीकार किया और युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप मे ३४,००,००० पाउण्ड की सुविशाल धन राशि देने की स्वीकृति दी। इन सब प्रदेशों को भेंट करने का अर्थ था ४५,००,००० अधीनस्थ प्रजा की हानि।

यह सन्धि ऑस्ट्रिया के लिए बड़ी अपमानजनक थी। नेपोलियन अपने आदेशो का अक्षरश: पालन करवा लेने की सबल दशा मे था परन्तु युद्ध ने उसके हितो पर बुरा प्रभाव डाला था। स्पेन मे दृढ़तापूर्वक पैर जमाने की उसकी योजनाएँ सर्वथा विफल हो गयी थीं, जहाँ उसके आक्रमण का प्रतिरोध वैसा ही अपराजेय हो रहा था जैसा था। जर्मन देशभक्ति मे जागरण की लहर दौड गयी थी और प्रशा अपने आक्रान्ता से युद्ध करने के लिए साधनों का समुचित संघटन कर रहा था। राष्ट्रीय भावना ने फ्रांसीसियों के सम्राट् के लिए आपत्ति का बीज बो दिया था। गैलिशिया के वार्सा की महान् डची में मिल जाने से रूस बड़ा अप्रसन्न था, उसे इससे बडी घृणा थी। एक आधुनिक लेखक का कथन है कि विएना की सन्धि से जो परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी उसमें एक नये युद्ध के बीज थे।

सन्धि पर हस्ताक्षर होने के कुछ समय पूर्व स्टाप्स नाम के १७ या १८ वर्ष के एक नवयुवक ने नेपोलियन को चाकू से मारने का प्रयत्न किया था। वह पकड़ लिया गया और नेपोलियन के यह पूछने पर कि यदि वह छोड दिया जाय तो क्या करेगा, उसने उत्तर दिया था, "मै पुन: तुम्हें मारने का प्रयास करूँगा।" उसे एक सैनिक न्यायाधिकरण के समक्ष उपस्थित किया गया और १६ अक्तूबर को उसे वर्टम्बर्ग में गोली से मार दिया गया।

इसी समय नेपोलियन ने कुछ प्रदेशों को और मिलाया, और जिन सामन्त राजाओं ने द्वीपीय व्यवस्था का पालन करने से इन्कार किया उन्हें उसने सिंहासन-च्युत कर दिया। पोप को सैवोना में पकड़ लिया गया और कारागृह में बन्दी कर दिया गया। लुई बोनापार्ट को अपने भाई के क्रूर आदेश अति कठोर जान पड़े और उसने हॉलैण्ड के राज्य को त्याग दिया (जुलाई १८१०)। थोड़े ही समय के अनन्तर हैम्बर्ग, हन्सियाटिक नगरों तथा कुछ अन्य प्रदेशों को साम्राज्य में मिला लिया गया। ओल्डनबर्ग को लेने से ज़ार बहुत क्रुद्ध हुआ क्योंकि वहाँ का ड्यूक उसका सम्बन्धी था। नेपोलियन की भी चतुर्दिग्विस्तीर्ण बुद्धि वास्तव में आश्चर्य में डालने वाली थी; एक ओर तो वह खराब प्रदेशो में महान् आक्रमणों की योजनाएँ बना रहा था और दूसरी ओर ब्रिटिश व्यापार के विरुद्ध अपनी व्यवस्था का पालन असाध्य हठ के साथ कर रहा था।

एक अन्य भी महत्त्वपूर्ण घटना है जिसका यहाँ उल्लेख कर देना आवश्यक है। इधर कुछ समय से राजसिंहासन पर एक उत्तराधिकारी को लाने के लिए नेपोलियन पुनः विवाह करने की बात सोच रहा था। तिल्सट मे उसने ज़ार से यह इच्छा प्रकट की थी कि उनकी मैत्री एक वैवाहिक सम्बन्ध से दृढतर हो जानी चाहिए। परन्तु रूस के ताना-शाह को यह प्रस्ताव पसन्द नही आया। जोजेफीन को तलाक दे दिया गया (दिसम्बर, १८०६) और मारी लुई ऑस्ट्रिया की आर्चडचैज के साथ एक नये विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। मारी उस समय अठारह वर्ष की किशोरी थी। उसके पिता तथा वैदेशिक मन्त्री ने इस धारणा से कि नेपोलियन के साथ मैत्री 'राज्य की स्थायी सुरक्षा का कारण और उसकी अविच्छिन्न सत्ता की दृढता का आधार बनेगी'[1] इस कन्या का कूटनीति की वेदी पर बलिदान कर दिया। विवाह के एक वर्ष पश्चात् (२० मार्च, १८११) इसकी उपयोगिता का प्रकटीकरण भी रोम के राजकुमार के जन्म के रूप में हो गया।

नेपोलियन तत्काल ही स्पेन नही लौटा। फ्रांसीसी अधिकृत प्रदेशो की दशा किसी भी प्रकार मे सन्तोषजनक नहीं थी और विद्रोह की अग्नि-ज्वालाएँ अभी तक प्रज्वलित थी। कैटेलोनिया मे स्पेनिश सेनानायकों ने पर्याप्त साहस और कौशल से काम लिया था और फ्रांसीसियो की अच्छी दुर्गति कर दी थी। वैलिंगटन ने सोल को पुर्तगाल के बाहर खदेड़ दिया था, विक्टर और सेबा स्तियानी को पराजित किया था तथा वह मैड्रिड तक बढ़ गया था। २७ और २८ जुलाई को तलावरा मे अंग्रेजो का प्रतिरोध करने के लिए जोज़ेफ को सब मिलाकर ४२,००० सैनिकों का सशस्त्र दल मिला था। यद्यपि वैलिंगटन के पास एक अपेक्षाकृत विशाल सेना थी, युद्ध का परिणाम अनिर्णीत ही रहा और अंग्रेजी सेनानायक पुर्तगाल की ओर भाग गया। सर्वोच्च जन्टा ने मैड्रिड की ओर बढने का एक

१. फ़र्नियर, नेपोलियन की जीवनी, द्वितीय खण्ड, पृ० ११२।

मारी लुईस को यह विवाह-सम्बन्ध अभीष्ट नहीं था। २३ जनवरी को उसने लिखा था—"जब से नेपोलियन ने अपनी पत्नी को तलाक दिया है, मैं सदैव 'फ्रैंक फर्टर ज़ी टुंग' (पत्र) को इसी आशा से खोलती हूँ कि उसमें उसकी दुलहिन का नाम पढ़ूँ और मैं स्वीकार करती हूँ कि विलम्ब मुझे व्याकुल कर रहा है। मैं अपना भाग्य ईश्वर के हाथ में छोड़ती हूँ, केवल वही यह जानता है कि क्या उत्तम है। परन्तु यदि यह होना ही है तो मैं राज्य के कल्याणार्थ अपना सुख बलि कर देने के लिए तत्पर हूँ, मुझे विश्वास है कि वास्तविक आनन्द केवल अपने कर्त्तव्यों की पूर्ति में ही मिल सकता है।"

नया प्रयास किया परन्तु उसे सफलता न मिली और स्पेनिश सेना पराजित हुई। १८०९ के अन्त तक स्पेन का बृहत् भाग फ्रांसीसी हाथों मे आ गया था।

यदि नेपोलियन इस समय आ जाता तो युद्ध की स्थिति कुछ दूसरी ही होती। स्वदेश की विषम समस्याओं तथा केन्द्रीय और पूर्वीय यूरोप के नये-नये विद्रोहों ने उसे दूर ही रखा। परन्तु उसने १,००,००० सैनिको की एक सशस्त्र सेना स्पेन मे भेज दी और इस प्रकार उसने अपने सेनानायको के हाथ मे एक उत्तम सेना दे दी। अपनी स्थिति को दृढ करने के लिए फ्रांसीसियो के लिए यह आवश्यक था कि वे एण्डेल्यूसिया और पुर्तगाल पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लें। वैलिगटन ने पुर्तगाल मे अपने पैर दृढता-पूर्वक जमा लिये थे और उसको वहाँ से हटाना सरल नही था। ६०,००० सैनिकों के साथ सोल ने सैवील की ओर प्रस्थान किया और उस पर अधिकार स्थापित कर लिया। सर्वोच्च जण्टा कैडिज में शरण लेने के लिए भागी परन्तु वहाँ पहले से ही जोजेफ डटा हुआ था। नगर का घेरा कुछ समय के लिए टल गया, और फ्रांसीसी पूर्ण रूप से उसपर अधिकार न प्राप्त कर सके। मसैना पुर्तगाल की ओर बढा परन्तु वैलिगटन हौरेस वेडरास नाम की प्रसिद्ध संरक्षण-भित्तियो के पीछे पडा रहा, इन भित्तियो का विस्तार समुद्रतट से तागस तक २९ मील था। ये भित्ति-रेखाएँ सर्वथा अगम थीं, अतः मसेना को अपने कई सैनिकों के जीवन से हाथ धोना पड़ा और वह लौट आया। वैलिंगटन ने इस प्रकार से जो लाभ अर्जित किया था उसकी समुचित दृढ़ता के लिए उसने बोदाजोज पर पुन: अधिकार करने का आदेश दिया। मसेना ने पुन. बड़ी वीरता से फ्यूण्टीज़ द ओनारो दो'नरो मे ५ मई, १८११ को एक अन्य साहसिक सघर्ष लिया परन्तु इसका कोई निश्चित परिणाम न हुआ। अग्रेजों ने बेरेस्फोर्ड की सैनिक अध्यक्षता मे अल्ब्युरा पर सोल के नेतृत्व में लड़ने वाली फ्रांसीसी सेना पर विजय प्राप्त की (१६ मई) परन्तु इससे उन्हें कोई लाभ नही हुआ। मसेना की असफलता ने सम्राट् को सैनिक अध्यक्ष बदलने के लिए विवश किया और उसका स्थान मार्शल मारमौ ने ग्रहण किया।

फ्रासीसियो पर जो महती विपत्तियाँ आयीं उनका यूरोप पर बड़ा गम्भीर प्रभाव पड़ा। नेपोलियन की अप्रतिरुद्ध शक्ति पर लोगो को सन्देह होने लगा और सामान्य-जन एक अखिल यूरोपीय युद्ध की चर्चा करने लगे जो उनके शब्दों मे विश्व के महानतम अभूतपूर्व अत्याचार का विध्वंस करने वाला होगा।

१८१२ का वर्ष फ्रांसीसियों के लिए और भी अशुभ सिद्ध हुआ। स्पेन के प्रति-रोधों पर अभी अधिकार जमाया नही गया था और स्पेनिश सेनानायकों की गुरील्ला दाँवपेचों ने युद्ध-योजना को ध्वस्त कर डाला था। सेनानायको के पारस्परिक मतभेदों ने फ्रांसीसी सैनिक नीति को पर्याप्त दुर्बल कर दिया था। जोज़ेफ सर्वोच्च सैनिक

अध्यक्ष के पद पर था परन्तु उसका सहयोगी, जूँर्दा उसके आदेशों का पालन करने के लिए तैयार नहीं था।

वैलिगटन ने अब सैलामैनका में शत्रु पर आक्रमण करने का निश्चय किया (२२ जुलाई, १८१२) और मारमौ को पराजित कर दिया। लगभग १२,००० मनुष्यों के प्राण गये और इससे भी अधिक घायल हुए तथा युद्धबन्दी बनाये गये। जोजेफ ने पराजय का समाचार सुना तो उसने मैड्रिड छोड़ दिया और वालेन्शिया की ओर भागा। कैडिज पर घेरा डाल लिया गया और ५५,००० सैनिकों को लेकर सोल वालेन्शिया की ओर चला जहाँ जोजेफ ने पहले से ही एक विशाल सेना एकत्र की हुई थी। पुनः एक बार जोज़ेड ने मैड्रिड मे प्रवेश किया (३ नवम्बर, १८१२) परन्तु फिर उसने कुछ महीनो के बाद उसे त्याग दिया। सोल को भी जर्मनी जाने का आदेश मिला।

युद्ध कुछ समय तक चलता रहा परन्तु फ्रांसीसियो को इससे कोई लाभ नही हुआ। नेपोलियन यूरोप मे बडी विषम कठिनाइयों मे फँस गया था। उसने फ़र्डिनैण्ड को उसका राज्य लौटा देने के लिए कहा और यह भी कहा कि वह अपनी सेनाएँ वहाँ से हटा लेगा यदि इंग्लैण्ड ने भी वैसा ही किया। कोर्टीज ने फ़र्डिनैण्ड और उसके बीच हुई सन्धि को नवस्वीकृति देने मे इन्कार कर दिया। जब १८१४ के अप्रैल मे साम्राज्य का पतन हुआ तो फ़र्डिनैण्ड लौट आया और उसने अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लिया। वास्तव में स्पेनिश युद्ध 'एक विध्वंसक नासूर था जिसने नेपोलियन के भाग्य पर बडा विनाशकारी प्रभाव डाला।'

स्पेन में नेपोलियन की विफलता के कारण सर्वथा स्पष्ट ही है। स्पेनवासियों के हठपूर्ण प्रतिरोध ने फ्रांस की प्रगति को पद-पद पर कठिन बना दिया था। फ्रांसीसी मार्शल आपस में एकमत नहीं हो पाते थे और इसीलिए इस विषय में वे अपने विरोधियों से बहुत निर्बल थे। वे कभी-कभी मनमानी करने लग जाते थे और उनके मतभेदों ने कार्यवाहियों की प्रगति में बड़ी बाधा उपस्थित कर दी थी। वैलिगटन एक महान् योद्धा तथा सेनानायक था, उसके साहस तथा युद्ध-शैली के ज्ञान ने अंग्रेजों का सिर ऊँचा कर दिया था। परन्तु इस विषय मे अन्य सभी सहायक कारणों की अपेक्षा सबसे महत्त्व-पूर्ण कारण था नेपोलियन की रूस पर आक्रमण करने की योजना बनाने की सबसे बड़ी ग़लती जबकि उसकी सेनाएँ अभी स्पेन में ही पडी हुई थीं। या तो उसे अपना सम्पूर्ण बल और सामर्थ्य स्पेनिश प्रतिरोध को कुचल डालने के लिए एकाग्र करना चाहिए था, या पूर्वीय यूरोप मे एक भयङ्कर युद्ध आरम्भ करने के पूर्व उसे स्पेनवासियां से शान्ति-सन्धि कर लेनी चाहिए थी।

रूस से युद्ध

अभी स्पेनिश युद्ध चल ही रहा था कि नेपोलियन ने एक अधिक भयङ्कर अभियान का निश्चय कर डाला। यह था उसका रूस पर आक्रमण करने का निश्चय। तिल्सट में सम्पन्न १८०७ की सन्धि एक मिथ्या-मैत्री ही थी और एरफर्ट का सम्मेलन दोनों के ही लिए निराशा से बढ कर कुछ नही था। यद्यपि दोनो ने एक-दूसरे की सहायता करना स्वीकार किया था, फिनलैण्ड अभी भी स्वीडन के अधिकार में था और डैन्यूबियन प्रदेश अभी तक तुर्की साम्राज्य का भाग बना हुआ था। १८०९ के ऑस्ट्रियन युद्ध में अलैक्ज़ैण्डर ने कोई सहायता नही की थी; इसके विपरीत, वह ऑस्ट्रिया को नेपोलियन के विरुद्ध प्रोत्साहित करता रहा था। जब नेपोलियन ने जार की बहिन से विवाह करने की इच्छा प्रकट की तो उसने यह कहकर कि यह मामला मेरी माँ के हाथ में है और मै इस विषय में कुछ भी नही कर सकता, अपना पीछा छुडाया था। इस बात से दोनों में कुछ मनमुटाव पैदा हो गया था। मारी लुई के साथ नेपोलियन के विवाह ने जार को चिन्ताकुल कर दिया था। वह सोचता था कि "यदि इस विवाह से कोई भी बन्धन पैदा होगे तो वे निश्चय ही रूस के विरुद्ध होगे।" इसके अतिरिक्त, अलैक्ज़ैण्डर वार्सा की महान् डची के पुन:संघटन को पोलैण्ड की पुन:प्रतिष्ठा का आरम्भ मानता था और वह स्पष्ट ही देख रहा था कि नेपोलियन उसके इन मामलों में सहायक नही बनेगा। जर्मनी के उत्तरी समुद्र तट का साम्राज्य मे मिलाया जाना और ओल्डन-बर्ग के ड्यूक की पदच्युति तिल्सट की सन्धि के प्रतिकूल कार्य थे। इससे जार बड़ा नाराज हो गया था। हैम्बर्ग, ब्रोमेन और ल्यूबेक के हैन्सियाटिक नगरों को भी फ्रासीसी साम्राज्य में मिला लिया गया था। इसने जार के वंशगत स्वाभिमान और राजनीतिक हितों को ठेस पहुँचायी। इसके अतिरिक्त एक अन्य भी कारण था जिसने दोनों की मैत्री का विनाश किया। तिल्सट मे जार ने द्वीपीय व्यवस्था को जारी करने की स्वीकृति दी थी, परन्तु रूस एक कृषिप्रधान देश था, उसके लिए ब्रिटिश तथा औपनिवेशिक माल के बिना काम चलाना असंभव था। देश की जनता ने ज़ार के समझौते को अस्वीकार किया और इस प्रकार गुप्तरूप से विदेशी माल का आयात-निर्यात होने लगा। ज़ार का इस ओर से आँखें मूँद लेना आवश्यक था। इसका फल यह हुआ कि ब्रिटिश और औपनिवेशिक माल रूस के बन्दरगाहो मे खूब भर गया और वहाँ से वह ऑस्ट्रिया, जर्मनी तथा अन्य देशों में भी भेजा जाने लगा। यह कहा जाता था कि रूस ने १८१० के लाइप्जिग के मेले में ब्रिटिश माल से भरी हुई सात सौ गाडियाँ भेजी थी। नेपोलियन ने इस प्रकार के व्यतिकरों को रोकने के कुछ उपाय किये भी थे और कभी-कभी तो उसके कार्यकर्त्ताओं ने ऐसा माल ज़ब्त कर लिया और जला दिया था। अक्तूबर,

१८१० में नेपोलियन ने ज़ार से ऐसे आयातो पर रोक लगाने के लिए कहा जो उभय-पक्षानुप्रेक्षी (तटस्थ) नौयानों के द्वारा रूस में आते थे। उसने इस मांग को पूरा करने से इन्कार कर दिया और उसने अपना पक्षसमर्थन करते हुए कहा कि उसका देश औपनिवेशिक माल के बिना नही रह सकता और जिस सन्धिपत्र पर उसने हस्ताक्षर किया था उसकी शर्तें उभयपक्षानुपेक्षी जहाज़ों पर लागू नही होती है। कुछ महीनो के पश्चात् ज़ार ने फैन्सी (प्रदर्शनीय) माल, सिल्क और कच्ची शराब का प्रवेश रूस में रोक दिया और मदिराओं पर भारी आयातकर लगा दिया। इस कार्य ने फ्रास को बहुत हानि पहुँचायी और नेपोलियन इससे बड़ा नाराज़ हुआ।[1]

तिल्सट की "हृर्षोत्पादक मैत्री" इस प्रकार से बडी आपत्ति मे पड़ गयी थी और अलैक्जैण्डर ने फ्रांसीसी सशस्त्र सेना की शक्ति के विषय मे फ्रांस के युद्धमन्त्रालय से गुप्त रूप से सूचना पाकर सुरक्षा की योजनाओ का निर्माण करने का आदेश स्वदेश में जारी कर दिया। शान्ति का बहाना कुछ समय तक तो चला परन्तु १८१२ के आरम्भ के वाद से वास्तविकता स्पष्ट रूप से दिखायी देने लगी। फरवरी, १८१२ मे अलैक्जैण्डर ने फ्रांसीसी राजदूत से कहा था, "मैं दस वर्ष तक युद्ध करने के लिए तैय्यार हूँ; मैं साइबेरिया मे भग जाना श्रेयस्कर समझता हूँ बजाय इसके कि रूस को भी ऑस्ट्रिया और प्रशा की स्थिति मे होना पड़े।"

दोनो ही सम्राट् यूरोप में मित्रो की खोज मे थे। प्रशा इस अवसर पर दो-रंगी चाल खेल गया। उसने नेपोलियन के साथ एक सन्धि करना स्वीकार किया था परन्तु साथ ही साथ १७ अक्तूबर, १८११ को उसने ज़ार के साथ एक सम्मेलन की योजना बना डाली। इंग्लैण्ड ने भी आर्थिक सहायता देने का वचन दिया। फ्रेड्रिक विलियम ने पुन: अपनी अस्थिरता का प्रदर्शन किया। हार्डनवर्ग ने २४ फरवरी, १८१२ को फ्रांस के साथ एक आक्रमणात्मक और सरक्षणात्मक सन्धि पर हस्ताक्षर किये, जिससे प्रशा ने नेपोलियन को २०,००० सैनिकों की सशस्त्र सेना और साठ बडी तोप (आर्टिलरी पीसेज़) देना स्वीकार किया और नेपोलियन की महान् सेना को अपने प्रदेशों में से स्वतन्त्रतापूर्वक गुजर जाने की स्वीकृति दी। इसके साथ ही साथ उसने

१. ज़ार चार बातें चाहता था; (१) स्वीडिश पोमीरेनिया और प्रशा को खाली कराना, (२) डैन्जिग में से सैनिक दलों का हटाया जान (३) राजकुमार ओल्डनबर्ग के लिए क्षति पूर्ति, (४) फ्रांस के आयात माल पर एक नया कर लगाना। नेपोलियन इन मागों को पूरा करने के लिए तैयार नहीं था और इस प्रकार युद्ध अनिवार्य हो गया।

जार को लिख भेजा कि प्रशा रूस की न्यूनतम-सम्भव हानि ही करेगा। मैटरनिश इस सारी परिस्थिति के इस प्रकार से बदल जाने पर बडा प्रसन्न था परन्तु दूरदर्शिता के संकेत स्पष्ट थे। उसने तत्काल अपने आपको दोनोमेंसे किसीभीपक्ष कीओर नही घोषित किया। १४ मार्च, १८१२ को श्वार्जेनवर्ग ने फ्रास के साथ एक सन्धि की जिसके द्वारा ऑस्ट्रिया को ३०,००० सैनिक दल अपने ही एक सेनानायक की अध्यक्षता मे प्रदान करने थे और नेपोलियन ने उसे युद्ध के अनन्तर इल्लीरियन प्रान्तो को लौटा देने का वचन दिया। प्रशा का ही अनुसरण करते हुए उसने भी कहा "हम तो केवल सहकारी-मात्र होगे और आपसे वही व्यवहार करेगे जो आप ने (योर मैजेस्टी ने) हमारे साथ कया था (१८०९)।" जार ने फ्रासिस को विश्वास दिलाया कि उसे अपने हाथो मे किञ्चिन्मात्र आघात का भी भय करने की आवश्यकता नही है। इस प्रकार के थे मित्र जिनके साहाय्य पर नेपोलियन अपने जीवन का सबसे कठिन और भयङ्कर साहसिक कार्य पूर्ण करने जा रहा था। पुन एक बार उसने स्वीडन और टर्कीसे सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया परन्तु उसको सफलता न मिली। द्वीपीय व्यवस्था का समुचित पालन न करने के अपराध मे स्वीडिश पोमरानिया के घेरे ने फ्रांसीसी मार्शल वर्नादोत्ते को नाराज कर दिया था जोकि स्वीडन का राजा निर्वाचित हुआ था। तिल्सट की सन्धि की कठोर धाराओ को स्मरण रखते हुए टर्की ने नेपोलियन के प्रस्तावो का कोई उत्तर नही दिया था।

१५ अप्रैल १८१२ को रूस ने स्वीडन के साथ आबो मे एक मैत्री-सन्धि की और १८ जुलाई, १८१२ को इंग्लैण्ड और स्वीडन के बीच एक शान्ति-सन्धि हुई। पहली सन्धि के द्वारा रूस ने स्वीडन को नॉर्वे दिलाने का वचन दिया और दूसरी के द्वारा स्वीडन ने अंग्रेजी माल के लिए अपने बन्दरगाह खोल दिये। २८ मई को जार ने टर्की के साथ बुखारेस्ट की शान्ति-सन्धि पर हस्ताक्षर किये और वेस्सेरेबिया को छोड़कर अन्य सभी प्रान्तों, जो उसने ले लिये थे को लौटा देने का वचन दिया।

इन सन्धियों से अपने आपको सुरक्षित कर जार ने पेरिस मे युद्ध की अन्तिम चुनौती भेजी और इस प्रकार युद्ध अनिवार्य हो गया। ड्रेस्डन में नेपोलियन ने एक विशाल सेना एकत्र कर ली, जिसमें विभिन्न राष्ट्रो के ६,५०,००० सैनिक थे, जो स्वभावत: एक वाहिनी के रूप मे कार्य करने को राजी नही थे। यह 'उपद्रवी कोलाहल की एक सुनियन्त्रित सेना थी' जिसमे स्विज़, इल्लीरियन, जर्मन, पुर्तगाली स्पेनवासी, पोलिश और राइन के सयुक्त राष्ट्रो के प्रतिनिधि थे। इसके नेता, जिनमें से अनेक बड़े मँजे हुए योद्धा थे, अन्तहीन युद्धों की परेशानी के कारण अपना पुराना सैनिक उत्साह खो बैठे थे। सैनिकों मे से अधिकांश तो नये रंगरूट थे, जो रूसी जाड़े

की सर्दी को सहने के लिए तैयार नहीं थे। सम्राट् स्वय भी वही वीर योद्धा नही था जो वह पहले था। वह अपनी आश्चर्यजनक कर्मशक्ति को खो चुका था और एक 'गुप्त रोग' से पीडित रहता था जिसने उसे आरामपसन्द बना दिया था। एक फ्रासीसी लेखक का कहना है, "यद्यपि अपनी सामर्थ्य से वह अभी भी तेजस्वी लगता था, पर अब उसमें भी दुर्बलताएँ आ गयी थी, महीनो वह शारीरिक मूर्च्छा के आघातों और दीर्घ नैतिक त्रुटियो का शिकार बन चुका था।"[1]

२४ जून को इस महामहिम सेना ने नाइमन को पार किया और यह रूसी पोलैण्ड के अन्तर्गत विल्ना में पहुँची। फ्रासीसी सेना की प्रगति में रूस का जाड़ा बुरी तरह बाधक हुआ और इस पर रूसियो की युद्धनीति ने उसे और भी परेशान कर दिया। सहस्रो सिपाही सेना को छोड़कर भाग गये और आगे बढ़ने की कठिनाइयाँ उनके लिए असह्य हो गयी।

वर्षा के प्रचंड वेग ने उनकी कठिनाइयों को और भी बढ़ा दिया था। सामने जो कुछ था वह जंगल ही जगल था, वहाँ के गॉवो और वरो को रूसियो ने जला दिया था। सम्राट् ने वर्तियर से कहा था जो उसके साथ-साथ युद्धाभियान मे घोड़े पर चल रहा था, कि "यह तो बड़ा भयङ्कर मौसम है।"

रूसी सेनानायक बारक्ले दे तौली और बाग्रास्यो ने युद्ध करने से इन्कार कर दिया और आक्रमणकारी सेना के सामने से लौट पड़े। नेपोलियन की योजना विफल हो गयी। उसने रूसियो पर एकबारगी ही आक्रमण कर देने का निश्चय किया था जिससे वह उनको एक गम्भीर पराजय दे सकता, परन्तु यह न हो सका। उसने नाइपर को पार किया, स्मोलैन्स्क मे पहुँचा जहाँ रूसी सेनानायको ने अपने सैनिक एकत्रित किये थे। प्रथम आक्रमण तो विफल ही सिद्ध हुआ (१६ अगस्त, १८१२) परन्तु दूसरे आक्रमण में पूर्ण विजय प्राप्त हुई। फ्रांसीसी पक्ष मे हानि बहुत अधिक हुई; उसके १०,००० सैनिक मरे या घायल हुए। रूसियो के लगभग ६,००० सैनिकों का विनाश हुआ। यदि नेपोलियन ने यही अपने आपको रोक लिया होता और सेना का समुचित संघटन करता तथा आक्रमणों को किसी अन्य अनुकूल मौसम के लिए स्थगित कर दिया होता तो बहुत अच्छा होता।

रूसी सेना की सर्वोच्च सैनिक अध्यक्षता अब कुतुसोव को सौप दी गयी। वेनिग्सन के परामर्श से उसने बोरोडिनो मे युद्ध करने का निश्चय किया। नेपोलियन स्मोलैन्स्क से शत्रु का पीछा करने निकल पड़ा। सेना को मार्ग में बड़ी कठिनाइयों का

१. लुई मादलें : कन्स्युलेट एण्ड दि एम्पायर, द्वितीय खण्ड, पृ० १४६।

सामना करना पड़ा। रूसी लोग जैसे-जैसे पीछे हटते जाते थे गाँवो और नगरो को जलाते जाते थे और इस प्रकार से वे शत्रु की प्रगति को अति कठिन बनाते जा रहे थे। अन्ततः नेपोलियन बोरोडिनो मे पहुँचा, वहाँ ७ सितम्बर को एक युद्ध हुआ। दोनो पक्षो ने बड़ी वीरता के साथ युद्ध किया, यह नही कहा जा सकता कि किस पक्ष की विजय हुई। विजित और पराजित दोनो ही प्रशसा के पात्र थे। लगभग पचास सहस्र रूसी मारे गये परन्तु उनका उत्साह पहले की तरह ही था। म्यूरा सबसे पहले मास्को पहुँचा और सम्राट् भी १४ सितम्बर को उससे जा मिला। नगर पूर्णतः विध्वस्त हो गया था, लोग अपने घर छोड़ गये थे और उनमे वहाँ रखी सामग्री मे आग लगा गये थे।[1] फ्रासीसियो ने आग बुझाने का प्रयत्न किया परन्तु विफल रहे। नेपोलियन क्रैमलिन मे रुका रहा और उसने जार को आपसी झगड़े समाप्त करने के लिए लिखा परन्तु उसकी ओर से कोई उत्तर नही मिला। २० सितम्बर को उसने अन्तिम बार लिखा—

"यदि आप (योर मैजेस्टी) के हृदय मे मेरे प्रति पूर्वमैत्री का कोई भी अश बचा हो तो आप यह पत्र अनुग्रहपूर्वक स्वीकार करेंगे और सभी अवसरों पर आप मेरे प्रति मॉस्को में होने वाली घटनाओ की सूचना देने के लिए कृतज्ञ होगे।"

जार अलैक्जैण्डर ने कोई उत्तर नहीं दिया और नेपोलियन ने १६ अक्तूबर को लौटना आरम्भ कर दिया। फ्रासीसी पक्ष के विध्वस की बात सुनकर कुतुसोव ने पुनः २४ अक्तूबर को मालो-जरोस्टावैज पर एक युद्ध छेड़ दिया, इसमें दोनो ही पक्षो को भारी हानि उठानी पड़ी और नेपोलियन कौसक लोगो द्वारा पकड़े जाने से बाल-बाल बचा।

क्रस्नॉय के युद्ध (१५, नवम्बर) के पश्चात् जब फ्रांसीसी सैनिक दल लौट रहे थे तो रूसियों ने उन्हें बडा परेशान किया। जाड़ा बहुत भयङ्कर हो गया था और सेना के कष्ट बड़े दुःसह हो गये थे। शीत और तुषार से तंग आये हुए और महानतम कठिनाइयों का सामना करते हुए सहस्रों पीछे चलने वालों को अपने श्रान्त पथ पर घिसटते हुए देखना वास्तव मे एक दयनीय दृश्य बन गया था।

"सच पूछिए तो जूते वहाँ थे ही नही। पैरों को चीथड़ों और खाल के टुकड़ों से

१. मास्को की इस समय २०००००—३०००००० जनसंख्या थी और इसमें ८६७३ घर थे जिनमें से ६५४४ घरों से कम संख्या लकड़ी के घरों की नहीं थी। रूसियों के द्वारा इनका विनाश कर देने के बाद केवल ५२५ संग्रहालय (स्टोर हाउस) और १७९७ काष्ठ गृह बच गये थे।

ढककर ऊपर रस्सी बाँधे हुए वे दुर्भाग्य के मारे हुए लँगड़ा कर चल रहे थे, अपने मैले-कुचैले चिथडे और गन्दगी में वे पहचाने ही नही जाते थे और किसी के लिए यह विश्वास करना कि ये ही दीन जीव कभी महतीसेना (ग्रान्द आर्मी) के कुशल सैनिक थे, बड़ा कठिन हो गया था।"

जब सेना ने बैरेसीना नदी को पार किया (२६–२८ नवम्बर) तो रूसियों ने इन श्रान्त पथिकों के समुदाय पर अग्निवर्षा कर दी और एक भयङ्कर दृश्य उपस्थित कर दिया। इसमे ३०,००० से कम मनुष्यो की क्षति नहीं हुई। जैसे-जैसे दिसम्बर मास निकट आ रहा था शीत अधिकाधिक कठोर और असह्य होती जा रही थी और सेना ने अपना नैतिक स्तर पूर्णरूप से खो दिया था। इस महादुर्घटना के कारण फ्रास की जनता के हृदय पर पडे अनुप्रभावों से भयभीत नेपोलियन ने शीघ्रतापूर्वक पाँच दिसम्बर को अपने कुछ फ्रांसीसी सैनिक अफसरो के साथ पेरिस के लिए प्रस्थान कर दिया। १० तारीख को वह वार्सा पहुँचा और बिना किसी के द्वारा पहचाने गये वह पैदल ही एक होटल में गया। थोडा विश्राम कर लेने के पश्चात् पुन: उसने अपनी यात्रा आरंभ की और १८ दिसम्बर, १८१२ को उसने पेरिस मे प्रवेश किया।

रूसी अभियान एक महान् विफलता थी। इस प्रकार के अनिश्चिताकृति के देश पर आक्रमण करने का विचार एक बहुत ही बड़ी भूल थी, इसके लिए उससे कही अधिक साधन-सामग्री की आवश्यकता थी जितनी उस समय नेपोलियन के पास थी। मौसम की प्रतिकूलता ने सेना की कार्यशीलता को बहुत कम कर दिया था और अभियान में लगे हुए सहस्रो मनुष्यों का सर्वनाश कर दिया।

रूसियो की युद्ध-शैली ने उनके शत्रुओं को विक्षुब्ध कर दिया था, उनको अपने सामने जले हुए नगरों और विध्वस गाँवो के सिवा कुछ भी नही मिलता था। नेपोलियन को पहले स्पेनवासियों को पराजित कर उनसे शान्ति-सन्धि कर लेनी चाहिए थी और प्रशा की उन्नतिशील शक्ति पर रोक लगानी चाहिए थी। ऑस्ट्रिया और प्रशा बड़े सन्दिग्ध मित्र थे और यह समझना बड़ा कठिन है कि उसने उनकी सहकारिता पर कैसे विश्वास कर लिया। जब वह मॉस्को मे था तो उसे जार के उत्तर की प्रतीक्षा करने के बजाय रूसी सेना को हराने और उसकी शक्ति का सर्वनाश करने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए था। वह वहाँ उससे कही अधिक समय के लिए रुका रहा जितने की उसे आवश्यकता थी अथवा जितना उसके हित मे था। वह जार के स्वभाव और चरित्र को न समझ सका, और उसके हृदय की आन्तरिक भावनाओ-प्रतिभावनाओं का उसे कुछ भी ज्ञान नही था। अपनी पूरी बौद्धिक कुशलता और दूरदर्शी सूझ के रहते भी वह जार के वास्तविक उद्देश्यो को माप न सका और इस कठिन स्थिति मे भी उसने

अपनी पूर्वमैत्री का उसे स्मरण दिलाया। यह एक सर्वथा निरर्थक आशा थी।

रसद विभाग की कुव्यवस्था ने सेना के कष्टो और कठिनाइयों को और भी अधिक बढ़ा दिया था, भोजन और चारे के अभाव मे सैनिकों और अश्वो की एक महती संख्या नष्ट हो गयी। इसके अतिरिक्त इस आक्रमण की विफलता का कारण यह भी था कि यह युद्ध नेपोलियन के अनुरूप नही था। वह अब पहले का सा महादानवीय बल और अचूक सूझ वाला पुरुष नही रह गया था जो आस्टरलिट्ज और जीना मे था। सब मिलाकर यह दुर्घटना इतनी विशाल और आश्चर्यजनक थी कि अनेक लोग इसे 'दैवी प्रतिशोध का पूर्व सकेत'' समझने लगे।

द्वीपीय व्यवस्था

द्वीपीय व्यवस्था नेपोलियन का निजी आविष्कार नही था। वह विचाररूप मे राष्ट्रीय कन्वेशन के नेताओं के दिमाग मे पहले से ही वर्तमान था, और जब १७६५ मे सचालक मण्डल यानी डाइरेक्टरी की प्रतिष्ठापना हुई तो इसे अभिनव बल एव शक्ति मिली। ३१ अक्तूबर, १७६६ के एक अध्यादेश के द्वारा सचालक मण्डल ने विदेशी व्यापार का निषेध कर दिया और फ्रास से शत्रु के माल का वहिष्कार कर दिया। फरवरी, १७६८ को नेपोलियन ने सचालक मण्डल को सूचित किया कि ग्रेट ब्रिटेन के साथ वे चार प्रकार से लोहा ले सकते हैं; (१) सीधा आक्रमण, (२) हैनोवर और हैम्बर्ग पर अधिकार, (३) लेवॉट का अभियान, तथा (४) इन सब उपायो के विफल हो जाने पर शान्ति-सन्धि। इन उपर्युक्त उपायों के विफल हो जाने पर उसने व्यापारिक युद्ध-नीति का आश्रय लिया और कन्स्युलेट के समय तक इसी नीति का पालन करता रहा। कालान्तर मे जब साम्राज्य की ध्वजा सुदूर देशो मे फहराने लगी उसने ज़ार से एक सन्धि कर ली और इंग्लैण्ड की शक्ति को उसके व्यापार का विनाश करके विध्वस्त करने की महती योजना बनायी। १६ मई, १८०६ को जारी किये गये कॉरेनबिलफॉक्स मन्त्रि मण्डल के परिषदीय आदेशों में (आर्डर्स इन कौन्सिल) इस नीति का अच्छा बहाना मिल गया था, उन्होने ब्रेस्ट से एल्ब तक समुद्रतट को अवरुद्ध कर दिया था। इसके अनन्तर २१ नवम्बर, १८०६ का सुप्रसिद्ध बर्लिन अध्यादेश जारी हुआ जिसके द्वारा ब्रिटिश द्वीपों को निषिद्ध प्रदेश घोषित किया गया और आदेश दिया कि यदि कोई भी ब्रिटिश प्रजा का व्यक्ति फ्रास अथवा उसके मित्र राज्यो मे पकड़ा जाय तो उसे बन्दी बनाया जाय और उसकी व्यापारिक सामग्री को छीन कर जब्त कर लिया जाय। ब्रिटिश द्वीपो के साथ किसी प्रकार का व्यापार अथवा आयात-निर्यात पूर्णतः निषिद्ध था। नेपोलियन ने अपने सभी सैनिक और आर्थिक साधनो को इंग्लैण्ड की क्षति करने मे

लगा दिया था। ब्रिटिश राज्यशासन ने दो विशेष बाते की--इसने समुद्रमार्गों को खुला और स्वतन्त्र रखने का प्रयास किया जिससे कि उभयपक्षानुपेक्षी (तटस्थ) लोग ग्रेट ब्रिटेन के साथ सुविधापूर्वक व्यापार कर सके, और यह उन उभयपक्षानुपेक्षियो को दण्डित करता था जो द्वीपीय व्यवस्था का अनुसरण करने लग जाते थे। ७ जनवरी, १८०७ के एक परिषदीय अध्यादेश (आर्डर इन कौसिल) मे कहा गया था–

"कि कोई जहाज एक भाग से दूसरे भाग तक व्यापार नही कर सकेगा, दोनो ही से जो बन्दरगाह फ्रास के या उसके अधिकार मे होगे अथवा उसके मित्रराज्यो के होगे, अथवा जो अभी तक उनके नियन्त्रण मे होंगे उनसे ब्रिटिश जहाज स्वतन्त्रतापूर्वक व्यापार नही कर सकेंगे।"

इसके अनन्तर जारी किये जाने वाले परिषदीय आदेश (Orders in Council) उभयपक्षानुपेक्षी जहाजो को इस बात के लिए तैयार करने के लिए थे कि वे नेपोलियन के अध्यादेशो का उल्लंघन करें तथा उन देशो को सहायता पहुँचाये जो विदेशी माल की अपेक्षा रखते थे।

२५ नवम्बर, १८०७ के परिषदीय आदेशो का उद्देश्य उन उभयपक्षानुपेक्षी जहाजो को व्यापारिक सुविधाएँ प्रदान करना था जो वेस्टइण्डीज या अमरीका के ब्रिटिश अथवा उनके विरोधी बन्दरगाहों मे घूमते रहते थे, तथा इससे उनको भी सुविधा दी गयी थी जो शृंखलित (चैनल) द्वीपो, मानव द्वीप (आइल ऑव मैन), जिब्राल्टर अथवा माल्टा और अन्य किसी विरोधी बन्दरगाह पर जो कि ब्रिटिश नौयानो के द्वारा निषिद्ध थे, घूमते हों।

यूरोप के राज्यों ने द्वीपीय व्यवस्था को पसन्द नही किया। फ्रांस के निर्भर राज्यो को विवश होकर इसमें सहयोग देना पड़ा परन्तु इसके पालन का अर्थ उनके लिए महाबलिदान और भारी परेशानी ही थी। नेपोलियन नेप्ल्स, हॉलैण्ड, राइन सघ के सदस्यों, इटली राज्य तथा वार्सा की ड्यूकी को इसमे सहयोग देने के लिए बाध्य किया, और वे लोग उसकी आज्ञा का उल्लघन न कर सके। उसका भाई लुई बोनापार्ट, जो हॉलैण्ड का राजा बना दिया गया था, अपनी प्रजा के कष्टो को देखकर बड़ा दुःखी था; और जब उसने नेपोलियन को उसके निषेधक अध्यादेशो के भयंकर परिणामो का परिज्ञान कराया तो उसने उत्तर दिया था कि इग्लैण्ड से सघर्ष करने और उसको शान्तिसन्धि करने के लिए विवश करने का एकमात्र यही उपाय है। ऐसा था उसका विश्वास ब्रिटेन का विनाश करने के इस उपाय की शक्ति मे, कि इसके विरुद्ध वह कोई आक्षेप या शिकायत नही सुनता था और राजनीतिक अर्थशास्त्र के नियमों की पूर्ण उपेक्षा करता हुआ वह अपनी नीति का पालन करता जा रहा था। वह आर्थिक

समस्याओ पर एक महासेनानायक की बुद्धि का आरोप करना चाहता था और प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छाशक्ति के समक्ष झुकाना चाहता था। टर्की, सिसिली और पुर्तगाल को छोडकर यूरोप के सभी राज्य उसकी व्यवस्था के अधीन हो गये थे, परन्तु उसके अधिकारियो की सतर्क सावधानी के रहते हुए भी ब्रिटिश और औपनिवेशिक माल उन मित्र राज्यो मे पहुँच ही जाता था जो उस माल के विना रह नही सकते थे। इस प्रकार के अवैध आयात-निर्यात के विषय मे यूरोप के विभिन्न भागो से उसे जो समाचार प्राप्त होते थे उनसे वह बड़ा विक्षुब्ध होता था। १७ दिसम्बर, १८०७ को मिलान से उसने जो एक अध्यादेश जारी किया वह उभय पक्षानुपेक्षी जहाजो को असुविधा मे डालने के लिए था। इसके अनुसार ऐसा कोई भी जहाज जिसकी तलाशी ब्रिटिश जहाज ने ली हो अथवा जिसने कोई ब्रिटिश कर दिया हो 'अराष्ट्रीकृत' कर दिया जायगा। इसे एक वैध पुरस्कार के रूप मे स्वीकार किया जायगा और फ्रासीसी जहाज इसे अपहृत करने के अधिकारी माने जायेंगे। जिस उत्साह के साथ यह अध्यादेश जारी किया गया था उसी उत्साह के साथ इसका पालन नही किया गया। सम्राट् के आदेशो का उल्लघन करने मे इग्लैण्ड ने अपनी ओर से कोई उपाय नही छोड़ा, और यूरोप के लिए ब्रिटिश माल के बिना जीवित रहना असम्भव था। इस प्रकार से सर्वत्र, एक सुविस्तीर्ण अवैध आयात-निर्यात व्यवसाय चल निकला।

नेपोलियन ने समुद्रतटो को फ्रांसीसी नियन्त्रण मे लाने का प्रयास किया क्योकि इसके विना उसकी व्यवस्था का समुचित पालन होना असंभव था। इटली के समुद्रतटो पर उसका अधिकार था ही; स्पेन और पुर्तगाल केवल नाममात्र के लिए उसकी व्यवस्था के परिपोषक थे; हॉलैण्ड और बेल्जियम मे निषेधक अध्यादेशो की निरन्तर अवहेलना की गयी थी और वहाँ अवैध आयात-निर्यात खुले तौर पर चलता था। अत्यधिक क्रुद्ध होकर नेपोलियन ने लुई बोनापार्ट को सिहासन-च्युत कर दिया क्योकि वह द्वीपीय व्यवस्था का अनुपालन करने में असफल रहा था और उसने ६ जुलाई, १८१० को हॉलैण्ड को फ्रांसीसी साम्राज्य मे मिला लिया। एग्लो-डच व्यापार का अन्त हो गया और इंग्लैण्ड मे इसका प्रभाव भी पडा। इसके अतिरिक्त इसी वर्ष के सैनिक दल के वैफल्य ने जनता के कष्टों और दु:खो को और भी बढ़ा दिया। गेहूँ के भाव मे वृद्धि हुई और उद्योग को भारी धक्का पहुँचा। परन्तु ब्रिटिश बन्दरगाहो मे व्यापारिक सामग्री प्रभूत मात्रा में उपनिवेशों से एकत्र कर ली गयी और इस प्रकार इग्लैण्ड ने यह कठिन समय किसी प्रकार बिताया। क्राम्प्टन, वाट और कार्टराइट के आविष्कारों से कारखानों के उत्पादन-कर्ताओ को बड़ी सहायता मिली और उन्होने पर्याप्त मात्रा मे माल का उत्पादन किया। माल की उत्तमता और अल्पमल्यता ने जनता के मूर्च्छित उत्साह

को पुनः जागरित कर दिया और इग्लैण्ड का विनाश करने की नेपोलियन की योजनाओं को व्यर्थ करने के साधन जुटा दिये।

नेपोलियन इग्लैण्ड को कष्ट मे पड़ा देखकर प्रसन्न हुआ और उसने मित्रराज्यो को अपनी व्यवस्था का पालन करने के लिए अधिकाधिक दबाया। उसने ब्रिटेन को दीन-हीन बनाने के लिए तीन उपायो से काम लिया, (१) ५ अगस्त, १८१० का ट्रायानन महसूल लगाना, इसके अनुसार बाहर से आने वाले प्रत्येक माल पर उसके द्वारा नियत किया गया कर लगाने का विधान था, (२) १८ और २५ अक्तूबर के फ़ॉन्तेनब्लो के अध्यादेश, जिनमे से पहले के द्वारा उपजीवी राज्यो मे पाया जाने वाला कोई भी ब्रिटिश उत्पादित माल अपहरण कर लिया जाता था और उसमे आग लगा दी जाती थी, (३) और दूसरे अध्यादेश के अनुसार आयात-निर्यात के अवैध व्यापारियो की न्यायसम्मत जाँच के लिए तथा उन गुप्तचरो को पुरस्कृत करने के लिए जिनकी सूचना से ऐसे अवैध माल का पता लगता था, इकतालीस न्यायाधिकरणो (ट्राइब्यूनल) की स्थापना की गयी।

ये अध्यादेश बहुत क्रूर एवं न्याय-प्रतिकूल थे। इन्होंने पर्याप्त व्याकुलता और असन्तोष उत्पन्न कर दिया। जब लोग माल का अपहरण होते और उसे जलता देखते थे उनके हृदय कोपाग्नि से प्रज्ज्वलित हो उठते थे। साम्राज्य उनकी दृष्टि मे अत्याचार का एक साधन-मात्र रह गया था। जब १० दिसम्बर, १८१० को जर्मनी का उत्तर-पश्चिमी समुद्रतट साम्राज्य में मिलाया गया तो सभी देशभक्त इस नयी क्रूरता से सतर्क हो गये थे और इससे मुक्त होने की हार्दिक कामना करते थे। हैन्सियाटिक नगरो मे बड़ी क्रूरता और दयनीयता के दृश्य सामने आते थे और राजकर विभाग के अधिकारियो के अत्याचार असह्य हो गये थे। १८१२ के अन्त तक यह नितान्त स्पष्ट हो चुका था कि यह व्यवस्था असफल हो गयी है।

द्वीपीय व्यवस्था की विफलता के कारण ढूँढने के लिए हमें बहुत दूर जाने की आवश्यकता नही है। इसकी सफलता मित्र राज्यो के सहयोग पर निर्भर थी। एक-एक करके सभी ने यह अनुभव कर लिया था कि इस व्यवस्था का पालन कर सकना बड़ा कठिन है। रूस, प्रशा, जर्मनी, इटली, स्पेन तथा अन्य सभी राज्यो ने दुर्भिक्ष के कष्टों की असहनशीलता स्वीकार की थी। शासकों के हृदयो पर अपनी प्रजा के कष्टो का बड़ा प्रभाव पड़ा था और वे अपने सन्धिपत्रों की प्रतिज्ञाओं की अवहेलना करते थे। सर्वत्र मूल्यो मे वृद्धि हो गयी थी और असन्तोष की मात्रा भी बहुत बढ़ गयी थी। इंग्लैण्ड, जिसके विरुद्ध कि इस व्यवस्था का निर्माण हुआ था, अपने उपभोग की वस्तुएँ उपनिवेशों तथा गरम देशों से प्राप्त कर लेता था, इसका फल यह था कि उसे अपनी ज़रूरी

आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त माल मिल जाता था'। उसका निर्यात-व्यापार भी विध्वस्त नही हुआ था क्योकि उसका तैयार माल यूरोप के प्रत्येक देश में पहुँच जाता था। जिस रीति से द्वीपीय व्यवस्था का पालन कराया जाता था वह वडी क्रूर और जंगली थी। जर्मनी मे चुगी अधिकारियो के अत्याचारो ने जनता को निराशा से परिपूरित कर दिया था और साम्राज्य के शत्रुओं की सख्या सहस्रो मे बढ़ गयी थी। डराने-धमकाने का वहुप्रचलन था। बुरिमेन्न ने हैम्बर्ग के प्रेनोटज न्यायालयों के पापकर्मो से उत्पन्न आतंक का अच्छा विवरण दिया है। उसने इस व्यवस्था को 'छल-कपट, अपहरण और लूट की व्यवस्था' कहा है। यूरोप एक दिन के लिए भी उन भयङ्कर मूल्यों को सहन नही कर सकता था जो धनवान् और अकिचन जनों के सामान्य उपभोग की वस्तुओं के लिए वसूल किये जाते थे। इसे सफल बनाने के लिए यह आवश्यक था कि यूरोप के प्रत्येक देश को जीता जाय और उसपर अधिकार स्थापित किया जाय तथा प्रत्येक स्वतन्त्र वन्दरगाह को वन्द किया जाए। नि:सीम सैनिक शक्ति का निरन्तर प्रयोग किये बिना यह सम्भव नही था। बूरियैन्न, जो कि इस व्यापारिक अवरोध से उत्पन्न कष्टो का यथार्थ साक्षी था, लिखता है–

"द्वीपीय व्यवस्था की जो केवल अन्धकारमय और पाशविक युग के अनुरूप थी, और जो सिद्धान्तरूप मे चाहे स्वीकारणीय भी हो, व्यावहारिक क्षेत्र में पूर्णरूप से अनुपयोगी थी, पर्याप्त निन्दा नही की जा सकती थी.....व्यापार का निषेध, इस घृणित व्यवस्था को कार्यान्वित करने मे की जाने वाली निरन्तर क्रूरता, द्वीपीय आयात से जरा भी कम नही थी।...

"इस निन्दनीय व्यवस्था के निर्माताओं ने यूरोप में जो विप्लव उत्पन्न किया और इससे उत्पन्न घृणा एवं प्रतिहिसा कितनी अधिक मात्रा मे नेपोलियन के पतन का कारण बनी उसका समुचित रूप समझने के लिए यह आवश्यक है कि इस के रूप उत्पन्न असंख्य परेशानियो और दु:खों को आँखो से देखा जाता जैसा कि मैंने किया है।"[1]

१. मेमॉयर्स ऑव नेपोलियन बोनापार्ट, पृ० ३२६, ३२८।

अध्याय १०

साम्राज्य का पतन

प्रशा का उत्थान

स्पेन में नेपोलियन के हस्तक्षेप का जो विरोध हुआ उसने प्रशा को अत्यधिक प्रभावित किया। वह अब वह प्रशा नही रह गया था जिसे उसने जीता और तिल्सट मे बुरी तरह से पराजित किया था। वह अब एक महान् राष्ट्रीय पुनरुत्थान की योजना को पार कर रहा था, जिसके प्रेरणादाता फिक्टे, स्टाइन, हार्डेनबर्ग, शॉर्नहॉर्स्ट और विलियम फान हम्बोल्ट जैसे देशभक्त महापुरुष थे। फिक्टे जीना के विश्वविद्यालय में दर्शन का प्राध्यापक था, जहाँ से बाद मे वह बर्लिन आ गया था और १८०४-५ मे आधुनिक युग की विशेषताओं पर व्याख्यान देता था। उसका कहना था कि यथार्थ स्वतन्त्रता केवल विधान (कानून) के उच्चतम आज्ञापालन के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। अपने आरम्भिक दिनो के विश्वबन्धुत्ववाद को उसने अब छोड़ दिया था और वह एक परम उत्साही राष्ट्रीयतावादी हो गया था। जर्मनों की उस पीढी को उसके विचार बड़े अपरिचित जान पडते थे, वे लोग कला और सम्कृति को राष्ट्रीयता की भावना से कहीं अधिक महत्त्व देते थे और अपनी रचनात्मक प्रतिभा को राजनीतिक अथवा सैनिक कार्यकुशलता मे लगाने के बजाय वे लोग इसे काण्ट की 'क्रिटीक ऑव प्योर रीजन', शिलर की 'वालेन्स्टाइन', बीथोवन की 'नाइन्थ सिम्फनी' और गोएंटे की 'फास्ट' जैसी महा-कृतियो का निर्माण करने मे लगाते थे। फिक्टे की शिक्षा इस आदर्श से वहुत दूर जा पड़ती थी। वह जर्मन हृदयों मे राष्ट्रीय भावना की अग्निशिखा प्रज्ज्वलित करना चाहता था और राष्ट्रीय शिक्षा के महत्त्व पर बहुत बल देता था। उसका कथन था कि ऐसी शिक्षा सैनिक सेवा की ही तरह अनिवार्य होनी चाहिए। वह पेस्टॉलॉजियन शिक्षाविधि का समर्थक था जोकि वौद्धिक संस्कृति और व्यावहारिक कला की कुशलता में सामंजस्य स्थापित करती थी। परन्तु शिक्षा राष्ट्रीय भावना से व्याप्त होनी चाहिए थी और इसका एकमात्र उद्देश्य मानसिक शक्ति का विकास और आत्मा जो जाग्रत् करना था। उसके मन्तव्यों ने एक महान् प्रभाव की सृष्टि की और स्पेन में नेपोलियन की कठिनाइयों

ने उसके विचारों को व्यावहारिक राजनीति में नियोजित कर दिया। उसके 'जर्मन राष्ट्र के प्रति वक्तव्य' ने उसके देशवासियों के हृदयों को उत्साह-भावना से प्रज्ज्वलित कर दिया और उनमें विदेशी फन्दे को तोडकर फेंक देने की बलवती आकांक्षा का संचार कर दिया। अन्य भी उस काल के देशभक्त व्यक्ति थे जिन्होने प्रशन के हृदय और मस्तिष्क को चकित कर दिया था। १८०७ में आरन्त अपनी कृति 'समय की अन्तरात्मा' (स्पिरिट ऑव दि टाइम्स) के द्वितीय भाग को लिखते हुए भावना-विभोर हो उठा था, "प्रतिहिंसा अनिवार्य है। पुराने और नये पापों का दण्ड अब मिलने ही वाला है। एक निर्धन पिछड़ा हुआ देश समृद्धि के लिए बलि कर दिया जाता है। अब पिछले पन्द्रह वर्षों के अपराधों का हिसाब करने का समय आ गया है। विनाश-चक्र अपनी पूर्ण गति से थम रहा है।" और उसने यह भी कहा था, "यदि हम बोनापार्ट के ही अपने उपायों से उसपर आक्रमण करें तो उसकी अवश्य पराजय हो जायगी।"

बर्लिन विश्वविद्यालय की स्थापना १८१० में हुई और जर्मनी के योग्यतम विद्वानों ने उसमे शिक्षा पायी। विलियम फॉन हम्बोल्ट की शिक्षा-व्यवस्था ने जनता के लिए बहुत-कुछ किया और उसके प्रयत्नो से एक अभिनव उत्साह की सृष्टि हुई।

परन्तु स्टाइन जैसे व्यावहारिक व्यक्तियो के लिए यह बिलकुल स्पष्ट था कि राष्ट्रीय भावना का उफान मात्र प्रशा को मुक्ति नहीं दिला सकता और इसीलिए वह राष्ट्र का समुचित निर्माण करने मे संलग्न हो गया था। वह एक मँजा हुआ राजनीतिज्ञ था जो यूरोप की दशा को अच्छी तरह से समझता था और उसके पास बडे ऊँचे स्तर की रचनात्मक प्रतिभा भी थी। अपने स्वभाव के पूर्ण उत्साह और शक्ति के साथ उसने अपने आपको सुधार-कार्य मे रत कर दिया था और ९ अक्तूबर, १८०७ को उसने प्रसिद्ध स्वतन्त्रता अभिलेख (Edict of Emancipation) की घोषणा कर दी थी। इसने दासता के साथ ही साथ तत्सम्बन्धित अन्य सभी सामाजिक कुसंस्कारों का समूल विनाश कर दिया था। राजकीय कार्यो में लगे हुए दासो को भी स्वतन्त्र कर दिया गया और उसने भूमि सम्बन्धी अधिकारो पर लगे सभी प्रतिबन्धों को हटा दिया था। अभिलेख ने उन प्रतिबन्धो को भी हटा दिया था जिनके कारण अभिजातवर्गीय लोग नागरिक (बर्गर) वर्गीय कर्मों को नही कर सकते थे। प्रशन किसान, यद्यपि वे अभी तक अपने भूस्वामियों को लगान देते थे, अब पूर्णत: स्वतन्त्र थे और नागरिकता को प्राप्त कर सकते थे। स्टाइन के प्रशा से हट जाने के बाद हार्डेनबर्ग ने सितम्बर १८११ में एक अध्यादेश जारी किया जिससे एकाधिकार के सभी नियमो का उन्मूलन कर दिया गया और किसानों तथा खेतिहरो को उनके अधिकृत क्षेत्रों का पूर्ण अधिकार इस शर्त पर दे दिया गया कि भूस्वामी को भूमि का तीसरा भाग उसके सामन्ती अधिकारो

तथा व्यक्तिगत सेवा के बदले मे दे दिया जाय। १८०८ के नगरपालिका विधान के द्वारा स्टाइन ने प्रशा मे स्थानीय स्वायत्त-शासन की नींव डाली। अर्द्धनगरो (टाउन) को सामन्तो अथवा केन्द्रीय शासन के नियन्त्रण से मुक्ति दे दी गयी और वैतनिक पदाधिकारियो की निर्वाचित परिपदों को उनके मामलो की प्रवन्ध-व्यवस्था करने के लिए नियुक्त कर दिया गया। उसने केन्द्रीय शासन मे भी सुधार करने का प्रयत्न किया। वह प्रशनों को एक वैधानिक शासन प्रदान करना चाहता था और वह एक उत्तरदायित्व-पूर्ण मन्त्रि मण्डल का प्रवन्ध करने मे लगा हुआ था; परन्तु अभी वह अपनी सुधार की योजनाओं को क्रियात्मक रूप दे ही रहा था कि नेपोलियन का ध्यान उसके इन सुधार-कार्यो की ओर गया और इस प्रकार १६ दिमम्बर, १८०८ के एक अध्यादेश के द्वारा उसे देश से निर्वासित कर दिया गया। उसका स्थान हार्डनबर्ग ने लिया।

प्रशा की सैनिक व्यवस्था शार्नहार्स्ट के सभापतित्व में एक कमीशन के हाथो सौंप दी गयी, इसका उद्देश्य था एक समुचित प्रशिक्षण-प्राप्त राष्ट्रीय सशस्त्र सेना का निर्माण करना और राजकीय पदाधिकारियों को अपनी जनता के ऐसे वास्तविक उत्तर-दायित्वपूर्ण नेता बनाना, जो उनको अपने साहस, उत्साह और सब कुछ बलि करने वाली सामर्थ्य से प्रोत्साहित करते रहें। वह स्वयं एक सैनिक था और सुधार के लिए उसका उत्साह बडा तीव्र था। कमीशन ने सुधार के लिए १६ सुझाव सामने रखे। अयोग्य पदाधिकारियो को पदच्युत कर दिया गया; पदवृद्धि या तरक्की के नियमों में संशोधन किया गया; अनभिजातकुलीय लोगों की पदवृद्धि के लिए सुविधाएँ रखी गयीं, सशस्त्र सेना में विदेशियों की भर्ती नही होती थी और सेना की आन्तरिक शक्ति को ही नही उसकी कार्यकुशलता और नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए भी अन्य अनेक उपायों का प्रयोग किया गया। नेपोलियन ने प्रशा की सेना को क्योंकि ४२,००० पुरुषों से अधिक होने की अनुमति नही दी थी, उन्होंने संकोचन व्यवस्था को अपना लिया था जिससे प्रत्येक प्रशन को सैनिक रूप में प्रशिक्षित किया जाता था। थोड़े समय तक प्रशिक्षण प्राप्त कर लेने के पश्चात् एक रगरूट को निग्रहीत सेना मे परिगणित कर लिया जाता था और इस प्रकार से सेना की वास्तविक शक्ति नेपोलियन से छिपा ली जाती थी। दिखाने के लिए तो सेना की संख्या वही थी जो नेपोलियन ने नियत की थी परन्तु वास्तविकता मे प्रशा के पास १८१२ में १,५०,००० प्रशिक्षण-प्राप्त सैनिक थे। इस सेना के साथ ही साथ उन्होने एक 'लैडवैर' (प्रशन निग्रहीत सेना) का संघटन स्वदेश रक्षा के लिए किया था और गुरील्ला युद्ध के लिए सशस्त्र नागरिको के 'लान्तस्तूर्म' (१७ से ४५ वर्ष तक के सभी पुरुषों की सैनिक भर्ती) की व्यवस्था की थी।

स्टाइन, हार्डनबर्ग और शॉर्नहॉर्स्ट ने जो कुछ शासन-व्यवस्था के सुधारो में किया था वह विलियम फॉन हम्बोल्ट ने शिक्षा के लिए किया। उसने राज्य मे विद्वानो तथा अन्य वर्गो मे पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करने का प्रबल समर्थन किया। उसी के सुझाव पर मई, १८०६ में बर्लिन के विश्वविद्यालय की स्थापना हुई थी और इसमे देश के सभी भागों से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने को आते थे। कुछ अत्यन्त प्रख्यात विद्वानो ने इसमें अध्यापन-कार्य किया था—फिक्टे ने दर्शन पर, सैविग्नी ने न्यायविधान पर, श्लैयरमैशन ने धर्मशास्त्र पर और निबुअर ने इतिहास पर व्याख्यान दिये थे। शिक्षा-शुल्क बहुत कम था और विश्वविद्यालय के द्वार सभी के लिए खुले थे। अनेक विद्यार्थी, यहाँ तक कि अपेक्षाकृत पर्याप्त निर्धनवर्गो के छात्र भी, विश्वविद्यालय मे उच्चतर शिक्षा का लाभ उठाने आते थे। १८१०-११ मे उच्चतर माध्यमिक कक्षा (मैट्रिक) का प्रमाण-पत्र पाने वाले छात्रों की सख्या ४५८ थी और अध्यापको एवं विद्यार्थियों ने जो बौद्धिक कर्म इस समय दिखलाया वह प्रशा के भविष्य के लिए एक बहुत ही मांगलिक लक्षण था। विश्वविद्यालय की व्याख्यान-शालाओं मे ही पितृभूमि की मेवा के लिए शस्त्रो के आमन्त्रण का समुचित उत्तर महान् उत्साह और जोश से दिया जाता था।

ब्रैसलाउ के विश्वविद्यालय ने भी उपयोगी कार्य किया। नागरिक कर्त्तव्य और देशभक्ति के आदर्शो को उत्प्रेरित किया और प्रशा का पुनर्निर्माण करने के संयुक्त निश्चय में सुदूर प्रदेशो से लोग एकतासूत्र मे बँध गये। बहुत-सा मगलकार्य नैतिक और वैज्ञानिक संघ ने किया जिसको तैगेनवन्द कहते थे। इसकी स्थापना जून, १८०८ में कुछ प्राध्यापको ने की थी जो अपने देश के हितों के प्रति हृदय से अनुराग रखते थे। १८०६ में इसे अवैध घोषित कर दिया गया था परन्तु यह गुप्त कार्यकर्ताओं के द्वारा अपना कार्य कराता रहा और जनता मे स्वतन्त्रता के विचारो का प्रचार करता रहा। पुराने राजनीतिज्ञ इस सभा के उत्साह से सहमत नही थे और स्टाइन जोकि मुख्य रूप से व्यावहारिक बुद्धि का व्यक्ति था, इसे 'स्वप्नदर्शी भेड का आक्रोश' कहता था। उन राजनीतिज्ञों के लिए, जिनका यथार्थ परिचय राजनीति के शुष्क व्यवसाय से ही था, उत्साह के मूल्य को कम करके आँकना सहज था परन्तु यह अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि प्रशा में जो नैतिक शक्ति जन्म ले चुकी थी, राष्ट्रीय जीवन की महानतम निधियों में से एक थी। स्टाइन ने जर्मनों के ही द्वारा एक जर्मनी की स्वाधीनता के लिए युद्ध की अभिलाषा प्रकट की थी।

इस राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्य में फ्रेड्रिक विलियम के, जो एक दुर्बल और अस्थिर प्रकृति का व्यक्ति था, भाग का उल्लेख करना भी आवश्यक है। उसने हार्डनबर्ग को

उसकी सुधार-योजनाओं को पूरा करने में बड़ी सहायता दी थी। व्यापार में एकाधिकार-नियम का उन्मूलन कर दिया गया था और किसानों को सामन्ती बोझ से छुटकारा मिल गया था। सामन्ती भूमिकर के स्थान में अब स्वतन्त्र भूमि-अधिकार का नियम हो गया था और किसान अपनी अधिकृत भूमि का स्वामी बन गया था। महारानी मारिया लुइसा अपने पति से अधिक भावनामयी और देशभक्त थी। वह एक सुन्दरी और उदात्त महिला थी और प्रशा के हितों के प्रति उनका गम्भीर अनुराग था। वह फ्रासीसियों से घृणा करती थी जिनकी क्रूरता उन्हें उत्तेजित कर देती थी। उनके वक्तव्यों ने प्रत्येक जर्मन हृदय को पितृभूमि के कष्टों के प्रति दया से विचलित कर दिया था। तिल्सट में नेपोलियन ने उसका तिरस्कार किया था और उसकी मुसीबतें उसकी मृत्यु के साथ ही जुलाई, १८१० में समाप्त हुई। उसके उदाहरण और कष्टों ने जर्मन जाति के हृदय को प्रज्ज्वलित कर दिया था और चारों तरफ अब फ्रासीसी आधिपत्य को समाप्त कर डालने का दृढ निश्चय हो गया था।

प्रशा अब संग्राम के लिए पूरी तरह से तैयार था।

प्रशा से युद्ध—राष्ट्रों का संग्राम

नेपोलियन ने निश्चित ही संयुक्त मोर्चे की भयंकर शक्ति को पहचाना नहीं था जो उसके विरुद्ध तैयार हो रही थी। १७ मार्च, १८१३ को प्रशा ने उसके विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। उसने सैनेट को और भी अधिक कर लगाने की स्वीकृति देने के लिए कहा और उसने ३,५०,००० सैनिकों की एक विशाल सेना एकत्र कर ली। सैनिकों में उत्साह और सैनिक जोश पर्याप्त था परन्तु उनमें से अनेक तो बिलकुल नये रंगरूट थे। सेना में एक दूसरा परम दुर्बलता का तत्त्व था लगभग ६०,००० जर्मनों का अस्तित्व, जैसे ही कोई सुविधाजनक परिस्थिति उपस्थित होती वे लोग अपने देशवासियों का पक्ष लेने के लिए तैयार रहते थे। पहला युद्ध ५ अप्रैल, १८१५ को मॉकर्न के समीप (मैग्द्रीबर्ग के निकट) हुआ, इसमें फ्रासीसियों को लाइप्जिग की ओर भागने के लिए विवश होना पड़ा। लाइप्जिग में अपने सैनिक दलों में सम्मिलित होने के लिए नेपोलियन १,४०,००० पदाति सेना और ४,५०० अश्वारोही सेना को लेकर चला और वहाँ से उसने बर्लिन की ओर बढ़ जाने का निश्चय किया था। वह प्रथम मई को लटजन में प्रविष्ट हुआ और वहाँ उसे ज्ञात हुआ कि ने शत्रु के कठोर आघातों का निशाना बना हुआ है और ग्रॉस-गौर्शचन, क्लाइन-गौर्शचन, रना, स्टाइन्सियेडेल और कजा के देहातों में फ्रांसीसी सेनाएँ अत्यन्त कठिनाई से ब्लुशर के प्रशनों के आक्रमणों से अपने आपको बचाने में समर्थ हो रही है। लटजन से दूरस्थ युद्ध में, जिसे कि संयुक्त शक्तियाँ ग्रॉस-गौर्शचन के युद्ध की

संज्ञा देती थी, फ्रांसीसियो की विजय हुई जिन्होंने शत्रुओं को एल्ब तक खदेड दिया और ड्रेसडन में अपना पड़ाव डाल दिया (१४ मई)। इस युद्ध मे दोनो ही पक्षो की अत्यधिक हानि हुई। शार्नेहार्स्ट युद्ध मे घायल हो गया और २८ जून को ये ही घाव उसकी मृत्यु के कारण हुए। नेपोलियन ने १८ मई को ड्रेसडन छोड दिया और स्प्री में बॉजेंन पर उसने एक दूसरा युद्ध छेड दिया (२० और २१ मई)। इसमें संयुक्त शक्तियों की पराजय हुई यद्यपि इसमें फ्रांस की क्षति बहुत अधिक हुई थी। मैटरनिश के सुझाव पर युद्ध-विराम सन्धि का प्रस्ताव रखा गया नेपोलियन इस समय कुछ विश्राम कर लेने के लिए तैयार ही था। ५ जून को प्लेससविट्ज में इम पर हस्ताक्षर हुए। रूसियो और प्रशनों ने सोचा कि या तो ऑस्ट्रिया उनके पक्ष मे मिल जायेगा या फ्रांस के साथ शान्ति-सन्धि हो जायगी। ऑस्ट्रिया ने आशा की थी कि उसे अपने सैनिक दलो को आक्रमण के लिए तैयार कर लेने का समय मिल जायगा। शान्ति-सन्धि नेपोलियन के हित में भारी भूल थी। उसने शीघ्र ही इस बात का अनुभव किया था कि उसके लिए जाल फैलाया जा रहा है।

२६ जून को मैंटरनिश नेपोलियन से शान्ति-सन्धि की शर्तो पर बातचीत करने के लिए मिला। यह एक तूफानी भेंट थी और यह कहा जाता है कि विवाद की गर्मी में नेपोलियन का टोप भूमि पर गिर पड़ा। ऑस्ट्रिया का चैन्सलर बिलकुल विचलित नही हुआ और उसने उसकी ओर जरा भी ध्यान नही दिया। अन्त में नेपोलियन ने स्वयं उसे उठाया। रीशन वैक मे ३० जून को एक समझौते पर हस्ताक्षर हुए जिसके अनुसार प्राग मे ५ जुलाई को एक सम्मेलन करने का निश्चय हुआ जिसमे ऑस्ट्रियन मध्यस्थता की शर्तों का निर्णय होना था।

इस विषय में कोई आरम्भिक अधिवेशन नही हुआ परन्तु ७ अगस्त को मैंटरनिश ने कौलिनकोर्ट को, जो फ्रांसीसी प्रतिनिधि था, मध्यस्थता की शर्तो के सम्बन्ध मे सूचित कर दिया। ये शर्ते थी—(१) वार्सा की डची की समाप्ति, (२) हैम्बर्ग तथा ल्युवेक की स्वतन्त्र नगरो के रूप मे पुनः प्रतिष्ठा, (३) राइन के संयुक्त राज्य सघ की सर्वश्रेष्ठता का परित्याग, (४) प्रशा का पुनर्निर्माण, और (५) ऑस्ट्रिया को इल्लीरिया का वापस मिलना। नेपोलियन को सूचित किया गया कि यदि दस अगस्त तक कोई उत्तर नही मिलेगा तो ऑस्ट्रिया फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देगा और मित्र राष्ट्रों के साथ मिल जायेगा। उसका उत्तर नियत समय तक नही पहुँचा और ११ अगस्त के प्रभात को मैंटरनिश ने युद्ध की घोषणा कर दी।

मित्रराष्ट्रो ने इस युद्धाह्वान को बड़े उत्साह और जोश के साथ स्वीकार किया। नेपोलियन के पास ४,४०,००० सैनिकों की विशाल सेना और लगभग १३०० तोपे थी।

इसके अतिरिक्त उसके पास इटालियन सेना तथा जर्मन और पोलिश गढो में स्थित सैनिको की भी पर्याप्त संख्या थी। इस प्रकार सब मिलाकर नेपोलियन की सैनिकशक्ति ७,००,००० थी। मित्र राष्ट्रों की सेना मे लगभग ८,००,००० व्यक्ति थे, श्वार्जेनबर्ग २,५०,००० ऑस्ट्रियनो को लेकर, ब्लूशर १००,००० रूसियो और प्रशनों का अध्यक्ष होकर सिलेसिया मे, और रूसियो तथा प्रशनो की इतनी ही संख्या स्वीडिश राजा बर्नादौत्त के अधीन उत्तरी जर्मनी मे स्थित थी। इसके अतिरिक्त लगभग ३,००,००० सैनिक निग्रहीत सेना के रूप मे युद्ध-कार्यो के लिए सदा तैयार रहते थे। ड्रेसडन मे एक युद्ध हुआ (२६-२७ अगस्त) जिसमे नेपोलियन ने मित्र राष्ट्रो को पराजित कर दिया और उसने १३,००० युद्धबन्दी और २६ बन्दूको पर अधिकार कर लिया। परन्तु उसी दिन ब्लुशर ने मैक्डानल्ड पर सिलेसिया मे आक्रमण कर दिया और उसे नीस और काटजबाक पर पराजित कर दिया। यह एक बड़ा उपयोगी युद्ध था क्योकि इसने ब्लुशर की सैनिक अध्यक्षता के प्रति सैनिको का विश्वास दृढ कर दिया। इसके बाद और भी विजय प्राप्त हुई। ऊदिनौत के बर्लिन के युद्धाभियान की प्रगति मे बाधा उपस्थित की गयी और ६ सितम्बर को डेन्नेविज पर प्रशन सेनानायको ब्युलौ और तौन्तजिये ने मार्शल को पराजित कर दिया। बर्लिन की रक्षा हो गयी। ये पराजय नेपोलियन के भ्रामक अनुमानो के कारण ही हुयी थी। उसने अपने मार्शलो को अपर्याप्त सैनिक शक्ति के साथ ऐसी सेना पर आक्रमण करने का आदेश दिया था जो सख्या मे उनसे कही अधिक बढकर थी।

अन्तिम युद्ध लाइप्जिग मे १६, १७ और १८ अक्तूबर को हुआ, इसमे नेपोलियन को १,८५,००० सैनिको के साथ ३,२०,००० सैनिको की विशाल वाहिनी का सामना करना पडा। फ्रासीसी और उनके विरोधियों ने बड़ी कठोर दृढ़ता के साथ भूमि के एक-एक इच के लिए घोर युद्ध किया। अन्त मे फ्रासीसियो की पराजय हुई, परन्तु विश्वासघात ने उनके पक्ष को दुर्बल बना दिया। सैक्सनो और बवेरियनो ने दो बार मित्र-राष्ट्रो का पक्ष लिया और राइन सयुक्त राज्य सघ के सदस्यों ने कोई सहायता नही पहुँचायी। क्षति दोनो ही पक्षो मे पर्याप्त हुई। फ्रासीसियों को ७०,००० सैनिको, ३०० तोपों और १,००० शस्त्रास्त्र की गाडियो की हानि सहन करनी पडी। मित्र-राष्ट्रो की क्षति ५४,००० व्यक्तियो की थी।

'राष्ट्रो का सग्राम' मित्र राष्ट्रो के लिए एक निर्णयकारी विजय थी। नेपोलियन की शक्ति का विनाश हुआ। ब्लुशर ने अपनी पत्नी को लिखा था—" ......१९ और २० तारीख को भयकर सघर्ष हुआ जो विश्व का एक अभूतपूर्व युद्ध था, ६,००,००० मनुष्य एक-दूसरे से युद्ध कर रहे थे। मध्याह्न के बाद दो बजे मैने लाइप्जिग में तूफान

मचा दिया, सैक्सनी का राजा और फ्रांसीसियों के अनेक सेनानायकों को बन्दी बना लिया गया, पोलैण्ड के काउण्ट पोनियातोवस्की को डुबो दिया गया। १७० तोपों पर अधिकार हुआ और लगभग ४०,००० सैनिकों को बन्दी बना लिया गया।"

जर्मन राजकुमारो ने नेपोलियन को छोड दिया और मित्रराष्ट्रो के साथ जाकर मिल गये। एक गढ के बाद दूसरा गढ उनके अधिकार मे आता जा रहा था। जेरोम वेस्टफ़ैलिया से कोलोग्ने को भाग गया और जिन राजकुमारो को पदच्युत किया गया था वे पुनः अपने पदो पर प्रतिष्ठापित कर दिये गये। हालैण्ड को मुक्ति मिली और उसे हाउस ऑव ऑरेंज के अधीन कर दिया गया।

हालैण्ड रोज के अनुसार नदीतट का चुनना एक महान् भूल थी। यह एक ऐसी ही भयकर भूल थी जैसी मैंक ने १८०५ मे की थी। मित्रराष्ट्रों के सेनानायक फ्रांसीसियो के सेनानायको से कही श्रेष्ठ थे, ब्लुशर की युद्ध-शैली और शूरवीरता बड़ी लाभप्रद सिद्ध हुई। नेपोलियन अब वही पुरुष नही था जो वह गत जीवन में रह चुका था। विजय प्राप्त करने की जादू की सी निश्चिन्तता अब वह खो चुका था जो उसके आरम्भिक दिनों की प्रकृष्ट विशेषता थी। एक जर्मन लेखक कहता है कि नेपोलियन की विफलताओं का प्रधान कारण हमे अवश्य ही उसकी अभिनव और क्रान्तिकारी युद्ध-शैली में ढूँढना चाहिए। यह शैली तभी सफल हो सकती थी जब उसे आधुनिक युग के विशिष्ट यातायात के साधनो का उपयोग करने की सुविधा होती।

लाइप्ज़िग के पश्चात्

१८१३ के समाप्त होते-होते नेपोलियन की स्थिति किसी भी प्रकार से दृढ़ नही थी। फ्रांस निरन्तर युद्ध से तंग आ गया था, उसका सैनिक उत्साह ठण्डा पड़ चुका था और जनता यद्यपि अब भी सम्राट् के प्रति पूर्ण भक्ति रखती थी, परन्तु विराम की कामना करने लगी थी। बुर्जुआवर्ग को निरन्तर युद्ध के प्रति शिकायत थी और राजतन्त्रवादी कार्यकर्त्ता परिश्रमपूर्वक असन्तोष की अग्नि को भडकाने तथा राजद्रोह का प्रचार करने में संलग्न थे। अधीन राज्यो में विश्वासघात की वृद्धि हो रही थी। म्युरा ने ऑस्ट्रिया के साथ सन्धि की वार्ताएँ आरम्भ कर दी थी, जहाँ वह उसे मन्त्री "गुप्त मित्र" समझते थे।

विरोधों की सफल समाप्ति के पश्चात् नेपोलियन शान्ति की अभिकाक्षा करता था परन्तु वह अपने साम्राज्य की विशालता को बनाये रखना चाहता था। उसके मुख्य मन्त्रियों को इस बात का ज्ञान था कि सघर्षो का अन्त किस प्रकार से होने वाला है और वे लोग शान्ति के इच्छुक बन गये थे। इसके अतिरिक्त ताल्लीरॉ और प्रिस द बैनीववान्ते जैसे व्यक्ति भी थे जो अपने स्वार्थ के हित मे युद्ध की समाप्ति चाहते थे। वे लोग अपनी

उपलब्धियो और पदो की सुरक्षा के लिए अत्यन्त उत्सुक थे। युद्ध की अक्षुण्णता में उन्हे अपना अनिवार्य विनाश स्पष्ट ही दिखायी पड़ रहा था। वे लोग परस्पर बातचीत करते थे और प्रायः विवाद करते थे और अपनी सुरक्षा को निश्चित बनाने के लिए वे यूरोप की शान्ति में चिरकाल तक बाधा बनने के लिए समस्त दोष नेपोलियन पर रखने के लिए तैयार थे। फ्रांसीसी जनता क्रान्ति की उपलब्धियो को सुरक्षित रखने के लिए तथा राष्ट्रीय सीमाओं—राइन, आल्प्स और पैरेनीज पर अधिकार स्थापित करने के लिए अत्युत्सुक थी। ऑस्ट्रिया के प्रभाव से फ्रैंकफोर्ट से नेपोलियन को शान्ति-सन्धि का निमन्त्रण प्राप्त हुआ। इस सन्धि की शर्ते ये थी—फ्रांस अपनी राष्ट्रीय सीमाओं—राइन, आल्प्स और पैरेनीज तक ही अपने आपको सन्तुष्ट रखे और वह सैवॉय तथा वेल्जियम, कदाचित् ह्यालैण्ड और उत्तरी इटली पर भी अपना अधिकार रख सकता था, और नेपोलियन का साम्राज्यवादी मुकुट पूर्ववत् स्वीकार किया गया।

नेपोलियन के सामने इस समय दोधारी तलवार थी। यदि वह मित्र राष्ट्रो की माँग को स्वीकार करता तो अपनी प्रतिष्ठा खोता और जिस साम्राज्य का निर्माण करने में उसने इतना परिश्रम किया था उसका सर्वनाश शत्रुओ के द्वारा होता। यदि वह उनकी शर्तो को अस्वीकार करता तो युद्ध फिर जारी हो जाता और जनता उसे अपने दुःख और विनाश का मूल कारण समझने लगती। उसने इन शर्तो को स्वीकार नहीं किया और अपने पूर्णाधिकार प्राप्त राजदूत कौलेकूर को इस बात का पूर्ण निश्चय करने के लिए मित्रराष्ट्रों के पास भेजा कि वे वास्तव मे चाहते क्या है, और उसने मैटरनिश को इस बात पर सहमत करने मे सफलता प्राप्त कर ली कि शातीलौ मे एक सम्मेलन बुलाया जाय।

इसी बीच मित्रराष्ट्रो की ४,००,००० सैनिको की विशाल वाहिनी ने राइन को पार कर लिया। श्वार्जेनबर्ग की सैनिक अध्यक्षता मे ऑस्ट्रियन सेना ने स्विज़रलैण्ड के मार्ग से फ्रांस मे प्रवेश किया और ब्लुशर ने सीधा पेरिस की ओर बढ़ना शुरू किया और ब्यूलो अपने सैनिक दलो के साथ ह्यालैण्ड से चल पडा। २९ जनवरी को नेपोलियन ने ब्रियेन्न मे ब्लुशर पर आक्रमण कर दिया परन्तु इससे कोई विशेष लाभ नही हुआ। इससे ऑस्ट्रिया ने भी अपनी सैनिक शक्ति प्रशा के साथ मिला दी और इस प्रकार ला रोतियेर का युद्ध हुआ (पहली फरवरी), जिसमें ब्लुशर को फ्रांसीसियों पर पूर्ण विजय प्राप्त हुई। अपने पराजय से किंचिन्मात्र विचलित न होकर नेपोलियन ने अपने सैनिको में अभिनव उत्साह का सचार करने का प्रयास किया और अपने साधनो का संघटन करने तथा आक्रमणों की योजनाएँ बनाने में उसने एक प्रकार से सर्वथा अलौकिक शक्ति का परिचय दिया। उसने ब्लुशर की सेना पर कुछ स्थानों मे आक्रमण किया और सिलेशिया

की सेना को महती हानि पहुँचायी।

शातीलौ मे ५ और ६ फरवरी को एक सम्मेलन बैठा इसमे भी नेपोलियन को शान्ति-सन्धि करने का एक अवसर दिया गया। इसमे जो शर्ते रखी गयी वे ये थी—(१) फ्रांस की प्राकृतिक सीमाएँ, और (२) नेपोलियन द्वारा परित्यक्त प्रदेशो के सम्बन्ध मे अन्तिम निर्णय करने मे नेपोलियन का परामर्श न लेना। नेपोलियन इन शर्तो को स्वीकार करने मे हिचकिचाया और उसने अपने दूत को लिखा—

"मै बस ब्लुशेर को पराजित करने ही वाला हूँ . . . . किसी बात पर झुकना मत। सदा ही ऐसा अवसर हमे मिलता रहेगा जिसमे हम ऐसी शान्ति सन्धि कर सकेंगे जैसी वे अभी प्रस्तावित कर रहे है।"

मौन्तेरो मे ऑस्ट्रियनो पर एक दूसरी विजय (१७ फरवरी) ने उसे अपनी फ्रैंक-फोर्ट वाली शर्तो को दोहराने का अवसर दे दिया। कोई भी समझौता न हो सका और ६ मार्च को मित्रराष्ट्रो ने शौमौ की सन्धि पर हस्ताक्षर किये। इससे उन सबने मिलकर अपने साधनो को युद्ध के लिए उपयोग करने का प्रण किया। फ्रास का आक्रमण होने पर उन्होंने परस्पर एक दूसरे की सहायता करने का निर्णय किया और यह भी कि वे फ्रास के साथ कोई पृथक् शान्ति-सन्धि नही करेंगे। इसके अतिरिक्त यह भी निर्णय किया गया कि यह सन्धि बीस वर्ष तक चलती रहेगी। यह सन्धि कासिलरीया की सफलता थी और इसने नेपोलियन के विरुद्ध 'यूरोप की ठोस दीवार' खड़ी कर दी।

मित्रराष्ट्रो ने २८ फरवरी को स्वय पहल कर दी और ७ मार्च को लाओ मे एक भीषण युद्ध हुआ, इसमे फ्रांसीसियो की पराजय हुई। नेपोलियन ने अपने आपको बचाने के लिए कठोर प्रयास किया परन्तु वह अपनी स्थिति को पुन: प्राप्त करने मे समर्थ न हुआ। २६ मार्च को पेरिस पर आक्रमण आरम्भ हो गया। फ्रासीसी सेनाएँ महान् साहस के साथ लड़ीं परन्तु वे खदेड़ दी गयी। अब प्रतिरोध की आशा समाप्त हो चुकी थी और ३० तारीख को दो बजे एक युद्ध-विराम सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। उसके मार्शल अब युद्ध जारी रखने के लिए बिलकुल तैयार नही थे। मारमौ जिसे उसने सदा बहुत ईमानदार आदमी समझा था, मित्रराष्ट्रो की ओर चला गया और ने, लेफैव्र, ऊदीनौत और मैक्डानल्ड सभी ने सिहासन-त्याग का सुझाव दिया। ने ने तो हठपूर्वक और बड़ी कृतघ्नता से उसे सिहासन परित्याग के लिए विवश कर दिया। जब नेपोलियन ने श्वार्जेन बर्ग और मारमौ के आपसी समझौते का समाचार सुना तो जो शब्द उसके अधरों पर आया वह था 'दुष्ट'। ताल्लीराँ ने जार के साथ बातचीत की और उससे वैधता के सिद्धान्त का पोषण करने की प्रार्थना की। बूर्बोवंशियों को पुन: पद प्रतिष्ठा देने का निश्चय हुआ।

फान्तेनब्लो मे नेपोलियन ने ११ अप्रैल, १८१४ को एक सन्धि पर हस्ताक्षर किये

जिससे उसने अपने और अपने उत्तराधिकारियों के लिए फ्रांस तथा अन्य प्रत्येक देश के सर्वोच्च प्रभुता के अधिकारो को सुरक्षित रखा। उसे अपने विरुदों और पद प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने की अनुमति दी गयी। एल्बा का टापू (एक टस्कन द्वीप) उसे पूर्ण सर्वोच्च प्रभुता के साथ दे दिया गया और २०,००,००० फ्रांक की अवकाश वृत्ति उसके लिए नियत की गयी। पार्मा, प्लासैन्त्र और ग्वास्तल्ला की डची साम्राज्ञी मारी लुई को पूर्ण सर्वोच्च प्रभुता के साथ सौप दी गयी और उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र और उत्तराधिकारियो को परम्परागत प्राप्त होती।

दुर्भाग्य के क्षणो में नेपोलियन को उसके सभी परिजनो ने त्याग दिया। मारी लुई को देश-निष्कासन मे उसका साथ देने की आज्ञा नही दी गयी। उसके मन्त्री उसे विदा करने के लिए उपस्थित नही हुए; यहाँ तक कि उन लोगो ने भी, जो एक दीर्घ काल से उसकी सेवा कर रहे थे और उसमे घनिष्ठ सम्पर्क रखते थे, उसका समादर करने और उसे दुःख मे सान्त्वना देने से इन्कार कर दिया। जब उसने अपने चारो ओर विश्वासघात और कृतघ्नता ही देखी तो उसका हृदय महा निराशा से भर गया। उसने विष द्वारा अपने जीवन का अन्त कर देने का प्रयास किया परन्तु उसका कोई प्रभाव न हुआ और वह जीवित बच गया। अब उसके लिए एल्बा के लिए तैयारी करने के सिवा और कुछ भी करने को नही था। बड़े मार्मिक शब्दो में उसने अपने रक्षको से विदा ली जिनको वह अपने 'बच्चे' कहता था और जिनके लिए अपने ऐश्वर्य के दिनों मे उसने अत्यन्त वात्सल्यपूर्ण सावधानी दिखायी थी। उसके गंभीर शब्द इतिहास मे अमर रहेंगे—"सैनिको, मेरे अति निकट साथियो, जिन्हे मैने सदा सम्मान के पथ पर देखा है, आज आखिर हम लोगो के बिछुड़ने का समय आ पहुँचा है। मैं आप लोगो के साथ शायद अभी और रहता परन्तु उसका अर्थ एक क्रूर संघर्ष को अभी अधिक समय तक बढ़ाना ही होता और शायद उससे विदेश के युद्धों के साथ-साथ गृहयुद्ध भी जुड जाता; अब मै फ्रांस के वक्ष स्थल को खण्डित होता नही देख सकता। अवकाश का आनन्द उठाओ, आप लोग उसके पात्र भी है, और प्रसन्न रहिए। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मुझ पर तरस मत खाओ। मै आप सबको अपनी बाहो मे भर लेना चाहता था परन्तु मुझे उस ध्वज का आलिगन करने दो जो आप सबका प्रतिनिधित्व करता है।"

फ्रेजस से वह जलयान पर चढ़ा, यही पर ९ अक्तूबर, १७९९ को मिस्र से लौटने के बाद वह उस बूर्बो राज्य सिंहासन का अधिकार सँभालने के लिए रुका था जो क्रान्ति ने धूलि में फेंका दिया था।

इसी समय सैनेट ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया जिसमें सोलहवे लुई के भाई प्रोवॉस के काउण्ट को फ्रांस मे लौटने तथा अठारहवें लुई की उपाधि के साथ फ्रास का राज्य-कार्य

सँभालने का निमन्त्रण दिया गया था। मित्र राष्ट्र भी इससे सहमत थे और वैधता के सिद्धान्त को व्यावहारिक क्षेत्र में स्वीकार कर लिया गया था। साम्राज्य विध्वस्त हो गया और फ्रांसीसी राज्यपालों को अपने-अपने शासित प्रदेशो से निकालकर बाहर खदेड़ दिया गया। जिन शासको को नेपोलियन ने देश-निष्कासन दिया था वे लौट आये। स्पेन का सातवाँ फर्डिनैण्ड पुनः अपने पद पर प्रतिष्ठित हो गया और २४ मई को पोप पायस सप्तम भी वैटिकन मे लौट आया। विक्टर इमैनुअल को तूरिन में पुनः प्रतिष्ठित कर दिया गया। मित्रराष्ट्रों ने शान्ति सन्धि की शर्तो की व्यवस्था की और ३० मई को पेरिस की प्रथम सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। शर्ते थी—(१) फ्रास को उसकी १७९५ की सीमाएँ लौटा दी गयी और सेवॉय का एक बड़ा भाग तथा सीमाओ पर कुछ प्रदेश भी दिये गये और औवीनौन का अधिकार मान्य हो गया। (२) उस पर कोई युद्ध का क्षति-पूर्तिकारक कर नही लगाया गया और युद्ध के दिनो मे छीनी गयी कला की महानिधियो को लौटाने के लिए भी उससे नहीं कहा गया। (३) आइल द फ्रास (मॉरिशस), तोबागो और सेण्ट लूसिया को छोड़कर इग्लैण्ड ने सभी उपनिवेशो पर पूर्ववत् अधिकार बनाये रखा, उसने माल्टा अपने अधीन किया और हॉलैण्ड के बदले केप कौलोनी का क्रय करना स्वीकार कर लिया और दासो के व्यापार से सम्बन्धित प्रस्ताव पर भी उसने अपनी सहमति दे दी। (४) ताल्लीरॉ ने यूरोप के मानचित्र में निम्नलिखित सशोधन स्वीकार कर लिये—

(क) बेल्जियम का हालैण्ड को सौपा जाना।
(ख) राइन के तट पर जर्मन शक्ति।
(ग) उत्तरी इटली पर ऑस्ट्रिया का प्रभुत्व।
(घ) सार्डीनिया के साथ जेनोआ का मिलाया जाना।

फ्रांसीसी इतिहासकार का मत है कि इन धाराओं ने फ्रांस को १७९१ की अपेक्षा अधिक दृढ़तापूर्वक सीमा के अन्दर बन्द कर दिया। ताल्लीरॉ इसशान्ति से सन्तुष्ट था परन्तु देश इसको राष्ट्रीय सम्मान पर कलंक का टीका ही समझता था।

पुनःस्थापना

बूर्बो वंशीय, जैसा एक हास्यप्रिय मनुष्य ने कहा था, मित्रराष्ट्रो की मालगाड़ी मे बैठकर फ्रांस लौट आये। आर्तुआ के काउण्ट ने, जो पहले भी राज्यकार्य मे भाग ले चुका था, स्वयं ही अपने आप को तुइलरीज़ मे राज्य के उपाध्यक्ष (लेफ्टिनैण्ट जैनरल) के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। उसके चारो तरफ प्रतिक्रियावादियों का एक अच्छा जमघट भी हो गया। समस्त फ्रांस में यही कहा जाता था—सिवाय इसके कि एक फ्रांसीसी

जन और बढ गया है, कोई तवदीली नही हुई। भगोड़े (एमिग्रे) भारी संख्या में लौट आये और अपने खोये हुए अधिकारो के लिए चीख-पुकार मचाने लगे। 'ऐसी है हमारी लोकप्रसिद्धि' और हमारे उपाध्यक्ष महाशय के प्रधान परामर्शदाता कि 'हम चाहे एक दिन में पच्चीस गलतियाँ कर दें परन्तु पचासवी ग़लती करने से हमे अपने आपको रोकना चाहिए।' इस पर भी ग़लतियाँ की गयी और सबसे महत्त्वशाली गलती थी मैयेन्स और एण्टवर्प का समर्पण जो ताल्लीराँ ने राजकुमार की अनुमति से किया था। अठारहवाँ लुई ४ मई, १८१४ को पेरिस मे प्रविष्ट हुआ और उसका स्वागत विशेष उत्साह से नहीं हुआ। वह गठिया से पीड़ित, आलसी, स्थूलकाय और स्वभाव का शान्त था। उसकी स्थूलकायता ने उसे घोड़े पर सवार होने के अयोग्य बना दिया था और वह फ्रांसीसियो के सामने ऐसे वीरनायक का रूप उपस्थित करने मे समर्थ नही था जो नेपोलियन एक दशक से अधिक समय तक करता रहा था। वह एक दीर्घ समय से फ्रास मे नही रहा था और उन परिवर्तनों से पूर्णतः अनभिज्ञ था जो इधर फ्रास में हो गये थे। परन्तु वह अपनी वाणी मे बडा संयत और स्वभाव का सहिष्णु था और अन्य भगोड़ों की तरह नही था जो अपने दुःखो का अतिशयोक्त वर्णन करने थे और प्रतिशोध के लिए चिल्ला रहे थे। वैलिग्टन के ड्यूक ने कहा था, "जितने लोगों से मै मिल चुका हूँ वह उन सबमे से सर्वाधिक सावधान व्यक्ति है, और इस देश के लिए सबसे उपयुक्त प्रभु।" कदाचित् तत्कालीन परिस्थितियो मे वह ऐसा ही हो। परन्तु फ्रांसीसी कल्पना को प्रभावित कर सकना अठारहवे लुई के लिए असम्भव ही था। उसके लिए पुरातनव्यवस्था से पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद करना सम्भव न था। वह वैधता के सिद्धान्त का परिपोषक था, क्रान्ति की उसने उपेक्षा की और अपने शासन के प्रथम वर्ष को वह उन्नीसवाँ वर्ष मानता था। परन्तु एक प्रतिक्रियावादी नीति के भयकर परिणामो से वह पूर्णतः परिचित था और उसने उन राजतन्त्रवादियों को जो उसके उदार वैधानिक उपायों से सहमत नही थे, यही उत्तर दिया था कि वह 'पुनः अपनी यात्राओं पर जाने' की इच्छा नही रखता, उसने स्वेच्छापूर्वक एक वैधानिक शासक की अवस्था को स्वीकार किया और एक घोषणा-पत्र भी जारी किया, जो यद्यपि था तो रूसो के 'सार्वजनिक प्रभुता' के विचार का एक उपहासास्पद स्वाँगमात्र, परन्तु जनता को एक बहुमूल्य सुविधा के रूप मे दिखायी पड़ा, परन्तु इसमे जनतन्त्र तथा निरकुशता के तत्त्वों का सम्मिश्रण ही था। विधान सभा में दो सदन (अथवा भवन) स्वीकार किये गये, एक तो वंश परम्परागत अभिजात-जनों की सभा (हाउस ऑव पिअर्स) जिनको राजा मनोनीत करता था और प्रतिनिधियों का सदन (चेम्बर ऑव डिपुटीज) जिसका निर्वाचन सम्पत्तिशाली मताधिकार के आधार पर होता था। राजा को राज्य की सुरक्षा के निमित्त राजकीय अध्यादेश जारी

करने और विधि-निर्माण में पहल करने का अधिकार दिया गया। कैथोलिक मत को राजधर्म घोषित किया गया परन्तु अन्य मतो को भी पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता दी गयी। क्रान्ति के समय की भूमि-व्यवस्था को पुनःस्वीकार किया गया और यह स्पष्ट रूप से कहा गया कि भूमि के नये स्वामियों के अधिकारो में कोई हस्तक्षेप नही किया जायगा। प्रेस की स्वतन्त्रता मानी गयी परन्तु इसपर बड़े कठोर नियन्त्रण भी लगाये गये। घोषणा-पत्र इतना दोषयुक्त नही था परन्तु अतिराजतन्त्रवादियो और बोनापार्टवादियों, दोनो ने ही इसे अस्वीकृत घोषित किया। बोनापार्टवादियों ने इन शब्दों पर बहुत क्रोध प्रकट किया "...पेरिस मे सन् १८१४ ईसवी मे और हमारे शासनकाल के उन्नीसवें वर्ष में...।" तथापि राष्ट्र की बहुसंख्या ने 'वैधानिक घोषणापत्र' (Charte Constitutionalle) को पसन्द किया, क्योंकि उसे भी विधिनिर्माण मे एक हिस्सा मिल गया जो कि नेपोलियन ने उससे छीन लिया था।

यह सब होने पर भी नया शासन जनता को बड़ा अप्रिय हो गया। यह विचार राष्ट्रीय स्वाभिमान को बडी चोट पहुँचाता था कि बूर्बो वशियों ने विदेशी संगीनों की सहायता से ही अपना राजसिहासन प्राप्त किया था। तिरंगे के स्थान पर श्वेत् ध्वज की स्थापना हो गयी थी, इस का दर्शनमात्र ही सहस्रो मर्मघाती स्मृतियों को पुनर्जीवित कर देता था। इसी प्रकार के अन्य भी परिवर्तन हुए थे। एक व्यंग्यचित्र मे अठारहवाँ लुई एक कौसक के नीचे घोड़े पर चढ़ा हुआ फ्रासीसी सैनिकों के शवो पर से कूदता हुआ दिखाया गया था। राजा इस बात में काफी अशिष्ट भी था कि वह बहुधा यह दोहराता रहता था कि वह इग्लैण्ड के संरक्षक राजकुमार (प्रिस रीजेण्ट) का उसे शरण देने के लिए बड़ा कृतज्ञ है। घोषणापत्र के द्वारा तो भूमि की क्रान्तिकारी व्यवस्था को स्वीकृति मिल चुकी थी परन्तु एक मन्त्री ने यह प्रश्न उठाया कि भगोड़ो को पुनः उनकी सम्पत्ति का स्वामी बनाया जाय या नही। समग्र देश के राजतन्त्रवादी क्षेत्रों में यह कहा जाता था कि 'ग्राहकों' को अपनी अनुचित विधि से अर्जित उपलब्धियों का परित्याग करने के लिए विवश किया जाय। कृषकों में भीषण असन्तोष फैल गया और वे लोग सामन्ती युग के पुनरुत्थान की शंका करने लगे। राज्यशासन ने भगोड़ों को बिना काम के लाभकारी पद और अवकाशवृत्तियाँ देकर शान्त करने का प्रयत्न किया परन्तु वे लोग सन्तुष्ट न हुए। वे लोग अपने ही विधानों की माँग करते थे और पादरी उनके समर्थक बन गये थे। १८०२ के कन्कौर्दा को एक "घृणित समझौता कहकर निन्दित किया गया जो नेपोलियन ने सातवे पायस के निर्बल हाथों से स्वीकार करवा लिया था" और निर्वासित बिशप जो अब लौट आये थे अपने अपहृत प्रदेशों पर दावा करने लगे। धर्मार्थ भोजन-वितरण-गृह (ग्राण्ड आल्मनर) के कार्यालय की पुनःस्थापना हो गयी और यह

सार्वजनिक आराधना के मन्त्रालय के कार्यो मे हस्तक्षेप करने लगा। ७ जून के एक आदेश के द्वारा प्रत्येक रविवार को सभी कारखाने और दुकानें बन्द करना आवश्यक हो गया और एक अन्य आदेश के द्वारा कुछ कैथोलिक उत्सवों और माङ्गलिक कार्यों का करना आवश्यक बना दिया गया। इसे घोषणापत्र का उल्लंघन समझा गया जिसने धार्मिक स्वतन्त्रता का आश्वासन दिलाया था। राज्यशासन की आर्थिक नीति भी उतनी ही असन्तोषजनक थी। बजट मे भारी घाटा हो गया था और राज्यशासन जनता पर अप्रिय राजकर लगाकर, सार्वजनिक ऋण को अस्वीकार करके, और देश की सशस्त्र सेना एव नौसेना मे कमी करके, इस परिस्थिति का मुकाबला करना चाहता था। इग्लैण्ड के साथ होने वाले अन्न-व्यापार पर से कर उठा दिया गया, जिसका फल यह हुआ कि वस्तुओं के मूल्य बहुत ही ऊँचे चढ़ गये। परन्तु किसी अन्य कार्य ने राज्य-शासन को बदनामी से इतना नही बचाया जितना सैनिक विभाग के सुधारो ने। इस विभाग का बजट बहुत कम कर दिया गया; पदाधिकारियों के वेतन कम कर दिये गये; १७८९ की गृहसेना (हाउस होल्ड कोर) की पुनःस्थापना की गयी और इसमें प्रधानतया भगोड़ों और अभिजातकुल के लोगो की भर्ती हुई थी। अभिजातवर्गीय जनो के पुत्रों के लिए एक सैनिक शिक्षण विद्यालय की प्रतिष्ठापना की गयी। लीजन ऑव आनर को पूर्ववत् रखा गया परन्तु यह सम्मान बिना भेदभाव के नितान्त ऐसे लोगो को प्रदान कर दिया जाता था जिन्हें कोई जानता भी न था। नेपोलियन के प्रमुख अनुयायियो को यह बात बहुत ही क्रुद्ध करती थी। सोल ने, जिसने द्युपौ का पद सँभाला था, सेना की 'छँटनी' करने का प्रयास किया। इसमे उसने कुछ अभूतपूर्व कठोर उपायो का सहारा लिया। उसने सभी अर्द्धवैतनिक सैनिक अधिकारियों को पेरिस छोड़ देने का आदेश दिया, और उनकी संख्या पचास प्रतिशत बढ़ा दी और अनेक भगोड़ों को तथा शुआनो को उच्च अधिकारियों के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। परन्तु जनसाधारण मे उसे किसी कार्य ने इतना घृणायोग्य नहीं बनाया जितना एक्ज़लमैन के सैनिक न्यायाधिकरण के समक्ष न्यायसम्मत जाँच के कार्य ने। वह नेपोलियन के बड़े विश्वस्त सेनानायकों मे से एक था और उसपर छलपूर्वक एक झूठा आरोप लगाया गया था। इस अन्याय ने सेना में बड़ा असन्तोष उत्पन्न कर दिया और जब सेनानायक को न्यायाधिकरण ने मुक्त किया तो एक अतिव्यापक हर्ष का निनाद चारों ओर गूँजने लगा था। इसी समय राजा की आज्ञा से सोलहवें लुई, मारी ऑन्त्वानेत और मदाम एलिजाबेत की अस्थियाँ सेण्ट डेनिस में ले जायी गयीं और सभी गिर्जो तथा धर्मस्थानों मे मृतकसंस्कार सम्पन्न किये गये तथा मृतक आत्माओं के सम्मान में सभी न्यायालय एवं नाट्यशालाएँ उस दिन बन्द कर दी गयीं। यह कार्य यद्यपि अपने आपमें नितान्त दोषरहित ही था, परन्तु इसने जनता के

हृदय मे शकाएँ और आतक पैदा कर दिये। एक किम्वदन्ती फैली कि दण्डयोग्य लोगों की एक सूची तैयार कर ली गयी है और आतकवादियो का व्यापक संहार होने वाला है। सर्वसाधारण मे बड़ी अशान्ति फैल गयी। इस नये प्रतिष्ठित शासन की इसके पहले समाप्त हुए शासन के साथ तुलना ने जनमन मे बूर्बो वशियो की लघुता और कमीनेपन का चित्र स्पष्ट कर दिया, जिन्होने उस सिहासन पर अधिकार किया था जिस को आधुनिक इतिहास का महानतम सेनानायक और शासक विभूषित कर चुका था। जैसा कि फूरी द शाबूलौ ने कहा था, फ्रांसीसी जनता अब नेपोलियन को अपने सब दु:खो और कष्टो का कारण नही समझती थी परन्तु अब वह उसे एक महान् पुरुष, विपत्ति मे एक वीरनायक के रूप मे देखती थी। उसके दोषो को भुला दिया गया था; उसके गुणो का स्मरण किया जा रहा था और उन देशनिर्वासितो तथा उनके मूढ़ साथियो की सर्वथा निन्दा हो रही थी तथा उन्हे घृणा से देखा जाता था जो अपनी बुद्धि पर ताला लगाकर अब फ्रास मे लौट आये थे।

नेपोलियन को इस सबकी सूचना मिलती रहती थी। उसने तत्कालीन फ्रास मे फैले असन्तोष का पूरा-पूरा अनुमान कर लिया था और उसने उससे लाभ उठाने का भी निर्णय कर लिया था। उसका राजधानी की ओर अभियान उसके जीवन के वीर कार्यों में से सर्वाधिक महत्त्वशाली है। उसने २६ जनवरी, १८१५ को एल्बा छोड़ा और ग्रीनोबल की ओर बढ़ा जहाँ इस कार्सिकन गुण्डे का विनाश करने के लिए सेनानायक मार्शन्द छ: पल्टनो के साथ नियुक्त किया गया था। जैसे ही नेपोलियन प्रकट हुआ, उस महा सेनानायक ने कहा, "पाँचवी पल्टन के सैनिको! क्या तुम मुझे पहचानते हो?" सारा वातावरण किकर्तव्यविमूढ़ हो गया। मार्शन्द का ए० डी० सी० जोर से चिल्लाया, गोली चलाओ परन्तु वहाँ कोई गति नही हुई। सम्राट् आगे बढ़ा और चिल्लाया, "यदि तुम लोगों मे से कोई भी ऐसा सैनिक है, जो अपने सम्राट् का प्राणान्त करना चाहता है, वह ऐसा कर सकता है। मैं यहाँ तुम्हारे सामने हूँ।" सैनिको का हृदय भर आया, वे सहसा चिल्ला उठे "सम्राट् की जय हो" और एक समूह बनाकर उसकी ओर चले।

वह दस मार्च को ल्योन मे पहुँच गया और वहाँ से उन अध्यादेशों का प्रसार किया जिन्होने इस पुन: प्रतिष्ठित शासन द्वारा किये गये सैनिक विभाग के संशोधनो को बिलकुल उलट दिया। भगोड़ो को उसने निकाल दिया, अभिजात जनो को दूर हटाया और ताल्लीरॉ को बहिष्कृत कर दिया। उसके पुराने मार्शल उससे मिल न सके। ने ने उसे लौह पिजरे मे बन्द करके लाने का प्रण किया था, बाद मे अपने सैनिक दलो को लेकर वह भी उससे आ मिला। १६ को राजा ने फ्रांस छोड़ दिया, दूसरे दिन सन्ध्या समय नेपोलियन ने तुइलरीज़ मे प्रवेश किया। एक मुट्ठी भर सैनिकों के साथ उसने पुन:

अपना खोया हुआ साम्राज्य प्राप्त कर लिया। ऐसा था उसके व्यक्तित्व का जादू। बौल्जाक का कहना है कि उसने एक वयस्क को कहने सुना था—

"उससे पहला कोई ऐसा व्यक्ति नही हुआ था जिसने केवल अपनी टोपी दिखाकर ही अपना खोया हुआ साम्राज्य जीत लिया हो।"

शत दिवस और वाटरलू का युद्ध

'शान्ति और स्वातन्त्र्य' ये दो नारे थे जो पुनः नेपोलियन को राज्य सिहासन के सोपान तक ले आये। वह पहले की अपेक्षा अब काफी समझदार व्यक्ति हो गया था, यद्यपि अधिक दुःखी था। वह राष्ट्र के अविश्वास को दूरकर देना चाहता था परन्तु देश के विभिन्न स्वार्थों को भूतकाल का विस्मरण करने के लिए प्रस्तुत करना बडा कठिन था। बुर्जुआ वर्ग, आभिजात्य और व्यापारिक वर्ग भविष्य के विषय में बडे चिन्ताकुल थे। जब मित्र-राष्ट्रों ने नेपोलियन को अवैध घोषित किया, वे सोचने लगे कि अब युद्ध अनिवार्य है। इन अनिश्चयो और कठिनाइयों के बीच उसकी आश्चर्यजनक बुद्धि ने परिस्थितियो का डटकर सामना करने की अद्भुत शक्ति का परिचय दिया। उसने एक उदार संविधान का प्रारूप तैयार करने का आदेश दिया, जिसे 'साम्राज्य के संविधान का अतिरिक्त विधान' कहा जाता है। २२ अप्रैल, १८१५ को यह अतिरिक्त विधान सम्पन्न हुआ। इसकी मुख्य धाराएँ ये थी—

१. विधान-सभा के दो भवन होंगे—एक सम्राट् द्वारा मनोनीत वंश परम्परानुगत अभिजातजनों का भवन और दूसरा विभागों के निर्वाचन संस्थानों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियो का भवन।

२. मन्त्री विधान-सभा के प्रति उत्तरदायी होंगे और कर्त्तव्य-च्युत होने पर वे लोग अपराधी ठहराये जा सकेंगे। यानी उन पर मुकदमा चलाया जा सकेगा।

३. दोनों भवनों के अधिवेशन बिलकुल खुले होंगे। कोई कार्य गुप्त रीति से नहीं होगा। दोनों विधि-निर्माण में पहल कर सकते हैं और बजट पर मत दे सकेंगे।

४. विधियों (कानूनों) की मीमांसा (व्याख्या) का अधिकार प्रतिनिधियों को रहेगा।

५. न्यायालय मे समुचित जाँच, मनमाने दण्ड का उन्मूलन, धार्मिक स्वतन्त्रता, मुद्रण की स्वतन्त्रता, जैसे महावरदानों को स्वीकार किया गया और सम्पत्ति रखने का अधिकार सुरक्षित माना गया। प्रत्येक व्यक्ति को न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध अपील करने का अधिकार दिया गया और विदेशी आक्रमण होने पर ही केवल सैनिक विधान (मार्शल लॉ) घोषित करने का निश्चय हुआ।

नेपोलियन ने निरंकुश सत्ता का परित्याग करने की प्रतिज्ञा की और उसने भवन से फ्रांस के हितों की रक्षा करने की भी प्रार्थना की, परन्तु यह सब वृथा हो गया। अब समय बीत चुका था। उसने मित्रराष्ट्रो को इस बात का विश्वास दिलाने का प्रयास किया कि वह युद्ध नहीं चाहता है और इस निरर्थक कार्य मे काफी बहुमूल्य समय खोया जा चुका है। मित्र शक्तियों ने अब उसके साथ अन्तिम रूप से समझ लेने का निश्चय कर लिया था और वे युद्ध की तैयारी कर रहीं थी।

नेपोलियन भी परिस्थितियो का सामना करने के लिए तैयार था। उसमें ऐसी अद्‌भुत संघटन करने की शक्ति थी कि बड़े कम समय में उसने ५,५०,००० मनुष्यो की एक सशस्त्र सेना एकत्र कर ली जिनमें से लगभग आधे युद्ध करने के लिए पूर्णतः तैयार थे। वह स्वय सेना के प्रशिक्षण और नैतिक स्तर की जाँच करने लगा तथा उसके मार्शल सोल, ने तथा ग्राउशी ने उसकी पर्याप्त सहायता की। मित्रराष्ट्रों की सेना की संख्या ६३,००० थी और उसमें अंग्रेज, हैनोवेरियन, डच तथा बेल्जियन सैनिक थे और इनके पास २०४ आग्नेयास्त्र (तोपें) थे। ये लोग घेण्ट, ब्रुसेल्स, मॉन्स तथा तुर्नाए तक एक श्रेणी के रूप में फैले हुए थे। ब्लुशर की अध्यक्षता में प्रशन लोग नामूर में थे और नामूर से लीएज तक फैले हुए थे। उनकी समग्र शक्ति १,१३,०८० सैनिकों और २८८ तोपों की थी। १२ जून को नेपोलियन ने पेरिस छोड़ दिया और शार्लेरवा में उसने प्रशनों पर आक्रमण किया, वह नगर उसके अधिकार में आ गया। उसने ने को ब्रुसेल्स की ओर भेज दिया और ग्राउशी को शातेलेंत और फिलयूरस के विरुद्ध आगे बढने का आदेश मिला। १६ तारीख को उसने लिग्नी में ब्लुशर पर आक्रमण किया और ने ने कात्र ब्रास में वैलिंगटन को उलझाये रखा। योजना यह बनायी गयी थी कि वैलिंग्टन को पराजित करने के बाद ने ब्लुशर के साथ युद्ध करने की ओर बढ़ेगा। परन्तु यह हो न सका। ब्लुशर पराजित हुआ और कैदी बनने से बाल-बाल बचा। नेपोलियन ने यह सोचकर कि प्रशन लोग अब पूर्णतः विध्वस्त हो चुके हैं फ्ल्यूरस में विश्राम ले लिया और ग्राउशी को ३०,००० सैनिकों के साथ प्रशनो का पीछा करने का आदेश दिया, परन्तु वह कभी भी शत्रु को पा न सका। ब्लुशर बजाय लीएज की ओर लौटने के वाव्र की ओर चल दिया और वहाँ उसने अपने आपको एक दूसरे युद्ध के लिए तैयार करना आरम्भ कर दिया।

वैलिंग्टन ने फ्रांसीसियों को ब्रुसेल्स के पहले ही ब्लुशर की सहायता से उलझाये रखने का निर्णय किया था। नेपोलियन १७ तारीख को उस पर आक्रमण करने के लिए आगे बढा परन्तु वाटरलू में उसने अपना मार्ग वैलिंग्टन के द्वारा अवरुद्ध पाया। १८ तारीख को यहाँ वह ऐतिहासिक युद्ध हुआ जिसमें नेपोलियन पराजित हुआ। यह एक

भीषण संग्राम था जिसमें बलिदान का श्रेष्ठतम कार्य उसके रक्षकों ने किया। ये वीरों में महावीर पुरुष शत्रु पर निर्भयतापूर्वक टूट पड़े परन्तु वैलिंग्टन ने उनकी भयंकर झपट को एक सबल प्रत्याक्रमण से विफल कर दिया। ब्लूशर के आक्रमण ने फ्रांसीसी पराजय को सर्वनाश में बदल दिया। २५,००० से अधिक फ्रांसीसी मारे गये और घायल हुए। मित्रराष्ट्रों को २०,००० पुरुषों की क्षति हुई जिनमे से ७००० प्रशन थे। यह एक अत्याश्चर्यजनक बात है कि इन महापराभव के क्षणो मे भी नेपोलियन आशावादी था, उसने जोजेफ को लिखा था कि सभी कुछ विनष्ट नही हुआ है और अभी आशा शेष है। उसका विचार था कि अभी भी स्थिति को सँभाला और सुधारा जा सकता है और उसने इस समय दृढ़ता एवं साहस एवं शक्ति दिखाने पर विशेष बल दिया। अभी भी युद्ध को अक्षुण्ण रखने की आशा से वह शीघ्रतापूर्वक फ्रांस की ओर भागा। उसकी राय मे यह एक महा घोर राष्ट्रीय संकट था और इस समय विदेशी शत्रु से देश की रक्षा करने के लिए एक तानाशाह की आवश्यकता थी। फ़ूशे ने इस सुझाव मे बाधा डाली परन्तु सम्राट् के व्यक्तित्व ने उसे मौन कर दिया। विधान भवन इधर कुछ समय से शान्ति के इच्छुक हो रहे थे, उन्होंने सम्राट् से सिहासन परित्याग की माँग की। २२ जून को शाम के तीन बजे उसने इस घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किये कि वह अपने पुत्र, रोम के राजकुमार के पक्ष मे सिहासन त्याग कर चुका है। राज त्याग का पत्र फ़ूशे ने प्रतिनिधियों के भवन मे प्रस्तुत किया। यह इस प्रकार से था—

"राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य की सुरक्षा के लिए युद्धों का आरम्भ करने में मै सभी प्रयासों, सभी इच्छाओं की एकता तथा सभी राष्ट्रीय शक्तियों की संकलना पर निर्भर था। अपनी सफलता मे विश्वास रखने के मेरे पास कारण थे, और मैने अपनी विरोधी सभी घोषणाओं का सामना किया।

"परिस्थितियाँ मुझे बदली हुई दिखायी पड़ने लगी है। मैं फ्रांस के शत्रुओं की घृणा के समक्ष बलि हो जाने के लिए अपने आपको प्रस्तुत करता हूँ। मेरी अभिलाषा है कि वे लोग अपनी घोषणाओं के प्रति सच्चे रहें और यथार्थ में केवल मेरी शक्ति के विरुद्ध ही वे अपने (बल का) प्रयोग करें। मेरे राजनीतिक जीवन का अन्त हो गया है और मैं अपने पुत्र को नेपोलियन द्वितीय के नाम से फ्रांस का सम्राट् घोषित करता हूँ।

"वर्तमान मन्त्री अस्थायी रूप से शासन परिषद् बना लेंगे। अपने पुत्र मे मेरा जो अनुराग है वह मुझे उत्साहित करता है कि बिना विलम्ब किये भवनों को निमन्त्रित करके विधान के द्वारा संरक्षकता की व्यवस्था कर जाऊँ।

"सार्वजनिक सुरक्षा के लिए, एक स्वतन्त्र राष्ट्र बने रहने के लिए सब एक हों।"

नेपोलियन

इलीसी राजप्रासाद में स्वीकृत
२२ जून, १८१५

मित्रराष्ट्र राजधानी की ओर बढ़े, अल्पकालीन प्रतिरोध के बाद उन्होने उस पर अधिकार कर लिया और एक विराम सन्धि पर हस्ताक्षर हो गये।

नेपोलियन ने अमरीका भाग जाने का प्रयास किया परन्तु मित्रराष्ट्रो की कठोर सावधानी ने इसे असम्भव बना दिया। उसने इग्लैण्ड ले जाये जाने की इच्छा प्रकट की परन्तु यह प्रार्थना भी अस्वीकार कर दी गयी। उसने इंगलैण्ड के राजकुमार संरक्षक (Prince Regent) को इस प्रकार का एक पत्र लिखा—

"श्रीमन्! अपने देश को विभाजित करने वाली आन्तरिक कलहों और यूरोपियन शक्तियों के विरोध का शिकार हुआ मैं अपने राजनीतिक जीवन का अन्त कर चुका हूँ; और मैं थैमिस्टोक्लीज की तरह ब्रिटिश जनता के चूल्हे के पास स्थान प्राप्त करने की अभिकांक्षा से आना चाहता हूँ। मैं अपने आपको ब्रिटिश विधान की शरण में प्रस्तुत करता हूँ—यह शरण मै आप से माँगता हूँ। आप मेरे शत्रुओं में से सर्वाधिक सबल, महाशक्तिशाली और अत्यन्त उदार शत्रु है।"

इसका कोई उत्तर नही मिला और १५ जुलाई को उसने बेल्लरोफन के एडमिरल मैटलैण्ड को आत्मसमर्पण कर दिया। उसे भूमध्यसागर के सेण्ट हेलीना नाम के टापू मे भेज दिया गया जहाँ वह ५ मई, १८२१ में अपनी मृत्यु तक अग्रेजो के बन्दी के रूप में रहा। उसने यूरोप की शान्ति भंग कर दी थी यह सत्य है; कि उसकी क्रूरता ने आशा का दीप बुझा दिया था और अनेक हृदयों में निराशा का संचार कर दिया था; जिन देशों को उसने विजित किया था उनमें उसकी महत्त्वाकाक्षा ने अश्रुतपूर्व दुःख और व्यथा का सृजन कर दिया था। परन्तु एक आधुनिक लेखक ने उसके विषय में जो कुछ लिखा है उसमें पर्याप्त सत्य है '.......उसने प्राचीन यूरोप को उसकी अकर्मण्यता से जगा दिया और राष्ट्रों की भावी एकता का मार्ग दिखाया।'

अठारहवॉ लुई ८ जुलाई को राजधानी में लौट आया और उसने पेरिस की द्वितीय शान्ति-सन्धि पर हस्ताक्षर किये (२० नवम्बर, १८१५), इस से फ्रांस का क्षेत्रीय विस्तार १७९० की सीमाओं तक ही मर्यादित हो गया, अपनी क्षेत्रीय सीमाओ के भीतर पाँच वर्ष के समय तक उसने कर्मनिरत मित्रराष्ट्र सेना को रखना स्वीकार किया और सैवॉय का अधिकांश तथा १८१४ के अन्य विजित प्रदेशों को छोड़ देने का भी वचन दिया। इसके अतिरिक्त इस सन्धि के द्वारा अपहृत कला-कृतियों की निधियॉ उन-उन देशों को लौटा देना स्वीकार किया गया जिनसे वे प्राप्त की गयी थीं, ७० करोड़ फ्रांक का एक क्षतिपूरक

कर देना स्वीकार किया गया और 'शिष्टव्यवहार' की प्रतिज्ञा के प्रमाणस्वरूप अपनी सीमाओं पर स्थित कुछ गढ़ों को भी मित्रराष्ट्रो को समर्पित कर देने का वचन दिया गया। अल्सास और लोरें फ्रांस के ही पास रहने दिये गये यद्यपि हार्डेनबर्ग ने इसपर बहुत आपत्ति की थी। इन शतदिवसो मे नेपोलियनिक युद्ध ने फ्रांस का १,५७,००,००,००० फ्रांक का व्यय करा दिया।

नेपोलियन के जीवन के अन्तिम भाग मे एक दु:खान्त नाटक के सभी तत्त्व निहित है। सेण्ट हेलीना मे उस 'मूर्ख और अभागे' हडसन लो ने उसके साथ कैदी का सा बर्ताव किया, नेपोलियन उसे 'एक अमानुषिक जेलर' और 'एक पाशविक शासन का प्रतिनिधि' कहता था। उसने ला कासेस और अन्य लोगों को अपने संस्मरण लिखाये है और अपने 'अपोलोजिया' (क्षमायाचना) में उसने जो कुछ किया था उस सब का दृढ़ समर्थन किया है। उसने कहा है कि यूरोप ने ही उसे वास्तव में युद्ध करने के लिए विवश किया था। विजय उसकी विवशता थी और फिर यह तो विजित के कल्याणार्थ ही थी। उसकी वैदेशिक नीति उसी संघर्ष को अक्षुण्ण रखना चाहती थी जो वोल्टेयर ने राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक अज्ञान, हठधर्मी और अत्याचार के विरुद्ध आरम्भ किया था। उसने सबके लिए नि:शुल्क शिक्षा सुलभ कर दी और उसे आशा थी कि कुछ ही वर्षो में उसके देश का निम्नतम वर्ग भी यूरोप मे सर्वाधिक शिक्षित हो जायगा। आगे उसने यह भी कहा—"मेरे सभी उद्योगों का लक्ष्य राष्ट्र के सर्वसाधारण को अज्ञान और अन्धविश्वास द्वारा असभ्य बनाने के स्थान पर जाग्रत करना रहा है.....। कोई भी ऐसा राजा नही हुआ जो जनता का इतना प्रभु रहा हो जितना कि मै था। मैंने सदैव सर्वसाधारण जनता का सामान्य जन बनने में गर्व का अनुभव किया है....। ये अंग्रेज जो स्वतन्त्रता के प्रेमी हैं, एक दिन वाटरलू के युद्ध को जीतने पर आँसू बहायेंगे। यह यूरोप की स्वतन्त्रताओं के लिए उतना ही विनाशक था जितना फिलिपी का युद्ध रोम के लिए।" ये थे वे शब्द जिनकी सत्यता वे लोग पूर्ण रूप से कभी नही भुला सकते जिनको यूरोप के मैटरनिश युग के क्रूर और अनुदार कार्यो की स्मृति है।

सेण्ट हेलीना में उसने जो यातनाएँ सहीं उन्होंने यूरोप में उसके लिए पर्याप्त सहानुभूति उत्पन्न कर दी। उसने अपना और अपनी नीति का ऐसे मर्मस्पर्शी शब्दों में विवरण प्रस्तुत किया जिससे मानव हृदय करुणा से परिपूरित हो जाता है। इसने गिरी हुई महानता के लिए जनता के हृदय में सहानुभूति का संचार कर दिया। अपनी विशिष्ट वाक्पटुता और ओज के साथ उसने ला कोसेस से कहा था—

"यहाँ हमारी स्थिति अपने आप में चाहे कुछ आकर्षण रखती हो, विश्व की आँखें हमारी तरफ लगी हैं, हम एक अमर लक्ष्य के शहीद है। लाखों पुरुष हमारे लिए रोते

हैं, और ऐश्वर्य शोक मना रहा है। मेरे जीवन मे विपत्ति का अभाव था। यदि मैं अपनी समग्र शक्तियों के मेघों से घिरा हुआ राजसिंहासन पर मरता, तो मैं अधिकांश जनों के लिए एक समस्या ही बना रह जाता। आज, अपने दुर्भाग्य का मैं आभारी हूँ, कि वे लोग मेरी नग्नपरीक्षा कर सकने में समर्थ है।"

इस प्रकार उसके पक्ष में एक बलवती सहानुभूति पैदा हुई और वह क्रान्ति का मसीहा समझा जाने लगा। उसने फ्रांसको जो मांगलिक वरदान दिये थे जनता उनको नही भूली थी और अतीत की समुचित समीक्षा करने पर उसका जीवन उन्हें किसी भी राजा के जीवन से अधिक महत्त्वपूर्ण तथा उपयोगी जान पड़ता था। उसकी बुद्धिपूर्ण शासन-विधियों का स्मरण किया जाता था और इटली तथा जर्मनी के देशभक्त जन उसके शासन की कल्याणकारिता का गुणगान करते थे। वे अपने देश के राजनीतिक मान-चित्रों का सुबोध सरलीकरण करने के लिए उसके प्रति बडी कृतज्ञता प्रकट करते थे और वहाँ जनतन्त्री विचारों की परिपक्वता को व्यावहारिक रूप देने के लिए उसे धन्यवाद देते थे। पुनरागत बूर्बोवंशियों की प्रतिक्रियावादी नीति से दुःखित फ्रास उसकी निरंकुशता के कठोर पक्षों को भूल चुका था और उसकी क्रान्ति की विजयों की सुरक्षा को जनता बड़े गर्व और हर्ष से स्मरण करती थी। इन्हीं सहिष्णु-भावनाओं और आवेगों में से उस नेपोलियनिक गाथा का जन्म हुआ जो यूरोप की राजनीति में एक महाशक्तिशाली तत्त्व बन गया। उस का नाम महत्त्वाकांक्षी विचारो का स्रोत बन गया; यह गौरव, उदार विचारों की सुरक्षा, राष्ट्रीयताओ के आत्माभिमान और धार्मिक हितों की रक्षा का पर्यायवाची अभिधान बन गया। फ्रांस की आत्मा इस समय नेपोलियनिक बन गयी और १८१५ की सन्धियो की अवमानना करते हुए एक बार फिर बोनापार्ट वंशीय लौट आये और उन्होने अपना शासन पुनः स्थापित कर लिया। शासन के इस रूपान्तरण की कहानी एक आगामी अध्याय का विषय बनेगी।

नेपोलियन के जीवन का मूल्यांकन करते हुए इतिहासकार अपनी पुरानी रूढियों को सरलता से छोड़ नहीं पाते, यद्यपि इधर उसके साथ उचित न्याय करने की ओर महत्त्वपूर्ण प्रयास हुए है। अनेक लेखकों ने उसे एटिला, एक अश्वारोही रोबेस्पियर, जैकोबिनवाद का प्रतिष्ठाता, क्रूरप्रकृति और कठोरमना आततायी कहा है। बहुतों ने उसे आधुनिक इतिहास का महानतम सेनानायक और शासक माना है। यही अन्तिम मत इस समय सामान्यतः विद्वानों द्वारा ग्राह्य होता जा रहा है। अठारहवें लुई ने तुइलरीज के समुचित निरीक्षण के बाद परिहास के साथ कहा था, 'यह नेपोलियन, एक बहुत अच्छा किरायेदार था'। समकालीन अंग्रेजी जनमत उसके अत्यधिक प्रतिकूल था और पिट तथा लिवरपूल की युद्धाक्रान्त पीढ़ी से उससे अधिक आशा भी नहीं की जा

सकती थी। उसने राष्ट्रों को जो हानियाँ पहुँचायीं, एक अतृप्त महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए किये गये युद्धों के कारण मानव जीवन की जो महाभयंकर क्षति हुई उसको स्मृति-पटल पर खींच लेना बड़ा आसान है। परन्तु इस दृश्य का एक अन्य रूप भी है। उसने अपने आप में क्रान्ति की आत्मा को समेट लिया था और उस कठिन समय मे जबकि यूरोप में निकम्मे राजतन्त्रों का शासन था उसने एक अभिनव प्रगतिशील आदर्श को प्रस्तुत किया। सार्वजनिक सुधार के लिए उसकी प्रबल अभिलाशा और जनता को सन्तुष्ट रखने की उसकी आकांक्षा के विषय में ऊपर वहुत कुछ कहा जा चुका है। उसने क्रान्ति की अराजकतापूर्ण भावनाओं को निःसत्त्व कर दिया और गालिक शूरवीरता को उसने एक ऐसा अद्भुत पुनर्जन्म दिया जिसने अनेक रणक्षेत्रों मे आश्चर्यजनक चमत्कार दिखाये। उसने शान्ति स्थापित की, शासन का सघटन किया, फ्रांस के धर्म को स्थिरता दी और विधान (कानूनो) का यथार्थ निर्माण किया। उसने जनता की आर्थिक दशा को सुधारने का प्रयास किया और यद्यपि उसके सभी कार्यो का समर्थन नहीं किया जा सकता परन्तु यह तो स्वीकार करना पड़ेगा कि फ्रांस का सुख और समृद्धि ही उसका एकमात्र ध्येय था। वह सम्पत्ति का आदर करता था। उसने समाजवाद का झण्डा नीचा कर दिया था जो क्रान्तिकाल में बुर्जुआ वर्ग के मस्तिष्क को भयभीत कर देता था। उसने शिक्षा का संघटन किया और जिस व्यवस्था को उसने जारी किया, अब यद्यपि अनेक दृष्टियों से उसे दूषित कहा जा सकता है, आज तक मौलिक रूप मे वही है। फ्रांस में जिस केन्द्रीय शासन की उसने व्यवस्था की वह एक महती आवश्यकता थी और यद्यपि इसमें गुप्तचरों और मुखबिरों की संख्या अधिक थी तो भी फ्रांस की बहुसंख्यक जनता ने इसका स्वागत किया था जो कन्धे सिकोड़ते हुए क्रान्ति के विकेन्द्रीकरण का स्मरण करती थी। साम्राज्य का पक्षसमर्थन, जो उसने स्वयं १८१६ में प्रस्तुत किया, काफी अभिरुचि के साथ आज भी पढ़ा जा सकता है:

"मैं ही था जिसने अराजकता के ज्वालामुखी पर्वत की अग्नि को शान्त किया और विप्लव की अस्तव्यस्तता में व्यवस्था क़ायम की, मैंने क्रान्ति को उसके अतिचारों से विशुद्ध किया, मैंने जनता को सुसभ्य और राजाओं को शक्तिशाली बनाया, मैंने सर्वत्र महत्त्वाकांक्षा को प्रोत्साहित किया, प्रत्येक सेवा को पुरस्कृत किया और फ्रांस की सीमाओं का विस्तार बढ़ाया। यह काम निश्चय ही कुछ है।"[1]

जब हम पक्षपातरहित होकर उसके चरित्र की समीक्षा करते हैं और भूत के प्रकाश में उसकी संस्थाओं एवं समाज के जीवन पर पड़े उनके प्रभावों का सूक्ष्म परीक्षण करते

१. फुर्नियर: लाइफ ऑव नेपोलियन, द्वितीय खण्ड, पृ० ४५८।

हैं, तो हमें ज्ञात होता है कि वह कैसा महान् पुरुष था। आरम्भिक जीवन में रूसो के एक प्रशंसक से वह एक निरंकुश ,महत्त्वाकांक्षी और अभिमानी शासक बन गया था जो सब चीजों को अपनी ही इच्छा के अनुकूल मोड़ना चाहता था। १८०७ के बाद उसने अपनी शक्ति का काफी दुरुपयोग किया और साम्राज्य उसके लिए विश्व-शासन का एक सोपान मात्र रह गया। उसने क्रान्ति के सिद्धान्तों से मुँह मोड़ लिया और पूर्वकाल के निरंकुश शासकों का अनुकरण करने लगा। अन्ततः तानाशाही ने स्वयं ही अपना प्रतिशोध ले लिया और समस्त यूरोप जिसको उसने अपने पंजों में जकड़ रखा था उस का विनाश करने के लिए एक हो गया। अपने ह्रास काल में भी उसने संघटन एवं नेतृत्व की आश्चर्यजनक शक्ति दिखायी और फ्रांसीसियों के हृदय को उसने ऐसे समय में भी जीत लिया। वह असफल हुआ परन्तु उसकी असफलता उसकी महानता में से कुछ भी नहीं घटाती। वह वास्तव में एक विश्वात्मा था, एक ऐसा दुर्लभ महानुभाव जो महाविशाल योजनाओं का निर्माण करता था और जिसने महती सफलताएँ भी प्राप्त की थीं। उसके शौर्य एवं पराक्रम के कार्य वैसे ही आश्चर्यजनक हैं जैसे सहस्ररजनी चरित्र (ऐरेबियन नाइट्स) के आख्यान और उसकी प्रतिभा उतनी ही महान् है जितनी कि यूरोप में पहले देखी-सुनी नहीं गयी थी। उसके उन पत्रों, कथाओं, डायरियों और संस्मरणों से जो प्रकाशित हो चुके हैं उसके व्यक्तित्व के विकास का स्पष्टीकरण होता है और वे पाठक के हृदय पर एक आत्मविस्मरणकारी प्रभाव डालते हैं। इन्हीं में हमें उसकी सृजनात्मक बुद्धि की महती सफलताओं की एक झलक मिल जाती है जिसने उसे सदा के लिए 'मानव-इतिहास के अमर व्यक्तियों में सबसे आगे' लाकर खड़ा कर दिया है।

एक आधुनिक जर्मन विद्वान् की आलोचना इस प्रसंग में मनोरंजक है—

"नेपोलियन एक भीषण उल्कापात की तरह आया और लुप्त हो गया। उसने जितना बनाया उससे अधिक नष्ट किया, परन्तु अन्ततः यह मानना पड़ेगा कि उसने अलसाये यूरोप को नींद से जगा दिया और राष्ट्रों की भावी एकता का मार्ग दिखाया।"

नेपोलियनिक युद्ध के प्रभावों को संक्षेप में लिखा जा सकता है। फ्रांस एक गणराज्य से एक साम्राज्य बन गया जिसकी परिधि में विरोधी जातियाँ और राष्ट्र आये। उसने क्रान्ति के उदात्त आदर्शों को तिलांजलि दे दी, एक आक्रान्ता बन गया और अब उसकी सेनाएँ स्वतन्त्रता तथा समानता की शिक्षा का प्रचार करने के लिए नहीं प्रत्युत प्रदेशों का अर्जन और अन्य देशों में अपनी महानता प्रतिष्ठापित करने के लिए आगे बढ़ती थीं। नेपोलियनिक परम्परा ने राजनीतिशास्त्र पर एक शक्तिशाली प्रभाव डाला और जिस सैनिक उत्साह ने राष्ट्र को जकड़ रखा था उसने गौरव और आत्मभिमान की भावना को जन्म दिया जिससे भविष्य के अमंगलों की पूर्वसूचना मिल गयी। महाद्वीप में युद्धों ने

एक गम्भीर प्रभाव की सृष्टि की। उसने इटालियन और जर्मन एकता का मार्ग प्रशस्त कर दिया और पवित्र रोमन साम्राज्य को विनष्ट करके, पोप (पैपेसी) की शक्ति को निर्बल करके तथा पादरियों और सामन्ती आज्ञाओं का बल क्षीण करके एक नयी व्यवस्था की नींव डाली। नेपोलियन के क्रूर स्वभाव ने उसके शासन को असह्य बना दिया। फ्रासीसी साम्राज्य के अधीनस्थ देशो के सर्वसाधारण की सहानुभूति का क्षय हो गया और पुरुषों के हृदय मे यह विश्वास दृढ होने लगा कि 'स्वातन्त्र्य' के लिए बहुत महँगा दाम देना पड़ा और यथार्थ मे एक ऐसी विदेशी शक्ति के हाथों आत्मसमर्पण से अधिक इसका कुछ अर्थ नही है जो राष्ट्रीय मस्थाओं, पुराकालीन परम्पराओ और रीतियो तथा जनता की आर्थिक भलाई का कुछ भी ध्यान नही रखती है। परिणाम यह हुआ कि अपने राज्यो से च्युत शासक, और वे धनिक जो अपनी पैतृक सम्पत्ति एवं अधिकारों को खो चुके थे और घृणा से प्रज्ज्वलित हृदयो वाले देशभक्त, ये सभी अपने हितों की सुरक्षा एव उस शक्तिशाली शामन का विध्वस कर देने के लिए मिलकर एक हो गये जिसने उनको क्रीतदास बना रखा था। स्वीडिश, रूसी, स्विज़, जर्मन, ऑस्ट्रियन, इटालियन, स्पेनिश. पुर्तगाली, सभी जो नेपोलियन के कठोर शासन से तंग आ गये थे एकत्र सम्मिलित होकर अपने स्वाभिमान एवं राष्ट्रीय गौरव को पुन: प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध हो गये। सर्वत्र राष्ट्रीयता उत्तेजित हुई और ऐसे लक्षणों का अभाव नहीं था जो स्पष्टतया दिखलाते थे कि उन्नीसवी शताब्दी के इतिहास को रूप देने और मोडने मे यही एक महान् शक्तिशाली तत्त्व सिद्ध होगी।

विएना की कांग्रेस

इसी बीच इधर विएना की काग्रेस यूरोप के मानचित्र का पुन:सघटन करने मे व्यस्त थी। राजाओं और राजनीतिज्ञो की इस काग्रेस का यथार्थ नेता ऑस्ट्रियन चान्सलर मैटरनिश था जिसने बहुव्ययसाध्य अतिथि-सत्कार और मनोरजन के द्वारा अपने लिए एक सम्मानपूर्ण स्थान बना लिया था। यूरोप के राज्यों का प्रतिनिधित्व या तो वहाँ के राजा स्वय कर रहे थे या उनके प्रतिनिधि। इनमे से अधिकांश अपने साथ अपनी पत्नियो को भी लाये थे और इस प्रकार से कांग्रेस के वातावरण में एक अद्भुत चमक-दमक और हर्ष की वृद्धि हो गयी थी। इसने वातावरण को एक दर्शनीय रूप दे दिया था। कांग्रेस में भाग लेने के लिए जो व्यक्ति आये उनमे से प्रमुख ये थे—फ्रेड्रिक विलियम, प्रशा का राजा, रूस का जार अलैक्जैण्डर, बैरन स्टाइन, हार्डेनबर्ग, नेस्सेलरोड, काम-लरिया। अन्य अनेक राजकुमार एव राजनीतिज्ञ भी इस कांग्रेम में भाग लेने के लिए आये थे। फ्रांस का प्रतिनिधित्व ताल्लीराँ कर रहा था जिसने अपनी स्वामिभक्ति का आश्रय

अब बूर्बोवंशियों को बना लिया था और जिससे नेपोलियन ने विदा होते हुए कहा था, "तुम अपने सगे पिता के साथ विश्वासघात कर सकते हो।' ऑस्ट्रियन चान्सलर ने बहुव्ययसाध्य मनोरंजनों की सुव्यवस्था की; उत्सवो, गोष्ठियो, नृत्यो आदि ने सभा के कार्यक्रम को इतना अवरुद्ध कर दिया कि एक बुद्धिमान दर्शक को कहना पड़ा था—'कांग्रेस नाचती है, वह प्रगति नही करती।'

ऑस्ट्रिया के राज्यशासन के गुप्तचर सभी सम्भावित साधनो से जानकारी इकट्ठी करते हुए अधिक सख्या में घूमते हुए दिखायी पड़ते थे। पत्र खोल लिये जाते थे, रद्दी की टोकरियो की तलाशी ली जाती थी और उनके कागजों को ऑस्ट्रिया के वंदेशिक विभाग के सामने खोल कर रख दिया जाता था। काग्रेस का परमोद्देश्य उसके मन्त्री गेन्ज़ के शब्दो में एक न्यायसम्मत और सार्वभौमिक शान्ति स्थापित करना था और इसकी पूर्ति वैधता और रूढ़िवादिता के सिद्धान्तो से होनी थी।

वैसे तो विचाराधीन कई प्रश्न थे परन्तु नौ समस्याएँ उनमे से महत्त्वपूर्ण थी—(१) सेक्सो-पोलिश समस्या, (२) राइन सीमा, (३) बेल्जो-डच समस्या, (४) डेनो-स्वीडिश समस्या, (५) स्विज़रलैण्ड (६) इटली, का पुनर्विभाजन (७) जर्मन का राज्य संघ, (८) अन्तर्राष्ट्रीय नदियाँ, और (९) दासों का व्यापार।

इनमें से कुछ प्रश्नों पर एकत्रित राज्यों के पूर्णशक्तिसयुत प्रतिनिधियों ने सभा के समक्ष वाद-विवाद किया। कुछ प्रश्न बड़े गर्म विचार-विमर्श के बाद तय हुए थे। उदाहरणार्थ आबो की सन्धि के अनुसार नॉर्वे स्वीडन को दे दिया गया था। कालिश की सन्धि (१८१३) ने प्रशा के हितो की संरक्षा की थी और यह निश्चित हुआ था कि तिल्सट में (१८०७) उसकी जो क्षति हुई उसके लिए उसे प्रतिकर मिलेगा। इसी प्रकार से तेप्लित्ज़ की सन्धि के द्वारा ऑस्ट्रिया को आश्वासन मिल चुका था कि उसे तिरोलीज़, और दाल्माशिया के प्रान्त तथा इटली के कुछ नियत भूभाग मिल जायेंगे। हालैण्ड का शासक (स्टैड होल्डर) बेल्जियम को अपने देश में मिला लेना चाहता था और अपने खोये हुए प्रदेशों को पुनः प्राप्त कर लेने की आशा रखता था। सार्डीनिया का राजा केवल सेवॉय और पीडमंट को ही नही चाहता था वरन् वह नीचे और जेनेआ की भी माँग कर रहा था।

इन समस्याओ को हल करना वास्तव में बडा कठिन था और यह स्पष्ट था कि आपसी समझौते के बिना काम नहीं चलेगा। कांग्रेस की आयोजनाएँ पहले से ही स्वीकृत सन्धियों के द्वारा निश्चित हो चुकी थीं। उन राजनीतिज्ञो के वचन और आश्वासन भी इन समस्याओं को बहुत अंशों तक हल कर चुके थे जिन्होंने अपने राज्यशासनों की ओर से सन्धिवार्ताएँ चलायी थीं।

विएना की कांग्रस की प्रादेशिक व्यवस्था इस प्रकार से हुई थी :-

फ्रांस को अपनी १७९२ की प्रादेशिक सीमाओ तक ही सन्तुष्ट रहना पड़ा, यद्यपि ताल्लीराँ ने अपने प्रयास से एक प्रस्ताव पारित करा लिया जिस मे यूरोपियन सभ्यता एव संस्कृति के विकास में फ्रांस की महती सेवाओ को स्वीकार किया गया था।

सेक्सो-पोलिश समस्या ने बहुत कठिनाई उपस्थित कर दी। ज़ार समूचे पोलैण्ड को हथियाना चाहता था और प्रशा सैक्सनी की माँग कर रहा था। यह मामला एक समझौते से तय हुआ, जिसके अनुसार वार्सा की ग्राण्ड (महान्) डची में से पोजेन और थौर्न छोड़ कर अवशिष्ट भाग जार को दे दिया गया। इस नये राज्य मे एक नये उदार संविधान को लागू करने का निश्चय हुआ। रूस को स्वीडन से फिनलैण्ड भी मिल गया।

प्रशा को अपने हिस्से में अपने १७७० के पोलिश प्रदेश और पोजेन तथा थौर्न मिले। सैक्सनी के दो भाग किये गये, एक तो वहाँ के पुराने राजा को दे दिया गया और दूसरा जो कि सारे प्रदेश का २/५ भाग था, और जिस मे लगभग ८,५०,००० प्रजा थी, प्रशा के हाथो मे आ गया। उसने स्वीडिश पोमीरेनिया और वेस्टफ़ेलिया की डची, राईन का वाम तट और कुछ अन्य प्रदेश को भी प्राप्त कर लिया। प्रशा ने जो कुछ प्राप्त किया वह महत्त्वपूर्ण था। जनसंख्या और क्षेत्रीय विस्तार की दृष्टि से उसकी तिल्सट के समय से कही अच्छी स्थिति हो गयी। इन आयोजनो का लक्ष्य जर्मनी के मामलों में उसके प्राबल्य को बढ़ाना था। हैनोवर प्रशा से पृथक् कर दिया गया और कुछ प्रदेशो को मिलाकर वह एक स्वतन्त्र राज्य बना दिया गया। बेडब और वुर्टम्बर्ग जैसे थे वैसे ही रहे।

ऑस्ट्रिया ने बवेरिया से तिरोल, साल्जबर्ग और वोरालबर्ग पुनः प्राप्त कर लिया और रूस से उसको इल्लीरियन प्रान्त तथा पूर्वी गैलिशिया मिल गये थे। उसने नीदरलैण्ड्स (बेल्जियम) को छोड़ दिया था और उसके स्थान पर इटली में लोम्बार्डी और वैनेशिया उसको मिल गये। जर्मनी और इटली में अभी भी उसका महत्त्वपूर्ण प्रभुत्व था। पहले में तो वह जर्मनिक राज्यसघ का अध्यक्ष था और दूसरे मे उसकी प्रभुता हैप्सबर्ग राजकुमारो के द्वारा सुप्रतिष्ठित थी जो वहाँ के कुछ राज्यों पर शासन करते थे।

जर्मनी पहले की ही तरह राज्यों का एक समुदाय मात्र बना रहा। जर्मन बन्त (मैत्रीसंघ) के नाम से उसके राज्य संघ में छोटे-छोटे ३९ राज्य एवं नगर सम्मिलित थे। संघीय अधिनियम (फैडरल ऐक्ट) के द्वारा एक संविधान का निर्माण किया गया जिसने ऑस्ट्रिया को फ्रैंकफोर्ट में डायट (संसद्) का अध्यक्ष बना दिया। प्रजाओं की स्वतन्त्रता अथवा धम की स्वतन्त्रता अथवा एक राज्य से दूसरे राज्य में आने-जाने की स्वतन्त्रता के

लिए कोई छूट रहीं रखी गयी। उन देशभक्तों के लिए यह एक अति कटु निराशा का विषय था जिन्होंने स्वातन्त्र्य-संग्राम मे सक्रिय भाग लिया था और अपने देश को विदेशी नियन्त्रण से मुक्त एक सयुक्त राज्य के रूप मे देखने की आशा की थी।

इटली के साथ बड़ा अत्याचार हुआ था। उसे कई राज्यों में खण्ड-खण्ड करके बाँट दिया गया था। म्यूरा को पदच्युत कर दिया गया और नेप्ल्स में नियोपोलिटन बूर्बो वंशियों के शासन को पुन: प्रतिष्ठित कर दिया गया था। पहले के पोप-शासित प्रदेश अब पुन· पोप के हाथ में दे दिये गये। लोम्बार्डी और वेनिस ऑस्ट्रिया को दे दिये गये। पार्मा का शासन नेपोलियन की पूर्व साम्राज्ञी मारी लुई को सौप दिया गया था। मौडीना टस्कनी और लूक्का हैप्सबर्ग राजकुमारों के अधिकार में चले गये। विक्टर इम्मैनुअल प्रथम को पीडमण्ट मे पुन: प्रतिष्ठित कर दिया गया और सेवॉय तथा जेनोआ पीडमण्ट के साथ मिला दिये गये। इस प्रकार से इटली के मर्म पर ऑस्ट्रियन प्रभाव की सुप्रतिष्ठा कर दी गयी थी। उसकी एकता को भंग कर दिया गया था और मैटरनिश के शब्दों में वह 'केवल एक भौगोलिक अभिधान मात्र' रह गया था।

स्विज़रलैण्ड को तटस्थ घोषित किया गया और इसकी स्वाधीनता को स्वीकार किया गया तथा सबने उसका सामूहिक उत्तरदायित्व सँभाला। यूरोप के सार्वजनिक विधान मे यह एक अभिनव सिद्धान्त आविर्भूत हुआ और यह क्रान्तिकारी एवं नेपोलियनिक युद्धों के महत्त्वशाली परिणामो मे से एक था।

स्पेन फर्डिनैण्ड को लौटा दिया गया और पुर्तगाल में ब्रागान्जा परिवार पुन: शासन करने लगा।

उत्तरी यूरोप में नॉर्वे को डेन्मार्क से पृथक् कर दिया गया और उसे स्वीडन को दे दिया गया जो उसका प्राणघाती शत्रु था। हॉलैण्ड तथा बेल्जियम, अपने जातीय, धार्मिक तथा ऐतिहासिक भेदों के होते हुए मिला दिये गये। यह संयुक्त राज्य नीदरलैण्ड्स का राज्य कहलाता था और इसका शासन ऑरेञ्ज परिवार को सौंप दिया गया। यह नया राज्य फ्रास के विरुद्ध रक्षक (बफर) राज्य के रूप मे स्थापित किया गया।

इंग्लैण्ड की उपलब्धियाँ प्रधानत: औपनिवेशिक ही थीं। उसे माल्टा, हेली, गोलैण्ड और आयोनियम द्वीपो का संरक्षकीय शासन प्राप्त हुआ। ट्रिनिडाड (स्पेन से), मारिशस, टोबैगो और सेण्ट लूसिया (फ्रांस से) और लंका, डेमेरारा तथा एसक्विबो (हालैण्ड से) ये सब उसी के पास बने रहे। हॉलैण्ड वालो से उसने केप कौलोनी का क्रय कर लिया। भारतवर्ष में उसका क्षेत्रीय प्रभुत्व काफी बढ़ गया, इसका कारण भारतीय शासन के साथ उसके १७८९-१८१५ के युद्ध थे। संयुक्त राज्य अमेरीका के साथ इसके युद्धों का परिणाम विजित प्रदेशो का परस्पर लौटाना था।

कासलरिया ब्रिटिश मन्त्री के कहने से ही दासों के व्यापार की निन्दा करने वाला एक प्रस्ताव कांग्रेस में पारित हो गया। इसी का अन्तिम अधिनियम (ऐक्ट) ६ जून, १८१५ को पारित हुआ।

ऐसी थी विएना की व्यवस्था। यह वैधता के सिद्धान्त पर आधारित थी यद्यपि सभी मामलों में इस सिद्धान्त का पालन नहीं किया गया था। इस प्रसंग में स्वीडन को दृष्टान्त के रूप में लिया जा सकता है। कांग्रेस का कार्य-कलाप दोषों से रहित नहीं माना जा सकता, वरन् इसकी गम्भीर आलोचना हो सकती है। राष्ट्रीयता और जनतन्त्र के सिद्धान्तों का इस कांग्रेस मे कोई ध्यान ही नही रखा गया था और इसने ऐसे कृत्रिम राज्यों का निर्माण किया था जो चिरस्थायी नहीं हो सकते थे। इसका मुख्य ध्यान शक्ति सन्तुलन की ओर था और अन्य सभी विचारों को इसने एक तरफ रख दिया था। अपेक्षाकृत बड़े राज्यो के लिए छोटे-छोटे राज्यों को बलिदान करने के लिए विवश कर दिया गया। यह एक प्रकार से १८वी शताब्दी के आदर्शों को लौट गयी थी और राजवंशों के हितों को प्रमुखता देने लगी थी। इटली और जर्मनी में विदेशी प्रभाव प्रसृत हो गया था और स्वायत्त शासन का मार्ग अवरुद्ध हो चुका था। हालैण्ड और बेल्जियम को उनकी जातिगत, धार्मिक, भाषा सम्बन्धी और ऐतिहासिक परम्पराओं में विभेदों के होते हुए भी संयुक्त कर दिया गया था। कांग्रेस बड़े अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों में शान्ति की बातचीत करती थी परन्तु एक न्याय और स्थायी आधार पर इसकी स्थापना करने के लिए इसने कुछ भी नहीं किया। अन्तर्राष्ट्रीय कलहों का निर्णय करने के लिए एक न्यायालय की स्थापना करने में यह कांग्रेस विफल रही और न इसने भविष्य में युद्धों को रोकने के लिए निःशस्त्रीकरण पर ही विचार किया। कदाचित् ऐसे प्रगतिशील विचारों के लिए अभी समय नहीं था। टर्की के सुलतान को अपने देश में सुधार करने के लिए बाध्य करने में कोई पग नहीं बढ़ाया गया और अमेरिकन-स्पेनिश उपनिवेशों की समस्या की ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया गया। इतना होते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि कांग्रेस ने एक महान् कार्य पूरा किया था। इसकी सीमित एवं संकुचित परिधि में कदाचित् इससे अधिक और कुछ सम्भव भी नहीं था। अपने निर्णयों का समुचित पालन कराने का इसका अधिकार भी सीमित ही था और इस विषय में आपसी समझौते को छोड़कर यदि अन्य किसी नीति का अवलम्ब किया भी जाता तो युद्ध अनिवार्य था और इसके लिए ये राज्य बिलकुल तैयार नहीं थे। रूस और प्रशा पोलिश समस्या को सुलझाने में एक-दूसरे से किसी भी रूप में दबने के लिए तैयार नही थे और यह मामला आपस में कुछ ले-देकर ही तय हुआ था। कांग्रेस ने यूरोप को जो शान्ति दी, लगभग तीस वर्ष तक उसने अपना अस्तित्व कायम रखा। इसने शक्ति-सन्तुलन की स्थापना कर दी और किसी भी एक राज्य शक्ति

के आक्रमणो से रक्षा की व्यवस्था कर दी ।

तथापि यह नही कहा जा सकता कि जो राजनीतिज्ञ कांग्रेस मे बैठे थे उनकी प्रेरणा के आधार नितान्त स्वार्थहीन मन्तव्य थे। उनके सामने अपने-अपने देशो के हितो की रक्षा का प्रश्न था और इन सघर्षो और भ्रान्तियों के वातावरण मे से उन्हे एक ऐसा सर्वोपयोगी सिद्धान्त निकाल लेना था जो एक अभिनव युद्धारम्भ की आवश्यकता को सर्वथा दूर रखते हुए परस्पर सघर्षो तथा गड़बड़ के समय मे समझौता करा सकता। यही कारण था कि वे व्यावहारिक सुविधाओ से ही सन्तुष्ट हो गये और समय की आवश्यकता के अनुसार सिद्धान्तो का भी परित्याग कर सकते थे। इस प्रसग मे वेबस्टर का मत सत्य के अधिक निकट है—

"वे लोग अपनी ही पीढ़ी के इन्सान थे; और यद्यपि उन्होने यूरोप के लिए शान्ति की एक श्वास ले सकने योग्य भूमि तैयार कर दी थी और एक या दो गौण विषयों में उन्होंने यूरोप के भावी शासन के लिए बहुत कुछ कर दिया था जैसे अन्तर्राष्ट्रीय नदियो की व्यवस्था, परन्तु आने वाली पीढ़ियो की कृतज्ञता प्राप्त करने के लिए इससे अधिक उन्होंने बहुत ही कम किया।"[1]

इसी मत का सबल समर्थन एक अन्य इतिहासकार ने भी किया है, वह लिखता है—"जिस सन्तुलन की व्यवस्था को स्थापित करने के लिए उन्होंने प्रयास किया, उसने चालीस वर्षो तक महान् राज्यो मे परस्पर सामान्य शान्ति बनाये रखने मे सहायता दी—यह समय एक अभूतपूर्व भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक सक्रियता का युग था।" कांग्रेस के मन्त्री गेञ्ज ने इसके कार्यकलाप का बहुत ही समुचित एवं उदार विवरण इस प्रकार दिया है। उसने कहा है—

"परन्तु वास्तव में, जैसी कि यह सन्धि है, इसका निश्चित वैशिष्ट्य अधिकतर पूर्ण राजनीतिक रचना के लिए विश्व को तैयार करना है। जब कभी राज्य शक्तियाँ पुनः एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था को स्थापित करने के लिए मिलें जिससे कि विजयेच्छुक युद्धों की सम्भावना को समाप्त कर दिया जायेगा, और निर्बल के अधिकारों को सुरक्षित किया जायेगा तो विएना की कांग्रेस एक प्रारम्भिक सभा के रूप में अपना उपयोग न खो चुकी होगी। अत्युद्वेगकारी कुछ विचारणीय प्रश्नो का निर्णय किया जा चुका है और एक श्रेष्ठतर रचना के निर्माण के लिए भूमिका तैयार की जा चुकी है।"

कांग्रेस एक युग की समाप्ति और दूसरे के आरम्भ की सूचना देती है। इसकी व्यवस्था में भावी कलह एव संघर्ष के बीज ढूंढ़े जा सकते हैं। इसके द्वारा स्वीकृत प्रादेशिक

१. कांग्रेस ऑव विएना, पृ० १९८।

व्यवस्थाओं ने उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप के अधिकांश राज्यों की नीति का विनिश्चय कर दिया। जब राष्ट्र इन व्यवस्थाओं के घातक परिणामों से अवगत होने लगे तो प्रतिक्रिया और उदार विचारों का पारस्परिक संघर्ष अधिक तीव्र हो गया और जनतन्त्र की शक्तियों को एक नया ही उत्साह मिल गया। रूस की महत्त्वाकांक्षाएं, पोलिश प्रदेशों को आत्मसात् कर लेने की उसकी उत्तरोत्तर बढ़ने वाली अभिलाषा, जर्मनी का प्रशनीकरण, पीडमण्ट की इटालियन स्वातन्त्र्य आन्दोलन का नेता बनने की उच्चाकांक्षा और विश्व-शक्ति के रूप में इग्लैण्ड का अपने आपको विश्वस्त करना, ये है भविष्य मे होने वाले कार्य जिनका मूल १८१५ की व्यवस्था में खोजा जा सकता है। यूरोप बड़ी शीघ्रतापूर्वक बदल रहा था, विज्ञान के नये आविष्कार एव अन्वेषण उद्योगों में क्रान्ति उत्पन्न कर रहे थे और उत्पादन के साधनो की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी; नगरवासियों के महान् केन्द्रो में असन्तोष की एक अभिनव भावना का संचार हो रहा था, क्रान्तिकारी और नेपोलियनिक युद्धों से जाग्रत राष्ट्रीयता की भावना अतिवेग के साथ बढ़ती जा रही थी। मस्तिष्कों, आशाओं तथा आदर्शो के संघर्ष में जो इन संशोधनो और परिवर्तनों के बाद नितान्त अनिवार्य था मैटरनिश के सहानुभूति शून्य हाथों खड़ी की गयी यह व्यवस्था अधिक समय तक नही ठहर सकती थी। आगामी ३० वर्ष में वह विध्वस्त हो गयी।

अध्याय ११

प्रतिक्रिया का युग

यूरोप की संयुक्त व्यवस्था

विएना की कांग्रेस तथा इसके पूर्व की अन्य सन्धियो का उद्देश्य एक ऐसी व्यवस्था करना था जिसमे पदच्युत राजवंशों की पुन: अपने राजपदों पर प्रतिष्ठापना हो जाय और फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति तथा नेपोलियनिक युद्धों के द्वारा यूरोप की शान्तिमयता को पुनः प्रतिष्ठित किया जाय। फ्रांस तूफान का केन्द्र और प्रलयंकारी विचारो का मूलस्रोत था, इसीलिए बचाव के उपायों की व्यवस्था करना आवश्यक समझा गया। इस उद्देश्य को पवित्र मैत्रीसन्धि और पंचमुख मैत्रीसन्धि (क्वाड्रूपल एलायंस) के द्वारा पूरा किया गया। ये सन्धियाँ १८१५ मे स्वीकार की जा चुकी थीं। दोनों का ही उद्देश्य शान्ति एव व्यवस्था स्थापित करना था परन्तु जिन उपायों से दोनों अपने लक्ष्यों की पूर्ति करना चाहती थी वे नितान्त भिन्न थे। एक अपनी सफलता के लिए ईसाईमत के सिद्धान्तों पर निर्भर थी और दूसरी ने यूरोपीय राज्यों की वैदेशिक नीति का नियन्त्रण करने और राज्यों के समय-समय पर होने वाले अधिवेशनो में राजनीतिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन करने का सुझाव दिया। विएना में जिस प्रतिक्रिया का विस्फोट हुआ उसमें तत्कालीन अवरोध के राजनीतिक सन्तुलन का ही समावेश नहीं किया गया, वरन् उदारवादी दृष्टिकोण से उसमें गिरजो का अतिमठवाद और विचारों के स्वच्छन्दतावाद को भी समाविष्ट कर लिया गया था। इनमे से पहली धारा का सर्वाधिक शक्तिशाली परिपोषक जोज़ेफ द मैस्त्र था जो फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति को शैतान का कृत्य कहता था और दूसरी धारा का संस्थापक शातोब्रियां था जो फ्रांस मे रोमाण्टिक स्कूल (अथवा स्वच्छन्दतावाद) का प्रतिष्ठाता था। क्रान्ति के प्रत्येक अवशेष को नि:शेष कर देने की बलवती आकांक्षा ज़ोर पकड़ने लगी थी और गतिहीनता तथा स्थिरता के अभिनव सिद्धान्तों का प्रचार अधिक बढ़ने लगा था। युद्धों से विध्वस्त यूरोप की मनःस्थिति अब उदार विचारो को प्रोत्साहित करने की नही रह गयी थी। मानव के अधिकारों की अवहेलना की जाने लगी थी और रूसो का स्थान अब बेन्थम ले रहा था। शासकवर्ग अपने दृष्टिकोण में अधिकाधिक प्रभुताप्रिय

हो गया था और किसी भी प्रकार के परिवर्तन को रोके रखने के लिए प्राणपण से सन्नद्ध था। परन्तु इस बात को समझ सकने में वे असमर्थ-से थे कि राष्ट्रीयता की भावना को पूर्णतः दबा सकना असम्भव है। उनकी अदूरदर्शी नीति के परिणाम शीघ्र ही दृष्टिगोचर होने लग गये। आन्तरिक रूप से तो देश अपने संवैधानिक स्वातन्त्र्य के लिए संघर्ष कर रहे थे और बाह्य रूप से एकता एव आत्मनिर्भरता को लक्ष्य बना रहे थे। विएना में स्वीकृत प्रबन्ध-व्यवस्था तीस वर्षो से अधिक स्थिर न रह सकी और उन्नीसवीं शताब्दी के इतिहास में राष्ट्रीयता की भावना एक निर्णयकारी तत्त्व बन गयी।

विएना में प्रतिष्ठापित इस प्रतिक्रियाकर्म का वास्तविक नेता ऑस्ट्रिया का चान्सलर मैटरनिश था जिसने नेपोलियन बोनापार्ट के पतन में महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। यूरोपीय-परिषदों में उसकी नीति और सिद्धान्तों का प्रभुत्व स्थापित हो चुका था और इस महाद्वीप की व्यावहारिक राजनीति तथा कार्य-प्रणाली मे उसे ऐसा सम्मानपूर्ण स्थान मिल गया था कि वह अपने आपको, भूमि को अपने कन्धों पर वहन करने वाले एटलस से कम नहीं समझता था। १५ मई, १६७३ को काब्लेञ्ज़ में उसने एक महासम्भ्रान्त कुल में जन्म लिया था और उसकी शिक्षा स्ट्रासबुर्ग विश्वविद्यालय मे हुई थी। विधिशास्त्र (ज्युरिस्प्रूडेन्स) के सुविख्यात आचार्य विलियम कोश से उसने अन्तर्राष्ट्रीय विधान का अध्ययन किया था और उसके सहपाठियों में बेञ्जामिन, कान्सताँ, ताल्लीराँ और माण्टेग्लास प्रभृति महानुभाव थे। कुछ कलहों और संघर्षो के कारण वह फ्रैंकफोर्ट में चला गया और वहाँ से वह मैञ्ज़ विश्वविद्यालय मे कूटनीतिशास्त्र में डिग्री प्राप्त करने के लिए चला गया। फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति के अतिचारों से वह भयाकुल हो गया था और मारी आँत्वाआनेत्त की फाँसी की निन्दा उसके राजनीतिकुशल मस्तिष्क की आरम्भिक प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति है। १७६५ में कौनित्ज़ की प्रपुत्री से उसका विवाह हुआ और इस पारिवारिक सम्बन्ध ने उसे पर्याप्त राजनीतिक और सामाजिक ख्याति दी। १८०३ में प्रशन राजदरबार में उसे ऑस्ट्रियन मन्त्री नियुक्त किया गया और साज-शृंगार से भरे बर्लिन के समाज में उसने जी भर के आनन्द का उपभोग किया और अनेक प्रेम षड्यन्त्रों में वह उलझ गया। यह कहा जाता है कि इसी समय अपने युग की सबसे अधिक प्रतिभाशालिनी महिला मदाम दे स्तेल ने उसके समक्ष अपने प्रेम का समर्पण किया परन्तु उसने इन्कार कर दिया। बर्लिन से वह सेण्ट पीटर्सबर्ग की राजसभा में भेज दिया गया जहाँ ज़ार अलैक्जेण्डर से उसका निकट सम्पर्क स्थापित हुआ। १८०६ में वह फ्रांस में ऑस्ट्रियन राजदूत नियुक्त हुआ और पेरिस में रहते हुए उसे नेपोलियन के मस्तिष्क एवं चरित्र का निकट से अध्ययन करने का उत्तम अवसर प्राप्त हुआ। उसने स्पष्टतः कह दिया था कि फ्रांस के सम्राट् का अधिबल बडे दुर्बल आधारों पर प्रतिष्ठित है और इसकी अक्षुण्णता अन्तहीन तथा सफल सैनिक

अभियानों पर ही केवल निर्भर है। एक कुशल कूटनीतिज्ञ की तरह उसने अपने देश तथा फ्रांस के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न किया। परन्तु नेपोलियन के हृदय मे ऑस्ट्रिया के प्रति अविश्वासपूर्ण विकारों को निकालने के प्रयत्न में उसने नेपोलियन से यही उपालम्भपूर्ण वचन सुन लिया था, "मैटरनिश पूरा-पूरा राजनीतिज्ञ बन गया है ; वह बड़ी कुशलता से झूठ बोलता है।" वैग्राम के युद्ध (१८०६) के पश्चात् जिसमें ऑस्ट्रिया की पराजय हुई थी, मैटरनिश वैदेशिक मन्त्री नियुक्त हुआ और यह उसीका काम था कि राजकुमारी मारी लुई और नेपोलियन का विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ था। इसके तुरन्त बाद ही प्रशा और फ्रांस में युद्ध आरम्भ हो गया और फ्रांस को पराजित करने के लिए एक शक्तिशाली संयुक्त मोर्चे का निर्माण किया गया। मैटरनिश एक प्रकार से इस सयुक्त मोर्चे का प्रधान मन्त्री बन गया और राष्ट्रों के युद्ध (१८१३) के पश्चात् विएना में स्वीकृत मित्र राज्यों की प्रबन्ध व्यवस्थाओ में उसने महामहत्त्वपूर्ण भाग लिया। वाटरलू की निर्णयकारी घटना के पश्चात् वह यूरोप का सबसे बड़ा राजनीतिक नेता और कूटनीतिज्ञ बन गया। उसके प्रभाव-छत्र ने अन्य सबको आभाहीन कर दिया। वह यूरोपीय राजनीति के रंगमंच पर एक सुविशालकाय महामानव की तरह आसीन हुआ, उसने तात्कालिक शान्ति तथा भावी पुनर्निर्माण की योजनाओं के लिए उपयोगी सुझाव प्रस्तुत किये।

मैटरनिश के सिद्धान्त क्या थे ? वह एक कट्टर रुढ़िवादी था, राज्यक्रान्ति उसकी दृष्टि में दैवी अभिशाप से कुछ कम नहीं थी। वह कहता था—'स्वतन्त्रता एक रोग है और संसदीय शासन एक निरन्तर कलाबाजी। राज्यक्रान्ति एक ऐसा भयंकर जन्तु है जो सदा सामाजिक व्यवस्था को निगल जाने के लिए अपने जबड़ों को खुला रखता है। यह एक ऐसा नासूर है जिसे लाल धधकते हुए लौहगोलक से जला डालना चाहिए।' इन अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों में उसने उन विचारों की कटु निन्दा की थी जो उसके अनुसार मनुष्यो को सत्य के मार्ग से विमुख कर देते है। शक्ति-सन्तुलन एक ऐसा विश्वव्यापी सिद्धान्त था जिस पर राज्य का कल्याण ओर स्थैर्य निर्भर था। बलपूर्वक आरोपित किये गये संविधानों में उसकी कोई आस्था नहीं थी ; उसका विचार था कि संविधानों की स्वीकृति सम्यक् प्रकार से निर्वाचित अधिकारियों के हाथों में होनी चाहिए। बर्क की तरह उसका विचार था कि किसी भी देश का संविधान वहाँ के राज्य तथा जीवन, वहाँ की जनता के स्वभाव तथा प्रकृति में प्राप्त परिस्थितियों के अनुकूल बनाया जाना चाहिए। जनता की सर्वोच्च प्रभुता के सिद्धान्त से भयंकर परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं और राज्यों में अशान्ति पैदा होनी है। वह राजाओ के दैवी अधिकार के सिद्धान्त को मानता था और राजतन्त्र के सिद्धान्त का समर्थन करने की आवश्यकता पर बहुत अधिक

बल देता था। राजा चाहे जितने भी दुष्ट क्यों न हों अपने सिंहासन पर ही प्रतिष्ठित किये जाने चाहिए और उनकी संरक्षा होनी चाहिए क्योंकि वे जनता द्वारा स्वीकृत एवं सम्मानित सत्ता के प्रतीक हैं। वैधता एक सशक्त सिद्धान्त है क्योंकि इससे न केवल न्याय दृढ़ होता है प्रत्युत किसी भी राज्य की नीति में एकात्मकता भी बनी रहती है। वंशपरम्परानुगत अधिकार सिद्धान्त को वह बहुत अच्छा समझता था क्योंकि सामाजिक व्यवस्था की अक्षुण्ण दृढ़ता का यह सबसे बडा आश्वासन है। उदार विचारों की प्रगति से वह पर्याप्त भयभीत था और राजनीतिक सन्तुलन को सुरक्षित रखने के लिए उसने यूरोप के राज्यों को पुलिस की तरह कार्यकरों का सुझाव दिया। इसके लिए उसने महाशक्तियों के संयुक्त संघ को नियुक्त करना उचित ठहराया और उसकी दृष्टि में राज्यों के मामलों में यह संघ पूरी तरह से हस्तक्षेप कर सकता था। इस प्रकार के अर्द्धसत्यों और मिथ्या सिद्धान्तों के समूह का ही दूसरा नाम मैटरनिश व्यवस्था है जिसने तीस वर्ष तक यूरोप पर पूर्ण प्रभुत्व बनाये रखा। इसकी त्रुटियाँ मैटरनिश की दृष्टि के सामने सर्वथा स्पष्ट थीं। परन्तु तत्कालीन ऑस्ट्रियन साम्राज्य की विचित्र परिस्थितियाँ और क्रान्तिकारी विचारों का विनाश करने की उसकी प्रबल आकांक्षा ने, जो कि उस समय के प्रतिस्पर्धी दलों का लक्ष्य बनी हुई थी, उसकी नीति का मार्गदर्शन किया और उसे विश्वास दिला दिया कि 'आधुनिक नीति का एकमात्र आधार शान्ति है और होना भी चाहिए।' वह अपने आपको 'व्यवस्था का दृढ़ प्राकार' समझता था और दृढसंकल्प होकर अपने आदर्शों की ओर बढता था। परन्तु वह जानता था कि वह उस जगत में, जो कि उसके इर्द-गिर्द अपना अस्तित्व दृढ किये जा रहा था, सर्वथा अनुपयुक्त था, जैसा कि उसके अपने ही शब्दो से प्रकट हो जाता है—

"मेरे जीवन का कुयोग सबसे अवांछनीय युग के साथ हुआ है। मैं या तो इस विश्व में बहुत पहले आ गया हूँ और या बहुत विलम्ब करके आया हूँ। मैं जानता हूँ कि इन वर्षों में मैं कुछ भी सफलतापूर्वक अर्जित नहीं कर सकता। पहले आकर मैंने युग से आनन्दलाभ किया होता, बाद में मै इसके पुनर्निर्माण में सहायक बना होता। आज तो मै अपना जीवन एक लड़खड़ाते हुए प्रासाद को सहारा देने में ही बिता रहा हूँ। मुझे तो १६०० में जन्म ग्रहण करना चाहिए था, तब बीसवीं शताब्दी मेरे सामने होती।"

बीसवी शताब्दी की परिस्थितियों के अनुरूप बनने में उसे स्वयं कितनी कठिनाई होती इसका अनुमान वे लोग आसानी से लगा सकते है जो इसकी परम उद्वेगकारी समस्याओं से परिचित है।

मित्रराज्यों का उद्देश्य यूरोप मे शान्ति की व्यवस्था को कायम रखना था। इस दिशा मे सर्वप्रथम पग ज़ार अलैक्जेण्डर ने सुझाया जो इस समय विचित्र-विचित्र अनुभवों

का आश्रय बना हुआ था। अपने ही पिता का वध करने के पाप की चेतना ने उसके हृदय को पश्चात्ताप से परिपूरित कर दिया था और उन जैकोबिन विचारों ने जो उसे अपने स्विस अध्यापक ला हार्प से प्रेरणा रूप में प्राप्त हुए थे, उसकी उदार मनोवृत्तियों को प्रोत्साहित किया था। फिर वहाँ मदाम क्रुदनर का भी प्रभाव था जो एक लीवोनियन स्त्री थी। एक वेश्या जो देवदूतिनी हो गयी थी, उसने ज़ार को एक ऐसा उदात्त सन्त और देवदूत बना दिया था जो समस्त मानवसमाज की मंगलवृद्धि में ही सदा दत्तचित्त रहता था। २६ सितम्बर, १८१५ को उसने पवित्र (धार्मिक) मैत्रीसन्धि की घोषणा की और अपने विचार एवं उद्देश्य को उसने एक पत्रक में समाविष्ट किया जो ऑस्ट्रिया और प्रशा के सामने हस्ताक्षर करने के लिए प्रस्तुत किया गया था। परम पवित्र तथा अदृष्ट त्रितय (ट्रिनिटी) के नाम पर तीन सम्राटों ने अपना उद्देश्य घोषित किया कि "वे मानवीय संस्थाओं की पुष्टि के एकमात्र साधन और अपनी अपूर्णताओं के निदान के रूप में उस पवित्र धर्म के उपदेशों को अपना एकमात्र मार्गदर्शक स्वीकार करते है जो न्याय, ईसाईमत सम्मत दान (क्रिस्चन चैरिटी) तथा शान्ति के उपदेश है।"

इस घोषणापत्र की द्वितीय धारा में कहा गया था, "तीन मित्र राजकुमार अपने आपको इस बात पर प्रसन्न समझते है कि दैवी अनुग्रह ने उन्हें एक परिवार की तीन शाखाओं अर्थात् ऑस्ट्रिया, प्रशा और रूस पर शासन करने का अवसर दिया है, और उसे ईसाई संसार का जिसके वे और उनकी प्रजा अंगरूप हैं वास्तव में उसके अतिरिक्त और कोई सर्वोच्च प्रभु नहीं है और यथार्थतः केवल उसी की यह सारी प्रभुता है क्योंकि केवल उसी में प्रेम, विज्ञान और अनन्त प्रतिभा की निधियाँ निहित हैं, अर्थात् वह परमेश्वर हमारा दैवी संरक्षक, परम-उदात्त का वचन, जीवन की वाणी है।"

इसके अतिरिक्त उन्होंने अपना निश्चय प्रकट किया कि "प्रतिदिन उन सिद्धान्तों तथा कर्त्तव्यों के पालन करने में वे लोग अपने आपको अधिक से अधिक दृढ़ करेंगे जो दैवी संरक्षक ने मानव समाज के लिए उचित ठहराये हैं।" उन्होंने पर्याप्त गम्भीरतापूर्वक यह भी स्वीकार किया कि अब से वे लोग आपस में एक दूसरे को भाई-भाई समझेंगे और एक सच्चे तथा अविनश्वर बन्धुत्व के बन्धनों से परस्पर एकतासूत्र में बँधकर रहेंगे और पवित्र धर्म के सिद्धान्तों का पालन वे न केवल अपने वैयक्तिक मामलों में ही करेंगे प्रत्युत् अपने-अपने देश के शासनकार्य में तथा अन्य राज्यशासनों के साथ अपने राजनीतिक सम्बन्धों के विषय में भी वे इन सिद्धान्तों का समुचित परिपालन करेंगे। इस काल्पनिक घोषणा पर ऑस्ट्रिया तथा प्रशा ने हस्ताक्षर कर दिये थे यद्यपि मैटरनिश ने इसे एक 'एकस्वरात्मक शून्य', 'एक बड़ी ऊँची दोषपूर्ण निरर्थकता', तथा 'धार्मिक आवरण में प्रच्छन्न एक परोपकारी महत्त्वाकांक्षा' के नामों से अभिहित किया था। इंग्लैण्ड के

राजकुमार संरक्षक ने इस पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया क्योंकि कासलेरीआन मन्त्री ने उस पर अपने हस्ताक्षर नहीं किये थे और उसने अपने विशिष्ट यथार्थवादी दृष्टिकोण के अनुकूल इसे 'उदात्त रहस्यवाद और मूर्खता का निदर्शन' कहकर ही उड़ा दिया था।

इस पवित्र मैत्री सन्धि को उदार आन्दोलनों के विरुद्ध 'अत्याचारियों का षड्यन्त्र' कहकर या अत्याचारो के एक अभिनव यन्त्र की प्रतिष्ठापना करने के क्रूर मास्कोई पैंतरे के रूप में मान कर निन्दा करना अनुचित होगा। परन्तु इसमे कोई सन्देह नहीं है कि यह अव्यावहारिक थी और सभी यूरोपीय देशो के प्रगतिशील देशभक्तों के द्वारा इसका गलत समझा जाना एक प्रकार से निश्चित-सा ही था। इसका राजनीतिक महत्त्व केवल इसी तथ्य में था कि यह एक विश्वसंघ अथवा यूरोप के संयुक्त राज्यसंघ के विचार के सुस्पष्ट रूप का प्रतिनिधित्व करता था जो जार ने १८०४ में पिट को सुझाया था और जिसका समावेश उसने नावोसिल्त्सोव को एल्बा से नेपोलियन के भागने के पहले दिये गये आदेशों में किया था।

इस समय चिन्ता का सबसे प्रधान कारण फ्रांस बना हुआ था और २० नवम्बर, १८१५ को बड़े राज्यों ने पेरिस में दो सन्धियाँ स्वीकार कीं जिन्होंने विएना की कांग्रेस के कार्य को पूर्ण किया। इनका उद्देश्य त्रिविध था—(१) फ्रांसीसी आक्रमणों से यूरोप की रक्षा करना; (२) नेपोलियन बोनापार्ट के पुनरागमन को रोकना; (३) राज्य-क्रान्ति के द्वारा यूरोप की शान्ति के पुनः भंग होने पर महाशक्तियों की मनोवृत्ति का सुस्पष्टीकरण करना। इनमें से एक थी पेरिस को द्वितीय सन्धि जिसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। दूसरी थी पंचमुख मैत्री सन्धि (क्वाड्रूपल एलायंस) जिसपर महाशक्तियों ने हस्ताक्षर किये थे, जिनमें ग्रेट ब्रिटेन, ऑस्ट्रिया, रूस और प्रशा थीं। इस सन्धि के प्रस्तावना-पत्र में यह कहा गया था कि उन शासकों ने जो मैत्री के ऐसे बन्धनों को कड़ा करने के लिए उत्सुक हैं जिनसे उनकी प्रजाओं का कल्याण होता है और ऐसे कल्याण के हित में जो एकता का सूत्रपात करते है, निश्चय कर लिया था कि "शौमों तथा विएना की सन्धियों के द्वारा अभिषिक्त सिद्धान्तों का परिपालन किया जाय, सार्वजनिक कार्यों की वास्तविक परिस्थितियों के अनुरूप उनका सर्वोपयुक्त क्रियात्मक प्रयोग किया जाय, और एक दृढ सन्धि बन्धन के द्वारा पहले से ही उस आचरण की दिशा का सुनिश्चित निर्देश कर लिया जाय जिसका अनुसरण यूरोप को उन खतरों से बचाने के लिए आवश्यक रूप से करना पड़ेगा जिनकी उसको आशंका होगी।" ये समझौता करने वाले ऊँचे पक्ष पेरिस की द्वितीय सन्धि का परिपालन करने के लिए पूर्णतः तत्पर हो गये थे और शौमों तथा विएना के आरम्भिक समझौतों का जहाँ तक फ्रांस की सुरक्षा

और उसकी प्रादेशिक सीमाओं तथा फ्रांसीसी राजसिंहासन से बोनापार्टवादियों के सार्वकालिक विच्छेद का सम्बन्ध था, उन्होंने उनका भी पालन करने के लिए अपने आपको तैयार किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने समय-समय पर अधिवेशनों में मिलकर बैठना भी स्वीकार किया जिनमे "सार्वजनिक हित से सम्बन्धित मामलों पर विचार किया जाता।" सन्धि के छठे भाग में, जो कि कासलरिया ने परिशोधित किया था, इस प्रकार से लिखा हुआ है—

> "प्रस्तुत सन्धि के क्रियात्मक पालन को सुगम बनाने तथा सुरक्षित बनाने के लिए और उन सम्बन्ध-सूत्रों को दृढ करने के लिए जो इस समय विश्व के सुख के लिए चारो शासकों को एकता-बन्धन में बाँधते है, समझौता करने वाली ऊँची शक्तियाँ इस बात पर एक मत है कि वे अपने अधिवेशनों को नियत समयों पर किया करेंगी, या तो यह कार्य इन शासकों में से किसी के तत्कालीन संरक्षकत्व में सम्पादित हुआ करेगा या उनके मन्त्रियों के संरक्षकत्व में। इनका उद्देश्य अपने संयुक्त हितों पर विचार-विमर्श करना और उन उपायों पर समुचित विचार करना होगा, जो अपने-अपने युग में राष्ट्रों की शान्ति तथा समृद्धि के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समझ जाया करेंगे और जो यूरोप में शान्ति-स्थापना के लिए हितकर होंगे।"
> इसी में यूरोप की भावी संयुक्त व्यवस्था के बीज निहित थे।

उस समय यह बात सुस्पष्ट नहीं थी कि इस चौकसी का यथार्थ रूप क्या होगा। राजशक्तियों के प्रतिनिधियों में परस्पर सन्धि के छठे भाग के विषय में विचारणीय मतभेद उठ खड़ा हुआ। इस बात पर सभी एकमत थे कि क्रान्तियों के पुनरागम को रोकने के लिए संयुक्त कार्यवाही परम आवश्यक है। परन्तु इसके परे उनके विचारों में बहुत मतविरोध था। मैटरनिश जो निकृष्टतम प्रकार का प्रतिक्रियावादी था, किसी भी प्रकार के उदार विचार को घृणा करता था और उदारता का समूल विनाश करने के लिए कटिबद्ध था। राष्ट्रीयता और जनतन्त्र की प्रगति भिन्नजातीय और बहुभाषी हैप्सबर्ग साम्राज्य के लिए बहुत अहितकर थी और इसलिए वह पुरातन राजव्यवस्था को पुनर्जीवित करने में दृढ़चित्त हो गया था। ज़ार बाह्य रूप से तो उदार सिद्धान्तों को मानता था परन्तु वास्तव मे जनतन्त्रात्मक संविधानों में उसकी कोई आस्था नहीं थी और दूसरे राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए सर्वदा तत्पर रहता था। कासलरिया दोनों में से किसी भी मत का समर्थक नहीं था। यद्यपि वह एक रूढ़िवादी नेता था, पर उदार सिद्धान्तों का वह विरोध नहीं कर सकता था क्योंकि उससे वह ब्रिटिश जनता को अपना प्रतिरोधी बना लेता और न ही वह राज्यशक्तियों के द्वारा यूरोपीय राज्यों के मामलों के नियन्त्रण को स्वीकार कर सकता था। परन्तु क्योंकि सब की

अभिलाषाओं के प्रधान उद्देश्य एकता और शान्ति थे कुछ काल तक तीनों ने मिल जुलकर १८१५ की सन्धि व्यवस्था को क़ायम रखा। बहुत काल नहीं बीता था कि पंचमुख मैत्री-सन्धि की शर्तों की व्याख्या हस्ताक्षर करने वाली शक्तियों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से करनी शुरू कर दी। कासलरिया का मत था कि ये शर्तें आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं देती थीं परन्तु मैटरनिश का विचार था कि आन्तरिक विद्रोहों का दमन करने के लिए सशस्त्र हस्तक्षेप सन्धि की शर्तों के सर्वथा अनुकूल था। दूरदर्शी पर्यवेक्षकों की दृष्टि में संयुक्त व्यवस्था का विध्वंस केवल समय की बात थी।

प्रतिक्रिया और अशान्ति और ऐक्स का सम्मेलन

चतुर्मुखी मैत्री-सन्धि द्वारा यूरोप के प्रतिक्रिया युग का आरम्भ हुआ। बूर्बो-वंशियों ने जैसा कि फ्रांसीसी विदूषक ने कहा था, "मित्रराज्यों की मालगाड़ी में बैठकर" लौटे थे। उन्होंने अपने उन राजतन्त्रवादियों से घिरा हुआ पाया जो पुरातन राजव्यवस्था को पुनर्जीवित करना और राज्यक्रान्ति के प्रत्येक अवशेष का समूल उच्छेद कर डालना चाहते थे। इटैलियन राजकुमारो ने तो पुरातन व्यवस्था की पुनःस्थापना करने के लिए बडे उपहासास्पद उपायों का आश्रय लिया। सार्दीनिया का राजा लौट आया और मज़ाक में उसने कहा कि वह पन्द्रह वर्ष तक सोता रहा था। जिन मविधियो (कानूनों) और संस्थाओं की स्थापना फ्रांसीसियों ने की थी उनका उन्मूलन कर दिया गया; वैज्ञानिक अध्ययन के निमित्त उनके द्वारा लगाये गये वनस्पति के उद्यानों का विनाश कर दिया गया और मॉन्त सेनिस पास पर नेपोलियन द्वारा बनवाये राजमार्ग (सड़क) का उपयोग कठोरतापूर्वक वर्जित कर दिया गया। पुराने दोप, वैधानिक अव्यवस्थाएँ, सामन्ती विशेषाधिकार, मठ, धार्मिक न्यायालय और यहूदियों तथा प्रौटैस्टैण्ट लोगों की अयोग्यताएँ शासनकार्य की प्रमुख विशेषताएँ बन गयीं। चर्च-शासन एक बार पुनः अपने सुधार-विरोधी विचारों का सक्रिय पोषक बन गया और शासन की निरंकुश-विधियो का उपयोग करने लगा। चर्च की भूमि पुनः वापस ली गयी, खरीददारों को बड़ा असन्तोषजनक हर्जाना मिला और जैसुइट लोगों को जो अभी तक देशनिर्वासित थे, पुनः स्वदेश में आमन्त्रित किया गया। यहाँ तक कि रोम मे राजपथों के प्रकाश-स्तम्भों को भी हटा दिया गया। परन्तु पोप के मन्त्री कन्सालवी का कट्टरपन्थियों और प्रतिक्रियावादियों के नेताओं पर समुचित प्रभाव था, और यद्यपि वह चर्च-शासन (वैटिकन) पर आश्रित एक सशक्त नौकरशाही का समर्थक था, उसने अभिनव आदर्शों, मतवादों और विचार-पद्धतियों को मान्यता प्रदान की थी जो गत दो दशकों से अस्तित्व मे आ चुकी थीं। टस्कनी इतना खराब नही था पर मॉडीना का ड्यूक फ्रांसिस प्रतिक्रिया का बड़ा हठी

समर्थक था और सभी उदार एवं पृथक्कारी प्रभावो का सर्वनाश करने के लिए कृत-निश्चय था। उसका कहना था कि "उदार विचारों वाले व्यक्ति पापी हैं; उनके पश्चात्ताप की प्रार्थना करो परन्तु पश्चात्तापहीन को दण्डित करो।" अभिजातवर्गीय-जनों और पुरोहितों को पुनः उनके विशेषाधिकारपूर्ण पदों पर प्रतिष्ठित कर दिया गया और ग़लत सिद्धान्तों का प्रचार करने का अभियोग लगाकर उदारवादियों को क्रूरता-पूर्वक दण्डित किया गया। लोम्बार्डी और वेनिस में जो ऑस्ट्रिया में मिला दिये गये थे, प्रतिक्रिया अपनी पराकष्ठा पर पहुँच गयी थी। मैटरनिश की प्रतिज्ञाएँ पूरी नही हुईं थीं और देशवासियों का अराष्ट्रीयकरण करने के लिए ऐसे कठोर कदम उठाये गये कि पाठशालाओं में छात्रों तक को यही शिक्षा दी जाती थी कि मिलाये गये प्रान्त वास्तव में ऑस्ट्रिया के ही भौगोलिक अंग हैं। नेप्ल्स की स्थिति भी कोई बहुत अच्छी नहीं थी। फर्डिनैण्ड ने पुरातन शासन-व्यवस्था के सभी दोषों को पुनर्जीवित कर दिया था। क़ानूनी विवाह (सिविल मैरिज) और तलाक व्यवस्था का उन्मूलन कर दिया गया और नव-वयस्कों के स्वातन्त्र्य पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। शिक्षा का कार्यभार चर्च को सौप दिया गया, कट्टर रूढ़िवाद का पक्षसमर्थन किया जाता था और विश्वविद्यालयों में उदार विचारों की प्रगति का गला घोंटने के लिए उनको पुलिस के नियन्त्रण में रखा गया। ऑस्ट्रिया में मैटरनिश व्यवस्था का पूरा-पूरा ज़ोर था और सम्राट् फ्रांसिस क्रान्तिकारी आन्दोलनों का समूल उच्छेदन करने के लिए क्रूरतम उपायों का आश्रय लेने वाले अपने चान्सलर से आतंकित था। सर्वदा एवं सर्वत्र गुप्तचरों का अस्तित्व था; यहाँ तक कि पाठशालाओं, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में उनको बहुधा देखा जा सकता था। प्रकाशन पर एक कठोर प्रत्यक्ष नियन्त्रण लगा दिया गया और उच्च शिक्षा के अध्याप्य विषयों की नगरन्यायाधीश (मैजिस्ट्रेट) के द्वारा पूरी-पूरी परीक्षा की जाती थी। सम्मेलनों पर पूरा-पूरा प्रतिबन्ध लग चुका था। सार्वजनिक पत्रों की कड़ी परीक्षा होती थी और यहाँ तक कि गोएत्ज़ के पत्रों को भी पुलिस खोल लेती थी जो मैटरनिश का विशेष कृपापात्र था। बौद्धिक जीवन प्राणहीन हो गया था और विश्वविद्यालयों में नवयुवक विद्या के जिन विभागों पर कुछ स्वतन्त्रतापूर्वक शोध और परिश्रम कर सकते थे वे थे रसायनशास्त्र और चिकित्साशास्त्र। प्रतिभा को बड़ी क्रूरता से दबा दिया गया था। इस काल में विद्या के क्षेत्र में विशेष महत्त्व का कार्य केवल पूर्वी देशों को इतिहासवेत्ता (ओरिएण्टल हिस्टोरियन) फॉन हैमर-पुर्गस्ताल का है जिसे समस्त यूरोप में विशिष्ट ख्याति प्राप्त हो गयी थी। यहाँ तक कि शासन की दृष्टि से ललित साहित्य का क्षेत्र भी न बच सका और यूरोपीय प्रसिद्धि का एकमात्र कवि ग्रिल पार्ज़र राजकीय नियन्त्रण (सैन्सर) से इतना तंग आया कि उसने विएना को एक कवि

के रहने के सर्वथा अयोग्य स्थान बताया। स्पेन का शासक फर्डिनैण्ड सप्तम षड्यन्त्रों और छलकपट के वातावरण में पलकर बड़ा हुआ था, उसने पुलिस की पूछताछ की व्यवस्था को पुनः स्थापित किया और उदार विचारों के विरुद्ध भीषण युद्ध की घोषणा कर दी। हेस्स-कास्सैल का शासक अपनी पुरानी दैवी-अधिकार-सिद्धान्त की आस्था को लेकर पुनः अपने देश में लौट आया और उसने अपनी प्रजा से पिछले कर की रकम अधिकार प्राप्त सूदख़ोर की तरह पूरी-पूरी वसूल करने का दावा कर दिया। पोलैण्ड की दशा भी इतनी ही खराब थी जहाँ ज़ार अलैक्ज़ेण्डर ने उदार संविधान स्वीकार कर लेने के अपने वचन का पालन नहीं किया था। पोलैण्डवासियों पर निरंकुश-शासन ने बड़ी क्रूरतापूर्वक अपना प्रभाव डाला और उनकी देशभक्तिपूर्ण महत्त्वाकांक्षाओं को बड़े सन्देह और चिन्ता की दृष्टि से देखा जाता था। इंग्लैण्ड मे रूढ़िवादी कासलरिया ने संविधान सुधार का विरोध किया और लिवरपूल मन्त्रिमण्डल ने १८१७ के पाँच अध्यादेश पारित कर दिये; इन्होंने और १८१६ के सात अध्यादेशों ने मिलकर अंग्रेजी जनस्वातन्त्र्य को बुरी तरह से सीमित कर दिया और जनता को जैकोबाइट लोगों के बुरे दिनों की स्मृति कराता था। फ्रांस में नये पुनःस्थापित शासन ने अपना हाथ राज-हत्याओं पर ही जमकर लगा दिया और बोनापार्टवादियों तथा अतिराजतन्त्रवादियों ने राज्यक्रान्ति के लाल आतंक की तुलना में अब श्वेत आतंक का उद्घाटन कर दिया था। यद्यपि लुई अठारहवें और उसके नीतिज्ञ मन्त्री रिशेल्यू ने अतिवादियों की नीति का प्रतिरोध किया, तथापि राष्ट्र का राजतन्त्रीकरण और राजतन्त्र का राष्ट्रीकरण करने का प्रयास विफल हो गया। मित्रराष्ट्रों की सशस्त्र सेना अभी तक भी फ्रांस में अपना अस्तित्व बनाये हुए थी और इसकी उपस्थिति फ्रांसवासी के राष्ट्रीय गौरव और स्वाभिमान को गहरी ठेस लगाती थी। इतना सब होने पर भी फ्रांसीसी उदारतावाद सर्वथा निष्क्रिय नहीं था। मैटरनिश व्यवस्था की स्वीकृति ने राज्यक्रान्ति से उत्पन्न स्वभाव को नहीं तोड़ा था। फ्रांसीसी विधान-भवन (शाम्ब्र ऑन्नूवाल्ब) का बहुमत संसदीय सिद्धान्त का हठपूर्वक समर्थन कर रहा था; प्रेस को, जिसका नेपोलियन के शासनकाल में मुँह बाँध दिया गया था, पुनः अपनी खोयी हुई पुरानी शक्ति एवं उत्साह प्राप्त हो गया और यहाँ तक कि शातोब्रियां की 'बेईमानी की वाक्यपटुता ने यह स्पष्ट कर दिया कि "विचार और अभिव्यक्ति को जिस कठोर सीसे के भार ने दीर्घकाल तक कुचला था अब कही रह नहीं गया।"

जर्मनी में मैटरनिश की प्रतिक्रिया-नीति ने नितान्त भिन्न परिणामों को जन्म दिया। यद्यपि राजकुमारों ने पुरातन व्यवस्था को पुनर्जीवित कर दिया था, तथापि इन परिणामों को उनकी प्रजा में फैले हुए असन्तोष के सुस्पष्ट चिह्नों से साफ-साफ लक्ष

किया जा सकता था। जर्मनीवासियों ने कभी भी विएना की व्यवस्था को पसन्द नहीं किया था और सघीय अधिनियम (फैडरल एक्ट) को वे एक महान् धोखा समझते थे। फिस्टे, स्टाइन और हम्वोल्ट द्वारा सम्प्रेरित उदार विचारो ने प्रबल अभिर्व्यक्ति पायी और इतना असन्तोष कही भी सक्रिय नही था जितना विश्वविद्यालयों में। प्रशा में जुलाई, १८१५ मे प्रकाशित श्माल्त्स की प्रतिक्रियावादी पुस्तिका ने उदारवादियों पर वर्तमान प्रतिष्ठित राज्यों को विध्वस करने का आरोप लगाया और यह भी कहा कि ये लोग आतकवादी उपायो से एकता स्थापति करते है। इस आक्रमण की कठोरता से तिलमिला कर आक्रान्त दल ने उतनी ही उग्र कठोरता के साथ उसका उत्तर दिया और अन्ततोगत्वा इस संघर्ष का अन्त करने के लिए राजा फ्रेड्रिक विलियम को स्वयं हस्तक्षेप करना पड़ा। प्रोफ़ेसरो और पत्रकारो ने उदारतावादियो का पक्ष लिया। वीमर के ड्यूक के राज्य मे स्थित जीना विश्वविद्यालय मैटरनिश की चौकसी के विरुद्ध ट्यूटॉनिक विरोध का केन्द्र बन गया और छात्रों ने एक सभा का संघटन किया जिस का नाम उन्होंने बुर्शेनशाफ्ट (छात्र संघ) रखा जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय भावना का प्रचार और एक संयुक्त पितृभूमि के आदर्श का निर्माण करना था। शीघ्र ही इसका प्रभाव अन्य विश्वविद्यालयो पर भी पडा और १८ अक्तूबर, १८१७ को लाइप्जिग के युद्ध की चौथी वर्षगाँठ मनाने के लिए वार्टबुर्ग महोत्सव मनाया गया। भिन्न-भिन्न स्थानों से आये हुए राष्ट्रभक्ति की भावना से प्रज्ज्वलित विद्यार्थी लूथर की वार्टबुर्ग कासिल के महाभवन में एकत्र हुए और उन्होंने वहाँ जर्मन स्वातन्त्र्य की शपथ ली। लूथर के जीवन का अनुकरण करते हुए उन्होने प्रतिक्रिया के प्रतीकों को पवित्र अग्नि के सिपुर्द किया। इन ज्वलनशील प्रतीकों में ही श्माल्त्स की पुस्तिका और हालर की 'रेस्टो-रेशन' (पुनरुत्थान) और कोटेज़ब्यू की 'जर्मन हिस्टरी' (जर्मन इतिहास) जैसी प्रति-क्रियावादी पुस्तकें भी थी। एक बुद्धिमान और समझदार राजनीतिज्ञ की दृष्टि में जो चीज केवल एक अंडरग्रेजुएट का विस्फोट मात्र समझकर उपेक्षित करने की थी, उसीको मैटरनिश ने एक महागम्भीर प्रतिरोध समझ लिया और उसने जर्मन राजकुमारों को उस भीषण दुर्घटना से सावधान कर दिया जो उसके अनुसार शीघ्र ही उनके विनाश का कारण बनने वाली थी। वीमर के ड्यूक ने अपनी प्रजा के विरुद्ध उनको कुचलने के लिए क्रूर उपायों का सहारा लिया और राजा फ्रेड्रिक विलियम जो दैवी-अधिकार-सिद्धान्त मे पूर्ण आस्था रखने वाला था, क्रान्तिकारी आन्दोलन की प्रगति से बहुत आतं-कित हो गया।

यूरोप के अन्य भागों में भी असन्तोष के लक्षण स्पष्ट थे। लोम्बार्डी, वेनीशिया, नार्वे, बेल्जियम, पोलैण्ड और आयरलैण्ड में क्रान्तिकारी प्रवृत्तियाँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होने

लगी थी और यहाँ के निवासियों का राजनीतिक दृष्टि से सचेत भाग अपने शासकों के अवांछनीय भार को उतार फेंकने के लिए बड़ा उत्कण्ठित था। औद्योगिक जगत् मे भी महान् अशान्ति व्याप्त थी और इंग्लैण्ड में राज्यशासन की आर्थिक नीति के विरुद्ध आरोप-अभियोग बहुधा सुने जाते थे; जनता अब पूँजीपतियो और ज़मींदारों के लोभ और महास्वार्थपरता को भी सहन करने के लिए तैयार नही थी। यन्त्रो ने पुरातन घरेलू उद्योग व्यवस्था को तोड़ दिया था और बहुसख्यक व्यक्तियो से उनकी जीविका का साधन छीन लिया था। उनके पक्षसमर्थको ने उच्चस्वर से नयी सामाजिक व्यवस्थाओं की आवश्यकता का उद्घोष किया और एक अपेक्षाकृत अधिक साम्यवादी अर्थ-विभाजन-व्यवस्था का समर्थन किया।

जिस समय यूरोप की यह दशा थी जार अलैक्जेण्डर ने, जो १८१८ की ग्रीष्म ऋतु तक संविधानवाद के लिए अनुकरणीय उत्साह दिखला चुका था, अपना दृष्टिकोण ही बदल डाला। अपने राज्य में गुप्त राजनीतिक संघटनों की बात सुनकर जो राजकीय सूत्रों के अनुसार उसके अपने शासन का सर्वनाश करने पर उतारू थे, उसकी विचार-धारा का प्रवाह नितान्त विपरीत दिशा में हो गया और एक उदार, शासनकर्म में ईसाई धर्म के सिद्धान्तों का प्रयोग करने को सर्वदा उत्सुक सज्जन से वह अब क्रान्ति की शक्तियों के विरुद्ध व्यवस्था और स्थिरता स्थापित करने के लिए अग्रसर हुआ। यूरोप मे उसके राजदूत जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग करते थे वह इन चतुर्मुख मैत्रीसन्धियों के अनुरूप नहीं थी और वह उदार जर्मन राजकुमारों की जो सहायता और समर्थन कर रहा था उसे मैटरनिश ऑस्ट्रिया की राजशक्ति को निर्बल बनाने का एक प्रयास समझता था। भूमध्यसागर में अपना प्रभाव स्थापित करने की उसकी आकांक्षा विद्रोही उपनिवेशो के विरुद्ध स्पेन को दी हुई उसकी सहायता से स्पष्ट प्रकट होती थी। मैटरनिश अनुभव करता था कि वह उस संयुक्त-पथ से च्युत हो रहा है जिसे महाशक्तियों ने मिलकर स्वीकार किया था। इस सब के अतिरिक्त एक भेदक प्रचारोक्ति इस समय काफी फैल चुकी थी कि ज़ार फ्रांस के साथ एक मैत्री सन्धि करने की बात पर विचार कर रहा है। ऑस्ट्रिया की राजसभा उसकी नीति के प्रति किस प्रकार से सोचती थी इसका **बैरन** विन्सेण्ट के निम्नलिखित शब्दो से स्पष्ट ही अनुमान लगाया जा सकता है—

"कोई भी विश्वास कर सकता है कि सेण्ट पीटर्सबर्ग के मन्त्रिमण्डल ने इस समय इस बात के लिए पूर्व घोषणा कर दी है; और उसके लिए साधनो को एकत्र किया है कि फ्रांस को उस व्यवस्था में खींच लिया जाय जो कि उस राजनीतिक गौरव की प्रतिष्ठा करने जा रही है जिसे यह संयम की भाषा में परिवर्तन लाकर, दैवी त्याग के छद्मावरण के नीचे महान् सैनिक शक्ति की योजनाओं को छिपाकर और साथ ही साथ अपने शासन

की सूक्तियों के समर्थन के लिए रहस्यवाद और दैवी प्रेरणा की भाषा का प्रयोग करके प्राप्त करने की अभिलाषा रखता है।"

मैटरनिश ज़ार को अप्रसन्न नहीं करना चाहता था और उसने यह समुचित समझा कि उसे 'दलबन्दी' मे बाँध रखा जाय। इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखकर ऐक्स-ला-शेपेल में सितम्बर, १८१८ को एक सम्मेलन बुलाया गया। इसके अतिरिक्त यूरोप की स्थिति अत्यन्त असन्तोषजनक थी और मैटरनिश यह आवश्यक समझता था कि महाशक्तियाँ दैवी नियमों के अनुसार राज्यक्रान्ति के पुनरागमन को रोकने के लिए एकत्र सम्मिलित हों। विएना की कांग्रेस के बाद से यह एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सम्मेलन था और ऐ का छोटा-सा नगर हर्ष और शान-शौकत का केन्द्र बन गया था। यहीं पर यूरोप के कुछ चुने हुए महाराजा और राजनीतिज्ञ आये थे जो यूरोप के कष्टों का हल ढूँढ़ने के लिए तैयार थे। महान् राजतन्त्रों के अतिरिक्त कासलरिया और वैलिंग्टन ग्रेट ब्रिटेन के प्रतिनिधि, नेसलरोड, कैंपोडेस्ट्रिया और अलोपिरास रूस का पक्षसमर्थन करने के के लिए आये हुए थे। वृद्ध हार्डेनबर्ग, जो बुद्धि और शरीर दोनों से ही निर्बल हो गया था, बर्नस्टौ को साथ लेकर अपने राजा की सहायता करने के लिए आया था। फ्रांस का प्रतिनिधित्व ड्यूक दे रिशेल्यू कर रहा था, अपने देश के हितों का उससे अच्छा वकील कोई नही मिल सकता था। इस सभा में सर्वप्रमुख व्यक्तित्व मैटरनिश था जिसने शेष सब को अपने प्रभुत्त्व मे दबा लिया था। यह ठीक ही कहा गया है कि "आदमी उसके स्मरणीय आत्मनियन्त्रण से अभिभूत हो जाते थे, स्त्रियाँ उसकी प्रेमसुगन्धि से और दोनों उसकी तानाशाही सफलता से।" अलैक्ज़ेण्डर के साथ उसकी भेंट ने तत्काल ही लाभ पहुँचाया। उसकी बात बड़े समादर से सुनी गयी और कहा जाता है कि ज़ार ने उससे कहा था, "क्या आप जानते हैं कि वे मेरे बारे मे क्या कहते हैं, कि कुछ को आपने अपनी ज़ेब में डाल रखा है, और मैं वही पड़ा रहकर नितान्त सन्तुष्ट हूँ।" बात बिलकुल सही थी। अलैक्ज़ेण्डर अपनी सशस्त्र सेना मे होने वाले षड्यन्त्रों के विषय में सुनकर बड़ा दुःखी हो गया था और उसका भय उदारतावादियों के उस षड्यन्त्र की बात सुनकर और भी अधिक बढ़ चुका था जो उन्होंने उसे ऐ आते हुए भगा ले जाने का किया था। इस प्रकार से भय, रोष और अविश्वास इन सबने मिलकर उसकी दुर्बल भावनाओं को विध्वस्त कर दिया औस उसे ऑस्ट्रियन तानाशाह का आज्ञाकारी शिष्य बन जाने के लिए विवश कर दिया।

सम्मेलन के सामने दो अति महत्त्वपूर्ण प्रश्न थे। पहला तो यह था कि फ्रांस से वहाँ रखी गयी सशस्त्र सेना को हटा लिया जाय या नहीं और दूसरा था कि फ्रांस को भी यूरोप की संयुक्त व्यवस्था (संघ) मे सम्मिलित कर लेना चाहिए या नहीं। जहाँ

तक पहले प्रश्न का सम्बन्ध था, उसमे कोई विशेष कठिनाई नही थी क्योंकि पेरिस की सन्धि में यह स्वीकार किया जा चुका था कि फ्रांस मे सैनिक पड़ाव तीन वर्ष बीतने पर हटा लिया जायगा। अब नियत समय बीत चुका था और वैलिंग्टन के ड्यूक ने सिफारिश की कि पेरिस सन्धि की शर्तों का क्रियात्मक पालन बिना किसी विशिष्ट भय की आशंका के किया जाना चाहिए। सम्मेलन ने उसकी सिफारिश स्वीकार कर ली। जहाँ तक क्षतिपूर्ति कर का सम्बन्ध था जो कि फ्रांस को अभी देना बाकी था और जिसकी मात्रा २६,५०,००,००० फ्रांक थी, यह सुझाव रखा गया कि एमस्टरडम में बेयरिंग और होप के बैंक-सस्थानों की आर्थिक सहायता से खण्ड-खण्ड करके हिसाब चुका दिया जाय। यह बात भी स्वीकार कर ली गयी कि फ्रांस को यूरोप की सयुक्त व्यवस्था मे सम्मिलित कर लिया जाय। ९ अक्तूबर को एक प्रारम्भिक सन्धि पर हस्ताक्षर किये गये जिनमे उपर्युक्त बातो को स्वीकार किया गया और १८१५ की चतुर्मुखी मैत्री सन्धि १८१८ के 'नैतिक पंचतन्त्रशासन' (मॉरल पेण्टार्की) में बदल गयी। परन्तु चतुर्मुखी मैत्री सन्धि अपने समग्ररूप में पुनः स्वीकृत नही की गयी थी। गत तीन वर्षो के अनुभव ने कासलरिया को इस आवश्यकता से पूर्णतः परिचित करा दिया था कि संयुक्त व्यवस्था की मूल योजनाओ में परिवर्तन किया जाना चाहिए। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल कैनिंग से बहुत प्रभावित था जिसने फ्रांस में जैकोबिनवाद का कठोर प्रतिरोध करने की नीति का समर्थन किया था परन्तु ऐसी किसी भी योजना का सबल विरोध किया था जो जनता के विरुद्ध महाशक्तियो के किसी संघ को जन्म दे। उसका दृढ़ मत था कि इंग्लैण्ड राज्यशासनों के किसी भी सामान्य संयुक्त मोर्चे में भाग नही लेगा और मन्त्रिमण्डल ने ऐसी किसी भी व्यवस्था की प्रतिष्ठापना करना पूर्णतः अस्वीकार किया जो छोटे-छोटे राज्यों के स्वातन्त्र्य का अन्त कर दे और जन-स्वतन्त्रता की प्रगति में बाधा उपस्थित करे। सम्मेलन का अन्तिम निर्णय हमे दो पत्रकों में लिखित मिलता है जिन पर १५ नवम्बर को हस्ताक्षर हुए। पहला तो एक गुप्त मूललेख (प्रॉटोकोल) था जिसके द्वारा महाशक्तियो ने फ्रांस पर अपनी चौकस दृष्टि को अक्षुण्ण बनाये रखना तथा क्रान्तिकारी विस्फोट होने पर अपनी शक्तियों को एकत्र करना स्वीकार किया ; दूसरा पत्रक उनके द्वारा की गयी एक घोषणा थी जिसमें कहा गया था कि वे लोग वर्तमान सन्धियो के ही आधार पर यूरोप में शान्ति बनाये रखने का सतत् प्रयास करते रहेंगे और 'शान्ति की कलाओ के रक्षार्थ', अपने राज्यों की आन्तरिक समृद्धि को बढ़ाने के लिए, और धर्म तथा नैतिकता के उन भावों को जाग्रत करने के लिए, जिनमें समय के दुर्भाग्य से इनका प्रभाव अत्यधिक विनष्ट हो गया था, परिश्रम करेंगे। यह स्पष्ट रूप से लिखा गया था कि "कांग्रेस द्वारा किया गया शासन उद्देश्य नही है और महान् शक्तियाँ राज्यों के आन्तरिक मामलों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप करना नहीं चाहतीं।"

जर्मन समस्या का बहुत सतोषजनक हल काग्रेस न निकाल सकी। सयुक्त राज्यसघ (कन्फैडरेशन) के दोषो का बहिष्कार नहीं किया जा सका था। डायट (जर्मन ससद्) अपने निर्णयों का समुचित पालन करा लेने मे असमर्थ थी। एक विद्रोही राजकुमार आसानी से इसके अध्यादेशों का उल्लंघन कर सकता था। समय के अनुपयुक्त सविधान के कारण उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयो और अनिश्चयों के अतिरिक्त जर्मनी मे 'राज्य-क्रान्ति' भी प्रगति करती जा रही थी और इस विषय में कांग्रेस ने जो कुछ भी किया वह यही था कि ऑस्ट्रिया और रूस को इसके दमन के लिए सयुक्त उपाय करने का आदेश दे दिया गया।

अन्य भी अनेक प्रश्न थ जो काग्रेस के समक्ष विचार-विमर्श के लिए उपस्थित किये गये। काग्रेस को यूरोप मे एक प्रकार से ऐसा सर्वोच्च न्यायालय समझा जाने लगा था जो अपीलें सुनता था और सघर्षात्मक प्रसंगो पर अपना निर्णय देता था। जर्मन राजकुमारों ने अपने स्वामियो के विरुद्ध शिकायत की; हेस्स के शासन ने याचना की कि उसके राजा के पद को मान्यता प्रदान की जाय परन्तु उसे उत्तर मिला कि राजपद कदापि इतना सस्ता नही बनाया जा सकता। डेन्मार्क ने स्वीडन की शिकायत की और स्पेन ने अपने विद्रोही अमरीकन उपनिवेशो के खिलाफ सहायता की इच्छा प्रकट की। नेपोलियन बोनापार्ट की माता ने एक करुणापूर्ण पत्र भेजा जिसमें अपने पुत्र को कारामुक्त कर देने के लिए याचना की गयी थी जो अब यूरोप की शान्ति को विक्षुब्ध करने की दशा में नहीं रह गया था। परन्तु उसकी प्रार्थना नही स्वीकार की गयी और पत्र को यह कहकर कि यह उस महत्त्वाकांक्षी कैदी की अपनी चलायी हुई एक 'राजनीतिक चाल' है, सर्वथा उपेक्षित कर दिया गया। मोनको की जनता अपने राजकुमारों के विरुद्ध अपनी रक्षा चाहती थी परन्तु उसे मुक्ति न मिल सकी। इंग्लैण्ड ने दास-व्यापार के उन्मूलन के प्रश्न पर पर्याप्त ज़ोर डाला परन्तु उसकी सामुद्रिक प्रभुता की ईर्ष्या ने 'तलाशी के अधिकार' को स्वीकार करने से रोक दिया जिसके बिना यह उन्मूलन क्रियात्मक रूप मे स्वीकार ही नही किया जा सकता था।

सम्मेलन के सबसे महत्त्वपूर्ण निर्णयो मे से एक था यूरोपीय राजनीति मे मैटरनिश के प्रभुत्व की प्रतिष्ठापना। पाँच वर्षो तक वह यूरोप की परिषदों पर छाया रहा और एक अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस संघटन के अध्यक्ष के रूप में काम करता रहा। परन्तु एक बात स्मरण रखनी आवश्यक है। काग्रेस के निर्णय पूर्ण सहमति से स्वीकार नही किये जा सके थे। अनेक बार महाशक्तियाँ परस्पर विरोधी उद्देश्यो को लेकर काम करती थीं और सघर्ष के तत्त्व एक स्वीकृत व्यवस्था का पालन भी असम्भव बना देते थे। यह सर्वथा स्पष्ट था कि आदर्शों और हितों का वैभिन्य ही इंग्लैण्ड को सयुक्त व्यवस्था की नीति का पालन

करने से विमुख कर रहा था।

यूरोपीय विस्फोट और कांग्रेस

ऐ के सम्मेलन से सरक्षित हो जाने पर महाशक्तियों ने क्रान्तिकारी अव्यवस्थाओं का दमन करने की ओर कदम बढाया। यूरोप के सभी देशों मे राजकीय पदाधिकारियों ने अपने आपको बहुत कठोर बना लिया और जन-आन्दोलनों का उन्होंने बडी क्रूरता से दमन किया। सर्वत्र अव्यवस्था का प्रसार हो गया था और राज्य-शासन विद्रोह एवं अपराधो का दमन करने के लिए महा भीषण उपायों का आश्रय ले रहे थे। जर्मनी मे ज़ार द्वारा ऐ में प्रचारित सूर्जा की पुस्तिका ने अत्यधिक रोष पैदा कर दिया और राष्ट्रवादियो ने तो उसका बड़े उत्साह से खण्डन किया, उन्हे अपने देश मे विदेशी हस्तक्षेप बहुत बुरा लगा और उसका उन्होंने घोर विरोध किया। इस पुस्तिका मे क्रान्तियो पर सबल आक्रमण किया गया था और विश्वविद्यालयो को घृणा के जन्मस्थान कहा गया था। विद्यार्थियों में से जो वामपक्षी थे और जो स्वातन्त्र्य के पुजारी थे पर्याप्त उद्योगशील हो गये थे और इनका एक समूह जिसे 'काले भाई' (ब्लैक ब्रदर्स) कहा जाता था, इतना सबल सिद्ध हुआ कि उसने अपने देशवासियों को अत्यधिक उत्तेजित कर दिया। जीना मे कुछ साहसी व्यक्तित्वो ने अपनी पितृभूमि के लिए फ्रांस के जैकोबिन लोगो का अनुकरण कर एक संविधान का भी निर्माण कर डाला। इन लोगों ने देशभक्ति से परिपूरित कुछ गीतो का भी प्रचार किया, जिन में से एक उदाहरणस्वरूप दिया जाता है—

रेशम और सुवर्ण से सजे भाइयो,
पुराने चीथड़ो मे लिपटे भाइयो,
हाथ से हाथ मिलाओ।
अपने देश की आवश्यकता का उत्तर दो,
जब तक प्रभु सामर्थ्य दे।
अत्याचारी योनि का सहार कर डालो,
इस भूमि के तुम रक्षक बनो।
जीवन होगा जैसा पहले,
यदि तुम दो रक्त और कंचन ;
अपनी तोपें बारूद से भरो,
हँसिये को युद्ध की कुठार से ब्याह दो,
निरंकुश अत्याचारी के सिर को उड़ा दो,
रहो साहसी सर्वदा।

जार के विरुद्ध घृणा पर्याप्त बढ़ गयी थी और उसका एक जासूस कोट्जेब्यू राष्ट्र-वादियों के प्रचंड क्रोध का शिकार हुआ। वह एक स्वच्छन्दतावादी, (रोमैण्टिक) लोकप्रिय जर्मन नाटककार और वीमर का निवासी था। अपने प्रधानाचार्य के प्रोत्साहन से वह विद्यार्थी आन्दोलनों के विरुद्ध अपने साप्ताहिक पत्र 'लितरारीशे बोखेनब्लात्त' (साहित्यिक साप्ताहिक) मे खूब लेख लिखता रहता था और अपने देशवासियों के क्रान्ति-कारी उत्साह का उपहास करता रहता था। सेण्ट पीटर्सबर्ग की राजसभा में वह जो उत्तेजनापूर्ण विवरण भेजा करता था उन्होने न केवल उसके प्रति महान् रोष पैदा किया वरन् उसे जर्मन दृष्टि में ऐसा महाशत्रु भी बना दिया जो अलैक्जेण्डर के उदारमतवाद का परित्याग करने मे सबसे अधिक उत्तरदायी था। कार्लसैंड नामक एक विद्यार्थी, जिसने वार्टबर्ग महोत्सव में भाग लिया था और जिसने अन्य अनेक लोगो की तरह बड़े ध्यानपूर्वक ग्रीसिन विश्वविद्यालय के कार्ल फॉल्लेन के उत्तेजनापूर्ण भाषणों को सुना था, एक दिन सन्ध्या समय कोट्जेब्यू के घर पहुँचा और २३ मार्च, १८१९ को उसकी छाती में छुरा भोंक दिया। इसके अनन्तर उसने अपने आपको भी मार डालने का प्रयत्न किया परन्तु इसमे वह असफल रहा। उस पर मुकदमा चलाया गया और उसे फाँसी की सजा मिली। जिन विद्यार्थियो ने उसको फाँसी के तख्ते पर देखा था, उन्होंने अपने रूमाल उसके रक्त से रंग लिये और उसकी स्मृति पर उन्होने एक ऐसे शहीद की स्मृति की तरह श्रद्धा के फूल चढ़ाये जो स्वतन्त्रता के नाम पर बलि हो गया था।

कोट्जेब्यू के वध ने राज्य शासनों को बड़ी गम्भीरतापूर्वक सचेत कर दिया। भयभीत फ्रेडरिक विलियम ने देश मे जैकोबिनवाद का फिर से बोलबाला होते देखा और उसने इसका ध्वस कर डालने का दृढ़ निश्चय कर डाला। वृद्ध हार्डेनबर्ग प्रशा के लिए सविधान-निर्माण के विचार पर सिर हिलाने लगा। उदारतावाद के प्रति अपनी कठोर मनोवृत्ति के लिए मैटरनिश को बहाना मिल गया और उसने प्रेस के अधिक कठोर नियन्त्रण के लिए एक योजना भी बना डाली, विद्यार्थी आन्दोलन का समुचित दमन करने की भी उसने योजना बनायी। उसने सभी प्रमुख राज्यों के मन्त्रियो के एक सम्मेलन का सुझाव दिया जो अव्यवस्थाओ पर समुचित विचार-विमर्श करे और उसने उनको यह बतलाकर आतंकित कर दिया कि राज्य शासनों का विनाश कर डालने के लिए एक बहुव्यापक षड्यन्त्र सर्वत्र चल रहा है। विश्वविद्यालयों के विरुद्ध कठोर कार्यवाही करने की शिक्षा देते हुए वह वस्तुस्थिति की गम्भीरता को पहचानने में सर्वथा असमर्थ रहा था और यहाँ तक कि उसके एक जीवन चरितकार ने यह स्वीकार किया है कि 'उसका निर्णय बहुत गम्भीर रूप से विपरीत था और उसकी मानसिक समझ बुरी तरह से आकुंचित थी, यहाँ तक कि उन शक्तियों की विशुद्धता को वह कभी देख और समझ न सका जिनसे वह

संघर्ष कर रहा था—विकासोन्मुख राष्ट्रीयतावाद, जर्मन सस्कृति की आत्मचेतना और एक अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्र राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था की आकांक्षा।"

उसका पुलिस विभाग विशेष सक्रिय हो गया; विश्वविद्यालय के अध्यापकों और छात्रों के निवासों की घर-घर तलाशी का आदेश जारी कर दिया गया और प्रायः सभी राज्यों में देशभक्तों को परेशान किया जाता था, उन पर अत्याचार किये जाते थे। प्रशा का राजा जिससे वह तेपलित्ज में मिल चुका था उससे सहमत हो गया था और यह निश्चय हुआ था कि दमन के उपायों की योजना बनाने के लिए कार्लस्बाद्र में एक सम्मेलन किया जाय। इस कष्टपूर्ण सम्मेलन के अधिवेशन ६ अगस्त से १ सितम्बर, १८१९ तक हुए और कुछ निश्चित अध्यादेश पारित हुए जिनका उद्देश्य क्रान्तिकारी आन्दोलन का विध्वंस करना था। प्रशा की अयोग्य अधीनता ने अन्य छोटे-छोटे राज्यों के प्रतिनिधियों को भी एक प्रकार से उन प्रस्तावों पर अपनी अनिच्छापूर्वक स्वीकृति दे देने के लिए विवश कर दिया जो उनके समक्ष मैटरनिश उपस्थित करता था। अध्यादेशों ने नियम बनाया कि प्रेस का मुँह बन्द कर दिया जाय और विश्वविद्यालयों के अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के आचार-विचार पर कडी नजर रखी जाय और उनकी कार्यवाहियों के लिए राज्यों द्वारा प्रतिष्ठापित सार्वजनिक समितियों (सिविल कमीशन्स) से उनको दण्ड दिलाया जाय। शान्ति एवं व्यवस्था के हित में शिक्षा को भी पूर्ण नियन्त्रित किया गया और जो अध्यापक इन राजनीतिक आज्ञाओं का किंचित मात्र भी उल्लघन करते, वे अपने पदों से हटा दिये जाते थे और उन्हें अन्यत्र नियुक्ति के अयोग्य सिद्ध कर दिया जाता था। अर्न्दत, जॉन, ओकन और श्लैय्यर-माखेर जैसे अध्यापक 'कुप्रसिद्ध दुष्ट' घोषित किये गये और शिक्षा से सर्वथा विरत कर दिये गये। मैमैञ्ज़ मे एक ऐसी समिति की नियुक्ति करने का निश्चय हुआ जो जर्मनी में विद्रोह के कारणों की जाँच करने का कार्यभार सँभाले। इसमें ऑस्ट्रिया, प्रशा, बवेरिया, हैनोवर, हेस्स-दर्मस्टाट दूत, वेडन और नासौ से पदाधिकारियों की नियुक्ति होनी थी, जो राजद्रोहात्मक कार्यों में शामिल किसी भी व्यक्ति को सन्देह मात्र होने पर ही बन्दी बना सकते थे। उनका अधिकारपूर्ण प्रभुता से युक्त था। इसके कर्मों की सुविधा के लिए राज्यों ने इस बात पर स्वीकृति दे दी कि समिति को जिस प्रकार की सूचना की आवश्यकता होगी, वे देंगे। जर्मन स्वतन्त्रता के नियामक कार्लस्वाड के अध्यादेशों पर २० सितम्बर, १८१९ को डायट (जर्मन संसद्) ने फ्रैंकफोर्ट मे अपनी स्वीकृति दे दी।

जर्मनी में देशभक्तों ने सर्वत्र इन अध्यादेशों की निन्दा की। घाल्मान और रोत्तेक इतिहासकारों ने उनका प्रतिरोध किया और उनकी निन्दा उतनी ही कठोर थी जितनी बर्लिन और बॉन विश्वविद्यालयों के अध्यापकों की। परन्तु इन अध्यादेशों के

जन्मदाता को अपनी महाविजय पर बड़ा हर्ष था जैसा कि उसके निम्नलिखित शब्दों से स्पष्ट प्रकट हो जाता है—

"१८१३ से लेकर जो मैं सर्वदा करने की अभिलाषा करता रहा हूँ, और जिसे उस जुगुप्सित सम्राट् अलैक्जेण्डर ने सदा अवरुद्ध किया, उसे मैने यहाँ पूरा कर लिया है क्योकि वह उपस्थित नही था। अन्ततोगत्वा मैंने अपने समग्र सिद्धान्त का पालन कर ही लिया है और मैंने सार्वजनिक विधान (कानून) के अपने सभी मौलिक सिद्धान्तों को सुरक्षित कर लिया है।"

प्रत्येक यूरोपीय देश के रूढ़िवादियों ने इन भावनाओ का अनुप्रकटीकरण किया और ८ जून, १८२० को पारित विएना के परिशिष्ट अधिनियम (सप्लीमेण्टरी ऐक्ट) ने यह स्पष्ट कर दिया कि स्वतन्त्र नगरो को छोड़कर सभी जर्मन राज्यो में सर्वोच्च प्रभुसत्ता राजकुमार में अवस्थित है और जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली कोई भी सभा-समिति उसका प्रयोग नही कर सकती। प्रतिक्रियावादी नीति का यह साहसिक समर्थन मैटरनिश की निरंकुशता की पराकाष्ठा का परिचायक है।

परन्तु खेद इस बात का है जैसा कि कासलरिया को एक समकालीन ने लिखा था, वह एक अभौतिक तत्त्व (या भावना) को एक भौतिक शस्त्र से पराजित करना चाहता था और इसी में उस की विफलता का सबसे प्रधान कारण निहित था। अभिनव आदर्शो के इस परिवर्तनशील संसार मे, ऐसे पुरुषो के बीच में जिनके हृदय और मस्तिष्क जीवन प्रदायिनी आत्मिक शक्तियो से बल युक्त हो गये थे और जिनके लिए मृत्यु तथा कारागार अपने भीषण रूप छोड़ चुके थे, इस प्रकार की नीति की निरर्थकता नितान्त स्पष्ट थी; परन्तु जैसा कि सम्पूर्ण इतिहास बतलाता है राजनीतिज्ञ और राजनीतिवेत्ता सदा अन्धे रहे है, उनकी संकुचित दृष्टि ने शायद ही कभी वर्तमान से परे देख सकने की सामर्थ्य दिखायी हो। मैटरनिश के जीवनी लेखक का भी स्पष्ट मत है कि उसका पतन निश्चित था और उसका तो यह भी कहना है कि "वह शिखर पर पाँच, दस, बीस, शायद तीस वर्ष तक रह लेता परन्तु यदि वह जीवित रहता तो वह महाप्रलय ही देखता।"

इस दमनकारी नीति का प्रभाव प्रशा पर बड़ा भयंकर हुआ। बिना हिचकिचाहट के गिरफ्तारियाँ हो जाती थीं और मुकदमों ने बहुत उदात्तमना व्यक्तियों की आत्मा को भी मुरझा दिया और एकता तथा स्वतन्त्रता की भावनाओं को गहरा आघात लगा था। प्रेस का मुँह बन्द कर दिया गया था। आलोचना मौन कर दी गयी थी और वाद-विवाद इस सीमा तक हतोत्साह किया गया कि सत्ता का विरोध अधिकाधिक दृढ़ संकल्प होता गया। एक आधुनिक इतिहासकार का मत बड़ा मनोरंजक सिद्ध होगा—

"मैन्ज़ के कमीशन ने षड्यन्त्रकारियों का पता नहीं लगाया प्रत्युत इसने उनका

सृजन किया। जैसे वर्ष बीतते गये, और सार्वजनिक जर्मन जीवन के कल्याण के लिए वैधानिक रूप से कार्य करने के सभी उपाय एक के बाद एक लुप्त होते गये, उत्साही स्वभाव के पुरुषो ने अधिक हिंसात्मक साधनो का उपयोग करने का निश्चय किया। ऐसी गुप्त सभाएँ, जिनकी प्रतिमा मैटरनिश अपने मन:पटल पर देख चुका था, वास्तविक रूप से अस्तित्व मे आयी। और ऐसे लोगो मे, जो न तो अनुभवशून्यता में मग्न हुए थे और न ही वर्तमान शासन के विरुद्ध अपने आपको तैयार कर सके थे, विचारों के एक अभिनव समुदाय ने राजकुमारों द्वरा जर्मनी के पुनरुत्थान मे प्राचीन राजभक्तिपूर्ण विश्वास का स्थान ले लिया था।"[1]

अन्य देशों में भी प्रतिक्रिया ने अपने आपको विविध आन्दोलनो के रूप मे प्रकट किया। इंग्लैण्ड में नेपोलियनिक युद्धो के पश्चात् बेकारी और दुर्दशा बढ गयी थी। शासक वर्ग ने संसदीय सुधारो का कठोर विरोध किया। १८१६ में हैबियस कॉर्पस अधिनियम को निष्क्रिय कर दिया गया और जनता के विचारो को निश्चित रूप से जानने के लिए गुप्तकर नियुक्त किये गये जो कभी-कभी तो उत्तेजक कार्यकर्त्ताओं के रूप में काम करते थे। तीन वर्ष के पश्चात् पीटर लू और मैन्चेस्टर के संघर्षो का बड़ी क्रूरता से दमन कर दिया गया, परिणामस्वरूप पुरुषों और स्त्रियों की एक बड़ी संख्या को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। इसके अनन्तर छः अधिनियम (सिक्स ऐक्ट्स) स्वीकृत हुए जिन्होंने पुलिस के अधिकारो में पर्याप्त वृद्धि कर दी। इन्होंने सार्वजनिक सभाएँ करने की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया, प्रेस का मुँह बन्द कर दिया और नागरिको की स्वतन्त्रता को विविध प्रकारो से प्रतिबन्धित कर दिया। राजा और उसके मन्त्रियों की अपकीर्ति ने ही १८२० के दी कैटो स्ट्रीट षड्यन्त्र को जन्म दिया जिसका पूर्ण बलपूर्वक दमन कर दिया गया और प्रमुख अपराधी के रूप में थिसिलवुड को उसके चार अन्य साथियो के साथ फाँसी दे दी गयी। रानी कैरोलाइन के मामले ने, जिसे जार्ज चतुर्थ तलाक दे देना चाहता था, शासन के सम्मान को और भी घटा दिया और जनमत को शासन के विरुद्ध कर दिया। जनता की सहानुभूति रानी के साथ थी। इन सब कार्यो की जिम्मेदारी कासलरिया पर ही रखी जाती थी। मैटरनिश ने लिवरपूल मन्त्रिमण्डल की दमनकारी नीति पर सहमति प्रकट की और प्रतिक्रियावादी अनुदार (टोरी) दल की विजय पर उसने बडा हर्ष प्रकट किया।

फ्रास में डेकाजे मन्त्रिमण्डल (१८१८-२०) उदार नीति का अनुसरण कर रहा था परन्तु ड्यूक दे बेरी के वध ने इस नीति को बदल दिया। वह फ्रांस के राजसिहासन

१. फीफे : ए हिस्ट्री ऑव मॉडर्न यूरोप, द्वितीय भाग, पृ० १५३।

का भावी उत्तराधिकारी था, १३ फरवरी, १८२० को उसका वध किया गया था। अति-वादियों ने तुरन्त उदार मन्त्रियों को इस भयंकर अपराध के लिए दोषी ठहरा दिया और एक ने तो स्पष्ट घोषित कर दिया कि ड्यूक की हत्या जिस खंजर ने की, वह था 'उदार विचार'। "या तो डेकाजे शासक वंश के सामने अनिवार्य रूप से पदत्याग कर दे, या फिर हमारे राजाओं की जाति ही उसके सामने से भाग जाय," एक दूसरे उच्च स्वर से घोषणा कर दी। मन्त्रिमण्डल बदल दिया गया और रिशेल्यू, जो एक प्रतिक्रियावादी था, उसके पद पर नियुक्त कर दिया गया।

यूरोप के दक्षिण में उदारतावाद का भाग्य कुछ दूसरा ही था। जनवरी, १८२० को रीगो के नेतृत्व में स्पेन मे एक विद्रोह हुआ, रीगो सशस्त्र सेना में कर्नल के पद पर था। फर्डिनैण्ड सप्तम को १८१२ के सविधान का संशोधन करने के लिए विवश कर दिया गया। कर्नल सेल्पुवेदा की अध्यक्षता में एक इसी प्रकार का विद्रोह पुर्तगाल में भी हो गया, इसने वहाँ के प्रतिक्रियावादी शासन का अन्त कर दिया और जॉन षष्ठम के लिए ब्राजील से लौट आने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। स्पेनिश विद्रोह की छूत नेप्ल्स में भी फैली जहाँ नीपोलिटन बूर्बो वशियो ने एक "राज्य-शासन की स्थापना की थी जो सर्वथा अन्यायी था।" एक भीषण षड्यन्त्र का विस्फोट हुआ और जनता ने फर्डिनैण्ड को अभिनव संविधान स्वीकार करने पर विवश कर दिया। फर्डिनैण्ड ने इस परिणाम पर पर्याप्त सन्तोष प्रकट किया और ईश्वर को उसने धन्यवाद दिया कि उसने उसको उसी के कल्याण का साधन बना दिया। उसने चर्च को उसकी प्रभुता देने से इन्कार कर दिया और उसने प्रतिज्ञापूर्वक संविधान का पालन करने का वचन दिया। तदनन्तर, उसने पवित्र क्रॉस की ओर देखा तथा श्रद्धा एवं भक्ति से परिपूरित स्वर में उसने निम्नलिखित शब्दों का उच्चारण किया, जो नितान्त मिथ्या वचन थे:

"हे सर्वशक्तिमान परमेश्वर, तुम अपने अनन्त ज्ञान से भूत और भविष्य को देख लेते हो, यदि मैं मिथ्या भाषण करता हूँ अथवा अपने मन मे शपथ तोड़ देने का विचार लाता हूँ तो तुम इसी क्षण मेरे सिर पर अपनी पूर्ण प्रतिहिंसा की बिजली गिरा दो।"

उसके पुत्रों ने भी शपथ ले ली और प्रजा में महान् हर्ष को उत्पन्न करते हुए नये संविधान की घोषणा कर दी गयी।

परन्तु गुप्त रूप से उसने मैटरनिश को यह सन्देश भेजा कि उसे बलपूर्वक संविधान स्वीकार करना पड़ा है जिसे उसने कभी भी पसन्द नहीं किया। उसने अपनी निरंकुश प्रभुता को पुनः स्थापित कराने की प्रार्थना भी की।

त्रपौ, लेबैक तथा वेरोना की कांग्रेस

स्पेन और नेप्ल्स ने संयुक्त संघ की नीति का उल्लंघन किया था और फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति के सिद्धान्तों को उन्होंने अपने पथ-प्रदर्शक के रूप में स्वीकार किया था। मैटरनिश के लिए यह असम्भव था कि वह इन सबको चुपचाप देखता रह जाता जबकि सामाजिक व्यवस्था विचार-शून्य एवं उत्तरदायित्वहीन शासकों तथा देशभक्तो के द्वारा बुरी तरह भ्रष्ट की जा रही थी। उसके विचार से यह रोग किसी एक निश्चित राज्य में ही नहीं था; सर्वत्र सर्वविनाशकारी परिवर्तनों के लक्षण स्पष्ट दिखायी दे रहे थे और स्थिरता एवं व्यवस्था के सिद्धान्त अब खतरे में पड गये थे। वह गोएन्त्ज से पूर्णतः सहमत था जिसका कहना था कि, "क्रान्ति का अनिवार्य रूप से गला घोंट देना चाहिए। वर्तमान क्षण के लिए नैतिक शस्त्र पूर्णतः शक्तिहीन है। दोनों व्यवस्थाओं को अन्तिम रूप से अपने जीवन अथवा मरण के लिए जूझना है, संघर्षरत सशस्त्र जनता तोपों और सैनिकों के साथ सज्जित एक तरफ और ज्वलन्त रॉकेट तथा स्वयंसेवक दूसरी तरफ है। वाम पक्ष स्थित का ही विश्व है।" नेप्ल्स की क्रान्ति ने इटली में ऑस्ट्रिया के प्रभुत्व को भयभीत कर दिया, और वह चाहने लगा कि पुरातन व्यवस्था को पुनः स्थापित करने के लिए ऑस्ट्रिया अकेला ही उसमें हस्तक्षेप करे। परन्तु वह स्पेनिश हस्तक्षेप के विषय में अैलेक्जेण्डर का मत जानने के लिए अधिक उत्सुक था और भूमध्यसागर पर उसके संभावित कार्यों को जानने के लिए भी वह व्यग्र था, और इसलिए उसने उसे एक सन्देश भेजा जिसमें उसने पूर्ण ऑस्ट्रियन हस्तक्षेप के पक्ष में अपने मत की अभिव्यक्ति की थी। उसने इस विषय पर महाशक्तियों के दरवाजे खटखटाये परन्तु उसके प्रस्ताव का स्पष्ट प्रतिरोध हुआ और यह निष्चय हुआ कि इस सारी परिस्थिति पर विचार-विमर्श करने के लिए एक सम्मेलन बुलाया जाय। कूटनीतिज्ञों के सम्मेलन में एकत्र होने से पहले ही उसने एक स्मृतिपत्र तैयार कर लिया जिसमें उसने ऊपर की क्रान्ति और नीचे की क्रान्ति में स्पष्ट अन्तर स्वीकार किया था और इस मत का स्पष्टीकरण किया था कि दूसरे प्रकार की क्रान्तियाँ विधान विरुद्ध हैं और उन्हें अनिवार्यतः बलपूर्वक दबा दिया जाना चाहिए।

इंग्लैण्ड उससे सहमत न हुआ और कासलरिया ने दलील पेश की कि ऑस्ट्रिया एक महाशक्ति के रूप में पड़ोसी राज्य के विद्रोह से प्रत्यक्षतः प्रभावित होने के कारण उसके मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकारी था। परन्तु पंच शासन का संयुक्त हस्तक्षेप सर्वथा अनुचित था और चतुर्मुखी मैत्रीसन्धि की शर्तो के सुतरां प्रतिकूल था। जार महाशक्तियों की संयुक्त कार्यवाही का पक्षपाती था और मैटरनिश उसकी इच्छाओं की उपेक्षा नही कर सकता था। अन्ततः त्रपौ में (सिलेसिया में) २० अक्तूबर, १८२० को एक सम्मेलन हुआ। इसमें ऑस्ट्रिया और रूस के सम्राटों ने तथा प्रशा के उत्तरा-

धिकारी राजकुमार (क्राउन प्रिस) ने भाग लिया। जार के विचारों में पूर्णतः परिवर्तन हो गया और यदि मैटरनिश पर विश्वास किया जाय तो उसने क्षमा तक माँगी और अपनी भर्त्सना भी की। जब अलैक्जेण्डर से उसके विचारों में परिवर्तन होने का कारण पूछा गया तो सुना जाता है कि उसने यह कहा—

"सन् १८१३ से १८२० तक अब सात वर्ष हो चुके है और ये सात वर्ष मेरे लिए जैसे एक शताब्दी के समान है। १८२० में मै किसी भी मूल्य पर वह नही करूँगा जो १८१३ मे मै कर चुका हूँ। इसमें आप नही बदले है, पर मै बदल गया हूँ। आपके लिए कुछ पश्चाताप करने को नहीं है—मेरे लिए है।"

इग्लैण्ड तथा फ्रास दोनों ही अलग रहे और घरेलू मामलों में सयुक्त हस्तक्षेप के सिद्धान्त की पुष्टि न कर सके। इस पर आस्ट्रिया, रूस और प्रशा इन पूर्वी शक्तियों ने एक पत्रक (सर्कुलर) प्रकाशित किया जिसमे 'संघात्मक हस्तक्षेप' (फैडरेटिव इण्टर-वैन्शन) के सिद्धान्त की माँग की गयी थी और यह आशा प्रकट की कि इंग्लैण्ड और फ्रांस भी इसमें सहायक होंगे। इस शक्तित्रयी के घोषणापत्र की भाषा नितान्त स्पष्ट शब्दों मे चर्तुमुखी मैत्रीसन्धि के सिद्धान्त का उल्लंघन करती थी, और कासलरिया ने यद्यपि ऑस्ट्रिया के हस्तक्षेप करने के व्यक्तिगत अधिकार को स्वीकार किया, त्रपौ में प्रस्तावित सुविस्तीर्ण हस्तक्षेप की यह कहकर घोर निन्दा की कि "यह सार्वजनिक हित अथवा सक्रिय सत्ता तथा स्वतन्त्र सर्वोच्च प्रभुओ की महत्ता के साथ किसी प्रकार से सम्बद्ध नही किया जा सकता।" फ्रास ने कोई प्रतिरोध नही किया परन्तु उसने साफ-साफ दक्षिणी इटली की पराजय की दु:सम्भावना देख ली और वह इंग्लैंड के और भी समीप खिंच आया। सम्मेलन लेबैक (कार्नीयला के आस्ट्रियन प्रान्त मे) के लिए स्थगित कर दिया गया, जहाँ नेप्ल्स का फर्डिनैण्ड अपनी स्थिति एवं विचारों को स्पष्टतः समझा देने के लिए निमन्त्रित किया गया था।

मैटरनिश अपनी बात पर अड़ा रहा और लेबैक में जनवरी, १८२१ को महाशक्तियों की वार्ताएँ फिर से शुरू हुई। मिथ्या शपथ खाये हुए देशद्रोही फर्डिनैण्ड ने अपनी प्रकृति के पूर्ण छलकपट से अपनी ससद को अभिनव अर्जित स्वतन्त्रताओं के लिए महाशक्तियो की स्वीकृति लेने का अवकाश स्वीकार करने के लिए फुसला लिया। मैटरनिश उसकी स्थिति की सच्चाई में पूर्ण विश्वास रखता था और उसने इस बात का निश्चय कर लेने मे कुछ भी समय न लगाया कि जनता के द्वारा खड़ी की गयी नीपोलिटन राज्यक्रान्ति का अनिवार्य रूप से दमन करना चाहिए। जार ने नेप्लस की विजय के लिए १ लाख रूसी सैनिकों की भेंट करना स्वीकार किया परन्तु मैटरनिश ने अकेले ही इस कार्य को सम्पन्न करने का संकल्प कर लिया था। वह अच्छी तरह से जानता था कि नीपोलिटन लोग कितने

दुःसंघटित और अकुशल थे। पचास सहस्र ऑस्ट्रियन देश मे प्रविष्ट हुए और उन्होंने सविधानवादियो को तथा उनके समर्थको को ७ मार्च, १८२१ को रीटी (पोप-शासित प्रदेश) के युद्ध मे पराजित कर दिया। फिर उन्होंने नेप्ल्स में प्रवेश किया और फर्डिनैण्ड को उसके राजसिंहासन पर पुनः प्रतिष्ठापित कर दिया। फर्डिनैण्ड फ्लोरैन्स मे रुका और वहाँ उसने मिथ्या भाषण तथा विश्वासघात के पाप का प्रायश्चित अनन्सियेशन के चर्च में संकल्पित दीपक की भेट देकर कर लिया।

नेप्ल्स में अभी पूरी तरह से सविधानवाद का दमन भी नही हुआ था कि मार्च १८२१ को पीडमण्ट में एक षड्यन्त्र का विस्फोट हो गया। विक्टर इमानुअल प्रथम इस समय घरेलू संघर्षों और महाशक्तियों के संयुक्त हस्तक्षेप की दोधारी तलवार पर गिर पड़ा था। परिस्थिति का जमकर मुकाबला न कर सकने पर उसने अपने भ्राता चार्ल्स फेलिक्स के पक्ष में राजपद का त्याग कर दिया और बिना उत्तराधिकारी के उसकी मृत्यु के पश्चात् राज्यपद उसके दूसरे अनुज चार्ल्स एल्बर्ट को मिलना स्वीकार हुआ। नेवारा मे (८ अप्रैल १८२१) पीडमण्ट के लोगों की ऑस्ट्रियन सैनिकों द्वारा गहरी पराजय ने निरंकुश शासन को अपने पूर्ण बलसहित स्थापित कर दिया।

अन्य भी कुछ सकटापन्न परिस्थितियाँ आ गयी थी जिन्होंने महाशक्तियों के ध्यान को आकर्षित किया। टर्की में विप्लव हो रहा था ; ग्रीक जनता ने ओटोमन सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था और उसके प्रभुत्व का अन्त कर देने के उसके प्रयास ने उस युग का आरम्भ किया जिसे पूर्वी प्रश्न की संज्ञा दी जाती है। यह उन्नीसवीं शताब्दी की कूटनीतिक उलझनो मे से सर्वाधिक कठिन उलझन थी। दूसरी समस्या थी, स्पेन की और अमरीकन उपनिवेशों की। क्रान्तिकारी और जनतन्त्रात्मक संविधान अभी तक भी इस देश मे ठीक-ठीक काम करता जा रहा था और इसकी अक्षुण्णता उस नीति के प्रतिकूल पड़ती थी जिसका अनुसरण अब तक महाशक्तियाँ करती चली आ रही थी। मैटरनिश की इच्छा स्पेन में एक रूसी सशस्त्र सेना भेजने की थी जो फर्डिनैण्ड सातवे को उसके राजसिंहासन पर पुनः प्रतिष्ठित कर दे।

अमरीकन उपनिवेश गणतन्त्री शासनों की स्थापना करने के पथ पर अग्रसर हो रहे थे और ब्रिटिश मत यह था कि उनको बलपूर्वक झुकने के लिए बाध्य किया जाय। लेबैक में स्वीकृत नीति के अनुसार एक बार पुनः यह निश्चय हुआ कि इन सब कठिनाइयों को सुलझाने के लिए वेरोना में एक सम्मेलन आमन्त्रित किया जाय। इस प्रकार से चार महत्त्वपूर्ण प्रश्न सामने आये जिन पर विचार करना बड़ा आवश्यक था—(१) स्पेनिश राज्यक्रान्ति, (२) स्पेनिश अमरीकन उपनिवेशों का राज-विद्रोह, (३) ग्रीक विप्लव, (४) दास-व्यापार-प्रथा का दमन।

संयुक्त स्वर का संघर्ष अब नितान्त स्पष्ट था और महाशक्तियों के मतभेद दिन-प्रति-दिन अधिकाधिक बढ़ते जा रहे थे। इंग्लैण्ड संघात्मक हस्तक्षेप (फैडरेटिव इण्टर-वैन्शन) सिद्धान्त की मैटरनिश द्वारा दी गयी व्याख्या को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था और १८२१ में कासलरिया 'पवित्र मैत्री सन्धि' के सदस्यों के पास अपने देश की मनोवृत्ति की सूचना भेज ही चुका था। उसने आगामी सम्मेलन के लिए एक पत्रक तैयार कर रखा था और वह वेरोना को प्रस्थान करने की तैयारियाँ कर ही रहा था, जब उसने १२ अगस्त १८२२ को अपने समग्र राष्ट्र को आश्चर्यचकित करते हुए नैराश्य के किसी उन्मत्त क्षण में एक साधारण चाकू से अपने आपको मार डाला। इस काण्ड का यथार्थ कारण आज तक भी एक रहस्य ही बना हुआ है। वैदेशिक मन्त्रालय में उसका कार्यभार कैनिंग ने सँभाला। यूरोप के इतिहास में कासलेरिया ने बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उसने नेपोलियन से यूरोप की रक्षा की और शान्ति स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त किया। उसने सर्वदा पंच-शासन को चतुर्मुखी मैत्रीसन्धि और पवित्र मैत्रीसन्धि के उद्देश्यों से भ्रान्तिपूर्ण ढंग से मिलाने के विरुद्ध सावधान किया था। उसने सदैव मैटरनिश और ज़ार के हस्तक्षेपात्मक उत्साह को रोकने का प्रयत्न किया और वह सदा उनकी कार्य-विधियों का विरोध करता रहा। परन्तु जनता उसकी रूढिवादिता से अप्रसन्न थी और कुछ अप्रिय सार्वजनिक अधिनियमों का कर्त्ता भी उसे बना दिया गया था। इस कारण से उसकी मृत्यु पर सभी दुःखी नहीं हुए। जब उसका शव वेस्टमिनिस्टर ऐबे की ओर ले जाया जा रहा था तो क्रुद्ध जनता ने उस पर मल फेंका और उसका नाम ले लेकर शाप दिये। बायरन ने बड़े कठोर अभियोग लगाये और उसने निम्नलिखित शब्दों में उनका औचित्य भी सिद्ध किया——

"वह इतिहास का एक प्रसंग है, और जहाँ-कहीं मैं एक अत्याचारी अथवा दुष्ट को देखता हूँ, मैं उसे समझ लेता हूँ।"[१] परन्तु लार्ड ब्रूहम ने, यद्यपि वह उसकी नीति एवं कार्यों का विरोधी था, उसकी स्मृति में बडी उदात्त श्रद्धांजलि अर्पित की और उसको अतिसाहसिक कार्यों के सम्पादन में 'निष्कलंक सत्यता' तथा 'पूर्ण विवेक एवं शील' से काम लेने का श्रेय दिया है। बकिघम के ड्यूक ने देश के हितों के प्रति उसके भक्तिपूर्ण अनुराग की प्रशंसा की और कहा था——

"एक राजनीतिवेत्ता के रूप में, एक सज्जन के रूप में, एक पुरुष के रूप में लंडनडरी का मार्क्विस राजनीतिक शौर्य का वीर नायक था, निर्भय और निर्दोष" (सां प्यूर ए सां

१. कासलरिया के मर्मस्पर्शी अवसान से सर्वथा असंपृत कवि ने उसके विषय में बड़ी निर्लज्ज धृष्टता दिखाते हुए ऐसा लिखा था।

रेप्रोश)। लार्ड सैलिसबरी की श्रद्धांजलि और भी अधिक उदार थी। उसने यूरोपीय शान्ति स्थापना के क्षेत्र मे उसके प्रयोग की समीक्षा की थी और उन सिद्धान्तों पर उसकी दृढ़ता की प्रशंसा की थी जिनके लिए यूरोपीय राष्ट्रों की परिषदों में इग्लैण्ड सर्वदा पृथक् खड़ा रहा है।

महाशक्तियाँ विएना मे एकत्र हुई और फिर वेरोना के लिये अक्तूबर, १८२२ को स्थगित हो गयी। इग्लैण्ड का प्रतिनिधित्व ड्यूक ऑव वैलिग्टन कर रहा था और उसके सुझावो तथा आदेशों का मुख्य आधार कासलरिया का पत्रक था। वह सामूहिक हस्तक्षेप के समर्थकों के सर्वथा विरुद्ध था और अपने देश के विचारों का उसने दृढ़तापूर्वक पोषण किया। विएना में इग्लैण्ड के राजदूत सर हैनरी वैलजली को १६ सितम्बर १८२३ में लिखे अपने एक पत्र में कैनिग ने ड्यूक के कार्यों पर पूर्ण सहमति प्रकट की थी। उसने लिखा था—

(अ) "इस देश के विषय में मैटरनिश की महत्त्वकाक्षाएँ मुझे सर्वथा अयुक्तिसंगत जान पड़ती हैं; उनका आधार निश्चित ही हमारी प्रतिज्ञाओं, हमारे हितों और हमारी भावनाओं की गलत समझ है...........इग्लैण्ड हस्तक्षेप करने अथवा स्वतन्त्र राष्ट्रों के औन्तरिक मामलो में हस्तक्षेप करने में सहायता देने के लिए किसी भी प्रतिज्ञा से बद्ध नहीं है। फ्रांस में हस्तक्षेप करने का विशिष्ट कार्य एक ऐसा समझा-बूझा हुआ ऐकान्तिक अपवाद है जो सामान्य-नियम को सिद्ध कर देता है।

(आ) "हमारा कार्य है संसार की शान्ति को सुरक्षित बनाना और इसलिए इसके निर्माण में अंगीभूत कुछ राष्ट्रों का स्वातन्त्र्य। राज्य क्रान्ति के प्रत्येक अग्रगामी स्तर का प्रतिरोध करने में हमने निश्चय ही परिवर्तनों का विरोध किया है परन्तु हमने साथ ही साथ विदेशी प्रभुता के सिद्धान्त का भी प्रतिरोध किया है।

कांग्रेस के सामने सबसे महत्त्वशाली तात्कालिक प्रश्न था स्पेन का। इग्लैण्ड संयुक्त कार्यवाही के विरुद्ध था और कैनिग पंच शासन के अधिकार क्षेत्र को स्वीकार करने के लिए बिलकुल तैयार नही था। उसने कह दिया था—"ऐरिओपैगस और इस प्रकार की किसी अन्य सभा का समय अब बीत चुका है। हमने उस समय यूरोप के हस्तक्षेप के विषय मे क्या सोचा होता जव राजा जॉन ने मैग्नाकार्टा स्वीकार किया था अथवा जब कोई चार्ल्स प्रथम तथा उसकी पार्लियामेण्ट (संसद) के संघर्ष में बीच-बचाव करने पहुँच जाता।" लुई अठारहवाँ और उसका मन्त्री विलैल इस बात के लिए बिलकुल तैयार नहीं थे कि रूसी सैनिक दल उनके देश मे से होकर जायँ। मैड्रिड में एक लिखित पत्रक भेज दिया गया जिसमें संविधान में परिवर्तन करने की माँग की गयी थी परन्तु जो उत्तर प्राप्त हुआ वह बहुत सन्तोषजनक नही था। इंग्लैण्ड तो सर्वथा तटस्थ रहा, फ्रांस ने स्वयं ही

सशस्त्र सैनिक हस्तक्षेप का प्रबल समर्थन किया और ऑस्ट्रिया तथा प्रशा ने भी इसको प्रोत्साहन दिया और सहायता देने का वचन दिया। फलतः ६०,००० सैनिकों की एक सशक्त सेना आंगुलेम के ड्यूक के अधिनायकत्व मे स्पेन की ओर बढ़ी, वहाँ के संविधान का विध्वंस किया और फर्डिनैण्ड सातवें को राजसिंहासन पर सुप्रतिष्ठित कर दिया। मिथ्या शपथ लेना राजकुमारों मे कोई अपराध नहीं माना जाता था और पुनः प्रतिष्ठित राजा ने एक घोषणापत्र मे कह दिया कि उदार राज्य शासन का प्रत्येक अधिनियम, जो अभी-अभी स्वीकार किया जा चुका था, सर्वथा अप्रामाणिक और अर्थहीन है; क्योकि उसने कारागृह के अनुचित दबाव मे ही उस पर अपनी स्वीकृति दी थी।

फ्रासीसी सैनिक दलों की विजय के पश्चात् पराजितों को क्रूर प्रतिहिसा का शिकार बनना पड़ा। रीगो को, यह कहकर कि वह एक ऐसा देशद्रोही है जिसे मृत्युदण्ड मिलना चाहिए, फॉसी दे दी गयी और उसके अनुयायियो को कारागृहों में बन्दी किया गया अथवा देश के बाहर जगलो में खदेड़ दिया गया। शासन ने महाकठोर अतिचार किये, चर्च की प्रतिक्रियावादी शक्तियो ने उसका पूर्ण समर्थन किया। धर्म के विरुद्ध एक भी शब्द कहने पर दण्ड अनिवार्य था और स्वतन्त्र-चिन्तन की प्रत्येक अभिव्यक्ति को क्रूरतापूर्वक कुचल डाला जाता था। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के अस्तित्व का पूर्ण विनाश हो गया और यहाँ तक कि स्त्रियो को भी अपने पास किसी शहीद देशभक्त का चित्र रखने के लिए चिर-कालिक कारावास भुगतना पड़ता था। यह आतक का पूर्ण निरंकुश साम्राज्य था जिसकी स्थापना पुनः प्रतिष्ठित बूर्बोवंशियो ने की थी जो फ्रांसीसी संगीनों की नोक पर चढ़कर स्पेन में पुनः प्रविष्ट हुए थे।

अमरीकन उपनिवेशों के प्रश्न पर महाशक्तियो में परस्पर बड़ा विचारणीय मतभेद उठ खड़ा हुआ था। मैटरनिश और उसके मित्रों का मत था कि स्पेन अपनी पूर्ण शक्तियों का उपयोग करके उपनिवेशो पर अपना अधिकार स्थापित करे। कैनिंग का सर्वथा विपरीत मत था। उसका कहना था कि उपनिवेशों के विरुद्ध बल प्रयोग करने मे इंग्लैण्ड किसी प्रकार का सहायक नही बन सकता था। महाशक्तियों की दरार अब बिलकुल साफ दिखायी पड़ने लगी थी। कैनिग का प्रतिज्ञोल्लंघन अधिकाधिक बढ़ता जा रहा था। उसने राष्ट्रीयता और आत्मनिर्णय के सिद्धान्त का अधिनायक बनने की अकेले ही शपथपूर्वक प्रतिज्ञा कर ली। व्यापार-सम्बन्धी कुछ समस्याएँ भी थीं जिसने उसकी नीति के निर्धारण में प्रभाव डाला। ब्रिटिश व्यापार की सुरक्षा किसी भी मूल्य पर होनी चाहिए। यही बात थी जो कैनिग के हृदय मे परम लक्ष्य बनकर स्थित थी। उसने संयुक्त राज्यो (अमरीका के) से सन्धि की वार्ताएँ चलायीं और उसने उनके साथ स्पेनिश उपनिवेशो के प्रश्न पर एक समझौता कर लेने का प्रस्ताव रखा जिससे कि द्वीपीय

महाशक्तियों का विरोध किया जा सके। लण्डन में अमरीकन मन्त्री रिचर्ड रश को लिखे एक पत्र में उसने अपनी स्थिति इन पॉच वाक्यो मे बिलकुल साफ कर दी—

१. हम स्पेन के द्वारा उपनिवेशो को हथियाना अनुचित समझते हैं।

२. उनको स्वतन्त्र राज्यो की मान्यता देने के प्रश्न को हम केवल समय और परिस्थितियों का एक प्रश्न समझते है।

३. हम उस मार्ग मे आने वाली किसी भी बाधा को सवर्था नष्ट कर देना चाहते है जो उनमे और उनकी मातृभूमि के पारस्परिक सम्वन्ध को मैत्रीपूर्ण सन्धि-वार्ताओं से सुलझाने का है।

४. हम उनमे से किसी भी भूखण्ड पर अपना अधिकार स्थापित करना नहीं चाहते है।

५. उनके किसी भी भूखण्ड को किसी दूसरी महाशक्ति के हाथ में जाता देखकर हम उदासीन नही रह सकेंगे।

संयुक्त राज्यो के शासन ने कैनिग द्वारा सुझाये ढग पर एक समझौता करना स्वीकार कर लिया और राष्ट्रपति जेम्स मनरो पवित्र मित्र राज्यो के दैवी अधिकार-सिद्धान्त पर आग्रह से और उनके 'वैधता-सिद्धान्त' के समर्थन मे हस्तक्षेप करने के लिए उत्साह से बहुत प्रभावित हुआ था। २ दिसम्बर १८२३ को उसने कांग्रेस को एक सन्देश भेजा जिसमे कहा गया था......."इसलिए हम इसे निष्कपटता और और संयुक्त राज्यो में तथा उन महाशक्तियो के पारस्परिक मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की ही कृपा समझते है और घोषित करते है कि हम इस गोलार्द्ध के किसी भी भूखण्ड पर उनके अधिकार स्थापित करने के किसी भी प्रयास को अपनी शान्ति और सुरक्षा के लिए हानिकारक समझेगे। किसी भी यूरोपीय महाशक्ति के वर्तमान उपनिवेशों अथवा उपजीवी राज्यो में हमने हस्तक्षेप नहीं किया है और न करेंगे। परन्तु उन राज्य शासनों मे, जिन्होने अपनी स्वतन्त्रता उद्घोषित कर दी है और उसकी सुरक्षा भी की है, और जिनकी स्वतन्त्रता को हमने पर्याप्त विचार-विमर्श एवं न्याय सिद्धान्तो के आधार पर स्वीकार भी कर लिया है, किसी भी यूरोपीय महाशक्ति का उनका दमन करने के लिए मध्यस्थ बनने को अथवा अन्य किसी भी रूप में उनके भाग्यनिर्णय का स्वामी बनने को हम संयुक्त राज्यो के विरुद्ध शत्रुतापूर्ण मनोवृत्ति का प्रदर्शन करने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं समझेगे।" १८२४-२५ मे उपनिवेशो की स्वतन्त्रता को इंग्लैण्ड ने स्वीकार कर लिया और कैनिग ने साभिमान घोषणा कर दी कि उसने "पहले की क्षति को पूरा करने के लिए एक अभिनव जगत को अस्तित्त्व प्रदान कर दिया है।" इसका यह अभिप्राय नहीं था जैसा कि बहुत से लोगो ने समझा कि कैनिग ने उपनिवेशों को स्वतन्त्रता प्राप्त करने में

सहायता दी थी। उसकी सबसे बड़ी सेवा इसी बात में थी कि उनके स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने के पश्चात् उसने स्पष्ट घोषणा कर दी थी कि उनको स्पेन को लौटाने का कोई भी प्रयत्न अधिकतम विरोध का कारण बन जायगा। अमरीकन राष्ट्रपति की घोषणा पर वह अत्यन्त हर्षित हुआ था और उसने लिखा था, "........हमारे ऐला-शापेल के मित्र राज्यों के अति-निरंकुशतावाद पर हमारे यान्की सहयोगियो के अति-उदारतावाद का प्रभाव हमें ठीक वैसा ही सन्तुलन प्रदान करता है जिसकी हम अभिलाषा करते रहते है।" बाद में उसने अपने एक अन्य मित्र को लिखा था, "कार्य सम्पन्न हो गया है...... एक ऐसा कार्य जो विश्वमण्डल मे उतना ही महान परिवर्तन करेगा जितना उस द्वीप की खोज करना होता जो कि अब स्वतन्त्र हो गया है। मित्र राज्य चिल्लायेंगे; परन्तु वे उसके लिए कोई गम्भीर विरोध करने का साहस नही करेंगे। फ्रांस चंचलित हो जायेगा; परन्तु यह सब दक्षिणी अमरीका के हमारे उदाहरण के अनुकरण में ही होगा।"

अभी तो पूर्वी प्रश्न को वैसे ही छोड़ दिया गया और जहाँ तक दास-व्यापार प्रथा का सम्बन्ध था कांग्रेस इसको सैद्धान्तिक मान्यता प्रदान करने से अधिक और कुछ न कर सकी।

पुर्तगाल के मामलों ने भी कैनिग का ध्यान आकर्षित किया। उसने प्रतिक्रिया को पुनः स्थापित करने के स्पेनिश प्रयासो को विध्वस्त करने के लिए लिस्बन मे (१८२६ को) अपने सैनिक दल भेजे। फ्रांस का हस्तक्षेप भी रोक दिया गया और उदार संविधान की सुरक्षा की गयी। कांग्रेस-व्यवस्था विफल हुई, जैसे कि इसकी विफलता निश्चित ही थी। एक स्वतन्त्र संसद् संयुक्त इंग्लैण्ड जैसे देश के लिए यह सम्भव नहीं था कि वह जनता के विरुद्ध निरंकुश शासकों के साथ षड्यन्त्र की योजनाएँ बनाये। दूसरे, आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप का सिद्धान्त बड़ा घातक सिद्धान्त था और यह चतुर्मुखी मैत्री सन्धि के प्रतिकूल भी पड़ता था। तीसरे, यह बहुत अनुचित और अवांछनीय भी था कि महाशक्तियाँ छोटे राज्यों के भाग्य का निर्णय करें और इस बात में मनमानी करें कि उन्हें किस प्रकार का सविधान स्वीकार करना चाहिए और किस प्रकार का नही। इस प्रकार की नीति का कठोर प्रतिरोध होना नितान्त निश्चित था; और विशेष रूप से जबकि इसका लक्ष्य निरंकुश प्रभुतावाद की स्थापना करना था और प्रतिक्रिया का सक्रिय समर्थन करना था। कांग्रेस-व्यवस्था से, जो कि वास्तविक व्यवहार मे जन-स्वतन्त्रता का दमन करने की ही व्यवस्था थी, कैनिग को अत्यन्त घृणा थी और उसने शक्ति पर आधारित यूरोपीय संघ की स्थापना का प्रबल विरोध किया था। १८२३ में वेरोना के पश्चात् फर्डिनैण्ड ने उपनिवेशों के प्रश्न पर पुनर्विचार करने के लिए एक कांग्रेस आमन्त्रित करने का प्रयास किया था और बाद में ज़ार ने भी टर्की के प्रश्न पर विचार

करने के लिए यह प्रयास किया परन्तु कैनिग ने दृढ़तापूर्वक इन कार्यवाहियों में भाग लेने से इन्कार कर दिया। सयुक्त व्यवस्था टूट गयी क्योंकि यह राष्ट्रीयता तथा जनतन्त्र के सिद्धान्तो का विरोध करती थी।

तथापि यह नही कहा जा सकता कि सयुक्त व्यवस्था का प्रयोग एक "निरर्थक प्रयास" मात्र था। इसकी विशेषता इस बात मे है कि इसने विभिन्न राज्यो के शासकों को अपने-अपने दृष्टिकोणो का विनिमय करने के उद्देश्य से एक संयुक्त परिषद् मे एकत्र कर दिया। यदि यह अपने आपको राज्यो मे केवल "नैतिक उत्तरदायित्व" की अभिवृद्धि करने तक ही परिमित रखती तो यह कदाचित् सफल हो गयी होती परन्तु इसके कार्यक्षेत्र के महत्त्वाकांक्षी विस्तार ने बिलकुल शुरू से ही इसके भविष्य को खतरे में डाल दिया। संयुक्त व्यवस्था की सफलताओ के विषय मे एलीसन फिलिप्स ने बड़े मनोरंजक शब्दों मे लिखा है—

"..........नेपोलियन के पतन के पश्चात् आपत्तिपूर्ण वर्षो में इसने शान्ति की सुरक्षा की और इस प्रकार इसने पश्चिमी यूरोप को उस अद्भुत औद्योगिक और आर्थिक समृद्धि का अवसर प्रदान किया जिसने विश्वमण्डल मे अपूर्व परिवर्तन कर दिया। प्रत्युत् इसने इससे भी अधिक किया। इसने यूरोप की सयेक्त व्यवस्था के लिए एक आदर्श प्रतिष्ठापित कर दिया जिसके लिए विश्व को इसका अपेक्षाकृत अधिक असन्तोषजनक क्षणो मे अनेक बार आभारी बनना पड़ा। यह अनुमति देना चाहती थी और इसने राष्ट्रों मे संयुक्त हितो की उस अनुभूति की परम्परा को स्थापित किया जो अभी तक शान्ति स्थापना मे प्रबलतम प्रभाव बना रहा है और बना रहेगा। इसने अन्तर्राष्ट्रीय विधान को, जो कि इसी की अनुभूति का परिणाम था, एक अभिनव मान्यता प्रदान की और इसी ने उन बातो को सम्भव बनाया जिन्होंने हेग के सम्मेलन को निश्चित बना दिया, जिसने विश्व के लिए चाहे जैसी भी क्रूर निराशाएँ क्यो न उत्पन्न की हों, कम से कम अन्तर्राष्ट्रीय सुदृढ़ता के सिद्धान्तो के लिए स्वीकृति प्राप्त कराने में बहुत कुछ किया, जो कि जर्मन सैनिकवाद के विरुद्ध सफल संघर्ष करने में मित्र राज्यों की पीठ पर बड़ी नैतिक शक्ति बनी हुई थी।"

यूरोप की संयुक्त व्यवस्था के भंग होने के साथ ही साथ राष्ट्रीय विद्रोहों की एक शृंखला से बँध गयी। राष्ट्रीयता के सिद्धान्त ने जनमानस पर परम शक्तिशाली प्रभाव डाला और सर्वत्र अशान्ति एवं व्याकुलता छा गयी। इंग्लैण्ड, रूस, ऑस्ट्रिया और टर्की के साम्राज्यो में उनकी प्रजाओं के आन्दोलनों ने बड़ी अशान्ति फैला दी थी जो संवैधानिक राज्य शासनो की स्थापना के लिए संघर्ष कर रही थी। कैथोलिक आयरलैण्ड ने इंग्लैण्ड के अत्याचारो का प्रतिरोध किया और उससे पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद की कामना

करने लगा। फिनलैण्ड स्वीडन से पूर्णत. पृथक् हो जाना चाहता था और पोलैण्ड ज़ार अलैक्जेण्डर तथा निकोलस की प्रतिक्रियावादी नीति से अत्यन्त असन्तुष्ट था। आॅस्ट्रियन साम्राज्य मे भी असन्तोष का अभाव नहीं था; हगरी साम्राज्य की अधीनता से मुक्त होना चाहता था और क्रोएशिया डालमेशिया तथा स्रेवोनिया के दक्षिणी स्लाव अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए बहुत उत्कण्ठित थे। इटली में प्रतिक्रिया का कटु विरोध हो रहा था और देशभक्त जनता यद्यपि अच्छी तरह से सघटित नही थी परन्तु विदेशी प्रभुत्व का विरोध करने के लिए दृढ-सकल्प थी। टर्की साम्राज्य विरोधी राज्यो का एक समूह मात्र था जो किसी भी जातिगत, वशगत अथवा धार्मिक बन्धन से प्रभुसत्ता के साथ सम्बद्ध नही था। सर्विया, अल्बानिया और माण्टीनीग्रो टर्की के अत्याचार के विरुद्ध क्रोध से विकल हो रहे थे और मुक्ति की कामना कर रहे थे। टर्की के प्रति ईसाइयों की घृणा अपरिहारणीय थी और पहले ग्रीस मे ही एक राज्यक्रान्ति सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई और एक अभिनव स्वतन्त्र राज्य ने जन्म लिया।

अध्याय १२

फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति के प्रभाव

ग्रीस की राज्यक्रान्ति के कारण

ग्रीस लगभग चार शताब्दियों से तुर्की-साम्राज्य का प्रान्त था। सत्रहवी शताब्दी में तुर्क लोग अपनी सत्ता के चरम शिखर पर थे परन्तु अठारहवी शताब्दी में उनके दुर्भाग्य ने सिर उठा लिया था। हंगरी से मैग्यार लोगों ने तथा कृष्ण सागर से रूसियों ने उन्हे खदेड़ दिया था। साम्राज्य मे भिन्न-भिन्न जातियो का विलक्षण सम्मिश्रण था—सर्ब, बल्गेरियन, ग्रीक, अल्बानियन, आर्मीनियन और यहूदी सभी इस असमन्वित मिश्रण के अंग थे। ये सब 'नास्तिक' के अत्याचारो से बहुत उत्तेजित हो गये थे और आत्ममुक्ति की सक्रिय कामना करने लगे थे। धर्म इस युग की राजनीति का एक निर्णयकारी तत्त्व था और ईसाइयो तथा मुसलमानों मे परस्पर घोर विद्वेष था जिसमे लेशमात्र कमी कर सकना असम्भव के निकट ही था। पैट्रियार्क के सरक्षकत्व मे ग्रीक चर्च कुस्तुन्तुनिया मे एक साम्राज्य के भीतर साम्राज्य के रूप मे प्रतिष्ठित था, और ईसाइयों को जब कभी ऑटोमन साम्राज्य के विरुद्ध कोई भी काल्पनिक अथवा वास्तविक कष्ट होता था वे लोग कुचुक कनार्जी की रूस की सन्धि (१७७४) को शर्तो के अनुसार सहायता के लिए खटखटाते थे। यूरोपीय राज्यशक्तियाँ भी तुर्की के मामलों मे अब उत्तरोत्तर अभि-रुचि लेने लगी थीं। इस प्रकार से ईसाई जातियों का रोष, यूरोपीय राज्यशक्तियों के स्वार्थ, निकटपूर्व में इंग्लैण्ड और रूस की पारस्परिक प्रतियोगिता, इन सबने मिलकर उस 'भ्रमणशील, दुराग्रहपूर्ण और अन्तर्ग्रथित गाँठ' को जन्म दिया जिसे इतिहास में पूर्वी समस्या के अभिधान से स्मरण किया जाता है। उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ में टर्की एक दुर्बल राज्य था, इसका शासन तब तक केवल उन्हीं लोगो पर था जो सर्वदा खुले अथवा गुप्त विद्रोह की स्थिति में रहते थे। विएना की कांग्रेस ने इस समस्या पर कोई ध्यान नहीं दिया था और टर्की की दशा उत्तरोत्तर खराब होती गयी। सुल्तान एक निरंकुश शासक था जिसका एकमात्र मार्ग निर्देशक 'कुरान' था और उसका राज्य-शासन उन्नीसवी शताब्दी की आवश्यकताओं के सर्वथा प्रतिकूल एक कुरूप ढाँचा-सा था। कर-व्यवस्था

दमनकारी थी, न्याय की प्रबन्ध व्यवस्था भ्रष्टाचार से पूर्ण थी; तुर्की सेना (ज़ानेस्सरीज़) राजप्रासाद के षड्यन्त्रो में भाग लेने लगी थी; राजनीतिक और न्यायपरक (या क़ानूनी) समानता तब तक अज्ञात थी; ग़ैर-मुसलमानों पर जजिया लगाया जाता था और उन्हें 'रियाया' कहा जाता था। ईसाइयो को सशस्त्र सेना से बहिष्कृत रखा गया था और वे लोग अन्य भी अनेक योग्यताओ के अनधिकारी बना दिये गये थे। उन्हें अपने बच्चो का कर देना पड़ता था और यद्यपि उनके प्रति प्रभूत मात्रा में धार्मिक सहिष्णुता दिखायी जाती थी, उनका स्वाभिमान अपने प्रति किये गये समानतारहित व्यवहार से अत्यधिक उत्तेजित हो उठा था। उन्हें सन्तोष एवं मौन भाव से संविधियो (कानूनो) की असमानता, न्याय का निषेध और कार्यकारिणी के द्वारा किये जाने वाले विचारशून्य एव निर्दय अत्याचारो को सहन करना पड़ता था। न्यायालय धन के वशवर्ती थे। साम्राज्य के प्रान्तों मे पाशा महाशक्तिशाली जन थे जो निरंकुश प्रबन्धको की तरह मनमानी करते थे और केन्द्रीय सत्ता की अवहेलना करते थे। इनमें से मोरिया, एग़िबोज़, दक्षिणी अल्बानिया, सेलानिका और क्रीट द्वीप के पाशा विशेष उल्लेखनीय हैं। एक राज्य, जिसमें दुष्ट शासन प्रबन्ध, अराजकता और अव्यवस्था स्थायी अंग बन गये थे, उन अधीनस्थ जातियों की पारस्परिक शत्रुता का दमन करने मे असमर्थ था जो बाह्य शासन-सत्ताओ के द्वारा अपने सघर्षात्मक प्रयासों के लिए उपयोग में लायी जाती थीं। ऐसी ही परि-स्थितियाँ थी जिनमें ग्रीसवासियों ने राजविद्रोह का झण्डा ऊँचा किया था। उनके मुक्ति के प्रयासों मे उन्हे विदेशी सहानुभूति से भी उतनी ही सहायता मिली थी जितनी ऑटोमन शासको के निजी नैतिक और भौतिक अध:पतन से।

आधुनिक ग्रीस का उद्भव बैज़ण्टाइन साम्राज्य से हुआ है न कि पुराकाल के उस स्मरणीय देश से जिसमें नगरराज्यो, ओलम्पिक खेलो और वैविध्यपूर्ण संस्कृति ने अपना अस्तित्व प्रतिष्ठित किया था, और जिसने एथेन्स को प्राचीन विश्व में "कलाओं और वक्तृता की जन्मभूमि" बना दिया था। तुर्की के विरुद्ध राजविद्रोह खड़ा करने वाले ग्रीस-वासी प्लेटो और ऐरिस्टॉटल के उत्तराधिकारी नही थे परन्तु इस आन्दोलन ने जन समाज के सुविशाल भागों पर जो आवेगपूर्ण प्रभाव डाला था, उसका प्रधान आधार इन अभिनव ग्रीकों का अपने सुविख्यात पूर्वजो के साथ कल्पनानुमोदित सम्बन्ध ही था। इनका वर्गीकरण स्थूल रूप से तीन शीर्षकों के नीचे किया जा सकता है—

(१) मोरिया के ग्रीक, जो अर्द्धनगरों (टाउन्ज) और ग्रामों मे रहते थे और इनमें प्रूनेट लोगो का विचारणीय प्रभाव था,

(२) ईजियन द्वीपो के ग्रीक, जो यूरोप के बहुसख्यक जनो से कहीं अधिक मात्रा मे स्वतन्त्रता का उपभोग करते थे और जो लोग आर्थिक दृष्टि से काफ़ी परितुष्ट थे।

(३) यत्र-तत्र विखरे हुए ग्रीक. ये लोग संसार के विभिन्न भूखण्डो मे पाये जाते थे और साहित्यिक अभिरुचि के स्वामी तथा स्वातन्त्र्य की महती आकाक्षा से अनुप्राणित थे।

ऑटोमन साम्राज्य मे कुछ ग्रीकजन उच्च पदो पर नियुक्त थे और कुस्तुन्तुनिया का अधिकांश वाणिज्य-व्यापार उनके हाथो में था। ग्रीक चर्च एक परम शक्तिशाली संस्था थी; पैट्रियार्क राज्य के उच्चतम सम्मानित व्यक्तियों मे से एक था और ईसाइयो पर उसका पर्याप्त प्रभाव एवं बल था। इस प्रकार मे यह कोई आश्चर्यजनक बात नही है कि ग्रीकों ने ऑटोमन शासन के बोझ को उतार फेकने के लिए एक सुदृढ़ सघर्ष की पूर्ण योजना तैयार कर ली हो।

ग्रीस की राज्यक्रान्ति के एकाधिक कारण थे। इनमे मे प्रथम स्थान शिक्षा को ही देना पडेगा। अठारहवी शताब्दी के साहित्यिक पुनरुत्थान ने ग्रीकजनो को प्राचीन (हेला) लोगों के श्रेष्ठ वैभव और सुकरात, प्लेटो, ऐरिस्टॉटल तथा पुराकाल के अन्य महाबुद्धिशाली व्यक्तित्वो से परिचित करा दिया था। वे लोग कला, साहित्य, दर्शन और मानवीय ज्ञान के अन्य क्षेत्रों मे अपनी प्राप्तियो को वहुत गर्वपर्वक स्मरण करते थे। उनके महाकवि एडमैन्टिअस कोरेस (१७४४-१८३३) ने अपने गीतों मे जनता के हृदयों को स्पन्दित कर दिया था और उसने ग्रीस की भाषा को एक उत्कृष्ट रूप प्रदान किया था जो अभी तक केवल एक साधारण जन बोली मात्र मानी जाती थी। इसने बेल्लोर के विविध भागों मे बसने वालो के बीच एक एकतासूत्र का काम किया और उनको राष्ट्रीय साहित्य प्रदान किया जिसने उनके हृदयो की सर्वाधिक ग्रहणशील तन्त्रियो को स्पन्दन दे दिया था।

फ्रांस की राज्यक्रान्ति के विचारों ने राजनीतिक स्वातन्त्र्य की आकांक्षा को एक महती उत्प्रेरणा प्रदान कर दी थी। ग्रीकजनो ने अपने अधिकारो की स्पष्ट घोषणा कर दी और तुर्कों के विरुद्ध संघर्ष का कारण राष्ट्रीयता की भावना को घोषित करते हुए उन्होंने इस पर जोर भी दिया। पेरिसीय मण्डलियों और सभाओं का प्रभाव वड़ा शक्तिशाली था। उन्होने इस आशा से कि ऑटोमन साम्राज्य इस प्रकार के उपायो का आश्रय लेने से भयभीत हो जायेगा, मण्डलियों और गुप्तसमितियो का निर्माण करना आरंभ कर दिया। इनमे से दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। एक थी एथेन्स मे १८१२ मे प्रतिष्ठापित 'फिलॉम्यूज सभा'। इसका उद्देश्य था साहित्य की अभिसमृद्धि मे योग देना। दूसरी, जो कि अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण थी, ऑडेस्सा में १८१४ मे संस्थापित हुई थी, इसका नाम था 'हिटेरिया फिलिकी'। यह कार्बोनारी की तरह एक गुप्त समिति थी जिसका उद्देश्य तुर्कों को यूरोप से निकाल बाहर करना था और जिसकी कार्य-रीतियाँ विशिष्ट रूप से गुप्त रखी जाती थीं। हिटेरिया ने शीघ्र ही सुविस्तीर्ण प्रभाव अर्जित कर लिया

था और १८२० तक इसकी सदस्य-संख्या २,००,००० हो गयी थी। इस सभा के नेता बड़े कट्टर और हठधर्मी थे जो तुर्कों के प्रति घृणा का प्रचार करते थे और ज़ार की प्रशंसा करते थे। क्लेफ्ट लोगों के वीर कर्मो ने, जो 'राजनीतिक महत्वाकांक्षा की क्षीण रेखा के मिश्रण से सम्माननीय बने हुए लुटेरे थे,' जनता को उनके पद-चिह्नों का अनुसरण करने के लिए पर्याप्त संप्रेरित किया था। वे लोग अविचारित साहस के स्वामी थे और दूसरों के साथ व्यवहार करने में बड़े क्रूर और निर्दय थे। वे मूलतः भूमिहीन कृषक थे, जिन्होंने बाद में लूट-मार को ही अपने जीविकोपार्जन का साधन बना लिया और ऐसे शौर्य कर्म किये जिनकी प्रभूत प्रशंसा हुई। ग्रीस में एक अन्य वर्ग के भी लोग थे जिन्हें फैनेरियट्स कहा जाता था, इन्होंने भी राष्ट्रीय आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। ये लोग कुस्तुन्तुनिया के एक भाग में रहते थे जिसे 'फैनार' कहा जाता था। इनमें से कुछ राज्य कर्म के उच्च पदों पर नियुक्त थे और इन्होंने शिक्षा एवं कूटनीति शास्त्र के क्षेत्रों में पर्याप्त ख्याति अर्जित की थी। फैनारियट्स ने साम्राज्य में पर्याप्त प्रभाव का अर्जन कर लिया था और ये लोग तुर्कों के लिए अनिवार्य बन गये थे। मोल्डाविया और वैलेशिया के होस्पोदार (राजकुमार) फैनरियट् परिवारों से ही आये थे और यद्यपि ये लोग कभी-कभी बड़े क्रूर और उच्छृंखल हो जाते थे, इन्होंने ग्रीस में शिक्षा और संस्कृति को एक अभिनव प्रेरणा दी थी। उनका नेता अलैक्जेण्डर मावोकार्दातोस शिक्षा का अग्रगण्य समर्थक था और कुस्तुन्तुनिया में कुछ विद्यालय उसी के पथ-प्रदर्शन और आदेशों के अनुकूल चलते थे।

इन कारणों के अतिरिक्त अन्य भी कारण थे जिन्होंने उस मनोवृत्ति का निर्माण करने में प्रचुर सहायता दी जिससे कालान्तर मे राजविद्रोह ने जन्म लिया। ग्रीकों की सामुद्रिक शक्ति उनके लिए एक अतिमूल्यवान थाती थी। उनके पास एक परमकुशल नौसेना थी और १८१६ में इसमें ६०० जहाज और १७,००० मल्लाह थे। उनका व्यापार पर्याप्त सुविकसित दशा में था; और वे लोग भौतिक समृद्धि की उच्चतम दशा को प्राप्त करने में स्वतन्त्र थे, इसने उनको अपने अत्याचारियों के साथ अपना बाहुबल मापने का साहस दे दिया था। नैतिक और साथ ही साथ राजनीतिक कारणों ने भी तुर्कों के प्रति रोष बढ़ाने में पर्याप्त सहायता दी। वे लोग बलहीन थे, हरम के भौतिक सुखों में डूबे रहते थे और कुल-पक्षपात की नीति के अनुयायी थे। उच्च पदाधिकारियों का चुनाव सुल्तान के प्रियपात्रों और कृपापात्रों में से किया जाता था और मन्त्रिपरिषद् (कैबिनट) में वे लोग थे जिनका लालन-पालन ज़नानख़ाने में हुआ था। इस तरह के लोगों का ग्रीकों से प्रतिरोध होने पर विफल होना सर्वथा निश्चित ही था। ग्रीक लोग अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए, अत्यधिक उत्कण्ठित थे और फिनले के शब्दों में वे

लोग 'सद्वृत्ति और आत्मबलिदान के विषम पथ पर आरूढ़ होने के लिए पूर्णतः कटिबद्ध थे'। तुर्कों ने कभी भी विजितों को अपने आप में समा लेने में सफलता नहीं प्राप्त की थी। उनका शासन एक प्रकार का सशस्त्र सैनिक अधिकार था और शासितों की सहानुभूति को कभी न जीत सका। उनका प्रभुत्व बड़ा शक्तिहीन था, आर्थिक दशा शोचनीय थी; उनकी शिक्षा और उनका परिपालन उन्हें शासन-कार्य के योग्य बनाने के लिए बहुत अनुपयुक्त था, जबकि ग्रीकों के पास आचार एवं चरित्र के बड़े उत्कृष्ट गुण थे—आत्मबलिदान की सामर्थ्य, नैतिक उत्साह और स्वतन्त्र एवं सम्मानित जीवन-यापन करने के लिए अपने स्वामियों के प्रभुत्व को विनष्ट कर देने की महती आकांक्षा।

रोमन संविधिशास्त्र (लॉ) के अध्ययन ने ग्रीक समाज पर बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला था। इसने सार्वजनिक अधिकारों की सुस्पष्ट व्याख्या की, सम्पत्ति की सुरक्षा पर सक्रिय आग्रह किया और इस नियम की प्रतिष्ठा की कि न्याय आवश्यक रूप से कार्य-विधि (प्रोसीजर) के सुनिश्चित नियमों के अनुकूल होना चाहिए। यह पाठ कि 'न्याय पृथ्वी पर सर्वोत्कृष्ट प्रभुसत्ता है' ग्रीकों को रोमन संविधि विज्ञान (ज्युरिस्प्रुडेन्स) ने पढ़ाया था और वे लोग इससे बड़ी गम्भीरतापूर्वक प्रभावित हुए थे।

ऑटोमन साम्राज्य मे एक लोकाचार था, इसने भी राष्ट्रीय उथल-पुथल में कम योग नहीं दिया। प्रान्तीय ग्रीकों को, जो विदेशी राज्यों की सेवावृत्ति स्वीकार कर लेते थे, एक विदेशीकरण (डीनैचुरलाईजेशन) का घोषणापत्र दे दिया जाता था। इससे उनको राजकरों तथा सुल्तान की राजभक्ति से मुक्ति मिल जाती थी। वे लोग अब उसकी प्रजा नहीं रह जाते थे और इनमें से अधिकांश ने, रूस के संरक्षण मे, पोर्टे के अध्यादेशों का बिना अपनी हानि किये हुए उल्लंघन किया था और षडयन्त्र तथा कलह का प्रचार किया था।

राज्यक्रान्ति की प्रगति

हैलैनिक संस्कृति की स्मृतियाँ ग्रीकों के हृदयों को नवजीवन की उज्ज्वल आशा से भर देती थीं। परन्तु जब तक तुर्क उन के देश पर शासन कर रहे थे तब तक इस आशा की पूर्ति असम्भव थी। अतः राजविद्रोह एक सर्वथा सुस्पष्ट आवश्यकता बन गयी थी। सबसे पहले जार की राजसेवा में नियुक्त कॉर्फू के एक ग्रीक को जिसका नाम कैपोडिस्ट्रिमस था, इस नव-क्रान्ति का नेतृत्व सौंपा गया, परन्तु वह ऐसे कार्यों मे पड़ने वाले जोखिमों से परिचित था और उसने नेतृत्व अस्वीकार कर दिया। तदनन्तर आलेक्जान्दर हिप्सिलान्ती से नेतृत्व करने का निवेदन किया गया, उसने स्वीकार कर लिया; वह रूस की राजसेवा में नियुक्त एक फैनारियट था। उन्नतिशील जनीना के अली ने राजविद्रोह के लिए एक अच्छा

अवसर प्रदान कर दिया था जो तुर्की सेनाओं ने सफलतापूर्वक दबा दिया, परन्तु जबकि सैनिक दल उससे संघर्ष ले रहे थे ग्रीकों ने अपना काम जारी रखा और 'हिटेरिया' के सदस्यों ने असन्तोष तथा शासकों के प्रति घृणा के बीज उत्साही प्रचारकों के जोश से बोना जारी रखा था। जार राज्यक्रान्तियों के बहुत प्रतिकूल था और चतुर्मुख मैत्रीसन्धि के एक सदस्य के रूप में वह क्रान्तिकारियों के प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति भी अभिव्यक्त नहीं कर सकता था। हिप्सिलान्ती की घोषणा कि वह गुप्त रूप से सहायता करेगा, मिथ्या थी। वैलेशिया के द्रागाशन में उसने तुर्कों का सक्रिय प्रतिरोध किया (१९ जून, १८२१) और उनसे पराजित हो गया। वह हंगरी मे भाग गया और ऑस्ट्रियन राज्यशासन के आदेशों से कारागार में डाल दिया गया और अलैक्ज़ेण्डर के सतत प्रयास से सात वर्ष के पश्चात् कारागार से विमुक्त कर दिया गया।

परन्तु मोरिया का संकट अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर था। हिटेरिया फिलिकी के सदस्य घृणा का प्रचार करने मे विशेष प्रयत्नशील थे और आर्कीमैण्ड्राइट नाम के एक पुरोहित ने असन्तोष की ज्वाला को और भी अधिक भडका दिया था, उसको लोग 'पप्पा' के उपनाम से विशेष जानते थे। उच्च तुर्की पदाधिकारियों पर आक्रमण होने शुरू हो गये और क्रान्तिकारी भयानक युद्धगीतों का खूब प्रचार करने लगे--"तुर्क अब अधिक नहीं जियेंगे, न मोरिया में और न ही समस्त भूभाग पर,"। ये गीत सर्वत्र दोहराये जाते थे और राज्यक्रान्ति ने एक भयंकर रूप धारण किया था। भारी संख्या में तुर्कों का वध कर दिया जाता था और पूरे २५,००० जनों का सर्वनाश हो गया था।

इस जनसंहार के समाचार ने सुल्तान को भयभीत कर दिया और उसने ईसाइयों के विरुद्ध जेहाद की घोषणा कर दी। उसके क्रोध का सबसे महत्त्वपूर्ण शिकार कुस्तुन्तुनिया के चर्च का पैट्रियार्क ग्रेगोरियास था, जो उस समय अस्सी वर्ष का वृद्ध था। चर्च में ही ईस्टर के रविवार (२२ अप्रैल) को उसका वध हुआ था, जबकि वह अभी अपनी पौरोहित्य की वेषभूषा में प्रार्थनाएँ सम्पादित कर ही रहा था। कुछ दिनों खुला छोड़ देने के बाद उसका मृत शरीर यहूदियों को सौंप दिया गया, उन्होने उसे सड़कों पर घसीट-घसीटकर ले जाकर समुद्र में फेंक दिया। एक ग्रीक जलयान ने उसे पकड़ लिया और ऑडेस्सा ले जाया गया, वहाँ रूसी राज्यशासन के आदेशों से उसे समुचित मृतक-संस्कारों का सम्पादन करते हुए दफना दिया गया।

वयःप्राप्त पुरोहित के वध ने पूरे ईसाई संसार में आतंक की एक उत्तेजना-सी व्याप्त कर दी। अलैक्ज़ेण्डर इस अत्याचारपूर्ण घोर अपराध के विषय में सुनकर अत्यधिक क्रुद्ध हो गया और उसकी प्रजा कठोर प्रतिशोध के लिए छटपटाने लगी। कुस्तुन्तुनिया में स्थित रूसी राजदूत ने यह इच्छा प्रकट की कि सुल्तान के पास एक संयुक्त पत्र भेजा

जाये जिसमें ईसाइयों की जीवन-रक्षा के लिए माँग पेश की जाये, परन्तु लॉर्ड स्ट्रांग फोर्ड ने जो उस समय कुस्तुन्तुनिया मे स्थित ब्रिटिश राजदूत था, यह प्रस्ताव स्वीकार न किया। मैल्लेरुश ग्रीकों को ऐसे क्रान्तिकारियों के रूप मे देखता था जिनपर किसी प्रकार की सहानुभूति, दया अथवा सहायता का भाव दिखाना अनुचित था। लॉर्ड कासलरिया यूरोपीय शान्ति-व्यवस्था के लिए अत्यधिक उत्सुक था. फ्रांस स्पेन के मामलों में व्यस्त था और बर्लिन की राजसभा विएना मे स्वीकार की गयी नीति की ही एकान्त समर्थक थी। सुल्तान पर दबाव डाला गया और वह उपराज्यों (प्रिन्सिपैलिटियों) को छोड़ने के लिए तैयार हो गया। समस्या पूरी तरह से मुलझी नही थी और ग्रीक तथा तुर्क अभी भी संघर्ष जारी रखे हुए थे। मेस्सोलोंगी पर अधिकार कर लिया गया। त्रिपो-लित्जा के नगर पर क्रान्तिकारियों ने घेरा डाल लिया था और वडे भयङ्कर तथा वीभत्स आचार किये जाते थे। सडकें इस तरह लाशों मे खचाखच भरी हुई थी कि जब ग्रीक सेनानायक कोलोकोत्रोनीस ने नगर में प्रवेश किया तो उसके घोड़े के खुरों ने कभी ज़मीन नहीं स्पर्श कीं।

विप्लव ग्रीस के दूसरे भागो में भी शीघ्र ही फैल गया और अब क्रूर, निर्दय भयंकरता दिखलाने की तुर्कों की बारी थी। अप्रैल, १८२२ में कियोस मे भीषण रक्तपात और जनसंहार के दृश्य उपस्थित हुए और कहा जाता है कि ६०,००० निवासियों की जन-संख्या में से २७,००० जान से मार डाले गये और ४३,००० दासों के रूप मे बेच दिये गये। सहस्रों लडकियाँ दासियों के रूप में बेची जाने के लिए ले जायी गयी और मिस्र तथा ट्यूनिस के बाजार कियोस के दयनीय कैदियों के दलों से भरे पड़े थे। युद्ध जारी रहा और तुर्की सेनानायक को विवश होकर पीछे भाग जाना पडा और तुर्कों द्वारा रौंदा गया पूरा देश ग्रीकों ने पुनः प्राप्त कर लिया। पहली जनवरी, १८२२ को ग्रीकजनों ने अपने स्वातन्त्र्य की उद्घोषणा कर दी और एक अभिनव संविधान का निर्माण किया। इंग्लैण्ड अपने आपको अब इन सब झमेलों से दूर नहीं रख सकता था और कैनिंग ने, जिसने कि वैदशिक मन्त्रालय में कासलरिया का पदभार सम्भाला था, २५ मार्च, १८२३ को ग्रीकों को योद्धा के रूप में मान्यता प्रदान कर दी।

यूरोप में ग्रीस के प्रति बहुत सहानुभूति थी। हैलेनिक संस्कृति के प्रति अनुराग का उत्साहपूर्ण भाव सर्वत्र व्याप्त हो गया और सभी देशों के शिक्षित जन, जिन्होंने ग्रीक कला, साहित्य और दर्शन का अध्ययन किया था, एक ऐसे देश की स्वतन्त्रता की संभाव-नाओं पर उल्लास से झूम उठे जिसने मानवसमाज के लिए इतना किया था। इंग्लैण्ड में नेपोलियनिक युद्धों के समय में सहन किये गये कष्टों ने स्वातन्त्र्यवाद के लिए एक अभिनव उत्साह भर दिया था और संसदीय (पार्लियामेण्टरी) सुधारों के लिए आन्दोलन

अपने पूर्ण वेग पर था। असन्तोष के भावना-प्रवण प्रान्तर को दमन ने अधिक भड़का दिया था और जनसंख्या के एक बड़े भाग ने ग्रीक संघर्ष की प्रगति को हर्ष एवं सन्तोष के भावों से देखना शुरू कर दिया था। पुराग्रन्थो (क्लासिक्स) के पुजारियों के अतिरिक्त भी ऐसे अनेक थे जिन्होंने इस अवसर का, ऐसे निरकुशतावादी शासनों के विरुद्ध अपनी अवरुद्ध भावनाओं को अभिव्यक्तीकरण देने के लिए उपयोग किया जिन्होंने स्वतन्त्रता को निरुद्ध कर दिया था और विचारों के स्वतन्त्र प्रकाशन पर भारी नियन्त्रण लगा दिया था। ब्रिटिश आभिजात्य (एरिस्टोक्रेसी) ने इस 'ऐटिक लैण्ड' (अथवा 'श्रेष्ठ भूमि') के भाग्यनिर्णय मे अधिकाधिक अभिरुचि लेना शुरू कर दिया था और इसके कतिपय सदस्यो ने तो 'रिलीफ कमिटी' को कुछ आर्थिक सहायता देकर अपनी सहानुभूति का स्पष्ट प्रकाशन भी किया था। फ्रांस और जर्मनी मे भी हैलेनिक के प्रति अनुराग के स्थायी भाव ने वहाँ के निवासियो के मस्तिष्क और हृदय को अभिभूत कर लिया था और चर्च द्वारा प्रसूत स्नेहसूत्र ने संघर्षरत हैलेनिक जनों के लिए रूस की महती सहानुभूति का प्रबन्ध कर दिया था। केपोडेस्ट्रियस ने इन परिस्थितियों में ज़ार को सहायता प्रदान करने के लिए सर्वथा राजी कर लिया था। परन्तु एक ओर जहाँ राजशक्तियाँ कुछ हिचकिचा रही थी, एक इंग्लैण्डवासी ने अपना साहसी कदम आगे बढा दिया। जनवरी, १८२४ को लॉर्ड बायरन, अपनी वह समग्र धनराशि लेकर जो उसने लन्दन मे इसी आशय से एकत्र की थी, स्वातन्त्र्य-संग्राम में भाग लेने के लिए मेस्सोलौंगी पहुँच गया। बायरन का प्रेरणातत्व उसकी 'ऑस्ट्रिया के नारकीय वंश' के प्रति घृणा और उन लोगों की शृंखलाएँ तोड डालने की आकांक्षा थी जिन्हें वह 'वंशपरम्परागत दासों' की संज्ञा दे चुका था। वह उनके हृदयों को अपने गीतों से उत्साह-विभोर कर देता था और उनके मन में हेलासके लोगों के विगत वैभव एवं ऐश्वर्य की स्मृतियाँ जगाता था जो 'एक पाठशाला के विद्यार्थी की कहानी, एक घण्टे का आश्चर्य' था। मेस्सोलौंजी पहुँचने पर बायरन ग्रीको की लोलुपता, स्वार्थपरता और उनमें देशभवित के अभाव को देखकर बड़ा निराश हुआ और उसने कहा, "मै एक मूर्ख ही था कि यहाँ आया, पर अब आ ही चुकने पर मैं देखूँगा क्या किया जा सकता है!" यूरोपके आरपार बायरन के इस अभियान की तुलना मास्को से लिस्बॉन वाले नेपोलियन के अभियान से की जा सकती है। पूरा द्वीप उसके इस साहसपूर्ण कार्य से अत्यधिक प्रभावित हुआ। सुल्तान ने अपनी इस भयंकर स्थिति में मिस्र के पाशा मुहम्मद अली से सहायता की प्रार्थना की। उसका पुत्र इब्राहीम एक बड़ा जहाजी बेड़ा लेकर चढ़ आया और उसने क्रीट पर विजय प्राप्त कर ली (अप्रैल, १८२४)। तदनन्तर वह मोरिया की ओर बढ़ा, देश को रौंद डाला और खुला जनसंहार किया।

यूरोप की राजशक्तियों को क्या करना था ? ऑस्ट्रिया में इस लोकोक्ति ने खूब प्रचार पाया 'सोये कुत्तों को पड़ा रहने दो', परन्तु वह रूस के रंगढंग और अपने व्यापार के खोये जाने से बड़ा भयभीत था। रूस ने दक्षिण की ओर बढ़ते जाने की अपनी चिर-परिचित नीति का ही अनुसरण किया और उसकी साम्राज्यवादी आकांक्षाओं का केन्द्र कुस्तुन्तुनिया, और तुर्की प्रदेश बने। इंग्लैण्ड इन महत्त्वाकांक्षाओं को बड़ी सन्देहपूर्ण दृष्टि से देखता था और व्यापारिक तथा साथ ही साथ युद्धनीति के कारणों को लेकर ऑटोमन राज्यों की स्थिरता में विशेष रुचि लेता था। कुस्तुन्तुनिया भूमध्यसागर का प्रवेशद्वार था और रूसियों द्वारा इसका अवरोध पूर्व में ब्रिटिश उपनिवेशों का अवरोध था।

कैनिंग इस सिद्धान्त में विश्वास करने वाला था कि "प्रत्येक राष्ट्र अपने आपके लिए तो हम सब के लिए ईश्वर"। उसने पहले ही ग्रीकों को युद्ध करने वाले घोषित कर दिया था। वह मैटरनिश के इस विचार का सबल खण्डन करता था कि वे 'रियाया' थे और अपने वैधानिक शासकों के विरुद्ध षड्यन्त्रकारी युद्ध में रत थे। परिस्थिति बड़ी शोचनीय हो गयी थी और इस बात का अनुभव किया जाने लगा था कि यूरोपीय राजशक्तियों के सक्रिय हस्तक्षेप के बिना ग्रीस ध्वस्त हो जायगा। लन्दन-स्थित रूसी राजदूत की पत्नी मदाम लीवेन को कैनिंग ने यह कार्यभार सौंप दिया कि वह ज़ार को इस बात के लिए मना ले कि ग्रीस के प्रश्न से सम्बन्धित कुछ भी कार्यवाही करने में वह इंग्लैण्ड की भी सम्मति ले ले। अलैक्ज़ेण्डर एकदम राजी हो गया, परन्तु २४ दिसम्बर, १८२५ को गिन्नी (Guinea) में उसकी मृत्यु हो गयी। निकोलस ने उसका राजपद सम्भाला। अब वैलिंग्टन के ड्यूक को रूस भेजा गया और सेण्ट पीटर्सबर्ग के मूलसन्धि-पत्र (प्रॉटोकॅल) पर ४ अप्रैल, १८२६ को हस्ताक्षर हो गये। इसके द्वारा सुल्तान की सर्वोच्च प्रभुसत्ता के अधीन ग्रीस को स्वशासित घोषित किया गया; और इंग्लैण्ड तथा रूस संयुक्त मध्यस्थता के लिए तैयार हो गये और उनके लिए यह आवश्यक था कि वे सुल्तान को यह स्पष्ट कर दें कि तुर्की प्रदेशों में उनका कोई स्वार्थ अथवा रुचि निहित नहीं है। परन्तु इंग्लैण्ड तथा रूस का यह स्नेह और बन्धुत्व केवल ऊपरी ही बातें थीं। जार ने कुस्तुन्तुनिया में स्थित अपने राजदूत को यह सूचित कर दिया था कि वह पोर्टे को मोल्डेविया तथा वैलेशिया में स्थित अपने उपराज्यों को छोड़ देने के लिए कह दे। इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए सुल्तान पर दबाव डाला गया; वह पहले तो प्रस्ताव सुनकर बड़ा क्रुद्ध हुआ परन्तु अन्त में उसे यह प्रस्ताव स्वीकार ही करना पड़ा। अतः ७ अक्तूबर, १८२६ को ऐकरमैन की सन्धि पर हस्ताक्षर हो। गये इसके अनुसार सुल्तान ने संकुचित (मुहानों) जलमार्गों में नौयावा को सुगम बनाने के लिए

उपराज्यों को खाली करना स्वीकार कर लिया, तथा कुछ सर्केशियन दुर्गों पर से अधिकार हटा लेना और दोनों राजसभाओ में पूर्ण कूटनीतिक सम्बन्धों को फिर से क़ायम करना भी स्वीकार कर लिया। यह सन्धि ग्रीस की समस्या के विषय में मौन थी।

यह बहुत पहले ही स्पष्ट हो चुका था कि किसी भी प्रकार की मध्यस्थता जब तक कि बल का आश्रय नही लेगी, पोटे पर कोई विशेष प्रभाव न डाल सकेगी। परन्तु कैनिग यह नही चाहता था कि रूस अकेला ही सब कुछ करके इंग्लैण्ड से ज्यादा अपना प्रभाव कर ले। ऑस्ट्रिया और प्रशा बलप्रयोग के लिए प्रस्तुत नही थे परन्तु फ्रांस सशस्त्र हस्तक्षेप के लिए पूर्णतः तैयार था। मूलसन्धिपत्र को लन्दन की सन्धि में परिणत कर दिया गया (६ जुलाई, १८२७) और इंग्लैण्ड, रूस तथा फ्रांस ने उसपर हस्ताक्षर किये। सन्धि की शर्ते ये थी––(१) सुल्तान आवश्यक रूप से एक युद्धविराम सन्धि स्वीकार कर ले और यदि वह इन्कार करे तो निस्सन्देह बल का प्रयोग किया जाना चाहिए; (२) ग्रीस को सुल्तान की सर्वोच्च प्रभुसत्ता के अधीन एक स्वतन्त्र राज्य बना देना चाहिए और दोनों देशो के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये जाने चाहिए, और (३) इब्राहीम को शान्तिपूर्वक मोरिया में रोक लिया जाना चाहिए और आपसी विरोधों को समाप्त कर देने के लिए उस पर दबाव डाला जाये। यह सन्धि ठीक ही पूर्वी समस्या के विषय में कैनिग की नीति की सर्वोच्च विजय मानी जाती है।

इस बीच ग्रीकों को भारी हानियाँ उठानी पड़ी थी। बायरन अप्रैल, १८२४ को ग्रीस के लिए लडता हुआ मारा गया, अप्रैल, १८२६ में मिस्सोलौंगी का पतन हो गया, और एथिन्स तथा एक्रोपोलिस जून, १८२७ में घेर लिये गये थे। इब्राहीम ने मोरिया में सभी विरोधियो को कुचल डाला था और उसकी बल तथा तलवार की नीति ने देश को असहाय एवं जनशून्य बना दिया था। यूरोप क्रुद्ध था परन्तु वह अभी भी बलप्रयोग करने में हिचकिचा रहा था। कैनिग, जो अगस्त, १८२७ में मर गया था, संयुक्त मध्यस्थता की नीति का अनुमोदन इसी आशा में करता रहा था कि सुल्तान इस प्रकार से मान जायगा और इस प्रकार से रूस तथा तुर्की में युद्ध भी नहीं होगा। परन्तु इनमें से कोई भी आशा फलान्वित न हुई और बलप्रयोग अनिवार्य हो गया। परन्तु ग्रीस का भाग्यनिर्णय पहले ही २० अक्तूबर, १८२७ को नैवारिनो की खाड़ी में नाविकों ने कर दिया था। ब्रिटिश एडमिरल कॉड्रिंग्टन ने जो उस समय मित्रराज्यों के जहाजी बेड़े का अध्यक्ष था, रूसी और फ्रांसीसी नाविकों को अपने साथ लेकर नैवारिनों के बन्दरगाह को प्रस्थान कर दिया। तदन्तर एक झड़प हो गयी जिसमें इब्राहीम का जहाज़ी बेड़ा ध्वस्त हो गया और जो पहले केवल एक नौसैनिक प्रदर्शन मात्र था अब एक निर्णयकारी युद्ध मे परिणत हो गया। इसमें किंचि-मात्र भी सन्देह नहीं कि एड्मिरल 'किसी

भी छोटी-सी बात पर' युद्ध आरम्भ कर देने के लिए पहले से ही तैयार थे। युद्ध की व्यवस्था में लिखे हुए आदेशों की व्याख्या बड़ी सरलता से उस सुझाव के रूप में की जा सकती थी जिसका क्रियात्मक रूप नाविकों ने अपने इस युद्ध में दिखा दिया था। ये आदेश इस प्रकार से थे—"यदि समय हो तो तुर्की जहाज़ी बेड़े के कोई विरोधी कार्य करने से पहले ही मित्र राज्यों के नौसैनिक अध्यक्ष (स्क्वाडर्न) लचीले समुद्री रस्सों से लंगर डाल देंगे। यदि पूर्वसंकेत दिया जाये तो पहले ही कोई आक्रमण न किया जाय, जिससे कि तुर्क ही अग्नियुद्ध आरम्भ करने में पहल लें।"

कुस्तुन्तुनिया में युद्ध के समाचारों ने बड़ा आक्रोश फैला दिया। रईस-एफ़्फ़ैन्दी से जब तुर्की और मित्रराज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में पूछा गया तो सुना जाता है कि उसने इस प्रकार से कहा था—"जब एक स्त्री पूर्ण गर्भवती हो तो कौन यह बतला सकता है कि वह एक लड़के को जन्म देगी या लड़की को।" सुल्तान ने तत्काल ही युद्ध की घोषणा नहीं कर दी; प्रत्युत् उसने अपने मस्तिष्क को शान्तिपूर्ण बनाकर रखा और यह घोषणा कर दी कि यदि उसपर बलपूर्वक युद्धविराम सन्धि आरोपित की जायगी तो वह उसे स्वीकार करने से इन्कार कर देगा और "ग्रीकों के साथ अपने सम्बन्धों की उपेक्षा करने की अपेक्षा छोटे से छोटा मुसलमान मृत्यु को पसन्द करेगा।" कुछ दिनों के अनन्तर तुर्कों ने अक्कर्मान की सन्धि को अस्वीकार कर दिया और एक दरबार में, जहाँ सुल्तान अपने ५०० उच्च पदाधिकारियों के साथ उपस्थित था, उलमा (धार्मिक आचार्यों) ने विदेशी हस्तक्षेप को मुस्लिम विधान के सर्वथा प्रतिकूल घोषित कर दिया। इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा रूस के राजदूतों ने दरबार-भवन को छोड़ दिया।

ब्रिटिश राज्यशासन अभी तक निष्क्रियता की नीति का अनुसरण करता चला आ रहा था। उसने सुल्तान को लन्दन की सन्धि का पालन करने के लिए सक्रिय रूप से बाध्य नहीं किया, यदि कैनिंग जीवित रहता तो वह कदाचित् ऐसा कर भी सकता था। वैलिग्टन के ड्यूक ने, जिसने कि प्रधान मन्त्री के रूप में कैनिग का पद भार सम्भाला था, राजा के भाषण में जो २९ जनवरी, १८२८ को संसद के समक्ष पढ़ा गया, नैवारिनो के युद्ध को एक 'अवांछनीय घटना' कहा। उसने जिस कार्यदिशा का अवलम्बन लिया वह बड़ी अहितकर थी। रूस का वास्तविक अभीष्ट ही यह था कि वह तुर्की से युद्ध करे, जिसमें कि इंग्लैण्ड और फ्रांस का कोई भी भाग न हो। इस प्रकार की कार्यनीति से रूस का अभीष्ट मनोरथ सिद्ध हो गया। सुल्तान ने जेहाद की घोषणा कर दी, जो यद्यपि सैद्धान्तिक रूप से युद्ध का निर्घोष नही था, परन्तु सेण्ट पीटर्सबर्ग की राजसभा ने उसी को युद्ध का मूलकारण बना लिया। रूस ने २६ अप्रैल, १८२८ को युद्ध की घोषणा कर दी। तुर्की ने खूब डटकर तैयारियाँ की और रूसियों के साथ युद्ध करने में उसने

पर्याप्त शौर्य दिखलाया। परन्तु अन्त में लाभ का पलड़ा रूसियों का ही भारी रहा। परिस्थिति को पूर्णतः आशाहीन देखकर सुल्तान ने शान्ति-सन्धि के लिए प्रयास किया और फलतः १४ सितम्बर, १८२६ को एड्रियानोपल की सन्धि पर हस्ताक्षर हो गये।

रूस की सफलताओं से शंकित इंग्लैण्ड तथा फ्रांस ने मुहम्मद अली तथा इब्राहीम के साथ सन्धिवार्ता शुरू कर दी। इब्राहीम ने मोरिया खाली कर दिया और २२ मार्च, १८२६ के लण्दन मूलसन्धिपत्न (लण्डन प्रॉटोकल) के द्वारा मोरिया तथा निकटवर्ती द्वीपों को महाशक्तियों के अधीन कर दिया गया; ग्रीस को सुल्तान की सर्वोच्च प्रभुसत्ता के अधीन एक स्वतन्त्र राज्य बना दिया गया, और इसके राजा का निर्वाचन महाशक्तियों को सौंप दिया गया। इसकी उत्तरी सीमा अस्ता की खाड़ी से लेकर वालो की खाड़ी की एक रेखा तक बढ़ा दी गयी।

एड्रियानोपल की सन्धि ने ग्रीस को वास्तविक रूप से स्वतन्त्र बना दिया और रूस के संरक्षकत्व में डैनूबियन उपराज्यों को भी आत्मतन्त्र (औटोनोमस) उद्घोषित कर दिया गया। बॉस्फॉरॉस तथा दार्देनिल्स में रूस के अधिकारों को स्वीकार कर लिया गया और ये उन सभी महाशक्तियों के जलयानों के लिए खुले घोषित कर दिये गये, जो सुल्तान के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखती थी, प्रवेश की शर्तें और नियम वही रखे गये जो रूस के विषय मे लागू होते थे। कृष्णा सागर की स्वतन्त्र नौयात्रा पर सहमति प्रकट की गयी और रूस तथा तुर्की मे अभी तक हुई सभी सन्धियों को चालू समझा गया। इसके अतिरिक्त पोर्ट ने ग्रीस के सम्बन्ध में मार्च, १८२६ का लण्दन समझौता स्वीकार कर लिया।

इंग्लैण्ड इस सन्धि को पसंद न कर सका और रूस द्वारा अर्जित लाभों को बड़ी सन्देहपूर्ण दृष्टि से देखने लगा। ग्रीस को एक स्वतन्त्र राज्य बनाने के प्रश्न का निर्णय बाद में लन्दन मे दो मूलसन्धिपत्रों के द्वारा सम्पन्न हुआ—फरवरी, १८३० में और सितम्बर, १८३१ में।

ग्रीस के लिए अब एक राजा का चुनाव करना था। महाशक्तियों ने सैक्सनी के जॉन और सक्सकाबर्ग के लियोपोल्ड को राजमुकुट देना चाहा परन्तु उन्होंने लेने से इन्कार कर दिया। तदुपरान्त उन्होंने बवेरिया के राजकुमार ऑटो को चुना, वह अभी बालक ही था, और जब कैपोडिस्त्रियास, जो अप्रैल, १८२७ को इस नये राज्य का राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ था, एक विद्रोही के द्वारा मार डाला गया तो ऑटो १ फरवरी, १८३३ को राजा उद्घोषित कर दिया गया। नये राज्य की सीमाओं का पुनर्निर्धारण किया गया और क्रीट, थेस्साली, एपाईरस और मैसीडोनिया को इसमें से निकाल दिया गया।

नये राज्य का जीवन राजनीतिक और आर्थिक कठिनाइयों से विलकुल अवरुद्ध हो गया। १८३७ में ऑटो बालिग हो गया परन्तु शासन-कार्य में उसकी रुचि अत्यन्त अल्प थी। महान् असन्तोष फैल गया और एक सशस्त्र क्रान्ति ने उसे १८४३ में जनतन्त्रात्मक संविधान स्वीकार कर लेने के लिए विवश कर दिया। १८६२ मे उसने सर्वदा के लिए देश का परित्याग कर दिया। ग्रीकों ने महारानी विक्टोरिया के द्वितीय पुत्र राजकुमार अल्फ्रेड को निर्वाचित कर लिया, परन्तु महाशक्तियों ने इस आधार पर कि ऐसा करने से शक्ति का सन्तुलन बिगड़ जायेगा, इसका विरोध किया। अन्ततः डेन्मार्क का राजकुमार विलियम चुन लिया गया और वह जार्ज प्रथम के नाम से ग्रीस का राजा मान लिया गया।

ग्रीस के स्वतान्त्र्य की मान्यता पूर्वी समस्या के इतिहास मे एक अभिनव प्रवृत्ति का आरम्भ करती है। राष्ट्रीयता का सिद्धान्त स्वीकार किया गया और कैनिग का मूलवाक्य 'प्रत्येक राष्ट्र अपने ही लिए और ईश्वर सब के लिए' एक अर्थहीन वाक्यखण्ड नहीं सिद्ध हुआ। महाशक्तियों को बाध्य होकर पूर्वी यूरोप की राजनीति मे आने वाले परिवर्तनो को स्वीकार करना पड़ रहा था। यह नितान्त स्पष्ट था कि वे अब पूर्वी समस्या को अधिक समय तक स्थगित नही कर सकते थे जैसा कि वे विएना के विषय मे कर चुके थे। यूरोप की राज्य-व्यवस्था मे एक अभिनव राष्ट्र की वृद्धि ईसाई राष्ट्रों के लिए यथेष्ट लाभप्रद थी जो इसे अपनी शक्ति में एक अतिमहत्त्वपूर्ण वृद्धि समझते थे। परन्तु भविष्य उत्तरोत्तर कठिनाइयो, अनिश्चयो और अत्याचारो से भरपूर होता जा रहा था और महाशक्तियो की अन्तर्विरोधी एवं अनिश्चित नीति पूर्वी समस्या को उन्नीसवी शताब्दी के इतिहास की सर्वाधिक विषम तथा पेचीदा समस्या बनाने की दिशा मे बढ़ रही थी।

फ्रांस में द्वितीय राज्यक्रान्ति (१८३०)

बूर्बोवंशियों का साम्राज्य वाटरलू के युद्ध के पश्चात् वैलिंग्टन के ड्यूक, ताल्लीराँ और फूशे की सहायता से द्वितीय बार पुनः प्रतिष्ठापित हो गया। अतिवादियों ने 'श्वेत आतंक' का उद्घाटन कर दिया था; वे लोग क्रान्तिवादियो, राजहत्यारो और बोनापार्ट के अनुयायियो से कड़ा प्रतिशोध लेने के लिए छटपटा रहे थे और राजा के इर्द-गिर्द ही घेरा डाले रहते थे। देश-निष्कासन के अधिकारियों की जो सूची उन्होंने तैयार की उसमे कतिपय सुपरिचित फ्रांसवासियों के भी नाम थे, जिन्हे फ्रांस से निष्कासित कर दिया गया। अक्तूबर में राजसभा (चेम्बर) का अधिवेशन हुआ, इसमें अतिवादियों की बहुसंख्या थी। वे लोग स्वयं राजा से भी कही अधिक राजतन्त्रवादी

थे। उनकी योजना थी कि बहुसंख्यक राजनीतिक दल से मन्त्रियों के चुनाव के संसदीय सिद्धान्त, निर्वाचकजनो की संख्या को बढ़ाने और स्थानीय स्वायत्त शासन की स्वतन्त्रता अधिक बढ़ाने पर आग्रह करने से वे लोग राजा को निर्बल बना दें। उदार दल वाले जो अल्पसंख्या मे थे राजा का समर्थन कर रहे थे। वे राज्यपदाधिकारियों (प्रीफैक्ट्स) की शक्ति बढ़ाना चाहते थे और एक सीमित मताधिकार के पक्ष मे थे। ऐसी परस्पर विरोधी स्थिति थी फ्रासीसी विधानसभा मे राजनीतिक दलों की। जब बजट राजसभा के समक्ष उपस्थित किया गया तो अतिवादियो ने इसका विरोध किया और स्पष्ट उद्-घोषणा कर दी कि यह "क्रान्तिकारी विचारों से उत्पूरित था।" राजसभा और राज्य-शासन का अन्तर्विरोध बढ़ता ही गया; राज्यशासन जो भी प्रस्ताव उपस्थित करता था उसका बड़ा विरोध होता था। यह एक बड़ा आश्चर्यजनक तथ्य है कि अतिवादी जो दैवी सिद्धान्त के परिपोषक थे संसदीय विशेषाधिकार के अग्रदूत बन बैठे और बहुमत के अधिकारो पर अधिकाधिक ज़ोर देने लगे। ५ सितम्बर, १८१६ को राजा ने राजसभा भंग कर दी और इस प्रकार से उसने अपने आपको उन लोगों के प्रभाव से बाहर कर लिया जिन्हें वह व्यर्थ ही अभी तक 'एकता और भूल जाने' की नीति का उपदेश देता था। राजसभाओं के भीषण सघर्ष केवल एक अस्थायी महत्त्व रखते थे। इन्होंने देश की आर्थिक व्यवस्था के पुन: संघटन से और अर्थव्यवस्था (इकनॉमिक सिस्टम) की मूलधाराओं को दृढ़ करके फ्रांस की पर्याप्त सेवा भी की।

इस अद्वितीय राजसभा (शाम्ब्र आन्नूवाब्ल) के भग होने के उपरान्त उदार दल वालों, गणतन्त्रवादियों, बोनापार्ट के अनुयायियों, सिद्धान्तवादियो और अतिवादियों में पुन: नये-नये सघर्ष शुरू हो गये। राजा अभी तक अपनी उदार माध्यमिक नीति पर चल रहा था और स्थिरता के सिद्धान्त को दृढ़ करना चाहता था। उसने अपना निश्चय स्पष्ट घोषित कर दिया था कि "वह सभी प्रतिकारपूर्ण कार्यों का दमन कर देगा और अतिचारपूर्ण उत्साह के किसी प्रकार के भी प्रकटाव को नियन्त्रित करेगा।" अति-वादियों ने इस घोषणापत्र की बड़ी निन्दा की और उन्होने इसे '८९ की राज्यक्रान्ति को स्मरण कराने वाला एक क्रान्तिकारी प्रत्रक कहा। निर्वाचन सम्बन्धी विधान संशोधित हो गया। १८१७ में स्वीकार किये गये एक संविधि-पत्रक के अनुसार प्रत्येक निर्वाचक को तीस वर्ष की आयु का होना चाहिए था और वह राज्य को ३०० फ्रांक कर देता हो; और प्रत्येक उम्मीदवार अनिवार्य रूप से चालीस वर्ष की आयु का और १००० फ्रांक राजकर देने वाला हो, और प्रतिवर्ष राजसभा का पंचमांश अभिनवीकृत किया जाये।

रिशेल्यु मन्त्रिमण्डल का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था फ्रांस से विदेशी सेनाओं को हटाना। रिशेल्यु १८१८ के ऐला शैपेल में होने वाले सम्मेलन में सम्मिलित हुआ था

और उसने महाशक्तियों पर इस बात के लिए काफी ज़ोर डाला था कि फ्रांस में पड़ाव डालकर पड़ी हुई सशस्त्र सेना को हटा लिया जाय। यह बात स्वीकार कर ली गयी थी और फ्रांस को यूरोप की संयुक्त व्यवस्था में सम्मिलित कर लिया गया था। यद्यपि रिशेल्यु ने अपने देश को विदेशी संरक्षणत्व से मुक्ति दिला दी थी, स्वदेश में उसकी स्थिति किसी भी रूप में आशाजनक नहीं थी। उसे न तो अपने सहयोगियों का समर्थन प्राप्त था न राजा का, अतः २८ दिसम्बर, १८१८ को उसने त्यागपत्र दे दिया। देज़ोल के प्रधान मन्त्रित्व में एक उदार मन्त्रिमण्डल की स्थापना हुई; परन्तु इसमें वास्तविक शक्ति गृहमन्त्री देकाजे की ही थी।

मन्त्रिमण्डल ने समाचारपत्र सम्बन्धी संविधियों में कुछ ढिलाई कर दी। सिद्धान्तवादियों के प्रभाव से १८१९ में जो नया क़ानून पारित हुआ उसने बिना अनुमति लिये ही समाचारपत्रों को प्रकाशित करने की आज्ञा दे दी। प्रेस सम्बन्धी अपराधों का निर्णय जूरी के हाथों में रखा गया। परन्तु इन अधिकारों का दुरुपयोग रोकने के लिए समाचारपत्रों पर ज़मानत और डाकटिकट लगाने का आदेश जारी किया गया। उदार विचार फ्रांस में अब दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे थे। महाशक्तियों ने लुई से जनान्दोलन पर नियन्त्रण रखने के लिए कहा और उसने एक नयी निर्वाचन-संविधि का प्रस्ताव प्रस्तुत किया परन्तु प्रधान मन्त्री उससे सहमत न हो सका और १९ नवम्बर, १८१९ को उसने त्यागपत्र दे दिया।

अब देकाजे ने कार्यभार सँभाला। यूरोप में उदारविचारों की एक लहर दौड़ गयी। जर्मनी के विश्वविद्यालयों में बड़ा जोश था। इंग्लैण्ड में उदार आन्दोलन संसदीय सुधारों का कारण बन गया और मताधिकार का क्षेत्र अधिक विस्तीर्ण कर दिया गया। फ्रांस की जनसंख्या का एक बड़ा भाग राजतन्त्र की पुनः प्रतिष्ठापना के विरुद्ध था। इसी समय एक ऐसी घटना घट गयी जिसने देकाजे को उसके पद से च्युत कर दिया। यह घटना थी १३ फरवरी, १८२० को एक संकीर्ण हठधर्मी लूवेल के द्वारा ड्यूक द बेरी का वध; ड्यूक द बेरी कौंतद आर्त्वा का पुत्र था। अतिवादियों ने इस अपराध में प्रधान मन्त्री का हाथ होने का आरोप लगाया। गजेट ने लिखा था; "हाँ, श्रीमान देकाजे, आप ही है जिन्होंने ड्यूक द बेरी का वध करवाया है, अब खून के आँसू रोओ और दैव से प्रार्थना करो कि वह तुम्हें क्षमा कर दे क्योंकि तुम्हारा देश तुम्हे कभी क्षमा नहीं कर सकेगा।" राजतन्त्रवादी तो छुरे को 'उदार विचार' का रूप समझते थे। प्रधान मन्त्री के विरुद्ध जनमत भड़का दिया गया और उसने पदत्याग दे दिया।

जैसा एक आधुनिक लेखक का कथन है, लूवेल के छुरे ने एक पुरुष को ही नहीं वरन् साथ ही साथ एक नीति को भी मृत्यु के घाट उतार दिया। इस वध ने राजतन्त्र

और उदार विचारों के पारस्परिक समझौते को असम्भव बना दिया और राजसभा में अतिवादी तथा उदार दल वाले बड़े कठोर स्वरों में एक दूसरे पर अभियोग लगाते थे। रिशेल्यु को पुनः कार्यभार सम्भालने के लिए निमन्त्रित किया गया और २० फरवरी, १८२० को उसने यह पद स्वीकार कर लिया। प्रतिक्रिया आरम्भ हो गयी। मन्त्रि-मण्डल की वास्तविक नीति विलैल के हाथों में थी, यह वैधतावादी दल का नेता था और एक प्रतिभाशाली वक्ता था। विचारों में बहुत सकीर्ण और प्रतिक्रियावादी था।

माध्यमिक उदार नीति का परित्याग कर दिया गया, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर नियन्त्रण लगाये गये, प्रेस का मुँह बन्द कर दिया गया और राजनीतिक कृतियों के प्रकाशन के पूर्व आज्ञा लेना आवश्यक बना दिया गया। कुछ समाचारपत्रों ने इन व्यवस्थाओं के विरोध में अपने पत्रों का प्रकाशन स्थगित कर दिया। इनमें से शातोब्रियां का (ल कॉन्सर्वात्यूर) (परिरक्षक) भी था, यह पत्र अतिवादियों का मुखपत्र था। इस प्रकार से राजनीति में अभिरुचि अभिनव उत्साह से जाग उठी। किंचिन्मात्र मतभेद भी सहन नहीं किया जाता था और प्रतिनिधियों में संसदीय विवेक का एकान्त अभाव दिखायी पड़ता था। द्विगुणित-मत सविधि नाम की एक नयी निर्वाचन-संविधि स्वीकार की गयी (३ जून, १८२०)। इसका उद्देश्य राजसभा में अभिजातवर्ग की उत्कृष्टता को सुप्रतिष्ठित करना था। इस संविधि के अनुसार लगभग १२,००० निर्वाचकों को दो बार मत देने का अधिकार मिल गया, एक बार ज़िले में और फिर दूसरी बार विभागीय निर्वाचन-मण्डल में। यह एक ऐसा प्रतिक्रियावादी कार्य था जिसने सम्पत्ति को पर्याप्त सम्मानित स्थान दे दिया, अतिवादियों की शक्ति को बढ़ा दिया और अर्तुआ के काउण्ट की आशाओं तथा आकांक्षाओं को और भी अधिक बल प्रदान किया।

प्रधान मन्त्री, जो एक माध्यमिक नीति का अनुयायी था, राजतन्त्रवादी प्रचार को इस बल और उत्साह से बढ़ते हुए देखकर अति व्यथित हुआ। एक नया दल 'पार्ती प्रेत्र' (पुरोहित-दल) के नाम से संस्थापित किया गया; इसका उद्देश्य कैथोलिक सर्वोत्कृष्टता प्रतिष्ठापित करना था और यह राजसिंहासन तथा चर्च की पूर्ण एकता की आकांक्षा रखता था। विश्वविद्यालय की अध्यक्षता एक बिशप को सौंपी गयी और ग्विस्सौ तथा कूज़ाँ जैसे उदार विचारों वाले अध्यापकों को सौर्बोन से पदच्युत कर दिया गया। परिषद् में २७ फरवरी, १८२१ में पारित एक अध्यादेश के द्वारा 'अकादेमी दे पारी' (पेरिस की एकेडेमी) का अध्यक्ष एक पादरी नियुक्त हुआ। उदार विचारों का दमन किया जाता था। गुप्त सभाएँ अपना-अपना कार्य करने में संलग्न थीं और बोनापार्ट के अनुयायी विगत वैभव को पुनरुज्जीवित करने के लिए गुप्त योजनाएँ और षड्यन्त्र रच रहे थे। कार्बोनारी एक गणराज्य की प्रतिष्ठापना करने की इच्छा करने

लगा। वैदेशिक स्थिति ने परिस्थितियों को और भी अधिक विषम बना दिया। हैलेनिक संस्कृति के अनुराग से संप्रेरित फ्रांसीसी राष्ट्र तुर्कों के विरुद्ध ग्रीकों की सहायता करना चाहता था, परन्तु रिशेल्यु शान्ति की नीति का समर्थक था। उस पर अभियोग लगाया गया कि "उसने ऐसे बलिदानों से शान्ति को खरीदा था जो राष्ट्र के सम्मान और राज-सिंहासन की प्रभुता के विरुद्ध थे।" सभा मे वाद-विवाद का स्वर बड़ा तीखा था और मन्त्री को भवन मे कोई समर्थन न प्राप्त हुआ। उसने राजा के सामने दो विकल्प प्रस्तुत किये—या तो राजसभा भंग की जाये या मन्त्रिमण्डल का त्यागपत्र स्वीकार किया जाये। राजा राजसभा को भग करने के पक्ष में नही था और निराश होकर अर्तुआ के काउण्ट की ओर सहायता के लिए अभिमुख हुआ। उसने काउण्ट को पुरानी प्रतिज्ञाओं का स्मरण कराया परन्तु इसका उत्तर मिला कि उसने उसके शब्दों को अक्षरशः स्वीकार करने में गलती की है। रिशेल्यु के विषय मे यह सब सुनकर सुना जाता है कि लुई अठारहवें ने ये शब्द कहे थे—"और उससे आप आशा क्या करते है? उसने सोलहवे लुई के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा था; उसने मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र रचा और उसका अन्त होगा स्वयं अपने विरुद्ध षड्यन्त्र रच के।" रिशेल्यु ने २१ दिसम्बर, १८२१ को पदत्याग किया और इसके बाद ही ऐसी बुरी तरह से बीमार पड़ा कि छः मास के भीतर ही उसकी मृत्यु हो गयी (१७ मई, १८२२)। उसके पतन का कारण एक षड्यन्त्र था जिसमे राजा की प्रेयसी मदाम दे कैयला भी सम्मिलित थी। उसने कहा था—"हाँ, हाँ, यह एक षड्यन्त्र है, केवल एक ऐसा षड्यन्त्र जिसका शिकार मैं ही हुआ हूँ—मुझे द्वार दिखाया जा रहा है।" राष्ट्र का राजतन्त्रीकरण और राजतन्त्र का राष्ट्रीकरण करने का उसका प्रयास पूर्णतः विफल सिद्ध हुआ।

मन्त्रिमण्डल मे रिशेल्यु का स्थान विलैल ने ले लिया, जो इधर कुछ समय से प्रतिक्रियावादियो के साथ घनिष्ठतापूर्वक सम्बद्ध था। वह स्वयं अतिवादी था, और 'पुरातन व्यवस्था' को पुनर्जीवित करना चाहता था; परन्तु एक प्रौढ़ और व्यावहारिक पुरुष के रूप मे वह यह भी जानता था कि इस कार्य मे कितने जोखिम है और इसलिए वह अपने अधिक कट्टर मित्रो के विचारों को क्रियात्मक रूप देने के पक्ष मे नहीं था। वह एक प्रतिभाशाली वक्ता था और संसदीय व्यवस्था की सूक्ष्मताओ को समझने में बड़ा दक्ष था। अपना पदभार सँभालने के तुरन्त बाद ही उसने अपनी प्रतिक्रियावादी नीति का पालन करना आरम्भ कर दिया और न केवल राजतन्त्र के विरुद्ध प्रत्युत समाज के भी विरुद्ध एक षड्यन्त्र का प्रचार किया। फ्रांस के गणतन्त्रवादियों ने नियोपोलिटन लोगों की तरह 'राजनीतिक गुप्त सभा' (शार्बोनेरी फ्रांसेज़) का पुनःसंघटन किया। इसके कतिपय उद्देश्यों मे से एक था अपने सर्वोच्च शासक को चुनने के जनता के

अधिकार को सक्रिय अभिव्यक्ति देना। उसने चाटुकार पुलिस और न्याय प्रबन्ध (मैजिस्ट्रेसी) की सहायता से राज्यशासन के विरुद्ध होने वाले प्रत्येक षड्यन्त्र का दमन करने का पूर्ण प्रयास किया। समौर मे कुछ सशस्त्र सैनिक दलों के विद्रोह (दिसम्बर, १८२१), बेल्फोर्ट नौब्रिसाश और मार्सायाई मे कतिपय उच्च पदाधिकारियों के सन्दिग्ध षड्यन्त्र, ला रोशेले मे चार सैनिक अधिकारियों (सार्जण्टों) के आज्ञोल्लंघन का उसने बड़ा कठोर दण्ड दिया। इस प्रसग मे जो दण्ड दिये गये थे वे कृत-अपराधों के साथ कोई आनुपातिक सम्बन्ध नही रखते थे। मनमाना दण्ड दिया गया था। मन्त्री का भारी हाथ शार्बोनरी दल पर पड़ा, इस दल में पथप्रदर्शन के लिए कोई योग्य नेता नही था, अतः इस का दमन सुगमता से हो गया। राज्यशासन के साफल्य की स्पष्ट अभिव्यक्ति लुई ब्लॉ के इस कथन में देखी जा सकती है—"कार्बोनेरीवाद (अथवा शार्बोनेरीवाद) कभी समाज की गहराइयों मे अपनी जड़े न जमा सका; इसने कभी निम्नतर वर्गों को प्रेरित नही किया।"

उदार दल वाले अभी कुछ समय के लिए बिलकुल दबा दिये गये थे; प्रेस का मुँह बन्द कर दिया गया था। एक पादरी को विश्वविद्यालय का सर्वोच्च अध्यापक (ग्राण्ड मास्टर) नियुक्त किया गया और अध्यापकों तथा विद्यार्थियों सभी पर पुलिस की निगरानी रखी गयी। कूज़ाँ और कूर्ज़ो जैसे अध्यापकों को पदच्युत कर दिया गया और ऐसा जान पड़ने लगा जैसे कि मध्ययुग की पुनरावृत्ति होने वाली है। २४ दिसम्बर, १८२३ को राजसभा भंग कर दी गयी और नयी विधानसभा मे ४३० प्रतिनिधियों में से केवल १५ उदार दल वाले रह गये। इसने विलैल को अपनी प्रतिक्रियावादी नीति का अनुसरण बिना किसी विरोध के करने का पूर्ण प्रोत्साहन दिया। उन भगोड़ो को हर्जाना दिलाने के लिए जो अपनी भूसम्पत्ति वापिस माँग रहे थे, उसने मई, १८२४ को राजसभा में एक विधिपत्रक (बिल) प्रस्तुत किया। प्रतिनिधि-सभा में यह पारित हो गया परन्तु अभिजातों (पियर लोगो) ने इसे अस्वीकार कर दिया। इसी समय 'शाम्ब्र रेन्नुवे' (नयी सभा को यही नाम दिया गया था) ने एक संविधि को स्वीकार किया जिससे इसकी अवधि सात वर्ष कर दी गयी।

लुई अठारहवाँ १८२४ मे मर गया और उसका स्थान आर्तआ के काउण्ट ने दसव चार्ल्स के नाम से सँभाला।

फ्रांस में १८३० की राज्यक्रान्ति

चार्ल्स दशम अतिवादियों का नेता था, दैवी सिद्धान्त मे उसका दृढ़ विश्वास था, भगोड़ों का वह हितचिन्तक था और पुरातन व्यवस्था का दृढ़ परिपोषक। ऐसे अनेक

नये कार्य किये गये जिन्होंने क्रमश· राजसिंहासन के आदर को क्षीण कर दिया। एक पक्षपातपूर्ण दल के सदस्य की तरह राजा ने राज्यक्रान्ति और साम्राज्य के सेनानायकों के वेतन में पचास प्रतिशत कमी कर दी। भगोड़ों को उनकी क्षतिपूर्ति के रूप में धन दिलाने का एक सविधि पत्रक (बिल) दोनों सभाओं से पारित हो गया (१८२५-२६), और ६८,८०,००,००० फ्रांकों की एक वृहत् धनराशि उनको क्षतिपूर्ति के लिए देने की स्वीकृति मिल गयी। उदार दल वालो ने इसकी निन्दा की। उन्होंने इसे समाज की सुप्रतिष्ठित व्यवस्था के विरुद्ध एक मन्तव्य के रूप में अस्वीकार किया, परन्तु उनका विरोध कोई प्रभाव न उत्पन्न कर सका। इस विशाल धनराशि को एकत्र करने के लिए राष्ट्रीय ऋण पर ब्याज पाँच प्रतिशत से घटाकर तीन प्रतिशत कर दिया गया। इसने पेरिस के धनिक वर्गों की सहानुभूति को राजा से हटा लिया। राजसिहासन तथा वेदी (चर्च) की एकता अतिवादियो का चिराभिलषित आदर्श था। चर्च को उसकी पहले की सम्माननीय स्थिति में पहुँचाना था। एक पादरी मन्त्रिमण्डल की स्थापना की गयी; चर्च की भूसम्पत्ति उसे लौटायी गयी; जनवरी, १८२५ मे महिला-मठों की प्रतिष्ठापना करने का एक संविधि-पत्रक पारित कर दिया गया; स्वतन्त्र विवाह (सिविल मैरेज) पर प्रतिबन्ध लगाया गया; शिक्षा का समस्त कार्य पुरोहितों के हाथ मे सौप दिया गया; जेसुइट लोगों को एक बार पुनः अपने पुराने पदों पर प्रतिष्ठित कर दिया गया; अप्रैल, १८२५ को क़ानून पारित किया गया, जिसके अनुसार चर्च के अधिकार क्षेत्र में मामूली चोरी के लिए भी भीषण दण्डों का विधान किया गया। शातोब्रियाँ ने इसका विरोध किया, उसने यह स्पष्ट समझ लिया था कि यह विधान धर्म की कोई भी सेवा बिना किये हुए मानव समाज का बडा अहित करेगा। मोले ने भी इसका विरोध इसके द्वेषमूलक रूप के कारण किया। परन्तु इस क़ानून के समर्थकों ने वह दिन जीत लिया और एक ने तो अपनी वक्तृता में इस विधान की इन शब्दों में व्याख्या की, "उस व्यक्ति के लिए जिसने कि दैवस्वापहरण का अपराध किया है, आप मृत्युदण्ड न देकर इसके सिवा और कर ही क्या रहे हैं कि उसे उसके नैसर्गिक न्यायाधीश के समक्ष भेज रहे हैं।" यह विधान कार्य रूप में कभी परिणत न हुआ परन्तु इससे शासन सँभालने वाले दल का घोर प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण स्पष्ट परिलक्षित हो जाता है। कतिपय धार्मिक कृत्यो को राज्यशासन ने स्वीकृति प्रदान कर दी जैसे सोलहवें लुई की मृत्यु का प्रायश्चित और उदार दल वालों का विरोध होने पर भी धर्मानुमोदित विवाह को एक अनिवार्य कर्त्तव्य बना दिया। दचूक द ब्रोग्ली का कथन इस प्रसंग में बहुत महत्त्वपूर्ण है, "वर्त्तमान शासन-व्यवस्था को जनता के रीति-रिवाजों मे किसी प्रकार का समर्थन नहीं मिलता है।"

रॉयर कोल्लार के विरोध करने पर भी प्रतिनिधियों ने एक नया प्रेस-क़ानन पारित

कर दिया। इसको कुछ लोगों ने 'बर्बरतावाद का विधान' कहा और कुछ दूसरे लोगों ने व्यंग्यात्मक स्वर में इसे 'न्याय और प्रेम का विधान' कहा। अप्रैल १८२७ मे अभिजातों (पियर लोगों) ने इसे अस्वीकार कर दिया, विलेल को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने नये पियर बनाने की धमकी दी परन्तु जनमत के महद्बल ने उसे इस प्रकार के घातक एवं असंवैधानिक कार्य करने से रोक दिया। प्रतिक्रियावादी कार्यों ने जनता को हर्ष से उत्फुल्ल कर दिया। उन्होंने उत्सव मनाये, राष्ट्रीय सुरक्षा सेना भी इस बात में जनता के साथ थी। तत्काल ही इन उत्सवो के प्रतिरोध के लिए एक विधेयक पारित कर दिया गया परन्तु इसने पेरिस के बुर्जुआ वर्ग को कुपित कर दिया। अब विलेल के दिन गिने जा रहे थे; हैलेनिक संकट बढ़ता जा रहा था और उसकी शान्तिपूर्ण नीति जनमत की उभरती हुई बाढ़ से बिलकुल मेल नही खाती थी। ५ जनवरी, १८२८ को उसने पदत्याग दिया।

मार्टिनाक मन्त्रिमण्डल (१८२८-२९) ने का परिस्थितियों को सुलझाने के लिए प्रयास किया, परन्तु उसे राजा तथा राजसभा से वांछनीय समर्थन नही मिला। इसके बाद ९ अगस्त, १८२८ को पोलि नॉक ने मन्त्रिमण्डल सँभाला, वह अति पुरोहितवादी (अल्ट्रा-क्लैरिकल) था, भगोड़ों का परममित्र तथा उदार विचारों का कट्टर विरोधी। इस प्रकार से विरोधी दल बलशाली होता गया और फ्रास के अनेक भागों में प्रशासन का प्रतिरोध करने की सक्रिय योजनाएँ बनायी जाने लगीं। कुछ स्थानों पर राजकर देने से भी इन्कार किया गया। मन्त्री ने राजा को सुझाया कि घोषणापत्र (चार्टर) उसको "विधान के समुचित पालन एवं राज्य की सुरक्षा के लिए उपयुक्त अधिनियम तथा अध्यादेश बनाने" का पूर्ण अधिकार देता है। संविधान को भंग करना घोषणापत्र के विरुद्ध नहीं था। चार्ल्स पहले तो हिचकिचाया परन्तु फिर अपने ही द्वारा उत्पन्न कर ली गयी परिस्थिति की विषमता को समझते हुए उसने मन्त्री द्वारा प्रस्तुत विधान की मीमांसा को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार मार्च, १८३० के राजसभा के अधिवेशन में राजा तथा सभा के बीच एक खुला संघर्ष शुरू हो गया। साइनबॉस ने इस प्रसंग में ठीक ही कहा है कि मार्च, सन् १८३० में प्रभुसत्ता के दो प्रमुख सिद्धान्तों—राजा की प्रभुसत्ता और सभा सदन की प्रभुसत्ता के सिद्धान्तों—में आमने-सामने का युद्ध होने का अवसर आ गया था। राज-सिंहासन से जो वक्तव्य प्रस्तुत किया गया उसमे निम्नलिखित शब्द थे—

"यदि दण्डनीय कपटी लोग मेरे प्रशासन के विरुद्ध बाधाएँ उपस्थित करते हैं, जिनकी मैं आशा नहीं करता या जिनका मैं अनुमान नहीं कर सकता, तो सार्वजनिक शान्ति को सुरक्षित रखने का मेरा निश्चय मुझे उनको दबा देने का बल देगा।"

राजसभा राजा की धमकी से चिन्तित नहीं हुई। उसने जनान्दोलन को जारी रखने का अपना निश्चय दृढ़ कर लिया और राजा के वक्तव्य का उत्तर एक वक्तव्य

में दिया जिसके पक्ष में २२१ प्रतिनिधियों ने अपना मत दिया था—

"राष्ट्र के हित से सम्बन्धित कार्यों में हस्तक्षेप करने का अधिकार घोषणापत्र राष्ट्र को देता है। इसने आपके प्रशासन की इच्छाओं की निरन्तर असहमति आपकी प्रजा से उत्पन्न कर दी है जो कि सार्वजनिक मामलों में व्यवस्थित प्रगति की अनिवार्य आधारशिला है; यह समझौता अब अपना अस्तित्व समाप्त कर चुका है।"

चार्ल्स ने अतिरोष में भरकर राजसभा को भंग कर दिया। उसने कहा था, "यह एक मन्त्रिमण्डल का प्रश्न नही है, वरन् राजतन्त्र का प्रश्न है।"

पोलिनॉक ने, जो ऐसी विषम परिस्थिति के लिए सर्वथा तैयार नहीं था, मन्त्रिमण्डल में कुछ परिवर्तन करने का सुझाव दिया परन्तु राजा ने उसके परामर्श को अनसुना कर दिया। प्रशासन की ओर से प्रतिक्रियावादी कार्य होते रहे और राजदरबार तथा राष्ट्र का आपसी संघर्ष जनता में रोष एवं असन्तोष फैलाता रहा। चार्ल्स की विचारपद्धति वडी दोषपूर्ण थी; उसने राजनीतिक प्रश्नों मे जनता की अभिरुचि का बड़ा ग़लत मूल्याकन किया था और सारा दोष उसने राजनीतिज्ञों के मत्थे मढ़ दिया। उसके विचार से इन सब दोषों को समाप्त करने का केवल एक ही अचूक उपाय था—दमन। उसने और उसके मन्त्री दोनों ने ही बल और दमन का आश्रय लेते हुए राजसभा के बिना ही अपना कार्य सम्पादित करने का निश्चय कर डाला। उन्होंने संघर्षरत राजनीतिक दलों के विरोधों का पूर्ण दमन करने और राजा के विशेषाधिकार को प्रभुत्वयुक्त अभिव्यक्ति देने के उपाय करने आरम्भ कर दिये। इनसे संकट की गम्भीरता बढ गयी।

२५ जुलाई, १८३० को सेण्ट क्लाउड से चार्ल्स ने चार अध्यादेश जारी किये जिन्होंने आगामी दुर्घटना के लिए दृढ़ भूमिका तैय्यार कर दी। प्रेस की स्वतन्त्रता छीन ली गयी; संशोधित मताधिकार-नियम के आधार पर एक नयी सभा सितम्बर में बनाने का निश्चय हुआ; और प्रतिनिधि सभा की अवधि सात वर्ष से घटाकर पाँच वर्ष कर दी गयी तथा प्रतिवर्ष पचमांश बदलने का नियम बना दिया।

इन अध्यादेशो ने अग्नि में प्रचण्ड आहुति का काम किया। राजा के अतिचारों के विरुद्ध एक अतिभीषण रव चारों ओर गूँज उठा और राज्यक्रान्ति सर्वथा अनिवार्य हो गयी। समाचारपत्रों ने राजकीय नीति का विरोध किया और 'ल नास्योनाल' (राष्ट्रवासी) ने राजकर न देने का सुझाव दिया। तीयें का विरोध अधिक बलशाली था। उसने कहा था, "विधान का शासन अब समाप्ति पर है, बल का शासन आरम्भ हो गया है।" विचारशील व्यक्तियों के लिए यह बात अब सर्वथा स्पष्ट थी कि राजतन्त्र अब अपनी आखिरी घड़ियाँ गिनने पर आ गया है। अचिरकाल में ही संघर्ष और कलह आरम्भ हो गयीं और भीड़ चिल्लाने लगी, "बूर्बों वंशियों का विनाश हो।" वे लोग

'होतेल द वील' और 'नौत्रे दाम'में बलपूर्वक प्रविष्ट हो गये और दोनों ही स्थानों पर क्रान्ति का तिरंगा झण्डा फहरा दिया। इस भीषण संकट में पोलिनॉक की बेख़बरी बड़े आश्चर्य की बात थी; वह अभी भी अपने स्वामी को मिथ्या आश्वासन दिला-दिला कर पथभ्रष्ट कर रहा था। इसी बीच आन्दोलन अत्यधिक जोर पकड गया। तुइलरीज़ पर अधिकार कर लिया गया और सुना जाता है चार्ल्स ने सेण्ट क्लॉड से यह कहा था—'और यहाँ मै हूँ ठीक उसी दशा में जिसमें मेरा अभागा भाई १७६२ में था।'' अपने पतनोन्मुख भाग्य को सँभालने के लिए उसे अब बहुत विलम्ब हो चुका था। उसने अपने पौत्र के लिए राज्य का परित्याग कर दिया परन्तु राजसिंहासन रिक्त घोषित किया गया। फिलिप ईगालित का पुत्र लुई फ़िलिप्स, जो राजवंश की ऑर्लियाँ शाखा का प्रतिनिधि था और जो जेमाप्पी में क्रान्तिकारी सेनाओं में सम्मिलित होकर युद्ध कर चुका था, ला फायत्त के सुप्रयासों से ६ अगस्त को फ्रास का उपनायक (लेफ्टिनैंष्ट जनरल) उद्-घोषित कर दिया गया। ला फायत्त एक गणतन्त्रवादी और जनतन्त्रवादी था और उसने अपनी बुद्धि के अद्वितीय विभ्रम से परिचालित होकर व्यवस्था और क्रान्ति दोनों का ही पक्षसमर्थन किया था। बाद में संसद ने बहुमत के द्वारा लुई फिलिप को फ्रांस का राजा घोषित कर दिया। चार्ल्स इग्लैण्ड भाग गया। इस प्रकार से द्वितीय राज्यक्रान्ति का अन्त हुआ। चार्ल्स का बल प्रयोग उसके अपने लिए और उसके वंश दोनों के लिए बड़ा घातक सिद्ध हुआ।

फ्रांस के राजनीतिक विकास में राज्य का यह पुनः स्थापन-काल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह फ्रांस में संसदीय विचारो का स्वर्णयुग था, क्योंकि इसमें जनता ने अपने विरोधियों के साथ काम करना सीखा, और उनको अपना शत्रु नहीं समझा जैसे कि १७८६ की राज्यक्रान्ति के समय समझा था। ये लोग अब विरोधी दल के साथ-साथ जीने के अभ्यस्त हो गये और सहायता के लिए जनमत का सहारा लेने लगे। राज्य का प्रशासन इतना दोषपूर्ण नहीं रह गया था; व्यवस्था और विधि का अस्तित्व बन गया था और आर्थिक प्रबन्ध-व्यवस्था से दूरदर्शिता और योग्यता का प्रमाण मिलता था। साहित्य और कला को राजदरबार से एक नया प्रोत्साहन मिला और लामार्तीन, विक्टर ह्यूगो तथा अल्फ्रेड द विग्नी जैसे महान् व्यक्तियों की कृतियों ने एक नयी भावना जाग्रत कर दी। ऐतिहासिक उपन्यासों की लोकप्रियता बढ़ गयी। रंगमंच तथा नाटक के रूप एवं शैली ने प्राचीन नियमों और परम्पराओं से विद्रोह का स्पष्ट प्रकटीकरण किया। इतिहास ने भी भूत की समीक्षा एक अभिनव दृष्टिकोण से की और अध्ययन विधि तथा सत्यान्वेषण के नवीन साधनों का आविष्कार किया। युग के महान् साहित्यकारों में आगस्ताँ तिएरी, गीज़ो, विलेमाँ तथा यूल मिशेले के नाम उल्लेखनीय हैं। रॉयल कोल्लार, कामिये योर्दाँ,

बेन्जामिन कॉन्स्ताँ तथा शातोब्रियां जैसे वक्ताओं ने इस युग में अपनी वाणी पर प्रभूत अधिकार प्राप्त किया और इन्होंने संसद के जीवन को उज्ज्वल वक्तृता से प्रकाशित कर दिया। इन लेखकों ने जिस शैली का प्रयोग किया उसमे प्रचुर बल और उत्साह था और 'ग्लॉलिक' जैसे पत्रों ने राष्ट्र की अभिनव भावनाओं को मुक्त अभिव्यक्ति प्रदान की। फ्रांसीसी विचार-परम्परा का यह पुनरुत्थान लुई अठारहवें के कारण था; पुरातन व्यवस्था को पुनरुज्जीवित करने के चार्ल्स के प्रयासों ने इस पुनरुत्थान के सुपरिणामों को अस्तित्वहीन कर दिया।

१८३० की राज्यक्रान्ति १७८९ की राज्यक्रान्ति की तुलना में जल के ऊपरी तल पर एक साधारण बकले की तरह थी, जबकि १७८९ की क्रान्ति एक सुविशाल आन्दोलन था जिसने राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया था। यह अकस्मात ही घटित हो गयी थी और तीयें ने गलत नहीं कहा था कि यह एक 'विस्मयजनक क्रान्ति' थी। इसका जन्म न तो ऊँचे विचारो और सिद्धान्तों से हुआ था और न ही यह राजा और ससद के बीच किसी संघर्ष का परिणाम था जैसी सत्रहवीं शताब्दी की अंग्रेजी राज्य-क्रान्ति थी। इसका आरम्भ संविधान के उल्लंघन से हुआ था और इसका लक्ष्य अभि-जात और पादरी वर्ग के हितों का विनाश करना था। शासनसत्ता अब मध्यवर्ग के हाथों चली गयी और उन्होंने वह सामाजिक समता अर्जित कर ली थी जो अभी तक उनको प्राप्त न हो सकी थी। प्रतिक्रिया का अन्त हो चुका था; राज्यक्रान्ति और नेपोलियनिक युग के लक्षण अब पुनः दृष्टिगोचर होने लगे। अध्यादेश जारी करने का राजा का अधिकार उससे छीन लिया गया था और धनिक वर्गो तथा उनके सहायक पुरोहितों को सत्ताहीन कर दिया गया था। राज्यशासन में कोई वहुत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन अथवा संशोधन नही किया गया। यहाँ तक कि एक गणतन्त्र की भी घोषणा नहीं की गयी और इस शंका से कि यूरोप की राज्यशक्तियाँ अप्रसन्न न हो जायें जिन्होंने राज्यक्रान्ति की योजनाएँ बनायीं थीं उन्होंने ही एक ऐसे राज्यशासन की स्थापना की जो प्रजातन्त्र और निरंकुश एकतन्त्र में समझौता-मात्र था। कोई नया विधान स्वीकार नहीं किया गया; कोई नया घोषणापत्र नहीं जारी किया गया, आर्थिक व्यवस्था की कोई सुनिश्चित योजना नहीं बनायी गयी। इतना सब होने पर भी जो कुछ अर्जित किया गया था महत्त्वपूर्ण था। वैधता, अतिमठवाद और अतिराजतन्त्रवाद ये सभी वाद अस्वीकार कर दिये गये थे; संसद के अधिकारों को पुनःस्वीकृति प्रदान की गयी और राजतन्त्र का उल्लंघन अब देशद्रोह का कार्य नहीं माना जाता था। विचारों के संघर्ष ने सत्ता की आकांक्षा रखने वाले राजनीतिक दलों में विरोध उत्पन्न कर दिया था। यह ठीक ही कहा जाता है कि १८३० की राज्यक्रान्ति का कारण १७८९ की राज्यक्रान्ति द्वारा पृथकीकृत दो युगों के सिद्धान्तों में समुचित

समन्वय न कर सकने की विफलता ही थी।

१८३० की राज्यक्रान्ति के परिणाम

फ्रांस की राज्यक्रान्ति के परिणामों की अभिव्यक्ति विएना की कांग्रेस द्वारा निर्मित नये राज्य नीदरलैण्ड्स मे स्पष्ट अनुभव की जा रही थी। यह एक कृत्रिम एकता थी और इसलिए चिरस्थायी नही हो सकती थी। डच और बेल्जियन लोगों में परस्पर कलह के कारण अनेक थे। दोनों की जनसंख्या समान नहीं थी; दोनों देशों की आर्थिक दशा भी असमान थी; उनका इतिहास, उनकी राजनीतिक परम्पराएँ और दृष्टिकोण भी मेल नही खाते थे और फिर विलियम का प्रशासन उनमे विश्वास नही पैदा कर सकता था। डच लोग कैल्विन के कट्टर अनुयायी थे; बेल्जियन लोग कैथोलिक मतावलम्बी थे। उत्तर मे डच भाषा बोली जाती थी, बेल्जियन फ्रेंच भाषाभाषी थे। विधानसभा में डच लोगों का बहुमत था और प्राय: सभी महत्त्वपूर्ण राजनीतिक पदों पर उनका अधिकार था। देश की वित्त-व्यवस्था का कार्य मुख्य रूप से डच लोगों के हाथों में था; राष्ट्रीय ऋण पर्याप्त मात्रा में था और राजकर का बोझा मुख्य रूप से बेल्जियनों के कन्धों पर था। बेल्जियन चर्च नये राज्यशासन का सबसे बड़ा शत्रु था। इसने शिक्षा पर नियन्त्रण करने के अधिकार का सुझाव दिया और विलियम का विरोध किया जैसा यह अठारहवी शताब्दी में जोज़ेफ़ द्वितीय के साथ कर चुका था। मॉरिस द ब्रोग्ली जो घेण्ट का बिशप था, कैथोलिक अधिकारों का बड़ा भारी समर्थक था। उसने चर्च के स्वत्वों को साधिकार घोषित किया और इस अभिनव सविधान के प्रति शपथ लेने को उसने राजद्रोह का कार्य ठहराया। विलियम के शासन ने इन सबके विरुद्ध कार्यवाहियाँ कीं और इसने ऐसी भाषा का प्रयोग किया जिसने इसे जनता में निन्दनीय बना दिया। आन्दोलन बड़े वेग से बढ़ने लगा, जब राजा ने लीजवासियों के आचरण की निन्दा 'कुख्यात' कहकर की तो उनमें से जो उत्साही व्यक्तित्व थे उन्होंने आपस में सोलहवी शताब्दी के समुद्री-भिक्षुओं के अनुकरण पर "पदाति सैनिक दल" की स्थापना कर ली और राज्यशासन का सक्रिय विरोध करने की संयुक्त प्रतिज्ञा की। प्रेस का मुँह बन्द कर दिया गया और उन संविधियों के, जो पारित हो चुकी थी, विरुद्ध एक शक्तिशाली आन्दोलन का सूत्रपात दो पत्रकारों---पॉटर और गेन्देबीन---ने किया। ये दोनों राज्यशासन के कठोर दण्डों के कारण बड़े जनप्रिय नेता बन गये थे। राजकीय मुखपत्र 'राष्ट्रवासी' (दि नैशनल) ने राज्यशासन को सुझाव दिया कि बेल्जियन लोगों का मुँह कुत्तों की तरह बन्द कर देना चाहिए और इसी तरह की अन्य विचाररहित उत्तेजनाओं ने विरोध की अग्नि को अधिकाधिक प्रज्वलित किया। इस तनाव की दशा में छोटी-छोटी बातें भी बड़े गम्भीर दोषों के रूप में देखी जाती थीं और

ऐक्य एवं समता स्थापित करने का कोई भी उपाय सफल नही हो रहा था।

१८३० मे 'राष्ट्रवासी' के कार्यालय पर आक्रमण के साथ चिरसंचित विद्रोह का विस्फोट हो गया। यह कार्यालय इस पत्र के सम्पादक मानेन का निवास स्थान भी था, मानेन अपने विचारों में बडा प्रतिक्रियावादी था। ब्रूसेल्स से राज्यक्रान्ति बेल्जियम के अन्य भागों मे भी फैलने लगी और थोड़े ही समय में समस्त देश उत्तेजना की ज्वालाओ से भरपूर हो गया और इस प्रकार फ्रांस की राज्यक्रान्ति के भीषण दृश्य सर्वत्र दिखायी पड़ने लगे। इंग्लैण्ड और फ्रांस पूर्वी राज्य शक्तियों के सशस्त्र हस्तक्षेप को रोकने के लिए बेल्जियन समस्या के विषय मे बहुत मिल-जुलकर कार्य कर रहे थे। बेल्जियम की स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली गयी और ७ फरवरी, १८३१ को मूलभूत विधान (फण्डामेण्टल लॉ) का निर्माण किया गया। इसके द्वारा राजा को पूर्ण कार्यकारिणी शक्तियाँ सौप दी गयी, संसद के सदनों को प्रतिवर्ष बहुमत द्वारा बजट स्वीकार करने का अधिकार दिया गया और सशस्त्र सेना की मात्रा का निर्णय भी उन्हीं के अधिकार में रखा गया। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को मान्य घोषित किया गया और संविधान में एकत्र होने की स्वतन्त्रता, सार्वजनिक सभा करने का अधिकार, भाषा की स्वतन्त्रता और धर्म की स्वतन्त्रता भी स्वीकार की गयी।* यह एक उदार संविधान था जो त्रिविध सिद्धान्त पर आधारित था। ये त्रिविध सिद्धान्त थे—जनता की सर्वोच्च प्रभुसत्ता, स्वतन्त्रता और समानता। इसने बेल्जियम के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात किया; इसने यहाँ के निवासियों को एक राष्ट्र में ग्रथित कर दिया और उनके समक्ष पूर्ण स्वातन्त्र्य की सम्भावना को रखा। लुई फिलिप अपने पुत्र दुचूक द नामूर को बेल्जियम का राजा बनाना चाहता था परन्तु इंग्लैण्ड इसके विरुद्ध था और इस प्रकार लुई को चुप रह जाना पड़ा। तब महाशक्तियो ने सेक्सकोबुर्ग के लियोपोल्ड को इस शर्त पर चुना कि वह पहले लुई फिलिप की एक पुत्री से विवाह कर ले। बेल्जियम लोग इस योजना पर सहमत हो गये। विलियम इससे सन्तुष्ट नहीं था। वह बेल्जियनों के अपने चिराभिलषित लक्ष्य को पाने के प्रयासों का सतत विरोध एवं खण्डन करता रहा। अपने सैनिक दलों के साथ उसने देश पर चढ़ाई कर दी, परन्तु फ्रांस के हस्तक्षेप करने पर एक युद्ध विराम सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए तैयार हो गया। लन्दन में एक सम्मेलन हुआ और विलियम को बलपूर्वक १८३९ की सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश किया गया। इस सन्धि के द्वारा पाँच महाशक्तियों के संरक्षणत्व में बेल्जियम की स्वतन्त्रता सुप्रतिष्ठापित कर दी गयी। अन्तिम सन्धि पर १८४२ को हेग में हस्ताक्षर हुए।

पोलैण्ड भी क्रान्तिकारी विचारों से खूब प्रभावित हुआ था। ज़ार अलैक्ज़ेण्डर ने उनको एक उदार संविधान दे दिया था परन्तु इसके अनुपालन में बड़ी गम्भीर कठि-

नाइयाँ उपस्थित होती थी। रूसी और पोल दोनों ही एक दूसरे से अत्यधिक घृणा करते थे। पोलिश समाज में दुर्बलता के कतिपय ऐसे तत्त्व थे जो एक शक्तिशाली राष्ट्रीय भावना का निर्माण करने मे परमबाधक थे। कृषक का अपनी भूमि पर कोई स्वत्त्वाधिकार नही था और न आवश्यकता पड़ने पर उमे किसी प्रकार की सहायता अथवा रक्षा मिलने का भरोसा था। वह लगान की अधिकता और अत्याचारों से परेशान रहता था और बहुधा उसे अमीर लोगो की दया पर जीना पड़ता था जो बहुत स्वार्थी और लोलुप थे। अलैक्ज़ेण्डर प्रथम की मृत्यु १८२५ में हो गयी और उस का स्थान उसके पुत्र निकोलस प्रथम (१८२५-४५) ने सँभाला। निकोलस स्वभाव से ही बडा निरंकुश और पूर्ण प्रभुतावाद का घोर समर्थक था। रूस के विरुद्ध होने वाले आन्दोलन का नेतृत्व निम्न अभिजात वर्ग कर रहा था, इस वर्ग के लोग जनतन्त्र के आदर्शो के पुजारी थे। २६ नवम्बर, १८३० को वार्सा में एक राजविद्रोह का बीजारोपण हुआ और वहाँ के राज्यपाल (गवर्नर) कॉन्स्टेण्टाईन को उसकी दुर्ग-रक्षक सेना के साथ भगा दिया गया। विद्रोह की आग पोलैण्ड के दूसरे भागों में भी फैल गयी परन्तु देशभक्तों ने अपने आपको ऐसे प्रभावशाली ढंग से सघटित नही किया था कि वे रूस की बलशाली शक्ति से लोहा ले सकते। नये राज्यशासन के नेताओं ने, जिनमें से अधिकांश अभिजात वर्गीय थे, रूस से सन्धि की वार्त्ता चलायी परन्तु जार इस समय समझौते की बातें सुनने की मनःस्थिति में नहीं था। समझौते के सभी प्रयास विफल सिद्ध हुए। रूसी सैनिक दलों ने दाइबी ईश के सेनानायकत्व में पोलैण्ड पर चढाई कर दी (फरवरी, १८३१) और उधर पोलैण्डवासियों ने भी आक्रमण करने वालों का डटकर प्रतिरोध करने का दृढ निश्चय कर लिया। यूरोप की राज्यशक्तियाँ उनके साथ सहानुभूति रखती थी परन्तु उन्होंने कोई सक्रिय सहायता नहीं दी। इस प्रकार युद्ध का प्रबल आघात पोल लोगों को अकेले ही सहना पड़ा। वार्सा पर रूसियों ने आक्रमण कर दिया, वह अराजकता और दुर्व्यवस्था से ध्वस्त हो चुका था, रूसियों ने विद्रोहियो को अच्छी तरह से दबा डाला। ८ सितम्बर, १८३१ को वार्सा रूसियों के अधिकार में आ गया। आक्रान्ताओ ने अव भीषण प्रतिहिंसा से प्रतिक्रिया आरम्भ कर दी और सहस्रों जनों को निर्दयतापूर्वक मृत्यु के घाट उतार दिया। देशभक्तों के विरुद्ध घोर अत्याचारपूर्ण कार्यवाहियाँ की गयी और अव्यवस्था एवं विद्रोह के प्रत्येक अवशेष का समूल विनाश कर डालने के उपाय किये गये। संविधान का उन्मूलन कर दिया गया; पोलैण्ड को रूस में मिला दिया गया और दो देशों में किसी सीमा के अभाव ने इसे जार के साम्राज्य मे सर्वथा अभिनिविष्ट कर दिया।

मैटरनिश की 'फूट डालने और शासन करने' की नीति का इटली में सब देशभक्त जनों ने विरोध किया। विविध सभाओं ने अपना प्रचार-कार्य जारी रखा। कार्बोनारी

के पदाधिकारियो मे देशभक्तो के साथ-साथ ऐसे निराश जनो का भी समावेश था जिन्हे जीवन मे आगे कोई आशा नही रह गयी थी। विक्टर इमैन्युअल बड़ी निर्बल इच्छा-शक्ति का आदमी था, वह मैटरनिश पर आवश्यकता से भी अधिक निर्भर करता था। १८२० के पीडमॉण्टी आन्दोलन के बाद उसने अपने भाई चार्ल्स फेलिक्स के पक्ष में त्यागपत्र दे दिया था, यह त्यागपत्र सभी दलो को मान्य नही हुआ। १८३० मे फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति का स्पष्ट प्रभाव पोप द्वारा प्रशासित राज्यों मे लक्षित किया जा रहा था। बोलोना मे भी कुछ विप्लव हुए और अम्ब्रिया मे रोमौना के नगरो में तथा अन्य स्थानो पर और पीडमण्ट ,मौडीना, और पार्मा में भी क्रान्तिकारी शक्तियों का ठोस प्रभाव हुआ था। पोप ग्रेगरी सोलहवॉ जो फरवरी, १८३१ में पायस आठवे के पद पर नियुक्त हुआ था, चर्च-सम्बन्धी अधिकारो का महासमर्थक था और निरंकुशतावाद मे वड़ा विश्वास रखता था। उसने मैटरनिश से सहायता की प्रार्थना की। मैटरनिश ने पहले इस विषय मे फ्रांस की इच्छाओं का पता लगाया और उसे सूचना मिली कि चर्चशासित राज्यो मे हस्तक्षेप करने का घोर विरोध होगा। वह लुई फिलिप के राज्यशासन की दुर्बलता से भली-भॉति परिचित था और उसने तुरन्त ही इस विषय में कार्यवाही शुरू करने का निश्चय कर डाला। ऑस्ट्रिया के श्वेताम्बरधारियों ने पोप के निरंकुश शासन को पुनः प्रतिष्ठापित कर दिया था। मौजीना और पार्मा हैप्सबर्ग के ही अधीन रहे। लुई फिलिप यद्यपि बड़ा शान्तिप्रिय था परन्तु उसने निष्क्रियता के कुपरिणामो का भी अनुमान लगा लिया था। इसके अतिरिक्त वह बोनापार्टवादियो के उत्थान से भी किंचित भयभीत था क्योकि लुई नेपोलियन के दो पुत्रो ने पहले से ही इटली की समस्या मे अभिरुचि लेना आरम्भ कर दिया था। नेपोलियन का पुत्र रीशतात का ड्यूक विएना में था और ऑस्ट्रिया उसको फ्रांस के राजसिहासन पर प्रतिष्ठित कर सकता था। पोप-शासित राज्यों में फिर से आन्दोलन आरम्भ हो गये थे और रोमौना मे एक विद्रोह उठ खड़ा हुआ। ऑस्ट्रिया के सैनिक दलों ने इटली में प्रवेश किया और व्यवस्था फिर से कायम की। फ्रांस की स्पर्धा इससे उत्तेजित हो उठी और उसने सोचा कि ऑस्ट्रिया का एकाकी हस्तक्षेप न केवल उसकी प्रभुता मे कमी करता है प्रत्युत यूरोप में शक्ति-सन्तुलन व्यवस्था मे भी विघ्न उपस्थित करता है। एक फ्रांसीसी सेना अन्कोना की ओर बढ़ी (१८३२) जिस पर शीघ्र ही अधिकार कर लिया गया और छः वर्ष तक फ्रास तथा ऑस्ट्रिया पोपशासित राज्यों मे एक दूसरे के शत्रु बनकर सामना करते रहे। इस अवधि के अन्त में ही आस्ट्रिया ने अपनी सेनाएँ हटा ली और फ्रांस अन्कोना को पुनः पोप को लौटाने में सफल हुआ। इस प्रकार कुछ समय के लिए मैटरनिश ने राजविद्रोह का दमन करने मे सफलता प्राप्त कर ली, परन्तु अब इटलीवासियों ने अपनी आशाएँ मैजीनियन आन्दोलन पर केन्द्रित कर दी थी। १८३१ में चार्ल्स फेलिक्स का स्थान

उसके सम्बन्धी चार्ल्स एल्बर्ट ने ले लिया।

इटैलियन राज्यो के सभी आन्दोलन विफल हुए क्योंकि वे अभी राष्ट्रीय नही हो पाये थे। नेताओ के अभीष्ट आदर्शो मे अभी सम्पूर्ण इटली का रूप नहीं समा सका था और ऑस्ट्रिया के भार रूप शासन से मुक्ति पाने का विचार अभी जन साधारण के बौद्धिक स्तर तक नही पहुँच पाया था। आन्दोलन रह-रह कर के जनता में सुनिश्चित आदर्श एवं एकता के अभाव मे अवरुद्ध हो जाता था और एक ऐसे प्रतिभासम्पन्न पुरुष की महान् आवश्यकता थी जो राष्ट्रीय जीवन की अभी तक की बिखरी हुई ताँतों को एकत्र कर सके और एकतासूत्र का निर्माण कर सके। मैजिनी के रूप में ऐसा पुरुष इटली को मिल गया।

१८१५ का जर्मन संविधान यूरोपीय शान्ति के हितों को ध्यान में रखते हुए मित्र राष्ट्रो के राजनीतिज्ञो ने निर्मित किया था। ऑस्ट्रिया को इस संयुक्त संघ का सबसे प्रभावशाली साझीदार बनाया गया था और इसमे मूलभूत विधान (फण्डामेण्टल लॉ) की स्पष्ट व्याख्या नही की गयी थी। स्वतन्त्र भाषण, सार्वजनिक सभाओं और धार्मिक समानता की कोई न्याययुक्त स्वीकृति नही थी। फ्रैंकफोर्ट में स्थित डायट (संसद) ही सर्वोच्च सत्तासम्पन्न सस्था थी जिसमें केवल राजकुमारों का प्रतिनिधित्व होता था। किसी हठी सदस्य को सुमार्ग पर लाने का इसके पास कोई सुनियत अधिकार नहीं था और इसके संघटन के सरलतया दृष्ट दोषों के अतिरिक्त इसके कार्यों के विषय में और कुछ भी निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता था। चालू विधान में कोई संशोधन बिना पूर्ण सहमति के किया जाना सम्भव नहीं था; और पूर्ण सहमति का स्पष्ट अर्थ था अन्तहीन विवाद और वितण्डा। इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि यह संयुक्त संविधान (फैडेलर कान्स्टीटचूशन) उस परिस्थिति को सुलझाने के लिए बड़ा निरर्थक-सा उपाय था जिसे मित्रराष्ट्र यूरोप की अत्यन्त गम्भीर समस्या पुकारते थे। इसके अतिरिक्त नितान्त न सुलझाये जाने वाले मतभेदो के बीच इसका उपयोग जर्मन हितों की सुरक्षा और उन्नति के लिए कर सकना भी असम्भव ही था।

बाह्यरूप से जर्मनी सर्वथा शान्त था परन्तु प्रशा के वित्तशास्त्री (फाइनैन्शियर) अपने देश को एक व्यावसायिक रूप देने के लिए आर्थिक सुधारों-संशोधनो में व्यस्त थे। जर्मनी के प्रायः प्रत्येक राज्य में उद्योग अभी तक बड़ी पिछड़ी दशा में थे। चुंगी और व्यापार-कर की भी बाधाएँ थीं, इनसे स्वतन्त्र व्यापार में बड़ी अड़चन पड़ती थी और राज्यो में परस्पर संघर्ष-कलह चलते रहते थे। चुंगी सर्वत्र एक-सी नहीं थी। प्रशा राज्य में ही सभी प्रकार के द्रव्यों पर लगने वाली कम से कम चुंगी की ६७ भिन्न-भिन्न दरें थीं। मई, १८१८ की संविधियों से प्रशा में भी चुंगी-सुधार नियम लागू हुए थे और सभी आन्तरिक कर हटा दिये गये थे। इस प्रकार से प्रशा एक धन-सम्पन्न

(फिस्कल) और व्यावसायिक केन्द्र बन गया और बाद मे अन्य राज्यो ने उसमे सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया। १८३३ के पश्चात् ही अधिकांश जर्मन राज्यो ने एक संघटन बनाया और एक चुगी-सभा (जौलवेरीन) की स्थापना की। एसे अनेक भिन्न-भिन्न राज्यों मे परस्पर सन्धियाँ हुई, जिन्होने आपस मे स्वतन्त्र व्यापार करना और आर्थिक उद्देश्यों के लिए अपने आपको इकाई बनाना स्वीकार कर लिया था। इस चुंगी-सभा के मामलों की प्रबन्ध-व्यवस्था एक 'कस्टम्स पार्लियामेण्ट' करती थी जिसमें विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि थे। १८३५-४१ मे कतिपय अन्य राज्य भी प्रशन सघ मे सम्मिलित हो गये और विदेशी राष्ट्रो के साथ व्यापारिक सन्धियाँ की गयी।

जर्मनी मे १६३० की राज्यक्रान्ति के प्रभावो ने बहुत गम्भीर रूप धारण नही किया यद्यपि कुछ राज्यों मे छोटे-मोटे विप्लव हुए थे। ब्रुन्जिवक के ड्यूक को सिहासन-च्युत कर दिया गया; हेस्स कैसेल के शासक को एक संविधान स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया और हैनोवर तथा सैक्सनी को बदली हुई परिस्थितियो के अनुकूल अपने आपको बनाना पड़ा। वैसे समग्रत: देखने पर जर्मनी शान्तिपूर्ण था और इस प्रकार मैटरनिश समस्त क्रान्तिकारी आन्दोलनो और राष्ट्रीय विस्फोटों का दमन करने मे सफल हो सका।

विश्वविद्यालय और प्रेस ये दो मैटरनिश के अत्याचारो के प्रमुख केन्द्र थे। १८३२ में संयुक्त संघ की संसद (डायट) ने उदार विचारो का दमन करने के लिए फिर से नया कदम उठाया। जर्मन राजकुमारो को पूर्ण अधिकार दिया गया कि वे अपने अधिकारो पर किसी तरह के हस्तक्षेप का कठोर दमन कर सके, उनसे कहा गया कि वे अपनी विधान सभाओं की बिलकुल परवाह न करे और विधान सभाओं को संवैधानिक मामलो पर बहस करने का अधिकार नही दिया गया था; न उनको राजनीतिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए बहुमत एकत्र करने की अनुमति थी और न ही वे कोई विधान इस रूप में पारित कर सकते थे जो ऑस्ट्रिया के हितों को हानि पहुँचाये। दमनकारी योजनाएँ ही उस युग की शासन-व्यवस्था बन गयी थी, सार्वजनिक सभाएँ सर्वथा रोक दी गयी थीं; विश्वविद्यालयों पर कड़ी नज़र रखी जाती थी और विद्यार्थियों को पहले की ही तरह परेशान और दण्डित किया जाता था। पत्रकार, उदार दल वाले, विश्वविद्यालयों के अध्यापक, छात्र---सभी उस शक्तिशाली कुलपति (चान्सलर) के फन्दे मे फँसे हुए थे जो अभी तक यूरोप की परिषदों मे पर्याप्त प्रभुत्त्व रखता था।

फ्रासीसी राज्यक्रान्ति के प्रभाव स्विजरलैण्ड में भी स्पष्ट लक्षित किये जा रहे थे, वहाँ के जनतन्त्रवादी दल को यूरोप के अन्य देशो मे जो कुछ हो रहा था उससे बड़ा उत्साह मिलता था। ज्यूरिख में एक विद्रोह उठ खड़ा हुआ, इसका नेतृत्व 'स्विज रिपब्लिकन' नाम के पत्र का सम्पादक एक जर्मन अध्यापक कर रहा था। इग्लैण्ड में सुधार-आन्दोलन

प्रगति पथ पर अग्रसर हो रहा था। लोक-सभा में अभी भू-सम्पत्ति वाले अभिजात जनों का प्रभुत्व था। स्वतन्त्र मताधिकार और संसदीय सुधारों के लिए आन्दोलन प्रगतिशील था और १८३२ में प्रथम सुधार विधेयक (रिफॉर्म बिल) पारित हो गया था। इसने ब्रिटेन की राजनीति का केन्द्रबिन्दु ही बदल दिया। वास्तविक राजनीतिक सत्ता अब क्षेत्रीय अभिजात वर्ग (टैरिटोरियल ऐरिस्टोक्रैसी) के हाथों से मध्यवर्ग के हाथों में आ गयी।

अध्याय १३

फ्रांस का जुलाई राजतन्त्र

नागरिक राजा (१८३०-४८)

जनता की सदिच्छा से आर्लियाँ राजवश सिहासनासीन हुआ था और अपने निष्कण्टक जीवन के लिए वह मध्यम वर्गो के सहयोग पर आश्रित था। राजतन्त्र का दैवी अधिकार-सिद्धान्त अब अपना अस्तित्व खो चुका था और इसका स्थान अब सकल राष्ट्र की इच्छा ने ले लिया था। तीये और गीजो ने—दोनो यद्यपि राजनीति और साहित्य मे एक दूसरे के प्रतिरोधी थे—अभिनव राज्यासन के सिद्धान्त का जो विवरण प्रस्तुत किया उससे इसके परिवर्तित रूप का स्पष्ट आभास मिल जाता है। तीये ने कहा था—'यह फ्रांस की जनता ही है जिससे वह अपना राजमुकुट प्राप्त करेगा, और गीजो ने घोषणा की थी—"वह हमारे अधिकारो का आदर करेगा क्योकि वे हम लोग ही है जिनसे वह अपने अधिकार प्राप्त करेगा।"

लुई फिलिप ने इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया। वह अपने आपको ईश्वर की अनुकम्पा और राष्ट्र की सदिच्छा से ही राजा समझता था। उसके राजसिहासन की प्राप्ति का स्रोत प्रतिनिधियो का वह सदन था जो पूर्ण वैधानिक दृष्टि से न तो अस्तित्व ही रखता था और न उसको निर्वाचित करने का अधिकारी था। एक नये सविधान की योजना बनायी गयी जिस पर स्वीकृति देने की प्रतिज्ञा लुई फिलिप ने कर ली। १८१४ का अधिकारपत्र संशोधित किया गया; प्रस्तावना (प्रिऐम्बल) को हटा दिया गया और पुराने दैवी अधिकार सिद्धान्त के स्थान पर पारस्परिक सहमति से प्राप्त अधिकार (राईट बाई कण्ट्रैक्ट) का अंकन किया गया जो कि दूसरे शब्दो में जनता की सर्वोच्च प्रभुसत्ता की ही स्वीकृति थी; अधिकारपत्र की चौदहवी धारा के अनुसार राजा का अध्यादेश जारी करने का अधिकार उससे छीन लिया गया, सविधि निर्माण-कार्य में पहल करने का पूर्ण अधिकार संसद को दे दिया गया; प्रतिनिधियों की सभा का प्रतिवर्ष वदला जाना बन्द कर दिया गया; अभिजातजनों की सभा का अस्तित्व स्वीकार किया गया परन्तु इसका वंशपरम्परागत रूप समाप्त कर दिया गया और इसके सदस्यों का चुनाव कतिपय स्पष्टतः उल्लिखित

वर्गो मे से करने का अधिकारी राजा बना, अभिजात जनों की सभा के अधिवेशन प्रतिनिधियों की सभा की ही तरह सर्वसाधारण के लिए खोल दिये गये; कैथोलिक मत अब राजधर्म न रहा; इसे फ्रांसीसी नागरिकों की बहुसंख्या का धर्म स्वीकार किया गया; प्रेस पर लगाये गये कठोर नियन्त्रण मे ढिलाई कर दी गयी; ज्यूरी, राष्ट्रीय सुरक्षा सेना, नगरपालिका मण्डलों और विभागीय संघटनो से सम्बन्धित संविधियाँ (कानून) स्वीकार की गयीं। प्रतिनिधियो के लिए चालीस वर्ष से घटाकर तीस वर्ष की आयु कर दी गयी, निर्वाचकों के लिए तीस से पच्चीस वर्ष कर दी गयी और निर्वाचन-व्यवस्था का पूर्ण नियन्त्रण एवं प्रवन्ध न्याय के अधीन कर दिया गया। मन्त्रियों के उत्तरदायित्व की घोषणा की गयी परन्तु यह स्पष्ट नही किया गया कि इसकी क्रियात्मक अभिव्यक्ति किस प्रकार से होगी। क्या उन्हे केवल राजसिंहासन के सेवक-मात्र बनकर रहना था या उन माननीय जन प्रतिनिधियों के रूप मे जिन्हें अपने मन्त्रालय के कार्यों के लिए विधानसभा के समक्ष उत्तर देना था ? लुई फिलिप की सर्वोच्च प्रभुसत्ता का स्वरूप इस तरह से सर्वथा अनिश्चित एव अपरिभाषित ही छोड दिया गया। उसका सिंहासन गणतन्त्रवादी संस्थाओ से ही घिरा रहता था और तीयेे ने कहा था—'वह तो केवल राज्य करने के लिए है न कि शासन करने के लिए।' वह समानता, संवैधानिक स्वतन्त्रता और चर्च तथा राज्य की पृथकता स्वीकार करता था। सशोधित अधिकारपत्र १८१४ के 'शार्त कौन्स्तीत्यूशनैल' (संवैधानिक अधिकार) से भिन्न था; यह राजा का आज्ञापत्र नहीं था; यह एक वैधानिक कार्यवाही थी न कि राजा द्वारा दी गयी सुविधा और राष्ट्र इसे अपना 'अविच्छेद्य जन्मसिद्ध अधिकार' समझता था।

लुई फिलिप एक 'नागरिक राजा' का अभिनय करने के लिए बड़ा उपयुक्त व्यक्ति था, इस विशेषण को वह पसन्द भी बहुत करता था। अपनी युवावस्था में वह स्वयं एक क्रान्तिकारी रह चुका था और १७८९ की राज्यक्रान्ति के लिए वह संघर्ष भी कर चुका था। १७९३ मे वह देशनिर्वासित कर दिया गया था, इस बीच विदेशों में घूमता रहा और नेपोलियन के पतन के पश्चात् वह फ्रांस लौट आया था। वह राजप्रासाद में निवास करता था, बुर्जुआवर्गीय जनों से मैत्री रखता था और जनतन्त्रवादी सिद्धान्तों के अनुकूल जीवन के बड़े रूढिविरोधी रूप का आचरण करता था। उसके घर में बहुधा ऐसे महानुभावों का आना-जाना रहता था जो अपनी बौद्धिक संस्कृति एवं सभ्यता पर गर्व करते थे और उसके जनतन्त्रवादी आचार एव स्वभाव के प्रशंसक थे। अपना राजसिंहासन प्राप्त करने के पश्चात् भी वह पुराने आचारों का परित्याग न कर सका। वह अपने पुत्रों को साधारण पब्लिक स्कूलों में भेजता था। स्वतन्त्र राजमार्गो पर पैदल ही छाते को बगल में दबाये वह एक विद्यालय के अध्यापक की तरह चलता था, श्रमजीवी जनों के

साथ भी बड़े सौहार्द्र से हाथ मिलता था और उनके साथ किसी भी सार्वजनिक सराय मे काफी तथा शराब इत्यादि पी लेता था। उसका यह सद्व्यवहार बड़ा स्पृहणीय था और पेरिस के समाज में उसके मैत्रीपूर्ण स्वभाव ने उसको बड़ा जनप्रिय व्यक्ति बना दिया था। उच्च शिखर से नीचे उतर आने में उसे कोई कठिनाई नही अनुभव होती थी और जब जनता सड़को पर एकत्र हो जाती थी, वह अपने प्रासाद की बाह्य अट्टालिका पर खड़ा हो जाता था और उनके राष्ट्रीयगान के समवेत स्वर मे स्वर मिला देता था। उसका गृहजीवन सुखमय था, वह अपने पुत्रो और पुत्रियों के साथ रहता था और उनके हितसाधन और विकास मे इतना अधिक प्रयत्नशील रहता था कि जनता उसके इस कार्य की बड़ी निन्दा करने लगी। वह धन का लोभी था, व्यवसाय मे लाभ के लोभ से धन लगाता था और अपने पास उसने इतनी धनराशि एकत्र कर ली थी कि जनता की कटु आलोचना का पात्र बन गया था। उसमे बुर्जुआवर्ग की विशिष्ट स्वार्थपरता, धन-लोलुपता और स्ववंश की स्वार्थचिन्ता, ये विशेषताएँ स्पष्ट परिलक्षित होती थीं। इतना सब होने पर भी वह महत्त्वाकांक्षा से सर्वथा रहित नही था। यूरोप की तत्कालीन दशा का घनिष्ठ और वास्तविक परिज्ञान रखने का उसका दावा था और जब प्रेस ने उसकी नीति की निन्दा की तो वह उनके अज्ञान के प्रति अपनी घृणा को छिपा न सका। उसने यद्यपि पर्याप्त कष्ट और यातनाएँ सही थी, पर किसी पर उसकी रुष्टता अथवा कोप नही था और वह सतर्कता-पूर्वक किसी प्रकार की अति का निवारण करता था। वह सबसे मिल लेता था, हृदय से बड़ा उदार, स्वभाव से सौहार्द्र था परन्तु उसमे उस राजगौरव का अभाव था जो एक राजसिहासन का आवश्यक आवरण होती है। अपने आचरण एवं चेष्टाओं से उसने यह प्रभाव उत्पन्न कर दिया था कि उसके व्यक्तित्व मे राजतन्त्र अपने उदात्त एवं पृथक् शिखरो से नीचे उतर आया था।

अपने-शासन काल के आरम्भ से ही लुई फिलिप बुर्जुआ वर्ग के सहयोग पर निर्भर करता था जिसने उसे राजसिहासन तक पहुँचाने मे सहायता की थी। उसे अपने आपको अभिजात विशेषाधिकारों और समाजवाद के अराजकतापोषक सिद्धान्तों से बचाये रखना था। ४३० में से उसे २१९ प्रतिनिधियो ने ही राजा बनाया था और यद्यपि फ्रांस की जनता ने इस नयी शासन-व्यवस्था को स्वीकार कर लिया था परन्तु वह कभी इससे सन्तुष्ट नही हो सकी थी। विक्टर ह्यूगो के शब्दो में उसका ध्येय 'केवल मध्यममार्ग' (ज़िस्त मिल्यु) था, जिसका अनुसरण उसने किया भी परन्तु समुचित सफलता के अभाव मे। उसकी कठिनाइयों के कारण अनेक थे। उसका सिहासन एक सर्वथा सकुचित आधारशिला पर आश्रित था और जिस मध्यमवर्ग पर वह सहायता के लिए निर्भर था वह घोर स्वार्थी, अपने विचारों में संकुचित तथा राष्ट्रीय महत्ता तथा गौरव की पूर्णता

को अपने मानस-पटल पर स्थिर रखने मे असमर्थ था जैसा कि एक साम्राज्य की प्रजा को होना चाहिए। उसके रूढ़िविरोधी स्वभाव ने सर्वसाधारण की रंगीन कल्पना का स्पर्श न किया और उसकी राजसत्ता का अपरिभाषित रूप उसके गौरव एव प्रभुता को सदा घटाता रहा। उसके और जनता के बीच का आपसी समझौता साधारण दैनिक बात-चीत का विषय वन गया और यह अनुभव किया जाता था कि दोनों में से कोई भी सर्वोच्च प्रभु (सॉवरेन) नही था। लुई फिलिप के प्रमुख विरोधी तत्त्व ये थे––(१) वैधतावादी जो उससे एक देशद्रोही के रूप मे घृणा करते थे और चार्ल्स दशम के पौत्र काँता द शम्बार का समर्थन करते थे; (२) गणतन्त्रवादी, जैसे कैवैन्याक, ये लोग निर्वाचन प्रणाली मे सुधारो एव जनतन्त्रवादी सस्थाओं का अनुमोदन करते थे, (३) वाम-केन्द्र के सदस्य, ये मध्यम मार्ग की नीति का कठोर प्रतिरोध करते थे, (४) बोनापार्टवादी, ये लोग नेपोलियन के शत्रु के रूप मे उससे घृणा करते थे और उसके भतीजे लुई नेपोलियन के साथ उन्होंने बोनापार्ट राजवंश की पुनः प्रतिष्ठापना करने का षड्यन्त्र भी रचा; (५) समाज-वादी, ये लोग व्यक्तिगत सम्पत्ति का विरोध करते थे और घोषणापत्र पर कठोर आक्रमण करते थे जिसे वे 'आडम्बरपूर्ण निकम्मा पत्रक' मानते थे।

मैटरनिश ने लुई फिलिप की दशा का जो विश्लेषण किया था वह अधिकाश-ठीक है। उसने कहा था कि जुलाई राजतन्त्र की आधार-शिला का निर्माण नितान्त अर्थ-हीन सिद्धान्तो पर हुआ था; इसमें स्वतन्त्र निर्वाचन (प्लेबिसाईट) से प्राप्त बहुमत के सहयोग का अभाव था; इसमे परम्परागत अधिकार के सहयोग का अभाव था; इसमें गणराज्य की पोषक सत्ता का अभाव था; इसमें साम्राज्य के सैनिक गौरव, नेपोलियन की उदात्त प्रतिभा एवं सैनिक प्रभुता तथा बूर्बोवंशियों के सिद्धान्त-प्रेम का एकान्त अभाव था। इस सुविख्यात राजनीतिवेत्ता ने ठीक ही लक्ष्य किया था कि इसकी स्थिरता केवल कुछ आकस्मिक घटनाओं पर निर्भर थी। इसके विषय में कोई महत्त्वशाली तथ्य नहीं था। सर्वसाधारण पर इसकी प्रभुता बड़ी बलहीन थी; जनता के सम्मान एवं समादर का भाजन यह बन नही सका और न यह जन-विश्वास को ही प्राप्त कर सका। फ्रांस के बाहर महाद्वीप की अन्य राज्यशक्तियाँ इसे राज्यक्रान्ति का एक प्रतीक ही मानती थीं और यद्यपि इसकी स्थापना के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की गयी '८९ के सिद्धान्तों के साथ इसका समझौता बड़ी सन्देहपूर्ण दृष्टि से देखा जाता था। लुई फिलिप की यह आन्तरिक अभिलाषा थी कि वह राज्य की नीति का संचालन स्वय करे परन्तु ऐसा करने मे उसे बड़ी कठिनाई उपस्थित हुई। बुर्जुआ वर्ग ने "इस नये राजतन्त्र मे वह स्थान प्राप्त कर लेने का दृढ संकल्प ही कर लिया था जैसे कि यह इसकी अपनी जागीर हो।" ज्यों ही लुई फिलिप ने राजसिहासन सँभाला, उसके चारों तरफ राजपद के अभिलाषियों

और नौकरी चाहने वालों का एक जमघट लग गया। इन्होंने पेरिस को दुराचार और अन्याय का अड्डा बना लिया, जहाँ सत्य और स्वाभिमान से रहित जन, ऑगस्ताँ तीये के शब्दों मे, "सद्यः मृत शासन-सत्ता के रक्तरंजित वस्त्र खण्डो में से कटे-फटे चिथडे" समेट लेने के लिए एकत्र रहते थे।

राजतन्त्र को सशक्त बनाने के लिए संसद ने दो संविधियाँ (मार्च और अप्रैल १८३१ में) पारित की—मतदाता-संविधि और राष्ट्रीय सुरक्षा सेना से सम्बन्धित संविधि। प्रथम सविधि के अनुसार प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों की आवश्यक योग्यता १००० फ्रांक से घटाकर ५०० फ्रांक कर दी गयी, और मतदाता के लिए ३०० से २०० फ्रांक कर दी गयी। इन्स्टीटयूट के सदस्य तथा अवकाश-प्राप्त राज्याधिकारी भी अपना मत दे सकते थे यदि वे राज्य को १०० फ्रांक देते हों। इस उपाय से मतदाताओं की संख्या लगभग दुगुनी हो गयी। किन्तु श्रमिक वर्ग को फिर भी मतदान का अधिकार न मिल सका। इस मामले में लुई फिलिप उतना ही दृढ था जितना चार्ल्स दशम, और संसद के उदार दल वालों का उसे पूर्ण सहयोग प्राप्त था जिन्होंने "प्रतिरोध-दल" (दि पार्टी ऑव रैजिस्टैन्स) की स्थापना की थी जिसकी स्पष्ट प्रतिज्ञा सार्वजनिक व्यवस्था तथा राज्य की शासन-सत्ता को कायम रखना था।

द्वितीय संविधि के द्वारा प्रत्येक फ्रांसवासी जो २० और ६० वर्ष की आयु के बीच का था और सीधे राजकर (डायरेक्ट टैक्स) जमा करता था उसे अपना नाम शान्ति एवं व्यवस्था की रक्षार्थ राष्ट्रीय सुरक्षा सेना में लिखाना पड़ा। सशस्त्र सेना के उच्चतम पदाधिकारियों की नियुक्त अब भी राजा के हाथ में ही रखी गयी। इस अधिनियम ने, कि जो लोग अपना नाम दर्ज करायें उन्हें अपनी ही सैनिक सामग्री बनानी होगी, सम्पत्ति पर आश्रित एक पृथकता के तत्त्व को भी स्थान दिला दिया और श्रमिकों को सुरक्षा सेना में सम्मिलित होने से बहिष्कृत कर दिया और इस प्रकार बुर्जुआवर्गों के हितों को और भी अधिक बल मिला।

लुई फिलिप ने घोषणा की कि वह अपनी गृहनीति मे 'सुवर्ण मध्य' की नीति का अनुसरण करेगा। परन्तु अनेक जनों ने इसे उन सिद्धान्तों का विनाश समझा जिनके लिए वे १८३० में संघर्ष कर चुके थे। यहाँ तक कि राजा के समर्थक भी दो दलो में विभाजित हो गये—प्रतिरोध का दल और प्रगति का दल। प्रथम दल का नेतृत्व कैसिमीर पेरियें, गीजो और ब्रोग्ली के ड्यूक जैसे महानुभाव कर रहे थे। ये लोग स्वदेश में व्यवस्था एवं विदेशो मे शान्ति चाहते थे और क्रान्तिकारी उद्वेगों का दमन कर देने के पक्ष मे थे। द्वितीय दल जनतन्त्रवादी सिद्धान्तों में विश्वास करता था और सुधार के विषय में जनता की माँगों का सहानुभूतिपूर्ण उत्तर देने के पक्ष में था। इसका नेतृत्व

ला फायेत कर रहा था, वह राष्ट्रीय सुरक्षा सेना का भी अध्यक्ष था और १८३० में "जनता के मधुर हास्य की गर्मी मे तप्त हो चुका था" अर्थात् जिसे जनता बहुत चाहती थी तथा अब जनतन्त्रवादी और उदार विचारो का विख्यात नेता बना हुआ था। प्रगतिशील विचारो वाले लोग उसके घर मे शरण पाते थे और उसको श्रद्धांजलि अर्पित करते थे। एक फ्राँसीसी लेखक के ही शब्दों मे उसका घर "क्रान्ति दल का मसीहा" (पावियों द मर्सा) बन गया था।

आन्तरिक प्रशासन (१८३०-४०)

लुई फिलिप के सामने दो समस्याएँ थी, पहली फ्रांस की जनता को किस प्रकार से अपने अनुकूल बनाये और दूसरी यूरोपीय राज्यों को किस प्रकार सन्तुष्ट रखे। दोनों समस्याओं के साध्य सर्वथा एक दूसरे के प्रतिकूल थे। फ्रांसीसी राष्ट्र का सर्वाधिक बुद्धिवादी वर्ग प्रशासन यन्त्र में एक उदार विचारधारा का संचार करना चाहता था। इस वर्ग के लोग निर्वाचन प्रणाली में सुधारों तथा जनतन्त्रवादी संस्थाओं के समर्थक थे, परन्तु दूसरी तरफ यूरोप के राजाओं ने लुई फिलिप के समक्ष यह बात सर्वथा स्पष्ट कर दी थी कि उसको राज्य सिंहासन पर अपना चिर जीवन बनाये रखने के लिए क्रान्तिकारी सिद्धान्तों से अधिकाधिक संघर्ष करना पड़ेगा। राजा के सामने इस समय बड़ी विषम परिस्थिति थी और जैसे-जैसे समय व्यतीत हो रहा था उसकी कठिनाइयाँ बढ़ती ही जा रही थी। अपने शासन काल के आरम्भ में उसने सभी राजनीतिक दलों से एकत्र करके जो संयुक्त मन्त्रिमण्डल बनाया था वह एक समरूपात्मक नीति का अनुपालन करने में नितान्त विफल रहा और इसकी सम्भाव्य सफलता भी फ्रांस में अभी तक अस्तित्व रखने वाले क्रान्तिकारी आवेगों के उबाल ने सर्वथा असम्भव बना दी थी। जन समुदाय चार्ल्स दशम के मन्त्रियों की न्यायोचित जाँच की माँग कर रहा था जो एक प्रकार से राजतन्त्र की न्याय-सम्मत जाँच का ही रूप धारण कर गयी थी। झगड़े और उत्पात बढ़ गये और सशस्त्र स्त्री-पुरुषों का एक उत्साही समुदाय "मन्त्रियों को फाँसी दो" की सकोप गूँज से परिस्थिति की भीषणता को अधिकाधिक बढा रहा था। संयुक्त मन्त्रिमण्डल व्यवस्था स्थापित करने में सफल न हो सका और राजा ने २ नवम्बर, १८३० को पेरिस के एक सम्पत्तिशाली महाजन (बैंकर) ला फीते को इसका स्थान लेने के लिए कहा। मन्त्रियों को आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया। सिर्फ पोलिग्नॉक को, जिससे जनता अत्यधिक घृणा करती थी, फाँसी का अतिरिक्त दण्ड प्रदान किया गया। परन्तु क्रुद्ध जन समुदाय ने उसके सिर की माँग की और यहाँ तक कि ला फायत्त भी व्यवस्था स्थापित करने में असफल रहा। जब संसद ने राष्ट्रीय सुरक्षा सेना के सचालक के पद

का अस्तित्व समाप्त कर दिया तो उसने स्वयं ही त्यागपत्र दे दिया। ठीक इसी समय बेरी के ड्यूक के 'मृत्योपरात सस्कार' सात जर्मा लॉक्जैरुआ के चर्च मे चार्ल्स दशम के अनुयायियों ने सम्पादित किये, इसने परिस्थिति की गम्भीरता अत्यधिक बढ़ा दी। आर्चबिशप के निवास स्थान को लूटा गया और विप्लवियों ने जो मन मे आया उत्पात मचाया। इससे पहले कि कोई कठोर कार्यवाही की जा सके मन्त्रिमण्डल का ध्यान वैदेशिक विषमताओ से हट चुका था। बेल्जियन राज्यक्रान्ति और रूम के विरुद्ध पोलैण्ड मे राजविद्रोह तथा आस्ट्रिया के विरुद्ध इटलीवासियों के विद्रोह ने फ्रास की जनता में पर्याप्त सहानुभूति का सचार किया। ला फीते विद्रोहियों का पक्ष लेकर इन देशों मे हस्तक्षेप करना चाहता था जिससे कि स्वदेश के जनतन्त्रवादी सन्तुष्ट हो जायें परन्तु लुई फिलिप बडा सावधान था और पूर्वी यूरोप की दो महा राजशक्तियों मे युद्ध मोल लेने के लिए तैयार नही था, न ही वह बेल्जियम के प्रश्न पर इग्लैण्ड को रुष्ट करना चाहता था। राजा का समर्थन न प्रात कर सकने पर ला फीते ने त्यागपत्र दे दिया और उसका स्थान १३ मार्च, १८३१ को कासिमिर पेरियें ने ले लिया।

कासिमिर पेरियें उच्चतर मध्यवर्ग का महाजन था, वह जन समुदाय के उत्साह तथा स्वातन्त्र्य प्रेम पर विश्वास नही करता था और प्रतिक्रियावादी नीति का समर्थक था। जब १८३० में लुई फिलिप को सिहासनासीन किया गया तो 'होतेल द वील' में किसी ने कहा था, "इस जन समूह का अपने-अपने घर छोड देने के लिए तैयार हो जाना कितना आश्चर्यजनक है ?" पेरियें ने इसका उत्तर दिया था—"उनको फिर से वापस लौटा देना इससे भी कहीं अधिक आश्चर्यजनक होगा।" वास्तव मे यह रूढ़िवादी मन्त्री जो चाहता था वह यह था कि अर्थहीन घोषणाओं और नारों को समाप्त कर दिया जाये। इनसे राज्य शासन का कोई लाभ या हित साधन नहीं होता था। वह घोषणापत्र की धाराओं में रहते हुए ही राजा की प्रभुता को अधिक सशक्त बनाने के लिए बडा उत्सुक था, वह सार्वजनिक व्यवस्था स्थापित करने और नयी पद्धतियों को रोकने के लिए भी उतना ही उत्सुक था। वह शान्ति चाहता था और 'राष्ट्रों को स्वतन्त्र करने की' उत्तेजना-पूर्ण नीति के साथ उसे कोई सहानुभूति नहीं थी। वह बडी व्यावसायिक बुद्धि से सोचता था, एक सुनिश्चित योजना सामने रखता था और विचार धाराओं तथा सिद्धान्तों को फ्रांस की दशा अव्यवस्थित बनाने मे सफल नहीं होने देना चाहता था।

उपर्युक्त नीति का अनुसरण करते हुए मन्त्री ने अव्यवस्था एवं षड्यन्त्रों का दमन करने के लिए बड़े कठोर उपायों का सहारा लिया। वैधतावादियो और गणतन्त्रवादियों, दोनों में ही जो उग्र विचारों के लोग थे उनसे बडा कठोर व्यवहार किया गया और उनके उग्र उत्साह को कुचल डाला गया। जो ऑलियाँ राज्यासन को संकट में डाल रहे थे

उनको उसने दण्डित करना आरम्भ कर दिया और इस ध्येय की सफल पूर्त्ति के लिए उसने दोनों दलों के संयुक्त मोर्चे को बलपूर्वक विनष्ट किया। वह फ्रांस के लिए एक सुस्थिर राज्य शासन चाहता था और इस लक्ष्यपूर्ति के लिए उसने अपनी नीति का संचालन बड़े कठोर उत्साह एवं बल मे किया। उसने राज्य कर्मचारियों को किसी भी देशभक्त अथवा राष्ट्रीय सभा-समिति मे भाग लेने से कठोरतापूर्वक रोक दिया और उनको चुनावों में सक्रिय भाग लेने से मना कर दिया गया। सिल्क-उद्योग के केन्द्र ल्यों में होने वाले राजविद्रोहों को, जो पर्याप्त व्यापक विस्तार प्राप्त कर चुके थे, कुचल दिया गया और पेरिस में होने वाले विस्फोटों के साथ भी इसी तरह का कठोर व्यवहार किया गया। राजपरिवार तथा उच्च पदाधिकारियों का विनाश करने के लिए रु द प्रूवेर का षड्यन्त्र विफल कर दिया गया। साँत ब्यूव की आकर्षक शब्दावली में कहा जाय तो कहना पड़ेगा कि पेरियें ने एक उन्मादग्रस्त व्यक्ति के बल के साथ राजविद्रोहों के द्वार बन्द कर दिये थे।

वैदेशिक मामलों में पेरियें ने दूसरे देशो के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने की नीति का अवलम्वन किया और अपने दृष्टिकोण का विवरण प्रस्तुत करने के लिए जिन शब्दों का प्रयोग उसने किया था वे बडे महत्त्वपूर्ण हैं—"हम किसी देश को यह अधिकार प्रदान नहीं करते हैं कि वह अपने हितो के लिए हमें युद्ध करने को विवश करे, फ्रांस का रक्त केवल फ्रांस के ही लिए है।" उसकी नीति का सबसे शक्तिशाली अंग था इंग्लैण्ड के साथ उसका मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध, यह 'विश्व-इतिहास में एक नवीनता' के रूप में देखा जाता था और यह सम्बन्ध १८४८ तक स्थिर वना रहा। बाद में गीज़ो की नीति ने इसे स्पेनिश विवाहों के प्रश्न पर तोड़ दिया। कासिमिर पेरियें यद्यपि बड़ा शान्तिप्रिय व्यक्ति था परन्तु डरपोक नहीं था। फ्रांसीसियों का अंकोना पर अधिकार (फरवरी, १८३२) मैटरनिश के पोपशासित राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप करने की कार्यवाही का बडा समुपयुक्त उत्तर था। इसने यूरोप की महाशक्तियों में लुई फिलिप के सम्मान को तत्काल ही ऊँचा उठा दिया। ८ सितम्बर, १८३१ में वार्सा के पतन पर पेरिस में महान् आन्दोलन उठा, पैलेरोयल के बाहर जो उत्तेजित जन-समुदाय एकत्र था, सामूहिक स्वर में चिल्ला उठा "गणराज्य जिन्दाबाद"। परन्तु पेरियें अपने विचारों पर दृढ़ रहा। उसने क्रान्तिकारी दल की कोई बात मानने से साफ इन्कार कर दिया और सदा युद्ध का बहिष्कार करता रहा।

मार्च, १८३२ में पेरिस में हैजा फैला, और यह विश्वास किया जाने लगा कि यह रोग भारतवर्ष से आया है। रूस और पोलैण्ड में यह पहले ही काफी उत्पात मचा चुका था और अब फ्रांस में फैला था, इसने मानव जीवन का भयंकर कर वसूल किया। इसने वर्णनातीत रूप से जनता के कष्टों को बढ़ाया। रोग ने मानवदेह पर मृत्युसम भीषण प्रभाव

डाला था और श्वास के शरीर से पृथक् होने के पूर्व ही मृतक इसका शिकार हो जाता था। इस रोग ने एक भारी जनसंख्या को अपने मे समेट लिया। अचिरकाल मे ही इसके शिकारो की संख्या २०,००० तक पहुँच गयी। कासिमिर पेरिये को भी छूत ने पकड लिया और १६ मई, १८३२ को उसकी मृत्यु हो गयी। एक फ्रासीसी इतिहासकार लिखता है, 'उसकी मृत्यु के साथ जुलाई राजतन्त्र का प्रबलतम स्तम्भ नष्ट हो गया, क्योंकि वही एक ऐसा पुरुष था जो गणतन्त्रवादियों और वैधतावादियों के आघातों का समुचित प्रत्युत्तर दे सकने में समर्थ था।'

कासिमिर पेरिये की मृत्यु पर लुई फिलिप ने आराम की ठण्डी साँस ली और कुछ समय तक वह स्वय ही अपना प्रधान मन्त्री बना रहा। परन्तु नये सकट उत्पन्न हो गये जिन्होने उसकी शक्ति और उसकी राजनीतिक सूझ की कड़ी परीक्षा ली। बेरी की डचैज के नेतृत्व में, जो अपने पुत्र के लिए राजसिंहासन चाहती थी, वैधतावादियों ने एक षड्यन्त्र की योजना बनायी जिसका परिणाम ला वान्दा में एक राजविद्रोह के रूप से प्रकट हुआ। इसका बलपूर्वक दमन कर दिया गया और इस प्रकार राजतन्त्रवादी उत्साह तुरन्त बह गया। इस डचूक की महिला के विरुद्ध लुई फिलिप की पुलिस सर्वथा शक्तिहीन सिद्ध हुई, एक कृषक महिला के छद्मवेष में यह नान्ते से भाग निकली और इसका गुप्त निवास खोजा नही जा सका। नवम्बर, १८३२ में अन्ततोगत्वा इसे गिरफ्तार कर लिया गया और ब्लेज़ के कारागार मे नज़रबन्द कर दिया गया। यहाँ इसने जनता की सहानुभूति को जीत लिया। परन्तु जब यह पता चला कि उसने एक इटैलियन अभिजातजन काउण्ट लुशैस्सीपाली के साथ गुप्त विवाह कर लिया है तो जो स्नेह और आदर उसे मिला था उड़ गया, और राज्यशासन ने उसके विरुद्ध कोई नया कदम उठाना सर्वथा व्यर्थ समझा। परन्तु यह लुई फिलिप के संकटो का अन्त नही था। पत्र-पत्रिकाओ में अभी भी उस पर आक्रमण होते रहे और सड़कों पर राजा के व्यंग्यचित्रों का प्रदर्शन किया जाता था। उसको 'ल पॉयर' (पियर या कुलीन) पुकारा जाता था और उसके ज्येष्ठ पुत्र डचूक दॉर्लियाँ का नाम लोगों ने 'ग्रां पॉलो' रख दिया था। इसी प्रकार राजपरिवार के दूसरे सदस्यों को लांछित किया जाता था। 'वह पाँच फ्रांक के सभी टुकड़ों की तरह विनोदी पुरुष है, परन्तु बुद्धि से सर्वथा रहित है', इस प्रकार लोग उसे स्मरण करते थे और यह व्यंग्य अपने चरम पर पहुँच गया तब लोग उसे 'शान्ति का नेपोलियन' पुकारने लगे। इसी समय जबकि फ्रांस इस प्रकार के हासपरिहास में मग्न था राजा के विरोधी अधिकाधिक शक्ति संचित करते जा रहे थे और पुनः अराजकता फैल जाने के लक्षण प्रकट होने लगे थे। ठीक इसी समय साम्राज्य के एक सैनिक जनरल लामार्क की मृत्यु हो गयी और उसके अन्तिम सस्कार के सम्पादन में सहस्रों जनों ने भाग

लिया (५ जून, १८३२) जिनमें पोलैण्ड और इटली के राजनीतिक शरणार्थी भी सम्मिलित थे और ये लोग क्रान्तिकारी नारो से वातावरण गुँजा रहे थे—'लुई फिलिप पदच्युत हो ! राज्यक्रान्ति चिरजीवी हो !' इसके तत्काल उपरान्त एक विप्लव हो गया जिसमें अनेक जीवन नष्ट हुए। अन्ततोगत्वा राजा को यह आवश्यक प्रतीत होने लगा कि राज्यशासन के शीर्ष पर एक शक्तिशाली व्यक्तित्व को स्थापित किया जाये। उसने दचूक द ब्रोग्ली को मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए निमन्त्रित किया। वह कुछ हिचकिचाया और उसने मन्त्रिमण्डल में गीजो, तीयें तथा सोल को सम्मिलित करने का सुझाव दिया। यह समग्र प्रतिभाओं का मन्त्रिमण्डल था। सोल परिषद् का अध्यक्ष और प्रधान मन्त्री बन गया, तीयें गृहमन्त्री, और ब्रोग्ली तथा गीजो को दचूक ने क्रमशः वैदेशिक मन्त्रालय तथा सार्वजनिक शिक्षा का मन्त्रालय सौंप दिया।

अपने पूर्ववर्ती मन्त्रियों के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए सोल ने राजनीतिक दलों के असवैधानिक कार्यों के विरुद्ध संघर्ष जारी रखा और उसकी वैदेशिक नीति यूरोपीय राज्यशक्तियों के साथ किसी प्रकार का संघर्ष या द्वन्द्व न होने देने का प्रयास करती रही। शान्ति की पुनः प्रतिष्ठा हो गयी और इसने कतिपय संविधियों का पारित करना सम्भव बना दिया। इनमें से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संविधि प्रारम्भिक शिक्षा से सम्बन्धित थी, इसे जून, १८३३ में गीज़ो ने समुपस्थित किया था। इसका ध्येय था कि जनता की कर्म-पिपासा को अपने लिए तथा समाज के लिए भयंकर बतलाकर उसे शान्त एवं शुष्क कर दिया जाय, सर्वसाधारण के मन मे नैतिक शान्ति की आन्तरिक अनुभूति को पुनः जाग्रत किया जाय, जिसके बिना सामाजिक शान्ति कदापि नहीं लौट सकती। इस संविधि के अनुसार प्रत्येक कम्यून को अकेले या दूसरी कम्यूनों से मिलकर एक प्रारम्भिक विद्यालय स्थापित करने का आदेश हुआ और यह शिक्षा निःशुल्क रखी गयी, यद्यपि विद्यालय में उपस्थिति आवश्यक नहीं थी। लुई फिलिप मन्त्रिमण्डल से प्रसन्न नही था। उसने शिकायत करते हुए कहा था कि ब्रोग्ली, तीयें और गीज़ो तो 'स्वयं कासिमिर पेरियें ही तीन रूपों में वर्त्तमान हैं !' समाचारपत्र राजा की बड़ी कटु आलोचना करते थे, और उनके दमन ने उनके विरोध को अधिकाधिक दृढ़ करने में सहायता दी। राजा का जीवनान्त करने के भी प्रयास किये गये और 'ले ज़ामी द पप्ल' (जनता के मित्र) तथा 'ले द्रोआ दे लोम (मानव समाज के अधिकार) जैसी सभाओं की स्थापना की गयी, इनके उद्देश्य क्रान्तिकारी थे। गणतन्त्रवादी दलने अपनी माँगें सामने रखीं—(१) सार्वजनिक मताधिकार, (२) ज्यूरी द्वारा जाँच, (३) श्रमिक वर्ग की स्वतन्त्रता, और (४) एक यूरोपीय संयुक्त संघ की स्थापना। इस कार्यक्रम ने बुर्जुआवर्ग को आतंकित कर दिया, और उनके सद्भाव को बनाये रखने के लिए राज्यशासन ने अप्रैल १८३४, में सभा-समितियों

के विरुद्ध एक अध्यादेश स्वीकार किया। इसके द्वारा सभी सभा-समितियों को अपने सविधान राज्यशासन के समक्ष रखने पड़े और जो इसका उल्लघन करें उनकी जाँच संक्षिप्त अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालयों के हाथ मे रखी गयी। जैसे ही यह अध्यादेश जारी हुआ देश के विभिन्न भागो में विद्रोह एव विप्लव उठे, इनमे सबसे महत्त्वपूर्ण थे ल्यो के विद्रोह। इन्हें बडी कठोरतापूर्वक कुचल डाला गया। घोषणापत्र में प्रेस की मान्य स्वतन्त्रता व्यवहार में अमान्य हो गयी थी। सहस्रो पत्रकारों की न्यायालयो में जाँचें हुईं। 'दि ट्रिब्यून' नाम के एक जनतन्त्रवादी पत्र को सौ से अधिक बार दण्डित किया गया और उसे १,५७,००० फ्राक जुर्माने के रूप में देने पड़े। जिन लोगों ने विद्रोहो में भाग लिया था उनके विरुद्ध कार्यवाहियाँ शुरू कर दी गयीं। अभियोगियों की भारी संख्या को अभिजात जनों की सभा के समक्ष जाँच के लिए उपस्थित किया गया और लगभग ४००० साक्षियों को गवाही देने के लिए बुलाया गया। यह जाँच महीनो तक चलती रही और अन्त मे अपराधियो को कारावास अथवा देशनिर्वासन के भिन्न-भिन्न दण्ड दिये गये। ये दण्डाज्ञाएँ कभी क्रियात्मक रूप न धारण कर सकी और बाद मे सार्वजनिक क्षमापत्र की उद्घोषणा कर दी गयी। परन्तु गणतन्त्रवादियो के मस्तिष्क पर इसका प्रभाव बडा गम्भीर हुआ था। अभी कुछ समय के लिए तो उनका पूर्ण दमन कर दिया गया परन्तु वे वहुत क्रुद्ध और निराश थे। वे ऐसी शासन-व्यवस्था को उलटने के लिए सदा उत्सुक रहे जिसने उनके मस्तिष्क को सफलतापूर्वक शृंखलाओं में जकड दिया था।

इस प्रकार से वह राज्यशासन दमन और दण्ड की नीति का अनुसरण करने लगा था जिसका निर्माण ही वैधानिक शासन की सुप्रतिष्ठा करने के उद्देश्य से हुआ था। इसने उदार विचारो का विच्छेद कर दिया था और गणतन्त्रवादियो को क्रान्तिवादी हठधर्मी अपनाने के लिए उद्यत किया था। सोल तथा उसके मन्त्रिमण्डल (कैबिनेट) मे अल्जीरियन विजय की समस्या पर मतभेद हो गया और उसने जुलाई, १८३४ मे अपना पद त्याग दिया।

द ब्रोग्ली को प्रधान मन्त्री नियुक्त किया गया। राजा का वध करने के प्रयासो ने राज्य के पदाधिकारियों के समक्ष यह वात वहुत स्पष्ट रूप से स्फुट कर दी कि राजनीतिक ढाँचे में कोई गम्भीर रोग स्थान बना चुका है। फाइशी नाम के एक कार्सिकावासी के अपराध ने, जिसने राजा, उसके तीनों पुत्रों तथा अनेक राजसभासदों का विनाश कर देने का प्रयत्न किया था, सितम्बर (१८३५) की संविधियों का जारी किया जाना आवश्यक बना दिया। इन संविधियों का सम्बन्ध सर्वसत्तासम्पन्न पाक्षिक न्यायालयों (अस्साईज कोर्ट्स), ज्यूरी व्यवस्था तथा प्रेस से था। न्याय मन्त्री को यह अधिकार दिया गया कि वह जितने सर्वसत्ता-सम्पन्न पाक्षिक न्यायालयों की स्थापना करना आवश्यक समझे कर

दे। ज्यूरी द्वारा जाँच होने पर एक सामान्य-से बहुमत द्वारा निर्णीत दण्ड प्रामाणिक समझा गया। प्रेस के विरुद्ध संविधियों को अधिक कठोर बनाया गया और उनके उल्लंघन करने पर भारी अर्थदण्डों की व्यवस्था की गयी। राजा के व्यंग्यचित्रों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और राजतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली के अतिरिक्त अन्य किसी प्रणाली का समर्थन करना अपराध ठहराया गया। भाषण-प्रकाशन पर लगे नियन्त्रण को अधिक कठोर किया गया और अपने सदाचार का विश्वास दिलाने के लिए समाचारपत्रों को भारी धन-राशि ज़मानत के रूप में देने का आदेश हुआ।

फरवरी, १८३८ में ब्रोग्ली का स्थान तीये ने लिया परन्तु उसने थोड़े ही समय के पश्चात् त्यागपत्र दे दिया। तब मोले को मन्त्रिमण्डल बनाने का निमन्त्रण दिया गया। एक महत्त्वपूर्ण घटना जो इस समय हुई वह थी महान् नेपोलियन के भतीजे राजकुमार लुई नेपोलियन का अक्तूबर १८३६ में अपने राजवंश की पताका स्ट्रासबर्ग मे फहराने का प्रयास। वह गिरफ्तार कर लिया गया और कारागार में बन्द कर दिया गया। फिर उसे संयुक्त राष्ट्र अमरीका जाने की अनुमति मिल गयी। वह पुनः वहाँ से लौट आया और अपने आपको नेपोलियन प्रथम का उत्तराधिकारी उद्घोषित करने लगा। उसके मस्तिष्क में उस महान् साम्राज्य को पुनः प्रतिष्ठित करने की योजनाएँ चक्कर काट रही थीं जो वाटरलू में नष्ट हो चुका था।

मोले विशेष लोकप्रिय व्यक्ति न था। उसे 'लुई फिलिप का क्षुद्र सेवक' कहा जाता था। उसने १८३९ में पद त्याग दिया और सोल को पुनः मन्त्रिमंडल बनाने का निमन्त्रण दिया गया। जब संसद ने दयूक द नामूर का,जो एक सेक्सको बर्ग की राजकुमारी मे विवाह कर रहा था, भत्ता देना अस्वीकार कर दिया तो सोल का सद्यः प्रतिष्ठित शासन भी समाप्त हो गया। तीये को पुनः मन्त्रिपद सँभालने के लिए निमन्त्रित किया गया और उसे जिस सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या का सामना करना पडा वह थी मिस्र की समस्या।

यह मिस्र की समस्या क्या थी?

मिस्र के सुप्रसिद्ध पाशा मुहम्मद अली ने अपने सम्राट् तुर्की के सुल्तान की ग्रीक स्वातन्त्र्य-संग्राम मे वडी सहायता की थी। वह अब अपने पुरस्कार की माँग कर रहा था परन्तु सुल्तान अपने शक्तिशाली उपराजा को इधर-उधर की योजनाओं से टालता रहा। तदनन्तर अली ने सीरिया पर विजय प्राप्त कर ली और एशिया माइनर की ओर बढ़ा तथा कोनियेह मे (दिसम्बर, १८३२ को) सुल्तान की सेनाओं को उसने पराजित कर दिया। सुल्तान ने जार से सहायता की प्रार्थना की और जुलाई, १८३३ में उन्कियार-स्केलेस्सी की सन्धि पर हस्ताक्षर हो गये। इसके अनुसार रूस ने तुर्की की सहायता करने का वचन दिया, और बदले में सुल्तान ने अपने सब संकुचित जलमार्गों को पूरी तरह से रूसी युद्ध

बेड़ों के हवाले कर दिया। इंग्लैण्ड को तुर्की के मामलों में रूसी प्रभाव की एकछत्रता पसन्द नहीं थी और उसने सुल्तान की सहायता करने का निश्चय किया। प्रशा तथा ऑस्ट्रिया ने भी उसी नीति का अवलम्बन लिया और ये संयुक्त कार्यवाही के पक्ष में थे। फ्रांस ने मुहम्मद अली का पक्ष लिया और यह सोचा गया कि उसकी विजय पूर्वी देशों मे फ्रांस की प्रभुता को पुनः प्रतिष्ठित कर सकेगी। परन्तु तीये इस दिशा में सक्रिय कदम बढ़ाने में हिचकिचा रहा था। इसी बीच ५ जुलाई, १८४० को इंग्लैण्ड, रूस, प्रशा तथा ऑस्ट्रिया ने लन्दन की सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये, इसमें से फ्रांस को मुहम्मद अली के सहायक और संरक्षक के रूप में बहिष्कृत कर दिया गया। यह निर्णय किया गया कि अली को सुल्तान के समझौता करने के लिए उद्यत किया जाये। फ्रांस के स्वाभिमान को चोट पहुँची; उसकी युयुत्सुनीति अपने चरम पर पहुँच गयी और इस सन्धि को राष्ट्रीय अपमान के रूप में देखा गया। महाशक्तियों के आचरण से कुपित लुई फिलिप ने राजदूतों को अश्वारोहियों के अधिनायक की तरह सम्बोधित किया। उसने कहा, "तुम लोग कृतघ्न दुराचारी हो; तुम युद्ध चाहते हो और शीघ्र तुम्हारी यह कामना पूरी होगी। और यदि आवश्यकता हुई तो मैं व्याघ्र को मुक्त कर दूँगा।" तीये ने लुई फिलिप से युद्ध की घोषणा कर देने की प्रार्थना की, परन्तु स्वयं अपनी ही सुरक्षा को सकटापन्न जानकर वह अपने प्रस्ताव पर दृढ़ न रह सका। इसके अनन्तर उसने त्यागपत्र दे दिया (१८४०) और उसका पदाधिकारी उसका प्रतिरोधी गीजो बना, वह इंग्लैण्ड का परम मित्र और शान्ति का बड़ा प्रेमी था।

तत्काल ही मन्त्रिमण्डल बदल गया। महाशक्तियों ने अब फ्रांस के आत्मसम्मान को पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया, विगत बहिष्कार से फ्रांस को कम व्यथा नही हुई थी। अब इसको कम करने के लिए महाशक्तियों ने संकुचित जलमार्गो के समझौते पर हस्ताक्षर किये (फरवरी, १८४१), इसके द्वारा सभी युद्ध बेड़ों को इन मार्गो में प्रविष्ट होने के लिए मना कर दिया गया। इस प्रकार तुर्की में रूसी प्रभाव पर नियन्त्रण लगाया गया और फ्रांस को पुनः यूरोपीय महाशक्तियों की संयुक्त व्यवस्था में यथोचित पद दिलाया गया। लार्ड पामर्स्टन बेल्जियन मामले की तरह इस बार पुनः आर्लियाँ राजतन्त्र के आत्मसम्मान को चोट पहुँचाने में सफल-मनोरथ हो गया।

जुलाई राजतन्त्र के इतिहास मे १८४० का वर्ष एक महत्त्वपूर्ण निर्णायक वर्ष है। फ्रांस की औद्योगिक समृद्धि ने विकास पाया; राज्य के कोषों मे परोक्ष करों की सहायता से अपेक्षाकृत अधिक धन संचित किया गया; लगान में वृद्धि हुई, विरोधी दलों के आघातों से आन्तरिक प्रशासन को सुरक्षित किया गया और यातायात के साधनो में सुधार हुआ। परन्तु लुई फिलिप की भीरु वैदेशिक नीति फ्रांस की जनता की उदात्त कल्पनाओं को छूने

में समर्थ न हो सकी। ला मार्तीन ने अपने प्रसिद्ध वाक्य मे—'फ्रास को थकाया जा रहा है' (ला फ्रा से'न्नुई)—अपने देशवासियो की तत्कालीन भावनाओं को अभिव्यक्ति दी थी।

लुई फिलिप की इस अतिसामान्य नीति का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि नेपोलियनिक मतवाद अधिकाधिक विकसित होने लगा। एक बार पुनः लुई नेपोलियन वर्त्तमान शासनसत्ता को उलटने के उद्देश्य से अपने कुछ सहयोगियों को लेकर बलौन मे पहुँचा परन्तु उसका प्रयास विफल हुआ और वह पकड़ लिया गया। उसे हैम के कारागृह में बन्द कर दिया, यहाँ से बाद मे वह भाग निकला। परन्तु इस अस्थायी पराभव ने फ्रांसवासियो के नैपोलियनिक मतवाद मे विश्वास पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न डाला। १५ दिसम्बर, १८४० को महान् नेपोलियन के फूल मृतक-प्रासाद (डूम आव दि इन्वैलिड्स) में सुरक्षित रखने के लिए सेण्ट हैलीना से पेरिस लाये गये। यद्यपि भयंकर जाड़ा पड़ रहा था, बर्फ गिर रही थी तथापि सहस्रों जन सड़कों पर निकल आये, वे उस महापुरुष का सम्मान करने के लिए एकत्र हुए थे जिसने फ्रांस को गौरव से मण्डित किया था। ज्वांनवील ने फूल अर्पित करते हुए राजा से कहा था, "श्रीमन्! मैं नेपोलियन महान् के फूल आपको भेंट कर रहा हूँ।" लुई फिलिप ने उत्तर में कहा था, "मै फ्रांस के नाम पर इन्हें अंगीकार करता हूँ।" इस उत्सव का महत्त्व विचारशील महानुभावों से गुह्य न रह सका था।

राज्यशासन के विषय मे फ्रांसवासियों के क्या विचार थे इसका पता हमें लुई ब्ला के इस कथन से साफ लग जाता है, उसने १८४० की घटनाओं का विवरण अपनी पुस्तक इस्त्वार दीजाँ (दश वर्ष का इतिहास) में प्रस्तुत करते हुए हमारा ध्यान इस शासन की मूर्खतापूर्ण तथा बुद्धिशून्य नीति और विदेशी राजशक्तियों के सम्मान एवं विश्वास को न प्राप्त कर सकने की असमर्थता की ओर खीचा है।

इन दश वर्षो की घटनावली का उपसहार करते हुए यह कहा जा सकता है कि फ्रांस-वासी अपने राज्यशासन को स्थायी एवं सुदृढ बनाने में सफल न हो सके। जुलाई राजतन्त्र की स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए इस युगखण्ड में लगभग दस मन्त्रिमण्डलों ने अपना-अपना बल लगाया—और इस प्रयास में उन सबको कटु विफलता ही मिली। फ्रास की अपनी कोई संसदीय परम्परा तो थी नही और फिर तीये तथा गीज़ो के व्यक्तिगत द्वेष ने नीति को अक्षुण्ण न बनने दिया। दोनों दो विरोधी दलों के नेता थे और दोनों ही परस्पर विरोधी संवैधानिक सिद्धान्तों के परिपोषक थे। तीये राजा की स्थिति को एक दर्शनीय अध्यक्ष की बना देना चाहता था और दूसरी ओर गीज़ो इस सिद्धान्त का परिपोषक था कि 'सिंहासन एक शून्य आसन मात्र नही है।' इन महानुभावो के संघर्ष के रहते हुए जो अंशतः वैयक्तिक और अंशतः राजनीतिक था, फ्रास का राजतन्त्र अपने विगत वैभव को पुनः

प्राप्त नही कर सकता था। इतना सब होने पर भी लुई फिलिप अपना मत बलपूर्वक अभिव्यक्त करता था और क्योंकि राजविद्रोह तथा अन्य उपद्रव शक्तिपूर्वक दबा दिये गये थे। वह मन्त्रियों पर अपना मत आरोपित करने का प्रयत्न करता था। तीये के उसके सविधान मे हस्तक्षेपों का विरोध तथा एक वैयक्तिक प्रशासन स्थापित करने के उसके प्रयासों ने कुछ भी सफलता न पायी। राजा के आदर्शों की गीज़ो के आदर्शो से समनुरूपता ने वर्त्तमान समय के लिए राजा की आशाओ को जीवन-दान दे दिया और वह आठ वर्षो तक और राज्यसिहासन पर प्रतिष्ठित रहने मे समर्थ हो गया। परन्तु उसने इस बात का किंचित अनुमान नही किया कि जिस राजनीतिक तन्त्र पर वह गौरव और अभिमान की अनुभूति कर रहा था, वह धीरे-धीरे भूमिसात् होने के लिए लड़खड़ा रहा था।

गीज़ो का मन्त्रिमण्डल (१८४०–४८)

इस समय गीज़ो की आयु ५३ वर्ष थी। वह १७८६ में एक बारह वर्ष का वालक था; १७६४ में जैकोबिनों ने उसके पिता को फाँसी दे दी थी और १८४५ में वह पहली बार पेरिस में आया था। अपनी शिक्षा पूरी करने के पश्चात् वह सौर्बोन में आधुनिक इतिहास का अध्यापक (प्रोफेसर) हो गया था—यह पद बड़े सम्मान एवं ख्याति से युक्त समझा जाता था। कालान्तर मे उसने शिक्षा की सम्मान एवं उल्लास से परिपूरित भूमि के स्थान पर राजनीति की शुष्क एवं कण्टकाकीर्ण मरुभूमि को अपना लिया, और १८४८ तक राज्य-शासन के विविध उत्तरदायित्वपूर्ण पदो पर प्रतिष्ठित रहा। वह प्रोटेस्टैण्ट मत का अनुयायी था, दुबला-पतला छोटे कद का व्यक्तित्व, आँखें कुछ-कुछ विषाद से भरी हुई और एक गम्भीर विद्वतापूर्ण मुखमण्डल; जान पड़ता था कि प्रकृति की आकांक्षा भी उसे विश्वविद्यालय में नियुक्त कराने की ही थी। उसको देखकर एक विदेशी सज्जन ने उसके व्यक्तित्व का विवरण इन शब्दों में दिया था, "वह फेञ्च के एक विश्वविद्यालय के अध्यापक (प्रोफेसर) तथा एक ऐसे अवकाशवृत्ति प्राप्त अभिनेता का सम्मिलन है जिसे रंगमंच के प्रबन्धकों ने अवकाश दे दिया हो," और राशेल नाम की एक अभिनेत्री ने उसे वक्तृता देते हुए सुनकर कहा था, "मैं उस पुरुष के साथ दुःखान्त नाटक की भूमिका में अभिनय करना बहुत पसन्द करूँगी।" डिज़राइ, ली उसके आचार-व्यवहार से अधिक प्रभावित नहीं हुआ था, जो उसके शब्दों में बड़ा "व्यावसायिक, शुष्क, सिद्धान्तानुसारी और उद्दण्ड" था, परन्तु वह उसके व्यक्तित्व की सराहना करता था, जो उसके अनुसार "प्रभावशाली" था, और उसकी "भृकुटि प्रतिभाशाली बुद्धि की द्योतक और एक विलक्षण चमकती हुई आँख" थी। अपने व्यक्तिगत जीवन में वह सदाचारपरायण तथा सच्चरित्र था। शान्ति तथा सुव्यवस्था का प्रेमी था। राज्यशासन के लिए 'बुद्धि तथा तोपों' को साथ-साथ आवश्यक

समझता था। १८२०-३० के वर्षों में उसने अपने इतिहास-दर्शन का निर्माण किया था। इस दर्शन पर वह अपने पूरे बहुमुखी जीवन-पर्यन्त डटा रहा। उसके मतानुसार यूरोप का इतिहास एक धनिक मध्यमवर्ग पर केन्द्रित है और मध्यवर्ग का विकास मानव-समाज में स्वातन्त्र्य के विकास का समानुवर्ती है। अतएव मध्य वर्ग, इस आत्मदम्भी आचार्य के अनुसार, किसी भी राज्य मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है क्योंकि इसी के पास सम्पत्ति है और सम्पत्ति, उसकी दृष्टि में, राजनीतिक शक्ति की द्योतक है। इस वर्ग को प्रोत्साहन एवं सहायता देने का अभिप्राय, उसके विचार मे, राज्य की समृद्धि, कार्यकुशलता तथा अनुशासन की ही वृद्धि करना था। 'विशुद्ध मध्यम मार्ग' शान्ति एवं सुरक्षा के लिए अनिवार्य था। जो नवयुवक उस से परामर्श लेने आते उनसे वह यही कहता, "खूब धन अर्जित करो और तब राजनीति मे पैर रखो" और इस प्रकार से सम्पत्ति पर बहुत अधिक बल देकर उसने सार्वजनिक जीवन के गौरव को नीचा कर दिया था। उसके राजनीतिक विचारों का संक्षिप्त विवरण देना अनावश्यक न होगा। वह, तौकवील के सावधान कर देने पर भी कि मध्यमवर्ग बेईमान और बड़े सकुचित दृष्टिकोण वाला है, इस वर्ग पर बहुत अधिक निर्भर करता था। निर्वाचन-प्रणाली मे सुधार करने का वह समर्थक नहीं था और मजदूरी तथा पूँजी के आपसी झगडों को निबटाना वह राज्यशासन का कर्त्तव्य नहीं मानता था। फ्रांस के लिए उत्कृष्टतम शासनप्रणाली एक संवैधानिक राजतन्त्र था और यह राजतन्त्र का काम था कि वह गति एवं दृढ़ता के सिद्धान्त का समुचित प्रतिनिधित्व करे। वह संसदो का प्रशंसक था और राजनीतिक दलों की सुप्रतिष्ठित व्यवस्था का परिपोषक था। वह क्रान्तियों से बहुत डरता था और उसकी जन्मजात रूढ़िवादिता उदारवादी आन्दोलनों के प्रति उसकी सहानुभूति नही रखने देती थी। उसके अनुसार एक राज-नीतिज्ञ का प्रथम कर्त्तव्य ही यह था कि वह क्रान्ति का दमन करे और प्रशासन का संघटन करे; ईमानदारी एक हितकर नियम है और राज्य मे दृढ़ता को बनाये रखता है। वह समाजवाद को एक 'कपोलकल्पित विचार' मात्र समझता था और अपने 'मेमॉयर्स' में इसके दोषों का उसने उद्‌घाटन किया है। वह १७८९ के सिद्धान्तों के प्रभाव को सर्वथा नष्ट कर डालना चाहता था और व्यवस्थित स्वतन्त्रता के आदर्श का पोषण करता था। वह मताधिकार के क्षेत्र को विस्तार देने का विरोधी था क्योंकि वह इस बात पर विश्वास नहीं कर पाता था कि राज्यशासन के कार्यव्यापार मे प्रत्येक व्यक्ति भाग लेने के योग्य है।

ऐसे प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण को लेकर इस महान् इतिहासवेत्ता ने सर रॉबर्ट वाल्पोल की तरह अपनी ही एक विचारपद्धति का निर्माण कर लिया था, और यह भ्रष्टा-चार के साधनो का आश्रय लेकर अपने आपको शासनसत्ता का प्रभु बना रहने देना चाहता था। संसद के चंचलचित्त सदस्यो को वह नौकरियाँ दिलाने के लोभ में ही अपना अनुचर

बनाये रखता था और उसका कार्यालय सर्वदा पदाभिकांक्षियो की भारी संख्या से घिरा रहता था। सभी प्रकार के आवेदनपत्रों की समीक्षा-परीक्षा प्रधान मन्त्री स्वयं करता था, छात्रवृत्तियों के लिए आवेदनपत्र, औद्योगिक स्वीकृति के लिए प्रार्थनापत्र और उपपदाधिकारी के घर तक पहुँचने वाली पक्की सड़क बनाने का आवेदनपत्र, सभी वह स्वयं देखता था। यह था उसका ढग अपने आपको शासनसत्ता मे प्रतिष्ठित रखने का और अपनी सफलता के लिए वह राजा के साथ अपनी पूर्ण सहमति पर ही विशेष निर्भर करता था। राजा उससे यथेष्ट सन्तुष्ट था और उसने उद्घोष कर दिया था, "वह मेरा मुँह बोला (सहचर) है।"

राजा ने कहा, 'मै युद्ध से घृणा करता हूँ' और मन्त्री ने उत्तर देते हुए कहा, 'फ्रांस के लिए राज्यक्रान्ति और युद्ध उपयोगिताहीन रूढ़ियाँ-मात्र हैं।'

स्वभाव से ही रूढ़िवादी होने के कारण गीजो प्रशासन मे किसी भी तरह के सुधार की आवश्यकता नहीं समझता था। उसने अपनी नीति इन शब्दों मे प्रस्तुत की थी, "मध्यवर्गों के प्रभुताशाली प्रभाव के साथ एक स्वतन्त्र प्रशासन की प्रतिष्ठापना और स्वातन्त्र्य की उपलब्धियों को दृढ़ करना।" यह केवल एक घोषणामात्र थी और इससे अधिक कुछ भी नहीं। जनमत का उसके लिए कोई मूल्य नही था और राजकीय मामलों की व्यवस्था वह कार्यालयो के विभाजन द्वारा ही कर देता था क्योकि फ्रास मे इग्लैण्ड की तरह कोई स्थान-विधेयक (प्लेस-बिल) नही था। सब तरह के लाइसेन्स, पर्मिट, नौकरियाँ, ठेके और व्यापारिक अधिकार राज्यशासन के सहायकों-समर्थकों को ही दिये जाते थे और मतदाताओं का नैतिक पतन करने का कोई भी उपाय छोड़ा नहीं गया था। आर्थिक दशा अच्छी नही थी और भूमिकर का संशोधन किया गया तो ग्रामीण क्षेत्रों मे उसका पर्याप्त विरोध हुआ। प्रतिनिधियों को अपनी स्वार्थ-सिद्धि एवं समृद्धि के लिए राज्यशासन पर निर्भर करना पडता था। इसलिए वे मन्त्रिमण्डल के प्रत्येक आदेश का क्रियात्मक समर्थन करते थे। "घोषणापत्र (चार्टर) क्या है?" १८४१ मे एक प्रतिनिधि ने यह प्रश्न किया था। "यह एक ऐसा बड़ा बाजार है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति किसी नौकरी या पद के वदले मे अपनी अन्तरात्मा अथवा अन्तरात्मा के नाम पर जो कुछ भी उसके पास है उसका सौदा करता है।" ससदीय रूपो की अभी रक्षा की जाती थी परन्तु उनका दूषित कार्यो के लिए दुरुपयोग किया जाता था। गीजो की नीति का स्वाभाविक परिणाम न केवल गत्यवरोध ही हुआ वरन् भ्रष्टाचार भी, यह तथ्य बहुत ही खेदजनक था क्योंकि मन्त्री स्वयं अपने व्यक्तिगत जीवन में कठोर नैतिकता का पालन करता था और ईमानदारी तथा सत्यता पर दृढ़ था। समाजवादी और गणतन्त्रवादी (रिपब्लिकन) घोषणापत्र की निन्दा करते थे और राज्यशासन की निष्क्रियता की कटु

आलोचना करते थे। ससद मे तीये विरोधी दल का नेता था, इस दल में मध्यमवर्ग के असन्तुष्ट उदारमना जन थे। यहाँ तक कि ला मार्तीन जैसे महानुभाव भी जो केवल पेशेवर राजनीतिज्ञ नहीं थे प्रशासन की घोर निन्दा करते थे। इन लोगों ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा कर दी थी कि इस वर्त्तमान पीढी को जो अब विकसित हो रही है गतिशीलता की परम आवश्यकता है और यह भी कि फ्रास एक शिथिल एव निष्क्रिय राष्ट्र है। उसने गीजो की इस नीति का सबल खण्डन किया कि किसी भी मूल्य पर शान्ति की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। उसने बुर्जुआवर्ग पर नैतिक तथा बौद्धिक आलस्य का आरोप लगाया जो सब दोषों की जड़ थी। उसने तत्कालीन प्रशासन का विवरण इन शब्दो में प्रस्तुत किया है जो एक साथ ही चित्र भी खींच देते है और मार्मिक व्यंग्य भी करते है—

"राजकीय मामलो की दिशा बतलाना ही यदि एक राजनीतिज्ञ से आशा की जाने वाली समग्र प्रतिभा है, तो राजनीतिज्ञ की कोई आवश्यकता ही नही है—एक मील-पत्थर ही सारा काम कर देगा।"

यह मील पत्थर वह इतिहासकार-मन्त्री स्वयं था।

जुलाई एकतन्त्र की वैदेशिक नीति (१८३०—४८)

गीजो तथा लुई फिलिप उस गौरव को पुन: प्रतिष्ठित करना चाहते थे जो पामर्स्टन की नीति के कारण काफ़ी क्षीण हो गया था। यह पहले बतलाया जा चुका है कि फ्रास का राजा अपने द्वितीय पुत्र दयूक दे नीमूर्स को बेल्जियम के राजसिंहासन पर बैठाना चाहता था परन्तु इंग्लैण्ड के विरोध के कारण यह प्रस्ताव सफलीभूत न हो सका। सेक्सकोबर्ग के लियोपोल्ड को महाशक्तियो के संरक्षणत्व मे निर्वाचित किया गया था और लुई फिलिप का मन्त्रालय इस पर काफी व्यग्र हुआ था। तुर्की-मिस्री समस्या का हल भी फ्रास के पक्ष में ढूँढ़ा जा चुका था और जनमत राजा की अस्थिर तथा डरपोक नीति से अत्यधिक निराश हो चुका थी। वैफल्य की कष्टकर भावना से पीड़ित लुई फिलिप ने अपनी महत्त्वाकांक्षाओं का केन्द्र आइबीरियन (स्पेन तथा पुर्तगाल) प्रायद्वीप को बनाया जहाँ उसे अपनी राजनीतिक एवं राजवंशीय अभिकांक्षाओं के लिए एक नया क्षेत्र मिल गया।

१८२६ में पुर्तगाल के जॉन छठे की मृत्यु के पश्चात् ब्राजील के सम्राट दॉम पेद्रो ने अपनी पुत्री दौन्ना मारिया के पक्ष मे अपने दावे वापस ले लिये। इसी नारी को पुर्तगाल की रानी बनना था। उसके पितृव्य दॉम मिग्विल को संरक्षक का कार्यभार सौंपा गया। उसने जून १८२६ मे अपने आपको ही राजा उद्घोषित कर दिया और वहाँ आतंक का एकच्छत्र राज्य प्रतिष्ठित कर दिया। उसके अनियन्त्रित एवं मुक्त अत्याचारों ने देश में बड़ी गम्भीर परिस्थिति उत्पन्न कर दी और संविधानवादियों के सदण्ड-दमन ने राज्य-

शासन के ऊपर से उदार दल वालो का विश्वास नितान्त हटा दिया। डॉम पेद्रो ने ब्राज़ील के सम्राट् पद का परित्याग अपने पुत्र पेद्रो द्वितीय के पक्ष में कर दिया और जुलाई १८३२ में पुर्तगाल लौट आया। यहाँ आने का उसका उद्देश्य था इंग्लैण्ड तथा फ्रांस की सहायता से अपनी पुत्री को उसकी वैधानिक पितृशासन परम्परा लौटवा कर देना। वह अपने उद्देश्य में सफल मनोरथ हुआ और १८३३ मे मिग्युऐल का पराभव कर दिया गया।

लगभग इसी समय २६ सितम्बर १८३३ को फर्डिनैण्ड की मृत्यु के कारण स्पेन का राजसिंहासन रिक्त हो गया था। वह एक विधवा युवती, दो पुत्रियाँ इज़ाबेला और लुइसा तथा एक भाई दॉन कार्लो को छोड़कर मरा था। सैलिक विधान के अनुसार दॉन कार्लो अपने भाई की मृत्यु के पश्चात् राज्यसिंहासन का उत्तराधिकारी बनने की आशा करता था; क्योंकि इस विधान के अनुसार कोई स्त्री स्पेन के राज्यासन पर नही आसीन हो सकती थी, न ही कोई ऐसा पुरुष सिंहासन का अधिकारी हो सकता था जो अपने मातृपक्ष से उसका उत्तराधिकारी हो। परन्तु अपने जीवन-काल में ही फर्डिनैण्ड ने उस विधान को अपनी धृष्ट स्वीकृति के द्वारा रद्द कर दिया था और इज़ाबेला को उसकी माता क्रिस्चियना के संरक्षकत्व मे स्पेन की रानी उद्घोषित कर दिया था। दॉन कार्लो इस 'स्त्रैण अपहरण' के कार्य से बड़ा कुपित हुआ और ४ अक्तूबर, १८३३ को उसने अपने आपको स्पेन का राजा घोषित कर दिया। उदार दल वालों के समर्थन को बनाये रखने के लिए क्रिस्चियना ने स्पेन के लिए एक संविधान की स्वीकृति अपने मन्त्री मार्तिनेज़ दे ला रोज़ा के परामर्श पर १० अप्रैल, १८३४ को दे दी। साथ ही साथ पाश्चात्य शक्तियों के साथ मैत्री की वार्ताऐं भी आरम्भ कर दी गयी और पुर्तगाल के संवैधानिक दल के साथ भी दोनों पितृव्यों को निकाल भगाने की वार्ताएँ चलायी गयी। ये प्रयास सफल हुए और लन्दन में (२२ अप्रैल, १८३४ को) एक चतुर्मुख मैत्री सन्धि पर हस्ताक्षर हो गये। यह सन्धि इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्पेन तथा पुर्तगाल में हुई थी और दोनों बलापहारियों को अपने कुकर्म के प्रायश्चित के लिए कुछ समय दे दिया गया। एवरा की सन्धि (मई, १८३४) के अनुसार डॉम मिग्युएल ने पुर्तगाल के राजसिंहासन पर से अपने सभी अधिकार वापस ले लिये और जनहित में देश को छोड़ने के लिए तैयार हो गया। डॉन कार्लो ने इंग्लैण्ड में शरण ली जहाँ से वह बाद में फिर स्पेन की ओर बढ़ा था और वहाँ उसने युद्ध की ज्वालाएँ भड़का दी थीं जो १८३६ में पूर्णतः शान्त हुईं जब उसके अनुचरो ने निन्द्य आत्मसमर्पण कर दिया था।

यद्यपि अपने शत्रुओं को पराभूत करने में विधवा रानी सफल हुई थी परन्तु वह अपनी प्रजा का सहयोग न प्राप्त कर सकी। उसके व्यक्तिगत जीवन की अफवाहों ने उसके सामाजिक जीवन पर भी बड़ा बुरा प्रतिभाव डाला और अन्ततः उसे संरक्षकता का

परित्याग और देश का भी परित्याग करना पडा (अक्तूबर, १८४०)। राजनीतिक दलों के आपसी सघर्षो के कारण प्रशासन-चक्र धुराविहीन हो गया और इन परिस्थितियों मे एक संरक्षक भी नियुक्त नही किया जा सकता था। युवा रानी को वयस्क घोषित कर दिया गया और नियमानुसार उसे राजसिहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया गया। थोड़े ही समय के अनन्तर उसकी माँ भी लौट आयी और नरम (मॉडरेट) दल की सहायता से वह पुनः अपने सरक्षक-पद पर प्रतिष्ठित हो गयी। इस प्रकार एक सुदृढ राज्यशासन की स्थापना हो गयी।

१८४३ मे महारानी विक्टोरिया तथा उसके पति ने लार्ड अबर्दीन के साथ इग्लैण्ड तथा फ्रास की पारस्परिक मैत्रीपूर्ण भावनाओ को सुदृढ बनाने के लिए फ्रास का भ्रमण किया। उनका बहुत सम्मानपूर्ण स्वागत हुआ। राजा के 'उल्लास एव विलास' ने इंग्लिश महारानी के सन्तोष तथा मनोरंजन की पर्याप्त पूर्ति की। दोनों देशों के हितों से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार-विमर्श हुआ और अन्त में सितम्बर, १८४३ मे एक मैत्रीपूर्ण सन्धि (आतान्त कॉर्दियल) की प्रतिष्ठा कर दी गयी। गीज़ो ने किंचित् आत्मश्लाघा के स्वर मे उद्घोषणा की, "मै जोन ऑव आर्क की तरह नहीं हूँ क्योंकि उसने अंग्रेजो को फ्रांस से निकाल बाहर किया था जबकि मैने इग्लैण्ड तथा फ्रांस के बीच शान्ति की प्रतिष्ठा की है।" लियोपोल्ड का भी यही विचार था कि महारानी का यह आगमन १८४० से उत्पन्न हुए रोष एवं व्यग्रता को समाप्त करने में सहायक होगा। इन उल्लासपूर्ण घटनाओं के पीछे राजनीतिज्ञों के मागलिक उद्देश्यों को सर्वथा शक्तिहीन एवं विफल बना देने वाला घटनाचक्र बड़ी त्वरा से आगे बढ़ा जा रहा था।

स्पेन की मुग्धा रानी इस समय अपने सोलहवें वर्ष में थी। उसका तथा उसकी बहिन का विवाह बड़े ऐतिहासिक महत्त्व के विषय थे। यूट्रेक्ट की सन्धि (१७१३) की शर्तों का उल्लंघन करते हुए लुई फिलिप तथा गीज़ो की कामना थी कि इज़ाबेला का विवाह किसी बूर्बो राजकुमार के साथ ही होना चाहिए—वह राजकुमार चाहे फ्रांस का हो या (नेप्ल्स का) नियोपोलिटन हो। इंग्लैण्ड इस प्रकार के वैवाहिक सम्बन्ध के विरुद्ध था क्योंकि इससे यूरोप में शक्ति का सन्तुलन विक्षिप्त होता था। महारानी विक्टोरिया के चचेरे भाई कोबुर्ग के ड्यूक के पुत्र राजकुमार लियोपोल्ड का नाम भी इस प्रसंग में सुझाया गया, परन्तु ब्रिटिश राज्यशासन ने इसका सबल समर्थन कर दिया। राजमाता ने यह अभिलाषा प्रकट की कि वह कोबुर्ग राजकुमार के पक्ष मे तभी होगी जब फ्रांस के साथ यह वैवाहिक सम्बन्ध पूर्ण न हो सकेगा। सितम्बर, १८४५ में महारानी विक्टोरिया ने पुनः इयु में फ्रांसीसी राजा से भेंट की और अबर्दीन तथा गीज़ो में यह समझौता हो गया कि इजाबेला अपने दूर के भाई सेविल के ड्यूक हेनरी के साथ विवाह करे और रानी की छोटी

बहिन लुई फिलिप के कनिष्ठ पुत्र माँ पाँसिये के ड्यूक के साथ व्याही जाये, परन्तु यह दूसरा विवाहकर्म तब तक सम्पन्न न हो जब तक रानी विवाह न कर ले और उसके सन्तान न हो जाये। कदाचित् यह समझौता क्रियात्मक रूप मे परिणत किये जाने के लिए ही किया गया था। परन्तु मैड्रिक राजसभा में स्थित ब्रिटिश राजदूत बुल्वर तथा फ्रांस के राजदूत दे ब्रेस्साँ के आपसी विरोध ने परिस्थिति को वदल दिया। राजमाता से यथोचित प्रोत्साहन पाकर बुल्वर ने कोबुर्ग राजकुमार के विवाह की वार्त्ता चला दी और लार्ड अबर्दीन को आगामी आदेशो के लिए लिख भेजा। लार्ड ने निषेधात्मक उत्तर दिया और उसकी योजना को अमान्य बतलाया। परन्तु अबर्दीन के बाद उसका पदभार सँभालने वाले लार्ड पामर्स्टन ने बुल्वर को अपने एक पत्र मे आदेश दिया कि वह 'विवाह के लिए उत्सुक किसी भी प्रार्थी को अपना सक्रिय सहयोग न दे' परन्तु साथ ही यह भी जोड़ दिया कि केवल तीन प्रार्थी ही इस क्षेत्र मे है—सेविल और कैडिज़ के ड्यूक तथा कोबुंग का राजकुमार। इस पत्र की एक प्रतिलिपि फ्रांस को भी भेज दी गयी और जव लुई फिलिप को इस पत्र के प्रतिपाद्य विषय का पता चला तो उसने इसे अबर्दीन समझौते का उल्लंघन कहा। लार्ड पामर्स्टन ने सितम्बर में बुल्वर को लिखा कि "हमें साहसपूर्वक कोबुंग का पक्ष ले लेना चाहिए और फ्रांसीसियों के प्रतिरोध मे भी इसका समर्थन करते जाना चाहिए।" उसने यह भी लिख दिया कि स्पेनिश राज-परिवार मे किसी फ्रांसीसी राजकुमार का विवाह स्पेन की स्वतन्त्रता में परम बाधक होगा। गीज़ो के परामर्श पर रानी का विवाह शीघ्रता में कैडिज़ के ड्यूक के साथ निश्चित कर दिया गया। वह सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ के रूप में काफी कुख्यात हो गया था ; और रानी की बहिन का विवाह, जो अनुमानित उत्तराधिकारिणी थी, माँ पाँसिये के ड्यूक के साथ निश्चित कर दिया गया। लुई फिलिप कुछ ऊँचे दाँवों पर खेल रहा था। उसका खेल था—रानी के जव कोई सन्तान न होगी तो उसकी बहिन राजसिंहासन की अधिकारिणी बनेगी और इस प्रकार से दोनों राज्य संयुक्त हो जायेंगे। १० अक्तूबर, १८४६ को ये विवाहोत्सव सम्पन्न हो गये। पामर्स्टन को इस कुख्यात कार्यवाही पर बड़ा दुःख हुआ, और महारानी विक्टोरिया की समझ में यह नहीं आ रहा था कि फ्रांस का राजा इंग्लैण्ड के साथ अपनी मैत्री को "व्यक्तिगत तथा पारिवारिक अभ्युदय के एक सन्दिग्ध स्वार्थ" के लिए क्योंकर समाप्त कर सकता था। उसको आश्चर्य हो रहा था कि लुई फिलिप उस कलंक से क्योंकर अपरिचित रह गया जो इस अवमानपूरित षड्यन्त्र का अनिवार्य परिणाम होगा। कहा जाता है कि जब महारानी की अस्वीकृति के विषय में फ्रांस के राजा को सूचना मिली तो उसने ताँकेविल से कहा था, "महारानी इस विषय में मुझपर क्रुद्ध हो गयी है, परन्तु ये झिड़कियाँ तो मुझे अपने चुने हुए मार्ग पर आगे बढने से विरत नहीं कर सकतीं।" लुई फिलिप का विचार जो भी रहा हो आँतान्त

कार्दियेल (मैत्रीपूर्ण समझौते) का अब अन्त हो चुका था।

फ्रांस के राजा तथा उसके मन्त्री की स्पेनिश नीति एक भयंकर भूल थी। फ़ाइफ़ ने इस प्रसंग में ठीक ही लिखा है कि, "इतिहास के भावी स्वार्थ ने अपनी प्रगतिदिशा का उपहास किया था; इसके तात्कालिक परिणाम ऑर्लियां के राजपरिवार के लिए पूर्णतः घातक थे।" वंशीय स्वार्थों के लिए इंग्लैण्ड की मैत्री का बलिदान कर दिया गया था और इस प्रसंग मे निन्दा का अधिकांश गीज़ो के राजभक्त सिर पर रखा गया, क्योंकि उसने इस कलंकपूर्ण कृत्य मे सक्रिय भाग लिया था। इंग्लैण्ड के प्रभाव का प्रतिसन्तुलन करने के लिए ऑस्ट्रिया के साथ एक मैत्रीसन्धि स्थापित करने की उसकी इच्छा सर्वथा मिथ्यानुमान पर आश्रित नहीं थी। लार्ड पामर्स्टन यूरोप में राष्ट्रीयता का अग्रदूत बनकर आया था और उसका उदार विचारों का शपथपूर्ण समर्थन तथा जिस सुस्पष्ट ढंग से वह किसी भी पक्ष का सक्रिय अनुमोदन करने लगता था ये कार्य प्रतिक्रियावादी क्षेत्रों में बड़ी व्यग्रता उत्पन्न कर रहे थे। परन्तु इससे पहले कि कोई भीषण दुर्घटना हो जाये जुलाई राजतन्त्र तथा उसके मन्त्री दोनों को ही एक राज्यक्रान्ति ने अपदस्थ कर दिया।

> लुई फिलिप की वैवाहिक नीति का मूल्यांकन ला मर्तीन ने इन शब्दों में किया है—"स्पेनिश विवाह ही लुई फिलिप के पतन के साक्षात् कारण थे। मैंने सदा यही कहा है कि उसके विनाश का कारण स्वार्थपूर्ण उद्देश्य ही बनेगा। इसने उसे राजनीति के उस पथ पर ला दिया जिसे देश सहन नहीं कर सकता था। राज्य-शासन को शीघ्र ही अवसर मिलेगा जब वह स्पेन सम्बन्धी इस नीति को राष्ट्रविरोधी घोषित करेगा।"[१]

मिस्टर सीटन वाट्सन का इस विषय में भिन्न मत है। उसका कहना है कि लार्ड पामर्स्टन ने वैवाहिक प्रश्न को अत्यधिक महत्त्व दे दिया और इसका उत्तरदायित्व निस्सन्देह उसी पर होना चाहिए। यदि लार्ड अबर्दीन उसके स्थान पर होता तो यह भ्रान्ति क्षणों में नष्ट हो जाती। पामर्स्टन के शुष्क व्यवहार से गीज़ो को पर्याप्त कष्ट हुआ था और यह उसकी वैयक्तिक भावना ही थी जिसने उसे परिस्थिति को गम्भीरतर बनाने के लिए विवश कर दिया। इस विद्वान् इतिहासकार ने लिखा है—

> "इतिहास का निष्पक्ष निर्णय निस्सन्देह यही होगा कि लुई फिलिप पर उस समय और उसके बहुत समय बाद तक लगाये गये घोर प्रवंचना और विश्वासघात के अभियोग मुख्यतः एक भ्रान्ति पर आश्रित थे।"[२]

१. मोवा, पृ० ११६।
२. सेटन-वाट्सन : ब्रिटन इन यूरोप, पृ० २४६।

शायद ही कोई इतिहासवेत्ता मिस्टर सीटन वाट्सन के इस निष्कर्ष का समर्थन करने के लिए तैयार हो।

जुलाई राजतन्त्र की एकमात्र उल्लेखनीय विजय अल्जीरिया की विजय थी। यह एक सुदीर्घ संघर्ष के उपरान्त १८४८ में पूर्ण हुई थी। अल्जीरिया के वीर नायक अब्दुल क़ादिर ने २३ दिसम्बर, १८४७ को ओमली के ड्यूक के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और दूसरे ही दिन उसने अधीनता स्वीकार कर ली। ड्यूक ने उसे रक्षा करने का वचन दिया और उसे विश्वास दिलाया कि भूत को विस्मरण कर दिया जायेगा।

१८३० की राज्यक्रान्ति के बाद से स्विज़रलैण्ड मे सुधारो के लिए महान् आन्दोलन हो रहा था। संयुक्त संघ अव्यवस्थित व्याकुलता के संकट में पड़ा हुआ लगता था। इस समय दो विचारधाराएँ प्रचलित थी—पहली का प्रतिनिधित्व 'प्रगतिशील कैण्टन" कर रही थीं जो सुधार और एक उदार संविधान की माँग करती थी। दूसरी का प्रतिनिधित्व सांत कैथोलिक कैण्टन करती थीं जिन्होंने परस्पर 'सौन्दरबण्ड' (पृथक् संघ) की स्थापना कर ली थी (१८४३)। इस संघ के उद्देश्य थे—शिक्षा का कार्यभार पुरोहितों को सौंपा जाय, जेसुइट लोगों की और मठव्यवस्था की रक्षा की जाये और १८१५ के संघात्मक रूप को सुरक्षित रखा जाये। कैथोलिक-मध्ययुगीन रुचियों को अक्षुण्ण रखने के इस प्रयास का उदार दलवालों ने घोर प्रतिरोध किया। लुई फिलिप तथा गीज़ो रूढ़िवादी कैण्टनों के पक्ष में थे, परन्तु फ्रांस की राष्ट्रीय सहानुभूति विपरीत पक्ष के प्रति थी।

रूढ़िवादी कैण्टनों को ऑस्ट्रिया से सहयोग मिलता था और इंग्लैण्ड उदार दल वालों को प्रोत्साहन देता था। लार्ड पामर्स्टन यूरोप में उदार आन्दोलनों का अग्रदूत था और इसके अतिरिक्त वह फ्रांस की राजसभा को लुई फिलिप की सैनिक नीति के प्रति अपनी अप्रसन्नता भी जतलाना चाहता था। प्रगतिशील शक्तियाँ सफल हो रही थी और लुई फिलिप तथा गीजो की योजनाएँ विस्फुटित होती जा रही थीं। इस विषय में भी ऑर्लियां राजतन्त्र के सम्मान पर एक गहरा धब्बा लग गया था।

फ्रांस की १८४८ की राज्यक्रान्ति

जबसे गीज़ो उच्चपद पर प्रतिष्ठित हुआ था वह संसदीय सुधारों और मताधिकार के विस्तार का विरोधी बन रहा था। अधिक प्रतिभाशाली जन जो प्रशासन में भाग लेना चाहते थे, तत्कालीन परिस्थितियो से बहुत असन्तुष्ट थे। इन परिस्थितियों को संक्षेप में इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है। मताधिकार का क्षेत्र पर्याप्त परिमित था; संसदीय जीवन भ्रष्टाचार से पूर्ण था; फ्रांस में पदविधेयक (प्लेस-बिल) का अभाव होने से प्रतिनिधियों के तृतीयांश से भी अधिक राज्यपदों पर प्रतिष्ठित थे और इनमें से कुछ

राजकीय परिवार के सम्बद्ध कर्मचारी (अटैची) थे ; सदस्यता मुख्यतः धनिक वर्गों में ही परिसीमित थी और इसने संसद को राष्ट्र की एक प्रतिनिधि-सभा बनाने के स्थान पर 'पूँजीपतियों की एक मण्डली-मात्र' बना दिया था। जिन्हे सार्वजनिक अधिकारों के अग्रनायक बनना चाहिए था वे राजतन्त्र के उपजीवी बने हुए थे और इसीसे नियन्त्रित थे; ब्रिटिश संसद में प्राप्त हिज़ मैजस्टीज आपोज़ीशन (तत्रभवान् सम्राट् का विरोधी दल) के ढंग की कोई भी चीज नहीं थी जो कार्यकारिणी के कर्मों पर किसी प्रकार का अंकुश रखे; मन्त्रिमण्डल अथवा संसद में राष्ट्र का किंचित् विश्वास नहीं रह गया था और निर्वाचनों को जनता बड़ी सन्दिग्ध उदासीनता से देखती थी जिनका उपयोग धनिक षड्यन्त्रकारी अपने लाभ के लिए करते थे। लुई फिलिप के शासन के अन्तिम वर्षों में फ्रांस की राजनीति की यह दशा हो गयी थी। भ्रष्टाचार बहुव्यापक हो गया था और अनेक राजकीय न्याय-जाँचों ने प्रशासन के यथार्थ स्वरूप का प्रकटीकरण कर दिया था। ला मर्तीन सभी विरोधी तत्त्वों का केन्द्र-बिन्दु बन गया। १८४७ मे उसने आठ भागों में 'ज़ीरोन्दिस्तो का इतिहास' प्रकाशित किया, इसमें इस कवि-इतिहासकार ने जीरोन्दिस्तो के उदात्त गुणो का चित्र बड़े उत्साहपूर्ण और चित्रसम स्पष्ट शब्दावली मे प्रस्तुत किया। फ्रांस उसके 'दीप्तिमान आह्लाद' से अतिचकित था और स्त्रियाँ तथा पुरुष विस्मय एवं उल्लास से वर्नियों, बुज़ो, मदाम रोलां तथा क्रान्तिकारी युग के अन्य जीरोन्दिस्त नेताओं के वीरतापूर्ण कर्मो का विवरण पढते थे। मिशले और लुई ब्लां ने सर्वसाधारण की भावनाओं को उत्तेजित करने के लिए इतिहास का आश्रय लिया। मिशले ने फ्रांस का विवरण एक ऐसे सजीव और गतिशील प्राणी के रूप मे दिया जो मानव-समाज के स्वातन्त्र्य एव आनन्द के लिए अपना रक्त बहा रहा था, और लुई फिलिप तथा गीजो का चित्रण षड्यन्त्रकारी, अयोग्य स्वार्थसाधकों के रूप में किया जो राष्ट्र के सम्मान को घटा रहे थे और जनमत को बर्गला रहे थे। राज्य के पदाधिकारी कपट-कर्मो में ही व्यस्त रहते थे, सैनिक भोजनालयों (बेकरीज़) के मुख्य-अधिकारी (सुप्रिण्टैण्डैण्ट) ने सार्वजनिक धन का दुरुपयोग किया था; एक नाटचशाला के संचालक ने अपने लाइसेन्स की पुनरावृत्ति के लिए भारी धनराशि उत्कोच रूप में दी थी। सबसे बड़ा दुराचारपूर्ण कर्म था 'टेस्ट केस'। इसने लुई फिलिप तथा उसके मन्त्रियों को घृणा का भाजन बना दिया। इसमे अभियुक्त था कूर दे कस्सासियो का अध्यक्ष तथा राज्यशासन का एक भूतपूर्व मन्त्री। उसने एक नमक की खान को एक सुविधा देने के लिए ९४,००० फ्रांक की उत्कोच ली थी। उस पर मुकदमा चला और लुई फिलिप के अनुचित सहानुभूति के होते हुए भी उसे दण्ड मिला। इसके अनन्तर मार्शल सबिस्त्यानी की एकमात्र पुत्री डच्सेस दे प्रस्लाँ का वध (१८ अगस्त, १८४७) उसी के पति ने अपने पुत्रों की नर्स की सहायता

से कर दिया। जनता का रोष उत्तेजित हो उठा और ड्यूक अपने ही घर में कुपित जन-समुदाय से घिर गया। यह समुदाय "एक ड्यूक तथा एक पियर के सिर को देह से अलग लुढकता हुआ और अभिजात रक्त को बहता हुआ देखना चाहता था।" परन्तु वधकर्त्ता आत्महत्या करके उनके हाथों से निकल भागने में समर्थ हो गया, और राज्यशासन ने जनमत के सन्तोषार्थ अभियुक्त पर मृत्यु के पश्चात् मुकदमा चलाया। अभिजातवर्ग के प्रति लोगों की घृणा बढ गयी थी; राजपरिवार का अपमान किया जाता था; और माँ पाँसिये का ड्यूक एक सुसज्जित यान में बैठकर विन्सेन गया तो जनता क्रोध मे चिल्ला उठी—"लुटेरों का विनाश हो।" परन्तु न गीजो और न उसका मन्त्री ही युग के स्वरों को सुस्पष्टतः समझ सका और ये लोग हठपूर्वक अपनी प्रतिरोध की नीति पर डटे रहे। वे लोग क्रान्तिकारी प्रचार के समुचित बल का ठीक अनुमान कर ही नही सके।

जनमत को अपने पक्ष मे जीतने के लिए विरोधी दल ने सहभोजो का आश्रय लिया और ९ जुलाई को शातो दे रूज पर १२०० अभ्यागत एकत्र हुए और राज्यशासन से सुधारो की आवश्यकता पर निवेदन किया। तदनन्तर अन्य सहभोज हुए और ला मार्तीन तथा तीये ने गीजो की नीति की घोर निन्दा की। राजा ने इस अवसर पर अपनी बुद्धि का परिचय नहीं दिया और विरोधियों को "राज्यशासन को धमकियाँ देने का प्रयत्न करने वाले बदमाशों" का अविचारित अभिधान देकर उसने उनको क्रुद्ध कर दिया। आन्दोलन शीघ्र ही नेताओं के नियन्त्रण से बाहर हो गया। राष्ट्रीय सुरक्षा सेना उपद्रवकारी बन गयी और राजद्रोहियों को सम्पत्ति की लूट-खसोट करने से रोकती नही थी। सेनाओं ने पहले तो वीरतापूर्वक संघर्ष किया परन्तु वे उत्तेजित जनसमुदाय को चिरकाल तक रोक न सकी। संसद में बडी उत्तेजना का दृश्य उपस्थित हुआ। किसी भी दिशा से किसी भी प्रकार का सहयोग न पाकर और क्रुद्ध जनसमुदाय का प्रतिरोध करने में असमर्थ होकर गीजो ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। तीये मन्त्री बनाया गया परन्तु वह व्यवस्था कायम करने में असफल रहा। त्विलरीज के राजप्रासाद को लूट लिया गया और लुई फिलिप ने अपने आपको बड़ी संकटग्रस्त दशा में पाया। वह बिलकुल होश खो बैठा और यह न समझ सका कि संकट को क्योंकर सुलझाये। सिंहासन-त्याग ही अब एकमात्र उपाय रह गया था; उसने बड़ी शीघ्रता में अपने पौत्र काउन्त दे पारी के पक्ष में अपने सिंहासन-त्याग पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये परन्तु इससे भी क्रुद्ध जनसमुदाय का कोप कम न हुआ। संसद के इर्दगिर्द 'गणतन्त्र की विजय हो' (विवला रेप्यिब्लीक) के स्वर गूँजने लगे और जब ये उपद्रव अत्यधिक बढ़ गये तो नेताओं ने होतेल द वील में शरण ले ली, और क्रान्तिकारी राजद्रोहियों ने उनका अनुगमन किया। श्री और श्रीमती विलियम स्मिथ के छद्मवेष में राजा तथा रानी इग्लैण्ड भाग गये। भागते हुए जब त्रियाना मे राजा घोड़े बदलने के

लिए रुका तो सुना जाता है उसने धीरे-धीरे ये शब्द बड़बड़ाये थे, "अधमतर, दसवें चार्ल्स से भी अधिक बुरा। चार्ल्स दशम से सौ गुना अधिक बुरा।" वह इस बारे में पूर्णतः सही था।

१८४८ की राज्यक्रान्ति के पतन ने जुलाई राजतन्त्र को पदच्युत किया था। इसके पतन के ऊपर विवेचित किये गये कारणों के अतिरिक्त दो अन्य कारण भी थे जो उल्लेख-योग्य हैं। वे है नेपोलियनवाद और समाजवाद। फ्रास ने नेपोलियन के मतवाद को स्वीकार कर लिया था और तीये तथा विक्टर ह्यूगो ने कुछ अन्य लोगों के भी सहयोग से अपने भाषणों तथा लेखो के द्वारा फ्रांस में नेपोलियन के पक्ष मे एक शक्तिशाली भावना का संचार कर दिया था। तीये ने अपने बारह खण्डों में लिखे गये 'साम्राज्य तथा शासक मण्डल के इतिहास' में पराजित सम्राट् के प्रशस्तिगान भर दिये थे और राज्यशासन मे परिवर्तन करने के लिए उसने आकांक्षा को उत्तेजित कर दिया था। फ्रांस का मन अब भूतयुग की सुखद यात्रा करने लगा और गर्वपूर्वक उन दिनो का स्मरण दिलाता था और दुःखी भी होता था जब नेपोलियन ने राष्ट्र पर गौरव और सम्मान का मुकुट सजाया था और यूरोप भर में उसका नाम गुँजा दिया था। लुई फिलिप का राज्यशासन तुलना में बड़ा दीन और हीन जान पड़ता था। निस्सन्देह जैसा ला मार्तीन ने कहा था, 'ला फ्रांस सेन्नुये' (फ्रांस थकाया जा रहा है)।

जुलाई राजतन्त्र के विनाश का कारण बनने वाली दूसरी शक्ति थी समाजवाद। सभी औद्योगिक केन्द्र कलह और कटुता से भरपूर थे ; श्रमिक वर्ग असन्तुष्ट और भूख से तिलमिलाये हुए थे और १८४६-४७ की बुरी फसलों और बाढ़ों ने उनके कष्टों को बहुत बढ़ा दिया था। निम्न मध्य वर्गों की स्थिति महाविक्षोभ से भरी हुई थी और १८४७ में एक समकालीन ने लिखा था कि ये वर्ग अब बहुत महत्त्वपूर्ण बनते जा रहे थे।

इस प्रकार की परिस्थितियों में समाजवादी विचारों को पनपने का बड़ा अनुकूल प्रदेश मिला। ये विचार फ्रांस के लिए कोई नये नहीं थे। चिरकाल से देश के अभिजात मण्डलो (सालोन) में तथा शिक्षित गोष्ठियों (अकेडमी में) इन पर वाद-विवाद होता रहा था और अब ये फ्रांसीसी जनता की संयुक्त सम्पत्ति बन गये थे। इस प्रकार के विचारों को अभिव्यक्ति देने वालों में रूसो सब से पहला था। १७५४ में 'दिस्कुर स्युर लोरिज़िन दे लि' नेगालित पर्मी ले' ज़ेम्म" (मानव समाज में असमानता की उत्पत्ति के विषय में विचार) नाम की पुस्तक प्रकाशित हुई, इसमें उसने बतलाया कि असमानता ही सब बुराइयों की जड़ है। उसीके विचार-चिह्नों पर मारेल्ली, मब्ली और बोब्युफ तथा सेण्ट साइमन भी चले। ये सभी राज्य को भूमि का एकमात्र स्वामी बनाना चाहते थे, उसीको सब उद्योगों का स्वामी और समस्त उत्पादन का नियन्ता भी बनाने के इच्छुक थे। प्राधों

सम्पत्ति को चोरी मानता था और फूरिये (१७७२-१८३७) ने आर्थिक तथा राजनीतिक पुनःसंघटन का सबल समर्थन किया। फ्रांस के समाजवादियों में सबसे महत्त्वशाली व्यक्तित्व है लुई ब्लां, उसके विचारों ने फ्रांस पर बडा गम्भीर प्रभाव डाला। १८३८ में उसने ला रेव्यू दु प्रॉग्रे सोसियाल (सामाजिक प्रगति का विवरण) का प्रकाशन आरम्भ किया और तीन वर्ष उपरान्त उसके ग्रन्थ 'इस्त्वार दे दी' ज्ञांस' (दस वर्षो का इतिहास) का प्रथम खण्ड प्रकाशित हुआ। उसकी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'लो'र्गानास्यो दुत्रवेल' (श्रम का सघटन), जो १८३९ में प्रकाशित हुई थी, फ्रांस में समाजवादी विचारों का एक महत्त्वपूर्ण प्रगति चिह्न है। उसकी पुस्तक के महत्त्वपूर्ण विचार ये थे—

(१) व्यक्तिवाद औद्योगिक प्रतिस्पर्धा को जन्म देता है।

(२) यह स्पर्धा आगे गरीबो को जन्म देती है।

(३) गरीबी दुःख और दैन्य को जन्म देती है। ससार मे जन्म लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति का यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह जीवनयापन करे और अपने श्रम के सहारे जीवनयापन करे।

लुई ब्लां के अनेक भ्रान्त एवं अस्पष्ट विचारों में से जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विचार है वह यही है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने श्रम के सहारे पर जीने का अधिकार था। श्रम का अधिकार (या काम करने का अधिकार) एक महान् विचार था जो लुई ब्लां ने अपने देशवासियों के समक्ष रखा, और बडे आवेशपूर्ण स्वर मे उसने राज्य द्वारा औद्योगिक नियन्त्रण हो हथियाने और संघटन करने का समर्थन किया था। सामाजिक अन्याय का अन्त करने का एकमात्र उपाय यही था कि राज्य की आर्थिक व्यवस्था को अभिनव सिद्धान्तो के आधार पर पुनः सघटित किया जाये।

बूनारोत्ती के प्रभाव से फ्रास में साम्यवाद के समर्थकों की भी कमी नही थी, बूनारोत्ती के विचारों को मेजिनी तथा उसके अनुयायियों ने इटली मे प्रचार किया था। लम्मने ने अपनी 'ल लिव्र दु प्पिपल' (जनता की पुस्तक) में यह सशक्त शब्दावली में प्रचारित किया था (१८३८) कि सभी वस्तुओ पर जनता का सयुक्त अधिकार होगा, परन्तु थोड़े समय के बाद उसने अपने इस कथन से इन्कार कर दिया। साम्यवादियों में उस समय अनेक निर्धन और असन्तुष्ट जन थे जो धनिको और अभिजातों के विरुद्ध सग्राम का स्वर ऊँचा करते थे।

इस प्रकार १९ वीं शताब्दी के मध्य में गणतन्त्रवाद एकबार पुनः एक शक्तिशाली मतवाद बन गया। क्रान्तिवादी पूँजीवाद, स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा, उत्पादित माल के अनुचित विभाजन और अपनी माँगो का गीत ही अलापते रहते थे। यही वह समय (१८४८) था जब कार्ल मार्क्स तथा फ्रेड्रिक एंगल्स ने अपना साम्यवादी मन्तव्य (कम्युनिस्ट मैनि-

फैस्टो) प्रकाशित किया था और जिसने क्रान्तिकारी शक्तियो को खूब गतिशील बना दिया।

होतेल दे विल में एक कामचलाऊ सरकार की स्थापना की गयी, इसमें द्युपों दे ल्यूर, ला मार्तीन, अरगो, गर्मिये पाज़े, लद्रू रोलें जैसे प्रजातन्त्र के समर्थक तथा कुछ अन्य लोग थे। २६ फरवरी, १८४८ को गणतन्त्र की घोषणा कर दी गयी और राजतन्त्र का उन्मूलन कर दिया। कामचलाऊ सरकार ने लुई ब्लां के परामर्श पर, जो उस समय श्रम आयोग (लेबर कमीशन) का अध्यक्ष था, बेकारी तथा धनहीन वर्गो के दुखो को घटाने के लिए राष्ट्रीय कारखानों के प्रयोग को चलाया। थोडे ही समय मे भारी संख्या मे लोग इन कारखानो में एकत्र होने लगे और मई मास की समाप्ति के पूर्व ही इनकी संख्या १,२०,००० हो गयी। इतनी बड़ी संख्या को काम पर लगाना असम्भव ही था और यह सारा प्रयोग एक अनर्थवाद मे परिणत हो गया। तीये का इस प्रसंग मे आक्षेप बड़ा सही था—"जो कुछ असम्भव है उसको पूरा कर देने का वचन देना, जनता को धोखे में रखना, और उनसे वे छलकपट करना है, जिनका वे बाद मे अपनी बन्दूको से बदला लेंगे

श्रमिकों के आन्दोलन ने बड़ा भीषण विस्तार प्राप्त कर लिया था और राज्यशासन ने सेनानायक कैवेन्याक को युद्ध-मन्त्री नियुक्त कर दिया था। राजविद्रोहियों का दमन कर दिया गया, और २६ जून को संसद में यह समाचार पहुँच गया कि अव्यवस्था और उपद्रवों को बिलकुल दबा दिया गया है। संविधान सभा ने अब विधान-निर्माण का कार्य अपने हाथों मे लिया, इस संविधान की मुख्य विशेषताएँ ये थी—(१) सार्वजनिक मताधिकार के आधार पर ७५० वैतनिक सदस्यों का एक ही सदन हो, (२) इस सभा द्वारा निर्वाचित एक राज्यपरिषद हो, (३) सार्वजनिक मताधिकार द्वारा निर्वाचित एक राष्ट्रपति हो, उसको निर्णायिक मत (वीटो) का परिमित अधिकार हो, और वह अपने मन्त्रियों को नियुक्त करे परन्तु ये मन्त्री संसद के प्रति उत्तरदायी होंगे। राष्ट्रपति के अधिकारों पर वाद-विवाद हुआ और ग्रेवी महाशय ने निरकुशता की भयंकर सम्भावनाओं की ओर स्पष्ट इंगित कर दिया था। उसने एक संशोधन प्रस्तावित किया कि राष्ट्रपति तथा मन्त्रियों को संसद निर्वाचित करे और उसको उन्हें पदच्युत करने का अधिकार हो, परन्तु यह संशोधन अस्वीकृत कर दिया गया। ऐसा करने से फ्रांस की संविधानसभा ने, जैसा कि एक आधुनिक लेखक ने कहा है, नवजात गणतन्त्र की मृत्यु का आदेशपत्र हस्ताक्षरित कर दिया था। ग्रेवी की शंकाएँ जैसा परवर्ती इतिहास से स्पष्ट प्रकट हो जाता है, पूर्णतः निराधार नहीं थीं।

गणराज्य के राष्ट्रपति पद के निर्वाचन के लिए कई उम्मीदवार थे। कैवैन्यक, ला मार्तीन और लुई नेपोलियन यही थे इस क्षेत्र में। लुई नेपोलियन नेपोलियन महान् का भतीजा था, अप्रैल में वह संविधान सभा द्वारा निर्वाचित कर लिया गया। वह स्वभाव से ही

षड्यन्त्रप्रेमी, और पाखण्डी था, वह अपने आपको और दूसरों को भी अपनी विलक्षण राजनीतिक उड़ानो से धोखा दे सकता था। देश में उस समय व्याप्त अव्यवस्था और मतिभ्रम के वातावरण में वह अपने लिए अवसरों की खोज कर रहा था। ऑर्लियाँ राजतन्त्र की अयोग्यता और उसकी शान्तिप्रिय नीति से थकी हुई फ्रास की बहुसंख्यक जनता ने उसको अपना मत दिया था; वह विक्टर ह्यूगो के इस विचार से सहमति रखते हुए ही उसके मत मे अपना मत दे रही थी कि वह अपने पितृव्य की ही तरह कुछ लक्षणीय महान् कर्म सम्पन्न करेगा। जो चुनाव हुआ उसमे कैवेन्यक को १४,४८,१०७ मत मिले, ला मार्तीन को केवल १७,९१० तथा लुई नेपोलियन, जो उस नाम का वाहक था जिसे महागौरव का द्वितीय अभिधान कहा जाता था, जो नाम कृषकों के हृदयों मे अभिनव आशाओं का संचार कर देता था, ५४,३४,२२६ मतों का ग्राहक बना। ऐसी थी सार्वजनिक मताधिकार की लीला। लुई नेपोलियन की माता की भविष्यवाणी कि वह बड़े भागों वाला आदमी है, परी हुई थी, और १८१५ की चतुर्मुखी मैत्री सन्धि तथा परवर्ती कांग्रेसों के रहते हुए भी एक बार फिर से एक बोनापार्ट राजकुमार फ्रांस का शासक बन गया था।

एक फ्रासीसी जन ने कहा था, १८४८ की राज्यक्रान्ति एक ऐसा कार्य थी जो कारण रहित था, और फालो ने इसमें समुचित परिवर्धन कर दिया था—और यह एक ऐसा कार्य था जो अपने कारण के पूरे-पूरे अनुपात को द्योतित करता था। लुई फिलिप अत्याचारी नहीं था; उसने कोई आक्रमण या आघात नही किया था, परन्तु उसकी नीति ने ऐसी शिथिलता उत्पन्न कर दी थी जिससे फ्रांसीसी जन कभी भी समझौता कर न सके। वस्तु-स्थिति यह है कि जुलाई राजतन्त्र ध्वस्त नही किया गया; वह लड़खड़ा कर गिर गया। इतना सब होने पर भी जुलाई राजतन्त्र सर्वथा उपलब्धिहीन नही था। फ्रांस की भौतिक दशा में विचारणीय सुधार हुआ था। संसदीय जीवन घृणा-विद्वेष से मुक्त हो गया था।

१८४८ की राज्यक्रान्ति इतिहास का एक नया पृष्ठ था। यह औद्योगिक प्रजातन्त्र के युग में खुला था। मध्यवर्ग फ्रांस को शासित करने में विफल हुए थे; वे उदासीनता और निष्क्रियता मे डूब चुके थे। अतः विशाल जनसमूह ने उनके हाथों से राजसत्ता छीन ली थी और उन लोगों के हाथ मे सौप दी थी जिन्हें जनहितों के पूर्ण न्याय मे विश्वास था। १७८९ की राज्यक्रान्ति ने वैधानिक समता स्थापित की, १८३० की राज्यक्रान्ति ने सामाजिक समता की और १८४८ की राज्यक्रान्ति ने राजनीतिक समता की प्रतिष्ठा की थी।